श्री जगदाचार्य

अभिनन्दन-ग्रन्थ

प्रकाशक—
अभिनन्दन समिति
अध्यात्म विद्यापीठ नैमिषारण्य
(सीतापुर यू० पी०)

श्री जगदाचार्य

अभिनन्दन ग्रंथ

संपादक—

पं० माधवाचार्य शास्त्री

——०——

प्रकाशक—
श्री जगदाचार्य अभिनन्दन समिति
नैमिषारण्य, जि० सीतापुर
(यू० पी०)

पुस्तक मिलने का पता—
प्रबन्धक
श्री नैमिष व्यासपीठ अध्यात्म विद्यालय
पोस्ट—नैमिष, जिला सीतापुर (उत्तर प्रदेश)

मकरार्क २०२४
प्रथमावृत्ति—२०००

मूल्य १५)

मुद्रक—
श्रीकण्ठ शास्त्री एम० ए०
व्याकरणाचार्य
धर्म प्रेस, १०३ ए, कमलानगर दिल्ली-७

किञ्चित् वक्तव्य

श्री नैमिष-व्यास-पीठाधीश्वर जगदाचार्य अनन्तश्री स्वामी नारदानन्द सरस्वती महाराज अपने पवित्र ऐहिक दैहिक जीवन के सत्तर वर्ष पूरे करके अशीति दशक में पदार्पण कर रहे हैं, और इसके उपलक्ष्य में उनके शिष्य प्रशिष्य एवं भक्त जन उन्हें 'अभिनन्दन-ग्रन्थ' अर्पण कर रहे हैं—जो आपके हाथ में है। ग्रन्थ की रूपरेखा यह है कि इसके प्रथम-खण्ड में धर्माचार्यों, विशिष्ट विद्वानों, सन्तों, महन्तों अथ च राजकीय पुरुषों के अभिनन्दनात्मक उद्गार उपन्यस्त किये गए हैं। तदनन्तर श्री जगदाचार्य महाराज का जीवन चरित्र [जन्म काल से आरम्भ करके ग्रन्थ मुद्रण समय पर्य्यन्त] अङ्कित किया गया है, जिसमें उनका विलक्षण प्रादुर्भाव, बाललीला, पठन-पाठन, गृहस्थ सम्बन्ध, वैराग्योदय, गृहत्याग, सद्गुरु-प्राप्ति और चतुर्थाश्रम में प्रवेश के अतिरिक्त उनके द्वारा संस्थापित और सञ्चालित अनेक धार्मिक संस्थानों का संक्षिप्त विवरण भी दिया गया है, धर्मप्रचार की दिशा में उनके द्वारा किये जा रहे सतत प्रयत्नों का तथा प्राप्त सफल उपलब्धियों की भाविस्थिरता के लिये न्यास-निर्माण आदि का, अपने उत्तराधिकारी के रूप में एक सत् शिष्य की घोषणा का वर्णन किया गया है। अन्त में चूड़ान्त विद्वानों के धर्मिक विषयों पर उपयोगी लेख हैं जिनके द्वारा पाठकों के ज्ञान की वृद्धि होगी।

द्वितीय-खण्ड में अद्भुत गाथाएं और उनका हिन्दी अनुवाद किया गया है, जिनमें कुछ गाथाएं तो प्राचीन पौराणिक गाथाओं की पूरक हैं। कुछ ऐतिहासिक गाथाएं हैं, जो पुराणोत्तर काल में उत्पन्न होने वाले अभिनव आदर्श-महापुरुषों, भक्तों, धर्मवीरों और शूरवीरों की हैं, जिनका कि अभी तक संस्कृत-साहित्य में उल्लेख नहीं था, बड़े २ कथावाचकों और महोपदेशकों को भी उन पवित्र चरित्रों का अपने प्रवचनों में कथन तो

करना पड़ता था, परन्तु वह केवल कपोल कल्पित ग्राम्य तुकबन्दियों पर ही आधारित होता था। अतः आवश्यकता थी कि नैमिष-व्यासपीठ की परम्परा के अनुसार पुराणोत्तर-कालीन उपयोगी चरित्रों का तथा उपयोगी दृष्टान्तों का भी संस्कृत-पद्यों में संकलन हो सो इसी कमी की पूर्ति के लिए उक्त ग्रन्थ में गाथात्मक-खण्ड को सम्मिलित किया गया है।

हम शास्त्रार्थमहारथी श्री पं० माधवाचार्य शास्त्री के आभारी हैं कि जिन्होंनें अपने व्यस्त जीवन में से बहुत सा समय निकाल कर न केवल उक्त ग्रन्थ का सम्पादन ही किया है अपितु अपनी बहुमूल्य-कृति यह संस्कृतपद्य-बद्ध गाथा पञ्चाशिका भी प्रदान करने की कृपा की है।

लेखादि के संग्रह में श्री हरभजन लाल शास्त्री ने भी पर्य्याप्त दौड़ धूप की है, अतः वे भी धन्यवादार्ह हैं।

मङ्गलं पाठकानाञ्च लेखकानाञ्च मङ्गलम्।

प्रकाशक—

विषय-सूची

क्रमाङ्क विषय पृष्ठ

१. मङ्गलाचरण १
२. शुभाभिनन्दनम् २
३. भूतपूर्व राष्ट्रपति पं० राधाकृष्णन् की शुभकामना ७
४. उत्तर प्रदेश के राज्यपाल की शुभकामना ७
५. (क) डाक्टर सम्पूर्णानन्द (ख) श्री के० एम० मुन्शी (ग) श्री भगवतदयाल शर्मा (घ) श्री गोलवलकर जी (ङ) श्री सेठ गोविन्द दास (च) श्री प्रकाशवीर शास्त्री आदि की श्रद्धाञ्जलियां । ८-१०
६. द्वारका-पीठाधीश्वर श्री शङ्कराचार्य जी का शुभाशीर्वाद । १०
७. श्री आद्याचरण पाण्डेय द्वारा अभिनन्दन । ११
८. राष्ट्रपति श्री जाकिर हुसेन द्वारा शुभकामना १३
९. श्री कृष्णलाल की शुभकामना १३
१०. (क) श्री सुब्रह्मण्यम् (ख) श्री अक्षयकुमार जैन (ग) श्री विशन नारायण शुक्ल (घ) श्री दरबारी लाल शर्मा की श्रद्धाञ्जलियां (ङ) जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्य द्वारा अभिवर्द्धन १४-१८

जीवन चरित्र

११. जन्मस्थान और पैतृक परम्परा । १९
१२. बाल्यकाल और शिक्षा । २१
१३. सच्चे धर्म की खोज में । २३
१४. प्रभावशाली व्यक्तित्व । २४
१५. अध्यात्म साधना, सद्गुरु की प्राप्ति । २५
१६. अध्यात्म-विद्यालय का शुभारम्भ । २७
१७. समाज-सेवा के विशेष कार्य । २८

१८. गृहत्याग । ३०
१९. वैकुण्ठ आश्रम । ३१
२० दीक्षित भक्त मण्डली । ३२
२१. दैवी सम्पद्मण्डल और मुक्ति की निसेनी । ३३
२२. रातोंरात कुआं खोद डाला । ३४
२३. अरण्य कुटी शृंगीरामपुर । ३७
२४. तीर्थों में भ्रमण, देवकली आश्रम । ३८
२५. नैमिष टीला, नैमिषारण्य । ३९
२६. महामना श्री मालवीय जी से भेंट । ४१
२७. शौनक कुटी--परमार्थ साधन आश्रम । ४२
२८. शिक्षा सुधार समिति । श्री स्वामी जी का कायाकल्प । ४४
२९. विशाल रुद्रमहायज्ञ श्री अध्यात्म विद्यापीठ । ४६
३०. श्री हिन्दु-प्रार्थना-समिति । ४८
३१. वानप्रस्थ-आश्रम और ऋषिआश्रमों की स्थापना । ४८
३२. भारत-भक्त-समाज । ४९
३३. भारत-भक्त-समाज की तीर्थयात्रा ट्रेन ५०
३४. भारतभक्त-समाज का साहित्य ५१
३५. प्रार्थना, गौरव, धर्म-विद्यालय । ५२
३६. अध्यात्म-परीक्षा-परिषद्-विशिष्ट-स्नातक । ५२
३७. कुम्भ पर्वों पर धार्मिक प्रचार । ५७
३८. धर्म-परिषद् गोष्ठी । ६३
३९. विश्वहिन्दुसम्मेलन । ६४
४०. नैमिष-व्यासपीठ का पुनरुद्धार-जगदाचार्य पदाभिषेक । ६४
४१. चमत्कारिक घटनाएं । ६५
४२. सद्गुरु एकरसानन्द जी के संस्मरण । ६६

४३. वर्तमान समय का प्रचार कार्य। ७२
४४. नैमिष का १०८ कुण्डात्मक यज्ञ। ८३
४५. (क) दैनिक प्रार्थनाएं (ख) नैमिषारण्य के दर्शन (ग) अध्यात्म भूमि भारत ८८
४६. पट्टशिष्य श्री स्वामी विवेकानन्द सरस्वती महाराज। ९५

प्रकीर्ण-लेख

४७. गुरुदेव के कुछ संस्मरण। १००
४८. यतिसम्राट् के प्रथमदर्शन। शुभाभिनन्दन. १०६
४९. (क) जीवन के गूढ़ रहस्य (ख) मेरे आराध्य (ग) युग-निर्माता ११३
५०. प्रश्न जिज्ञासु के उत्तर गुरुदेव के। १२३
५१. भारतीय संस्कृति के जागरूक प्रहरी। १५०
५२. हरिहरयाग मीमांसा। १५६
५३. सद्गुरु शरणागति १६५
५४. अनोखा बलिदान। १७०
५५. सद्भावनायें १७३
५६. दहर विद्या १७७
५७. यज्ञ और अग्नि १८३
५८. पूर्व मीमांसा में धर्म १९३
५९. श्रद्धेय जगदाचार्य १९८
नैमिष व्यासपीठ निरूपणम् २०१
६०. नैमिष में सहस्रवर्षीय देव सत्र, ऋषि-सत्र। २०२
६१. नैमिष-माहात्म्य। २०३
६२. गोमती-माहात्म्य। २०४
६३. व्यासों की अनादि परम्परा। २०५
६४. विभिन्न व्यासों की नामावलि। २०७

६५. व्यासमाता सत्यवती का पूर्वेतिहास। २०८
६६. कृष्ण द्वैपायन व्यास का अवतार। २१०
६७. कृष्णद्वैपायन व्यास का नैमिष में आगमन। २१५
६८. व्यासेश्वर शिवलिङ्ग की स्थापना। २१५
६९. जनमेजय द्वारा सुवर्ण सिंहासन अर्पण। २१६
७०. यज्ञकुण्ड से लोम-हर्षण का प्रादुर्भाव। २१७
७१. विष्णु के अंशावतार–सूत। २१९
७२. उग्रश्रवा सूत–कथाव्यास। २१५
७३. भगवान् राम का अश्वमेध नैमिष में। २२३
७४. नैमिष शोभा (कविता)। २२४
७५. भारत की महान् विभूति स्वामी नारदानन्द जी। २२५
७६. मैंने आर्यसमाज छोड़ दिया। २२९
७७. अविस्मरणीय संस्मरण। २३२
७८. समाज के कर्णधार कर्मयोगी। २३८
७९. श्री जगदाचार्य अभिनन्दनीय हैं। २४०
८०. शब्द सुमनाञ्जलि (कविता)। २४२
८१. सांस्कृतिक परम्पराओं के प्रहरी। २४४
८२. श्री गुरुदेव। २४६
८३. यं लब्ध्वा नैमिषस्तीर्थो मूर्तिमानिव भासते। २४७
८४. अभिनन्दन है, अभिनन्दन है (कविता)। २४८
८५. सदाचार का महत्व। २५१
८६. मनः–एक विवेचन। २५३
८७. स्वामी जी की विश्व को देन। २५५
८८. भारत को जगद्गुरु देखने को सक्रिय। २५६

विज्ञप्ति—"गाथा-पंचाशिका' की विषय सूची द्वितीय खण्ड के प्रारम्भ में दी गई है। —सम्पादक

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

श्री जगदाचार्य अभिनन्दन ग्रंथ

—०—

मङ्गलाचरणम्

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥१॥
वृहगो वाहनं यस्य, त्रिकचो यस्य भूषणम् ।
सालपा वामभागे तु पात्वैकात्म्यं त्रिकं महः ॥२॥
चक्रिणं चक्रतीर्थञ्च व्यासेशं ललिताम्बिकाम् ।
गोमतीं नैमिषं क्षेत्रं प्रणमामि मुहुर्मुहुः ॥३॥
व्यासं सूतं लोमहर्षमुग्रश्रवसमुत्तमम् ।
अष्टाशीतिसहस्रांस्तान् शौनकादीन्मुनीन् नुमः ॥४॥
व्यासपीठञ्च व्यासांश्च साप्तविंशतिसंख्यकान् ।
तथा च भाविनं व्यासं द्रोणपुत्रं नमाम्यहम् ॥५॥
वन्दे तं जगदाचार्यं नारदानन्दसद्गुरुम् ।
यः साम्प्रतं व्यासपीठमधिष्ठाय विराजते ॥६॥

श्रीमन्नारायण भगवान् को और नरों में उत्तम नेता को श्री सरस्वती देवी तथा व्यास जी को प्रणाम करके जय'नामा' इतिहास का पठन पाठन होना चहिए ॥१॥ वृषभ, हंस और गरुड़ जिसके वाहन हैं तथा त्रिशूल, कमण्डलु और सुदर्शनचक्र जिसके अलंकार हैं एवं सावित्री, लक्ष्मी और पार्वती जिसके वाम भाग में विराजती हैं ऐसे ऐकात्म्य को प्राप्त होने वाला

त्रिदेव रूप तेज हमारी रक्षा करे ।।२।। सुदर्शनचक्रधारी भगवान् विष्णु का और चक्र से समुद्भूत चक्रतीर्थ को, क्षेत्र के अधिष्ठाता व्यासेश्वर नामक शिव भगवान् को, क्षेत्राधिष्ठात्री देवी ललिताम्बरा को, गोमती नदी को तथा नैमिष क्षेत्र को मैं बार बार प्रणाम करता हूं ।।३।। श्री वेदव्यास को, पुराण वक्ता सूतजी को, सूतपुत्र लोमहर्षण को उनके प्रधान शिष्य उग्रश्रवा जी को और शौनकादिक अट्ठासी हजार ऋषिवृन्द को हम नमस्कार करते हैं ।।४।। व्यासपीठ को, जो व्यासपीठाधीश हो चुके उन सत्ताइस व्यासों को तथा भावि व्यास द्रोणपुत्र अश्वत्थामा को मैं प्रणाम करता हूं ।। व्यासपीठ के साम्प्रतिक अधिष्ठाता जगदाचार्य स्वामी नारदानन्द सरस्वती जी महाराज की हम वन्दना करते हैं ।।६।।

—०—

श्रीनैमिष-व्यास-पीठाधीश्वराणां जगदाचार्य्याणाम् श्री स्वामि नारदानन्द-सरस्वती-पादानाम्

शुभाभिनन्दनम्

ये नैमिषारण्यपवित्रतीर्थे श्रीव्यास-पीठ-प्रभवः प्रसिद्धाः ।
आचार्यवर्य्या जगतोऽखिलस्य श्रीनारदानन्द सरस्वतीन्द्राः ।।
निर्व्यूढधर्म-कार्य्याः, सततं स्वजनेषु विश्रुतौदार्य्याः ।
श्रीमद् जगदाचार्य्या विबुधजनानां सदा शिरोधार्य्याः ।।
संस्थाप्य तान्यृषि-कुलानि बहूनि लोके,
यैः ख्यापिता 'कुलपति'-स्तुतिरन्वितार्थाः ।
अध्यात्म-साधन-परायण-साधकानां,
शिक्षाकृते च निहिताऽद्भुतपाठशाला ।।३।।
संस्थाप्य संस्थाप्य पुरे-पुरे बहून्, ऋष्याश्रमान् धर्ममयान् शताधिकान्
यैर्मालवीयोक्त-विधानपद्धतिमुद्दिश्य सर्वत्र विधीयते क्रिया ।।४।।

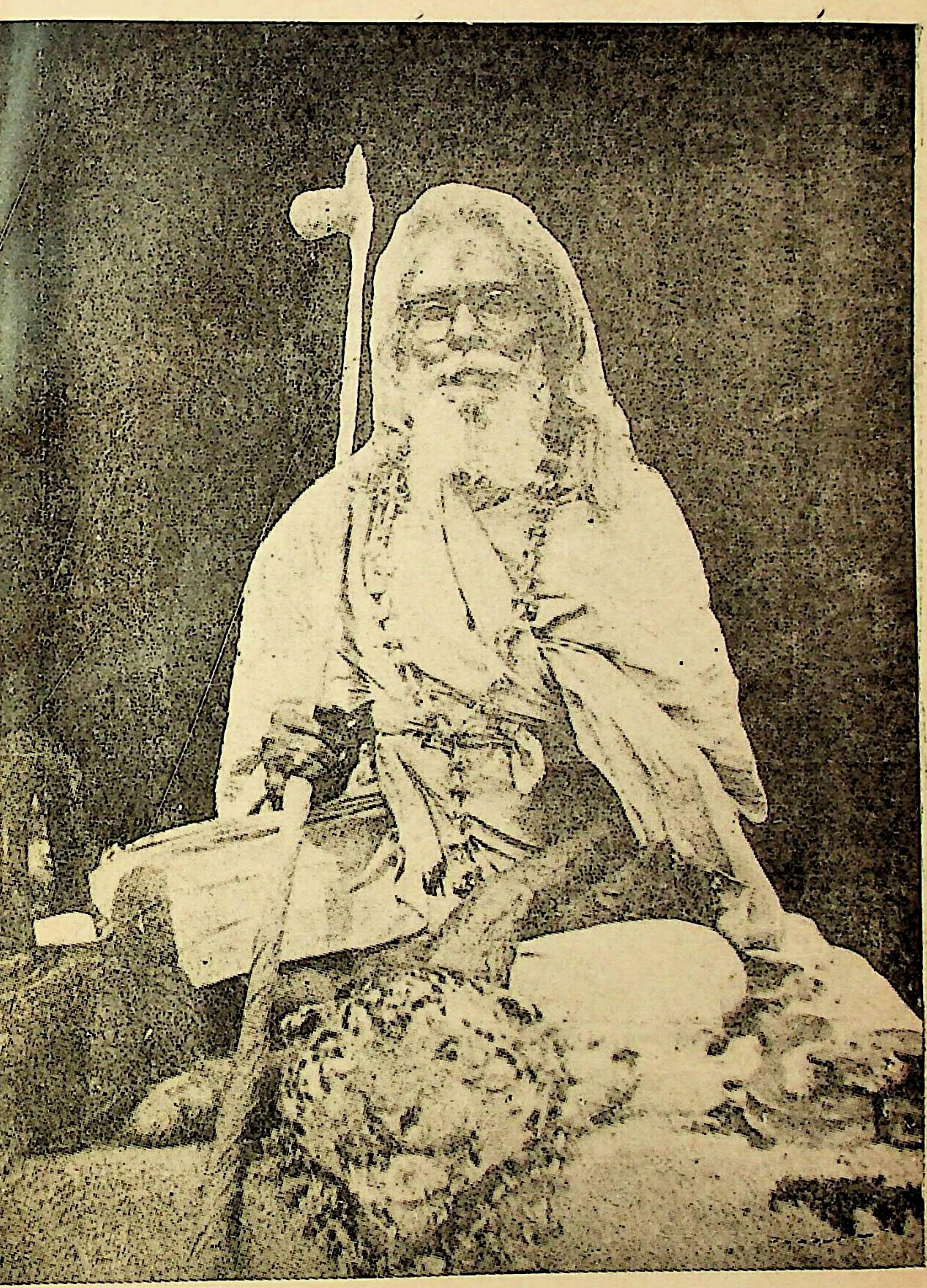

अनन्तश्री नैमिष व्यासपीठाधीश्वरजगदाचार्य
स्वामी नारदानन्द सरस्वती महाराज

लक्षाधिका यच्चरणाश्रिताः प्रभुं, रामायण-प्रार्थनया स्तुवन्ति हि ।
सामूहिकं दृश्यमिदं च सन्ध्ययोर्द्वयोर्महाऽऽनन्दकरं भवत्यहो ! ।।५।।

ग्रन्थेष्वेवावशिष्टोऽभूद्, वानप्रस्थाश्रमः कलौ ।
पुनरुद्धृत्य सोऽप्यत्र, स्थापितः स्वाश्रमेषु यैः ।।६।।

येषां सुशिष्याः शतशः समादृता, विभिन्न-संस्थाऽधिपतां गता भुवि ।
तथा प्रशिष्या अपि शङ्करास्पदे, प्रतिष्ठिता पान्ति मुदा स्वसंस्कृतिम्
येषां प्रसादात्किल लभ्यते जनैः,. विवेक आनन्द उरू सरस्वती ।
तेषां हि वात्सल्य-गुणौघ-संस्कृतस्तदाह्वयः शिष्यवरोऽपि तादृशः ।।

अनेकविषयाचार्य्यो विवेकानन्द आस्तिकः ।
ब्रह्मचर्य्याश्रमाज्जातः सन्यासाश्रमदीक्षितः ।९।

श्रीतीर्थराजपुलिने घट–पर्व–काले,
विज्ञा द्विजा अथ जगद्गुरवो महान्तः ।
ताँस्तान् गुणान् समवलोक्य मुदा भवन्तम्,
वैय्यासिके सुभग–पीठवरेऽभ्यसिञ्चन् ।।१०।।

अष्टोत्तर-शत–परिमित–कुण्डयुतं विधाय यैर्यज्ञम् ।
श्रीलविवेकानन्दे न्यस्तं सर्वं स्वकार्य्यकर्तृत्वम् ।।११।।

यैरित्थमात्मनिहितं गुरुकार्य्यभारं, न्यासीकृतं प्रवरशिष्यमहासमित्याम्
निर्धूत-सर्व-विषया अविलिप्तकामाः, स्वैरं चरन्ति भुवने कृतविश्वकृत्याः

व्यासपीठाधिनाथनां जगदाचार्य-चिद्विदाम् ।
विनीतो माधवाचार्य्यो विदधात्यभिनन्दनम् ।।१३।।

श्री नैमिषारण्य पवित्र तीर्थ स्थित व्यासपोठ के अधीश्वर यतिवर श्री जगदाचार्य महाराज अभिनन्दनीय हैं। आप निरन्तर धर्म कार्यों में संलग्न रहने हैं। स्वजनों के प्रति आपका उदार व्यवहार विश्वविदित है। इसलिये विद्वज्जन आपके चरणों में नत मस्तक होते हैं। आपने प्रसिद्ध ऋषिकुलों की स्थापना करके अपनी 'कुलपति' पदवी को सार्थक कर दिखाया है। इसी प्रकार अध्यात्म–विद्या की साधना में निरत साधकों की

शिक्षा के लिए आपने 'अध्यात्म-विद्यापीठ' नामक एक विलक्षण पाठशाला की स्थापना की है। आपने ग्राम–ग्राम और नगर–नगर में धर्ममय-वातावरण–सम्पन्न शताधिक ऋषि-आश्रमों का जाल बिछाकर स्वर्गीय श्री पं० मदनमोहन मालवीय महाराज की 'ग्रामे ग्रामे सभा कार्य्या' वाली संगठन पद्धति के उद्देश्य की भरसक पूर्ति की है। आपकी प्रेरणा से आपके लाखों भक्त स्त्री और पुरुष रामचरितमानसोक्त प्रसिद्ध स्तुति 'जय जय सुरनायक' आदि द्वारा प्रातः और सायं नित्य-प्रति सामूहिक रूप से भगवत् प्रार्थना करते हैं, जिसका दर्शनीय दृश्य बहुत ही आनन्ददायक होता है। वानप्रस्थ-आश्रम का नाम इस कलिकाल में केवल शास्त्रों में ही अवशिष्ट रह गया था परन्तु आपने उसका पुनरुद्धार करके ऋषि-आश्रमों में उसे पुनः प्रचलित किया है। आपके सैंकड़ों शिष्य हिन्दुसमाज द्वारा सम्मानित होकर विभिन्न, स्वतन्त्र संस्थाओं के अधिष्ठाता बने हुए हैं। तथा आपके शिष्यों ने भी शिष्य शंकराचार्य उपपीठों के अधिपति बने हिन्दुसंस्कृति का संरक्षण कर रहे हैं। आपकी कृपा से भक्त जनों को– विवेक, आनन्द और सारस्वत तेज प्राप्त होता है, सो आप के वात्सल्य प्रसाद से सम्पन्न उर्य्युक्त नाम वाले आपके मुख्य शिष्य (श्रीस्वामी विवेकानन्द सरस्वती महाराज) भी श्रीचरणों के ही अनुरूप हैं। अनेक विषयों के आचार्य उक्त आस्तिक शिष्य को ब्रह्मचर्याश्रम से ही आपने संन्यासाश्रम की दीक्षा से सम्पन्न किया है।

श्री तीर्थराज प्रयाग के विगत कुम्भपर्व के अवसर पर विद्वान् महत्मा सन्त महन्त और महामहिम जगद्गुरुवों ने आपके धर्मप्रचार सम्बन्धी सतत उद्योगों को देखकर श्रीचरणों को नैमिषव्यासपीठ पर अभिषिक्त किया है आपका 'अष्टोत्तर-शत कुण्डात्मक हरिहर देवताक' महायज्ञ अभूतपूर्व था, जिसका सम्पादन करने पर आपने अपने द्वारा संचालित समस्त धर्म कार्यों के प्रवर्तन का भार श्रीविवेकानन्द सरस्वती महाराज आदि पर उपन्यस्त किया है। इस प्रकार आपकी संस्थापित सब संस्थायें भविष्य में आपके आदिष्ट शिष्य भक्तों के न्यास (ट्रस्ट) द्वारा संचालित होंगी। आप स्वयं सर्वसंकल्पवर्जित, सर्वविध कामनाओं से अलिप्त रह कर यावज्जीवन विश्वसेवा का स्वेच्छा से सम्पादन करेंगे। हे श्री नैमिषव्यास-पीठाधीश्वर! मैं श्री चरणों का पुनरपि शुभाभिनन्दन करता हूं।

विनीत—
माधवाचार्य
(शास्त्रार्थ महारथी)

धर्मधाम, १०३ ए, कमलानगर,
देहली

सम्मान्य धर्माचार्यों
एवं
राष्ट्रीय नेताओं की

शुभ कामनायें

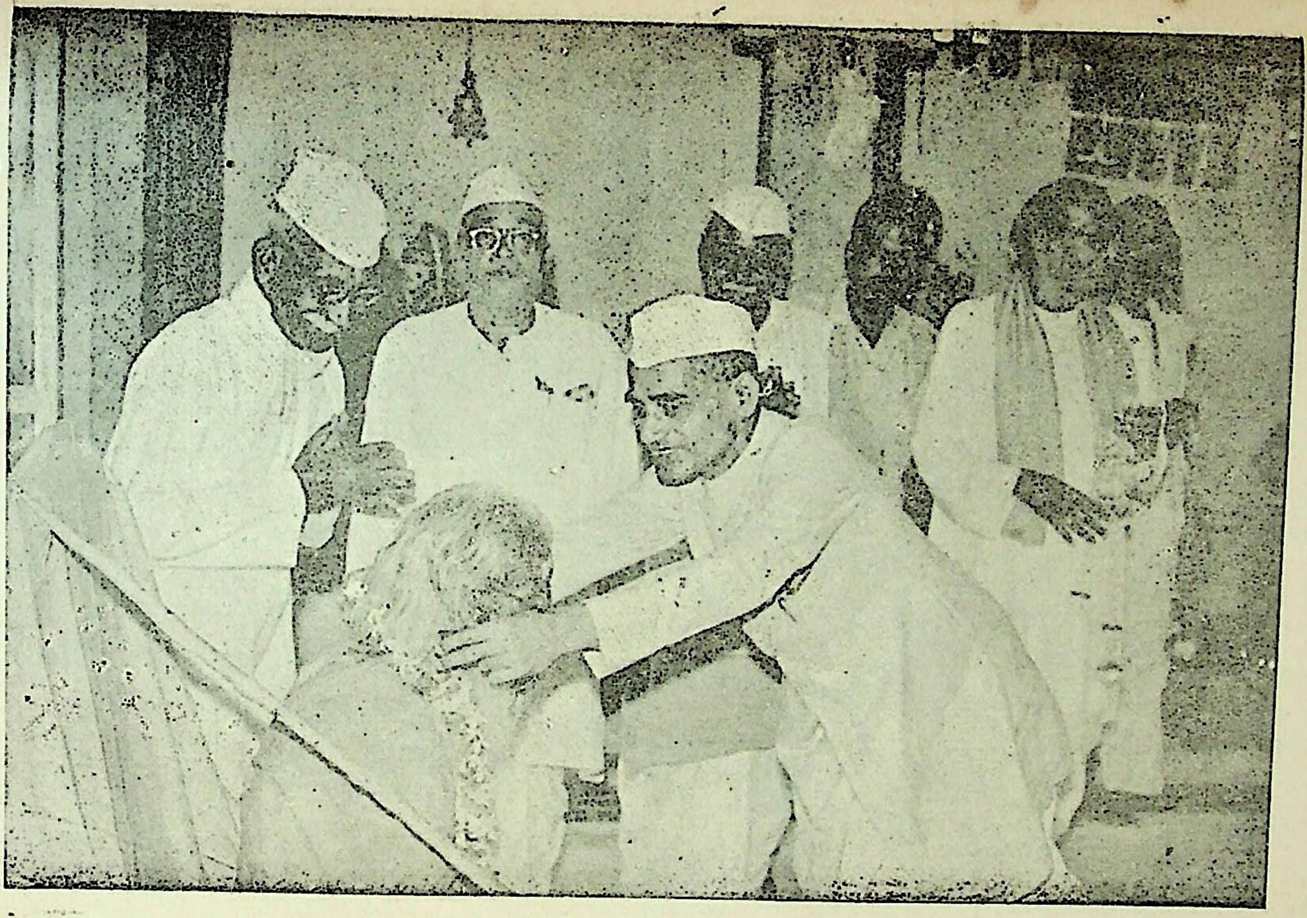

उत्तर प्रदेश के तात्कालिक राज्यपाल श्री विश्वनाथ दास माल्यार्पण कर रहे हैं।

राष्ट्रपति की शुभ कामना

राष्ट्रपति को यह जानकर प्रसन्नता हुई कि श्री जगदाचार्य अभिनन्दन-ग्रन्थ समिति, नैमिषारण्य (सीतापुर) द्वारा स्वर्ण-जयन्ती-समारोह के अवसर पर स्वामी नारदानन्द सरस्वती जी को अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट करने का आयोजन किया जा रहा है।

इस अवसर पर राष्ट्रपति जी अपनी शुभकामनाएं भेजते हैं।

भवदीय,
नागेन्द्रसिंह

उत्तर प्रदेश के राज्यपाल की शुभ कामना

राज्यपाल-शिविर, उत्तर प्रदेश, लखनऊ

नवम्बर १५, १९६६.

मुझे यह जानकर हर्ष है कि अध्यात्म-महाविद्यालय के स्वर्ण-जयन्ती-समारोह के शुभ अवसर पर स्वामी श्री नारदानन्द सरस्वती जी को अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट करने का निश्चय किया गया है। स्वामी श्री नारदानन्द जी ने सनातन-धर्म की सामयिक परिभाषा करते हुए उसका जो समकालीन उपयोग किया है वह अत्यन्त ही प्रशंसनीय है।

मैं अध्यात्म-महाविद्यालय के स्वर्ण-जयन्ती-समारोह की सफलता के लिए अपनी शुभ कामनाएं भेजता हूं।

विश्वनाथ दास
राज्यपाल, उत्तर प्रदेश

श्री जगदाचार्य जी अभिनन्दनीय हैं

—श्री डाक्टर सम्पूर्णानन्द जी राज्यपाल राजस्थान

स्वामी नारदानन्द जी के लिए मेरे मन में आदर है। उन्होंने लोकहित के लिए जो काम किए हैं वे अभिनन्दनीय हैं।

भवदीय,
सम्पूर्णानन्द

भू० पू० राज्यपाल श्री के० एम० मुन्शी की सद्भावना

I visited the Ashram of Swami Naradananda at Naimmisharanya. During his thrity years' stay there, this solitary sanyasi had built up a hundred-acre colony with a pathshala, a prayer hall and houses for those who are in search spiritual strength.

I met him again to the Victoria Terminus when he brought a party of pilgrims to see Bombay.

He is one of the noblest spirits I have met, fired by spiritual fervour.

On this happy occasion I join you all in paying my humble felicitation to Swamiji.

हरियाना के भू० पू० मुख्य मन्त्री की शुभकामना

यह एक हर्ष का विषय है कि नैमिष-व्यास-पीठाधीश्वर जगदाचार्य स्वामी नारदानन्द जी सरस्वती को स्वर्णजयन्ती अवसर पर अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट किया जा रहा है।

स्वामी नारदानन्द जी सरस्वती ने भारतीय जीवन को शुद्ध, पावन एवं

सात्विक बनाने के लिए उल्लेखनीय कार्य किया है। इसलिए मुझे विश्वास है कि अभिनन्दन ग्रन्थ में संकलित सामग्री से सभी देश वासियों को राष्ट्र, धर्म और रचनात्मक कार्य की शिक्षा प्राप्त होगी।

भगवत दयाल

राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के गुरु श्री गोलवलकर जी का प्रणति पत्र

परम श्रद्धेय श्रीमान् स्वामी नारदानन्द जी सरस्वती के चरणों में अभिनन्दन ग्रंथ भेंट करने का आप का संकल्प है यह पढ़कर बहुत प्रसन्नता हुई। श्री अध्यात्म-विद्यापीठ का स्वर्ण-जयन्ती-समारोह होने जा रहा है उस अवसर पर यह कार्य-क्रम करने का विचार भी अति औचित्य पूर्ण है।

परम मंगल श्री भगवान् की कृपा एवम् प्रेरणा से अभिनन्दन-ग्रंथ एक श्रेष्ठ अध्यात्म शास्त्र ग्रन्थ के रूप में अभिव्यक्त होकर ज्ञान पिपासुओं के लिए चिरजीवी प्रपा के नाते उपयुक्त होगा इसमें संदेह नहीं है। आपको पूर्ण सुयश प्राप्त हो इस हेतु कृपामय श्री प्रभु के चरण कमलों से प्रार्थना करता हूँ।

श्री अध्यात्म-विद्यापीठ का स्वर्ण-जयन्ती समारोह सानन्द सोत्साह सपन्न हो। असंख्य जिज्ञासुओं की तृप्ति करते हुए विद्यापीठ निरंतर प्रगति करता रहे। जिनकी पुण्यमयी प्रेरणा से यह पुनीत कार्य चल रहा है, अन्य संलग्न धर्म कार्य संचालित हो रहे हैं उन श्री जगदाचार्य स्वामी नारदानन्द सरस्वती जी महाराज के चरणों में सादर प्रणाम कहने की कृपा करें। इतिशम्।

भवदीय—
मा० स० गोलवलकर जी

श्री सेठ गोविन्द दास जी की शुभ कामनाएं

आपका दि० ११ अगस्त का कृपापत्र मुझे अपने पन्द्रह दिवसीय श्रीनाथ द्वारा प्रवास से लौटने पर आज मिला। धन्यवाद !

आगामी ३ मार्च से १६ मार्च तक नैमिषारण्य में आध्यात्म-विद्यापीठ की स्वर्ण जयन्ती मनाये जाने के संवाद से हर्ष हुआ । नैमिषारण्य हमारे आध्यात्म जगत् का एक सबल और प्राणवान् प्रमाण है, यहां के साधनारत साधक, महात्मा, एवं तपःपूत स्वामी श्री नारदानन्द जी सरस्वती इस संस्थान की पवित्रता एवं पूजायोग्य आध्यात्मिक परम्परा की ऐसी कड़ियां हैं जिनपर भारत गर्व कर सकता है । स्वतंत्र भारत के आधुनिक काल में जब की देश की नई पीढ़ी के निर्माण की आवश्यकता है—चरित्र-निर्माण की दिशा में हमारे पुरातन उपदेशों के अनुकरण में जो प्रेरणा और प्रोत्साहन हमारी शिक्षा देने में सक्षम नहीं है उसकी पूर्ति का प्रयत्न नैमिषारण्य जैसे आध्यात्मिक अधिष्ठान से ही संभव है ।

विद्यापीठ की स्वर्ण-जयन्ती के इस पावन अवसर पर मैं अपनी हार्दिक शुभ कामनाएँ व्यक्त करते हुए हमारे सुधारकों, शिक्षाविदों एवं विद्वानों से प्रार्थना करूंगा कि नैमिषारण्य विद्यापीठ की शिक्षाओं एवं उपलब्धियों को और सक्षम, व्यावहारिक एवं जनोपयोगी बनाने में अपना योगदान करें ।

भवदीय—

गोविन्ददास (संसद् सदस्य)

—:o:—

संसद् सदस्य प्रकाशवीर शास्त्री की श्रद्धाञ्जलि

महामना पं० मदनमोहन मालवीय जी के बाद मैंने सनातन-धर्म-जगत् के उन जैसे दूसरे और पृष्ट विचारों के सन्त कम देखे हैं । स्वामी जी एक व्यक्ति ही नहीं अपितु सजीव संस्था हैं । उन्होंने अध्यात्म क्षेत्र में जो कार्य किया है वह देश में देर तक अमर रहेगा ।

स्वतन्त्र होने के बाद भारत में राजनीति की ओर इतना झुकाव हो गया है, जो धार्मिक और आध्यात्मिक प्रश्न—इस देश के मूलभूत प्रश्न थे—ओझल होते जा रहे हैं । फिर भी स्वामी नारदानन्द जी जैसे सन्तों ने परिस्थितियों और हवाओं को चुनौती देते हुये उन भावनाओं को देश में जीवित रखा, यह देश के लिये गौरव की बात मानी जायेगी ।

अभिनन्दन-ग्रन्थ भेंट कर स्वामी जी का ही अभिनन्दन आप नहीं करेंगे अपितु अभिनन्दन-ग्रन्थ समिति और उस ग्रन्थ की शोभा भी इससे बढ़ेगी ।

इस अवसर पर मेरी पूज्य स्वामी नारदानन्द जी महाराज के पवित्र चरणों

श्री द्वारकापीठाधीश्वर श्री जगद्गुरु शङ्कराचार्य जी नैमिष
व्यासपीठाधीश्वर जगदाचार्य जी के साथ

में भावभरी श्रद्धांजलि अवश्य अर्पित कर दें। आपके इस सद्-प्रयास के लिये मेरी ओर से हार्दिक बधाई भी स्वीकार करें।

भवदीय—
प्रकाशवीर शास्त्री

—:o:—

श्री द्वारका शारदापीठाधीश्वर श्री जगद्गुरु शंकराचार्य अभिनव सच्चिदानन्द तीर्थ महाराज का शुभाशीर्वाद

नैमिषारण्ये किल क्षेत्रे पवित्रे प्रथिते श्रीस्वामी नारदानन्दसरस्वती-महोदयैः लोकोद्धारकृते संस्थापितस्य अध्यात्म-विद्यापीठस्य पञ्चविंशति वर्षाण्युपलक्ष्य महानुत्सवश्चिकीर्ष्यते तथा तत्सम्बन्धि-ग्रन्थोप्येकः समाह्रियत इति महानानन्दावसरोऽयम्।

किमपि वा भवतु कार्यं, क्षेत्रे विशिष्टे क्रियमाणं समधिकविस्तारं भवतीति अध्यात्मविद्याप्रचारार्थं स्वामिवर्य्यैर्नैमिषारण्यं क्षेत्रं स्वीकृतमास्ते, तत्र नैकानुपायानाश्रित्य मुमुक्षुजनोपकृतिः वितन्यत इति संश्लाघनीयमेतत्।

एतदादिविषयजातं विस्तरशो विवरीतुं प्रवृत्तोऽयं ग्रन्थ इति एतदुद्यमसाफल्यमभिकांक्षतः श्रीद्वारकाशारदापीठाधीश्वराः श्रीजगद्गुरुश्रीचरणाः शुभाआशिषो हार्दिकाः प्रयुञ्जता इतिशम्।

निवेदक :—
महाबलभट्ट मंत्री

—:o:—

अभिनन्दनन्तत्रभवताञ्जगदचार्यपदभाजां श्री स्वामी नारदानन्दसरस्वती-महाराज-पादानाम्

—श्री पं० आद्याचरण पाण्डेयः

यैरियम्भगवत्या ललितया लालिता त्रिपुरासुरवधाद्भगवते शिवायापि त्रिपुरार्युपाधिदात्री, अष्टाशीतिसहस्राणां ऋषीणान्तपसः केन्द्रभूता, वायव्य-

पुराणोक्त नैमिषस्य वाराह-पुराणप्रतिपादितनैमिशस्यचाधारभूता नैमिषभूः सन्त्यक्त-सैन्य-धन-वलैरपि, क्रोध-द्रोहरोषरहितैरपि, हिन्दु-धर्म्मविध्वंसकेभ्योऽहर्निशम्पापाचारचुञ्चुभ्यो, दुर्बुद्धकृषकाणां हलफालकुदालेभ्यश्च, केवलं स्वालौकिकशक्त्यैव संरक्षिता ।

या यैरियङ्कृतयुगत्रेताद्वापरोद्भूतैर्महात्मभिरपि, दुर्गमारण्यावनिरधुना सैव तपस्तितिक्षादिसद्गुणरहितेभ्यो व्याकुलेभ्यो मानवकुलेभ्योऽस्मिन् कलावपि सम्पादिता तपःस्थली ।

यदनिवार्च्याचिन्त्यालक्ष्यनिराकार-निर्विकार-तत्वनिरूपणम्वेदवेदाङ्गैर्मूकास्वादनवदव्यक्तमेव निरूप्यते । तदेव वरेण्यम्वर्ण्यं, यैस्सर्वसाधारणगम्य-सरलसुगेय-सुकोमलरीत्या प्रतिपाद्यते ।

आद्विजादन्त्यजान्तपर्य्यन्तानामेव किमपि तु म्लेच्छाणामपि हृत्सु, कर्णेषु तल्लोकव्यवहारेषु च प्रेमात्मिका-भक्तिर्यैरहर्निशमुप्यते । त एवेमे जगदाचार्य्य-पदभाजः श्री स्वामिनारदानन्दसरस्वतीजीमहाराजाः ।

यद्यपि सम्पूर्णमेतद्वर्षमेवैतेषान्धर्म्मप्रचारस्थलन्तथापि, ब्रह्मावर्त्यात्मकेषु हरदोई, सीतापुर, कानपुर, कन्नौज, मेनपुरी, एटा, इटावा, लखनऊ, लखीमपुरादिमण्डलेषु विशेषरूपेणैतेषान्धर्म्मप्रचारः ।

श्रीराघवीयमहिमाकेदारोद्भूतेन कविताकल्पवल्लीकुसुमेन महात्मना तुलसीदासेन विरचिता, शास्त्रानुमोदिता च या "जय जय सुर नायक जनसुखदायक' इतीश्वर-प्रार्थना-प्रचारे संलग्नम्—

दीनहीनपापमलीनेभ्यश्च यथायोग्यम् अन्नवस्त्र-शान्तिसुखात्मप्रकाशदीनाञ्च-दातारम्, वर्णाश्रमधर्मसमर्थकम् आनुषङ्गिकलब्धफलमूलादिभिः शुष्कपर्णसलिलैर्वा केवलं शरीरमात्रधारणपरमत एव, साधारणकषायपरिधाने कङ्कालमात्रशेषशुष्ककलेवरवोढारम् स्वामिनन्नौमि ।

स्वशरीरजन्मनाऽलंकृतसुसम्भ्रान्त, वीसविश्वात्मकपाण्डेय-कान्यकुब्जवंशावतंसेन, तृणवदपरिगणितरागमोहकामक्रोधेन, श्रीअध्यात्मविद्यापीठब्रह्मचर्याश्रमं संस्थाप्य, निरक्षरताम्परिवार्य्यमाणेन, भ्रष्टाचारोन्मूलनपूर्वकन्धर्म्मसंस्थापनपरायणेनानेन सनाथोऽयं सनातन-धर्म इति सत्यम् ।

नवनिर्वाचित राष्ट्रपति की मङ्गल कामना

राष्ट्रपति भवन, नई दिल्ली–४
दिनाङ्क २५ जुलाई १९६७

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि श्री स्वामी नारदानंद सरस्वती जी को उनके ७२वें जन्म दिवस पर एक अभिनंदन ग्रंथ भेंट किया जा रहा है। मेरी मंगल कामना है कि स्वामी जी बहुत वर्षों तक हमारे बीच रह कर हमें ऊपर उठाने का अपना काम जारी रखें।

भवदीय–
जाकिर हुसैन

—०—

श्री कृष्णलाल जी मंत्री पंजाब राज्य की
शुभकामना

No. 592
MINISTER
Labour & Parliamentary Affairs,
Department, Punjab,
CHANDIGARH
July 28, 1967

श्री स्वामी नारदानन्द सरस्वती जी के ७२वें जन्म दिवस पर मैं आपकी समिति को शुभ कामनाएं भेजता हूं तथा प्रार्थी हूं कि श्री स्वामी जी दीर्घायुः हों।

आपका—
कृष्णलाल

श्री सुब्रह्मण्यम् जी भू० पू० खाद्य मन्त्री, दिल्ली के उद्गार

मैं इस आश्रम में आकर बहुत प्रभावित हुआ हूं । मुझे अतीव आनन्द तथा प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है । यहां की योजनाओं द्वारा ही देश की प्रसन्नता उन्नति एवं विकास हो सकता है । देशवासियों की सदाचार एवं आध्यात्मिक शिक्षा इन आश्रमों की योजनाओं द्वारा आवश्यक है । अध्यात्म विद्यापीठ नैमिषारण्य द्वारा प्राचीन संस्कृति का बड़े सुन्दर ढङ्ग से पुनरुद्धार हो रहा है। यहां की योजना विश्व के लिये कल्याणकारी है ।

* * *

श्री अक्षयकुमार जैन, सम्पादक नवभारत टाइम्स दिल्ली की शुभकामना

देश की सभी उलझनें सुधारने के लिये 'पर हित निरत निरंतर' की स्वाभाविक भावना लोगों में जगाने की आवश्यकता है। श्री स्वामी जी महाराज द्वारा यह कार्य निरन्तर हो रहा है इसलिये हम हृदय से उनके दीर्घ जीवन की कामना करते हैं ।

……

श्री विशुननारायण शुक्ल, अवकाश प्राप्त जिला जज की

श्रद्धाञ्जलि

भगवत् कृपा से मुझे गुरुदेव का दर्शन सन् १९३० ई० में हुआ। पूज्य चरण के उपदेशों को सुनकर उसे मैं आचरण में लाने में सदैव प्रयत्नशील रहा परन्तु हो पाया या नहीं यह तो भगवान् ही जानते हैं। इन्हीं श्री चरणों की दया से जो उपदेश हृदयंगम हो गया है उसी से मुझे ३२ वर्ष की नौकरी जिसमें १४ वर्ष जज के पद पर, जहां न्याय की परम आंवश्यकता है, वह बोझ न प्रतीत हुई। मैं अपने कार्यकाल में कुछ सफल हो पाया हूं तो वह इन्हीं के आशीर्वाद से। क्योंकि एक जज का बहुत बड़ा दायित्व होता है, जिसे बिना संत शरण में जाकर वहन नहीं किया जा सकता है। आज के जज ठीक निर्णय देने में पूर्ण सफल इसीलिये नहीं हो पाते क्योंकि वह सन्तों से प्रेरणा नहीं प्राप्त करते। सन्तों की प्रेरणा परम आवश्यक है।

गुरुदेव भगवान् के विचारों के आधार पर पर चलने से सारे विश्व को लाभ होगा इस में किंचित् भी सन्देह नहीं है। इनकी आज्ञा का पालन करने से रामराज्य शीघ्र ही विश्व के कोने कोने में गूंजेगा, क्योंकि सत्य को कोई छिपा नहीं सकता।

जगद्गुरु श्री निम्बार्काचार्य श्री श्री जी महाराज श्री राधा सर्वेश्वर शरण देवाचार्य महोदय का

आशीर्वादात्मक सन्देश

भगवत्प्राप्ति का परमोच्चतम साधन एक मात्र भगवत्प्रार्थना ही है। यदि विश्व में सुख–शान्ति की स्थापना करनी है तो केवल उन अखिल ब्रह्माण्ड नायक सर्वनियन्ता श्री सर्वेश्वर प्रभु की अपने जीवन में दैनिक प्रार्थना करना ही सर्वश्रेष्ठ उपाय है। समस्त साधन भगवत्प्राप्ति के लिये ही करना चाहियें। स्वामी श्री नारदानन्द जी सरस्वती द्वारा संस्थापित परमोपकारी कार्य अत्यन्त सराहनीय तथा प्रशंसनीय हैं।

—०—

दरबारी लाल शर्मा (अध्यक्ष विधान परिषद् उ० प्र०) की

शुभ–कामना

राजनैतिक गतिविधि से तो हम एक दूसरे से दूर होते जा रहे हैं पर कन्याकुमारी से लेकर कश्मीर तक 'हरे राम हरे कृष्ण' की दिव्य स्थिति में राष्ट्रिय एकता का संकेत हमें अभी भी मिलता है। नैतिक और साँस्कृतिक भावना के द्वारा ही भारत में राष्ट्रिय एकता की भावना सुदृढ़ रह सकती है। श्री पूज्य जगदाचार्य जी महाराज द्वारा नैतिक और साँस्कृतिक उत्थान के लिये किये जा रहे प्रयत्नों की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। हम स्वामी जी का हृदय से अभिनन्दन करते हैं।

श्री जगदाचार्य जीवन-चरित्र

भारत वर्ष धर्म प्रधान देश है। अनादिकाल से यहाँ ऋषि, मुनियों सन्त, महात्माओं और भगवान् के दिव्य अवतारों द्वारा मानव समाज को कल्याण पथ का निर्देश मिलता रहा है। धर्म पालन के द्वारा लोक में सर्व विध अभ्युदय और परलोक में परमगतिकारी श्रेय की प्राप्ति हो यही मानव जीवन का लक्ष्य है। श्रुति और स्मृति इस सनातन पथ में विधान-शास्त्र हैं और उपनिषद्, दर्शन तथा इतिहास पुराण उसके पूरक ग्रन्थ हैं। युग-युग में इस सनातन धर्म पथ की रक्षा के हेतु महापुरुषों का निरन्तर अवतरण होता रहा है।

अतीत द्वापर युग में भगवान् कृष्ण के दिव्य अवतार के समय भगवान् वेदव्यास ने वेदों का विभाग और वेदान्त सूत्र की रचना करके धर्म संस्थापन का पुनीत कार्य्य किया था। अष्टादश पुराणों की-जिनमें भक्ति प्रधान **श्रीमद्भागवत** जैसे लोकोत्तर महान् ग्रन्थ और '**महाभारत**' जैसे महामहिम इतिहास ग्रन्थ विद्यमान हैं रचना की थी जिस महाभारत के अन्तर्गत विश्व-विख्यात अध्यात्म शास्त्र '**श्रीमद्भगवद् गीता**' का समावेश है जो कर्म, भक्ति और ज्ञान के सामंजस्य का अद्भुत स्वरूप है।

भगवान् वेदव्यास ने सरस्वती नदी के तट पर एवं अन्य तीर्थों में निवास करने के उपरान्त नैमिषारण्य तीर्थ में उक्त धार्मिक साहित्य का प्रसार और प्रचार किया। श्री व्यास के द्वारा रचित अष्टादश पुराण, इतिहास आदि की शिक्षा भी सूतजी ने व्यासगद्दी पर आसीन होकर शौनक आदि अठ्ठासी सहस्र ऋषियों को दी तथा उन ऋषियों के द्वारा सनातन धर्म का प्रचार विश्व में किया और संसार की समस्त शङ्काओं का समाधान किया। यह विद्वानों का निश्चित मत है।

कलियुग के **प्रारम्भ** होने पर शनैः शनैः धर्मग्लानि का प्रवाह बढ़ने लगा, "अनेक मत मतांतर विश्व में फैलने लगे। भारत वर्ष में अहिंसा-

परक बौद्धधर्म का प्रसार हुआ जब उसमें अव्यवस्था उत्पन्न हुई तो आदि शंकराचार्य भगवान् ने सनातन वैदिक धर्म का दिग् दिगन्त व्यापक झण्डा फहराया। उन्होंने अद्वैत-वेदान्त, भक्ति, उपासना और शास्त्रीय कर्मकाण्ड का समन्वय करके पुनरपि सनातन धर्म की प्रतिष्ठापना की। उनके समान ही भगवान् रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य, निम्बार्काचार्य, वल्लभाचार्य आदि महापुरुषों ने धर्मपथ प्रशस्त किया।

आज विभिन्न सम्प्रदायों के जगद् गुरु, सन्त महात्मा, शास्त्रज्ञ विद्वान् विभिन्न उपासना पद्धतियों के द्वारा मानव जीवन के हेतु कल्याण प्रद कार्य कर रहे हैं।

कालान्तर में भगवान् वेदव्यास का पीठ नैमिषारण्य धर्म प्रचार का दृष्टि से नगण्य सा हो चला था। इस तीर्थ में अनेक पुरातन स्मृति स्थल ही अवशेष रह गये थे। भगवती गोमती, चक्रतीर्थ क्षेत्र के साक्षी-देव श्री व्यासेश्वर दिव्यलिंग और क्षेत्र की अधिष्ठात्री देवी आदिशक्ति ललिता अम्बा के दर्शनार्थ विभिन्न पर्वों पर सहस्रों यात्री आते रहे। प्रतिवर्ष परिक्रमा भी होती रही।

इस पुनीत सनातन तीर्थमें-जो कि तपस्या का महान् स्थल है, अट्ठासी सहस्र ऋषियों के स्वाध्याय की प्रमुख भूमि है और सूत शौनक सम्वाद रूप इतिहास, पुराण, व्रत कथाओं का मुख्य स्रोत है—स्वनाम धन्य परम तपस्वी वीतराग अनन्त श्री विभूषित स्वामी नारदानन्द सरस्वती जी महाराज सभी लगभग ३०-३५ वर्ष निरन्तर यही निवास करके महान् धर्म के संस्थापन तथा उसके प्रसार का कार्य किया।

आज उन्होंने इस पुनीत तीर्थ का गौरव अपने रचनात्मक कार्यों द्वारा अभिवृद्ध करके सनातन-धर्म का मार्ग दर्शन किया है। पूज्यपाद श्री स्वामी जी के तपोमय जीवन, आदर्श सन्यासी वेष, युक्तियुक्त कर्म, भक्ति तथा ज्ञान से समन्वित कौशलता पूर्ण वाणी, अनवरत परिश्रम, सभी सम्प्रदायों में सामञ्जस्य स्थापित करने वाली शैली और शास्त्र सिद्धांतों की दृढ़ता से वर्तमान काल के सन्त, महात्मा, विद्वान् आदि विशेष प्रभावित हुये हैं। उनका यह कार्य नैमिष की सनातन व्यास परम्परा के अनुकूल है।

इस वर्ष प्रयाग कुम्भ के विशेष अवसर पर श्री स्वामी जी महाराज

को **"नैमिष–व्यासपीठाधीश्वर जगदाचार्य"** पद पर अभिषिक्त किया गया है। यद्यपि वे इस महान् दायित्व का कार्य प्रथम से ही निरन्तर करते रहे हैं। आशा है कि भविष्य में भी इस पुरातन पीठ का कार्य श्रुति सिद्धान्तों के आधार पर चलता रहे, इसका वे सुव्यवस्थित पथ प्रदर्शन करेंगे। समस्त धार्मिक हिन्दू जनता उनके इस धर्म-स्थापन कार्य के लिये चिर ऋणी रहेगी। अगले स्तम्भों में श्री चरणों के जीवन परिचय पर प्रकाश डालने का यत् किंचित् प्रयास किया गया है।

—:o:—

जन्म स्थान और पैतृक परम्परा

उत्तरीय भारत में प्रसिद्ध ऐतिहासिक तीर्थ-स्थली कन्नौज है। यह कान्यकुब्ज क्षेत्र के अन्तर्गत भागीरथी गंगा के दक्षिण तट पर स्थित है। यहाँ अनेक पुराने तीर्थ क्षेत्र और देवताओं के मन्दिर हैं। सम्राट् हर्षवर्धन के विशाल राज्य को यह राजधानी रही है। फूलमती देवी का विशाल मन्दिर आज भी हिन्दू जनता की आस्था और श्रद्धा का केन्द्र है। इस मन्दिर के सन्निकट **"मकरन्द नगर"** है जहाँ कान्यकुब्ज ब्राह्मणों का विशेष निवास है।

श्री स्वामी जी के पूर्वज भी इसी मकरन्द नगर में रहते थे। इनके **पितामह श्रीपंडित बुलाकीदास जी खोर के पाण्डेय थे**। इनका गोत्र भारद्वाज प्रवर भरद्वाज, अंगिरा, बृहस्पति, दक्षिण शिखा, दक्षिण पाद, यजुर्वेद, शाखा माध्यन्दिनी, देवता शिव, सूत्र कात्यायन, तथा उपवेद धनुर्वेद हैं।

पं० बुलाकीदास सम्पन्न व्यक्ति थे और लेन देन का कार्य करते थे। अपने इस कार्य की सुविधा की दृष्टि से उन्होंने मकरन्द नगर से छः मील पूर्व गंगा के दक्षिण तट पर **'मियागंज'** ग्राम में आकर निवास किया। वहां उन्होंने मौरूसी भूमि का एक बड़ा क्षेत्र मीयांगंज, मानीमऊ, उदेतापूर आदि ग्रामों में उपार्जित किया।

उनका स्वभाव अत्यन्त दयालु व करुणाशील था। साधु सेवा और गोपालन में उनकी विशेष अभिरुचि थी। वे भगवान् शिव के अनन्य भक्त

थे। मियांगंज ग्राम में उन्होंने शिवजी का एक विशाल मन्दिर बनवाया जो आज तक विद्यमान है और जिस का पूजन अर्चन आज तक होता चला आ रहा है। वे अपने लेन देन का कार्य ईश्वर और धर्म के आधार पर बिना लिखा पढ़ी के सरलता पूर्वक करते थे।

वे अपनी दयालुता और सत्य व्यवहार के लिए अपने क्षेत्र में प्रसिद्ध थे। एक बार न्यायालय में उनके झूठ न बोलने के कारण चौदह हजार रुपये का सच्चा दावा खारिज हो गया। इस घटना से जनता का विश्वास उनपर विशेष हो गया। उनके परोपकार और दयालुता का एक उदाहरण इस प्रकार है कि एक बार दुर्भिक्ष व सूखा पड़ा, उन्होंने किसानों का लगान छोड़ दिया और अनेकों मजदूरों का निर्वाह तालाब खोदने व मकान निर्माण करने के बहाने किया।

उनके पुत्र **प० बुद्धिलाल पाण्डेय** ने भी उनके सद्गुणों का अनुसरण करते हुये समाज में अपनी कीर्ति स्थापित की। इनका विवाह शृंगीराम पुर के निकट पांच मील दूर गायवट पर स्थित झंसी ग्राम के निवासी सम्पन्न कान्यकुब्ज तिवारी वंश की कन्या **सुश्री गेंदा देवी से** हुआ। यह आदर्श धर्म परायण दम्पति ही स्वामी जी के जनक-जननी हैं।

मुक्ता प्रसविनी सीपी स्वाति नक्षत्र के जल बिन्दु का आश्रय प्राप्त करके द्युतिमान् मोती उत्पन्न करती है। महापुरुषों का अवतरण विलक्षण और विशेष परिस्थितियों में होता है। भगवान् बल्लभाचार्य उस समय प्रकट हुये जब उनके माता पिता काशी से परिस्थिति वश अन्यत्र किसी स्थान को जा रहे थे।

इसी प्रकार श्री जगदाचार्य महाराज के माता पिता भी किसी विशेष कारण वंश जब इनके ननिहाल ग्राम झंसी जा रहे थे तो मार्ग में अपने सम्बन्धियों के यहां मकरन्द नगर में रुके और वहीं पर **मार्गशीर्ष शुक्ल पक्ष सप्तमी सम्वत् १८५४ वि० तदनुसार सन् १९९७ ई० को जगदाचार्य प्रकट हुये।** जन्म स्थान का कमरा व मकान आज भी विद्यमान हैं। उनके सम्बन्धी इस घटना से अत्यन्त प्रसन्न हुये और उन्होंने अद्भुत बालक के जात-कर्म संस्कार और मंगलगान की व्यवस्था की।

शनैः शनैः चन्द्रमा की कलाओं की भांति बालक का विकास होने

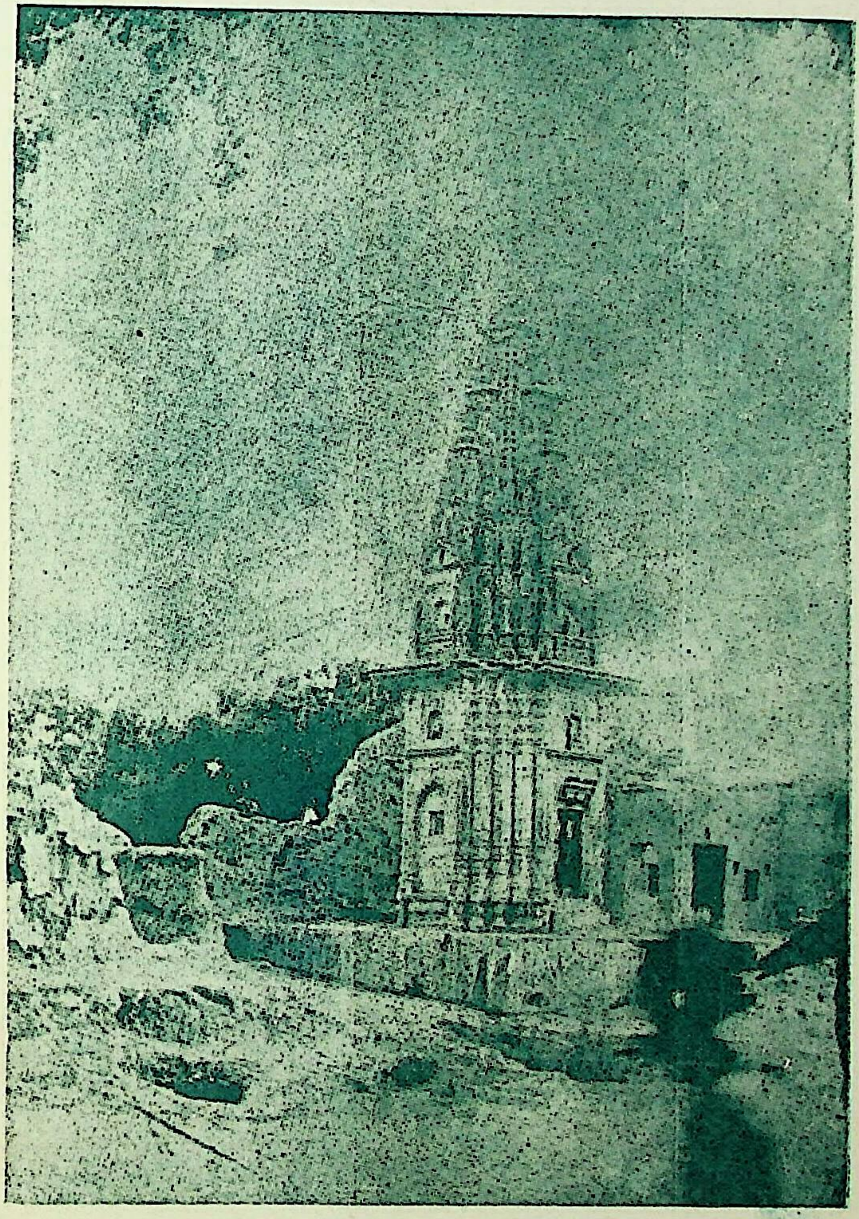

श्री जगदाचार्य जी के पितामह द्वारा निर्मित
शिवमन्दिर मीयागंज

लया। उसकी मुख मुद्रा तथा अन्य चेष्टाओं से पूर्व जन्म के किन्हीं विशेष संस्कारों का आभास होता था। वह शांतचित्त, सौम्य, हंस मुख, तथा बड़ा ही आकर्षक था। नाम करण संस्कार के पश्चात् यही बालक परिवार व ग्राम में "**बाबूराम**" नाम से पुकारा जाने लगा।

यह अपनी माता पिता की प्रथम सन्तान थे। इनसे छोटी इनकी एक बहिन थी। जब यह लगभग ४ वर्ष के थे इनके **पिता श्री बुद्धिलाल का तीस वर्ष की आयु में देहावसान हो गया**। इनके पितामह श्री बुलाकी दास जी अपने एक मात्र पुत्र की असामयिक मृत्यु से अत्यन्त दुःखित हुये। पुनः उनके ऊपर गृहस्थी का सारा भार आ गया। अपने शोक को हृदय में दबा कर पौत्र (स्वामी जी) के लालन पालन की व्यवस्था में लग गये।

वह नित्य प्रति इनको अपने कन्धे पर बिठाकर शिव मन्दिर ले जाते थे। पूजनोपरान्त इनसे मन्दिर का घन्टा बजवाते। इन्हें इसका बड़ा चाव था। और पूजा के पहिले ही से घर में "वम वम" कह कर पितामह को चलने का संकेत करते थे। पितामह को भी इनके लालन-पालन तथा बाल्य लीला के देखने का सुख सौभाग्य अधिक काल तक न मिल सका **जब इनकी आयु सात-आठ वर्ष की थी, पितामह का भी स्वर्गवास हो गया।**

पितामह के देहान्त के पश्चात् इनकी माता ने अपने मानीमऊ के सम्बन्धियों का आश्रय लेकर व्यवस्था सम्हालने का कार्य किया।

* * *

बाल्य काल और शिक्षा

इनका विद्यारम्भ संस्कार पितामह ने ही करा दिया था। मियांगंज की प्राथमिक पाठशाला में पढ़ने जाते थे। इनकी बुद्धि कुशाग्र व स्मरण शक्ति तीव्र थी। उस समय **पं० विन्देश्वरी प्रसाद वाजपेयी प्रधानाध्यापक** रियासत तिरवा के निवासी थे। वे धर्म परायण, ईश्वर के उपासक और कर्मकाण्ड के अभ्यासी थे। श्री स्वामी जी को उनकी जीवन चर्य्या और शिक्षा से विशेष प्रेरणा मिली। इनके पूर्व जन्म के धार्मिक संस्कार

जागृत हो चले। यह उन शिक्षा-गुरु की सेवा विशेष श्रद्धा भक्ति के साथ करते थे। उनके भोजन बनाने में सहयोग देते, चरण दाबते और जल भर कर पिलाते थे। इस प्रकार प्राचीन ऋषि प्रणाली के अनुसार शिष्य के कर्तव्य का पालन करते थे। उनसे अनेक प्रकार के धार्मिक प्रश्न करके शंका समाधान करते व धार्मिक शिक्षा भी प्राप्त करते थे। इनकी धर्म में अभिरुचि देख कर गुरु जी इनसे प्रसन्न होते तथा आशीर्वाद देते थे।

यह अपने साथियों सहपाठियों के साथ खेल-खेल में मन्दिर का निर्माण, मूर्ति की स्थापना, पूजा आदि के कौतुक करते रहते थे। कुछ बड़े होने पर अपने घर के एक कमरे में साथियों के सहयोग से शिव जी की एक मन्दिराकार झांकी बनाई, जिसमें प्रात: सायं साथियों के साथ प्रार्थना, स्तुति करते, शंख घड़ियाल बजाते, तथा प्रसाद बांटते थे। मातायें तथा पुरुष भी कभी कभी इसमें सम्मिलित हो जाया करते थे। यह जब विद्यालय से घर आते तो अपनी माता तथा अन्य लोगों को तुलसीकृत रामायण व विनय पत्रिका के पद गाकर सुनाया करते थे।

ग्यारह वर्ष की आयु में इनका यज्ञोपवीत संस्कार हुआ और ये सन्ध्योपासन, गायत्रीमन्त्रजप, सूर्यार्घ्य दान आदि नित्य कर्म करने लगे। धार्मिक ग्रन्थों का अवलोकन तो करते ही थे।

यह प्राथमिक शिक्षा समाप्त करके कन्नौज के माध्यमिक विद्यालय (सन् १९१४ ई०) में प्रविष्ट हुये उस समय ये (स्वामी जी) अपने सम्बन्धी पं० लालमणि मिश्र (धोविहागोपनाथी) के यहाँ मकरन्द नगर में निवास करते थे। इसी समय **माता की ममता और सम्बन्धियों के प्रयास से ग्राम अहिमलपुर जिला मैनपुरी के वत्सगोत्रीय पाण्डेय वंश की कन्या के साथ इनका विवाह संस्कार भी हुआ।** अन्तिम परीक्षा में अस्वस्थता के कारण सम्मिलित न हो सके। इस प्रकार सन् १९१७ ई० में स्कूली शिक्षा का क्रम अवरुद्ध हो गया।

—०—

सच्चे धर्म की खोज में

कन्नौज मिडिल स्कूल के सम्मुख सौभाग्य से दो धार्मिक स्थान थे। एक आर्य समाज का, जिसमें हवन कुंड पुस्तकालय और उपदेश मन्दिर था। दूसरा सनातन धर्म सभा का मन्दिर था। इन दोनों में प्राय: धर्मोपदेशक आकर उपदेश देते थे। वार्षिक उत्सवों के अवसर पर धुरंधर विद्वान् आया करते थे और परस्पर खण्डन-मण्डन तथा शास्त्रार्थ होते थे। स्वामी ज्ञानानन्द, स्वामी दयानन्द बी० ए०, स्वामी परमानन्द आदि सनातन धर्मी विद्वानों के उपदेश होते थे। आर्यसमाज की ओर से स्वामी अनुभवानन्द, स्वामी कृष्णानन्द लाला मुंशीराम (स्वामी श्रद्धानन्द) पं० तुलसीराम मेरठ के व्याख्यानों में जनता की बड़ी भीड़ होती थी।

स्वामी जी इन विद्वानों के व्याख्यान बड़ी रुचि से सुनते थे तथा अवकाश के समय दोनों प्रकार के ग्रन्थों का अध्ययन किया करते थे। दोनों प्रकार के ग्रन्थ एक दूसरे के विरोधी थे। स्वामी जी के हृदय में संकल्प हुआ कि वैदिक धर्म का वास्तविक तत्त्व क्या है। इसकी खोज हमें करनी चाहिए। वैदिक धर्म तो विश्व के प्राणियों के कल्याण के लिये है और सब की व्यवस्था करता है। हमें उस धर्म की खोज के लिये अपना जीवन लगाना है। इस प्रयत्न में शरीर को चाहे जितना कष्ट हो उसे सहन करके विश्व को सुख शान्ति देने वाले वास्तविक धर्म की खोज करनी है। धर्म एक ही है। मत, मज़हब, पन्थ, सम्प्रदाय अनेक हो सकते हैं।

उत्तरोत्तर इस प्रकार का ज्ञान व संकल्प दृढ़ होता गया और उन्होंने निश्चय किया कि वैदिक सनातन धर्म ही विश्व-धर्म हो सकता है। इसे किसी प्रकार मनुष्य मात्र को निश्चय कराया जाय। इन भावनाओं को लेकर यह **मियांगज में रहने लगे** और अपना विशेष समय धर्म चर्चा, धार्मिक ग्रन्थों के स्वाध्याय, तथा मनन और साधना में व्यतीत करने लगे। यह निरन्तर कई घण्टों तक विचार करते रहते। इन्हें एकांत

बहुत प्रिय था। यह एक आविष्कारक की भांति सत्य धर्म-पंथ की खोज में सतत गंभीर चिन्तन करने लगे। यह भूख-प्यास, शीत-उष्ण, की परवाह न करते थे। इनका शरीर क्षीण काय सा हो रहा था। इनकी माता तथा अन्य लोग इससे चिन्तित हो उठे। पर इनकी प्रातिभा, पूर्व के संस्कार, और प्रभाव को देखकर वह लोग इन्हें रोक न पाते थे। उन सब की यह धारणा अवश्य थी कि यह कोई विशेष संस्कारी पुरुष हैं, इनकी रामायण की कथा विशेष आकर्षक और वैराग्य युक्त होती थी। इनकी धारणा और गति विधि देख कर सगे-सम्बन्धियों को इनके विरक्त साधु बन जाने की आशंका होने लगी।

—:०;—

प्रभाव शाली व्यक्तित्व

बाल्यावस्था में ही श्री स्वामी जी के जीवन की विलक्षणता और अलौकिकता झलकती थी। जब कोई सन्त महात्मा आता, तो यह उनकी सेवा करते थे और उनसे नाना प्रकार के ज्ञान सम्बन्धी प्रश्न करते थे। कथा अथवा सत्संग का अवसर मिलने पर उसमें अवश्य उपस्थित होते और कई घण्टे लगातार ध्यान पूर्वक सुनते रहते। यह प्रायः इस प्रकार के प्रश्न करते थे कि सूर्य चन्द्रमा और तारागण किसने बनाये हैं? यह संसार कैसे और कब बना है? अपने पूर्व जन्म की स्मृति क्यों नहीं रहती?

ग्राम में जब कोई व्यक्ति बीमार होता तो उसे देखने अवश्य जाते। जब किसी का प्राणान्त होता तो यह विचार करते और पूछते कि इस व्यक्ति के प्राण कहाँ चले गये? हम लोग जान क्यों नहीं पाते स्वामी जी के इस प्रकार प्रश्न करने पर लोग चकित रह जाते थे। इनकी ज्ञान की बातें सुन कर संत महात्मा अथवा अन्य लोग यह अनुमान लगाते कि यह बालक पूर्व जन्म का विशेष संस्कारी महापुरुष है। बड़े बूढ़े लोग भी इनके सामने संकोच करते थे। वे किसी प्रकार का विनोद, अथवा व्यर्थ की बातें, हंसी परिहास आदि इनके समक्ष नहीं करते थे।

बावा गंगादास प्रायः मियागंज में श्री ललिता प्रसाद शुक्ल के यहाँ आया करते थे। स्वामीजी उनका सत्संग करते थे। इनकी विशेष ज्ञान की बातें बड़े बूढ़े लोग सुनकर चकित रह जाते थे। इनका विशेष समय ज्ञान भक्ति की चर्चा, धार्मिक तथा परोपकार के कार्यों में बीतता था। जीविका के लिए पैतृक सम्पत्ति पर्याप्त थी। इनकी माता जी सम्बन्धियों और मजदूरों के द्वारा खेती की व्यवस्था करती रहती थी। इनका जीवन निश्चिन्त था। यह शास्त्रों का अध्ययन करते रहते थे। बाल्यकाल से ही अपने सहपाठियों को धार्मिक ग्रंथ, हनुमान चालीसा, रामायण आदि पढ़ने की प्रेरणा देते थे। कोई धार्मिक उत्सव व कथा आदि का जब ग्राम में आयोजन होता तो बालकों की टोली बना कर उसमें सम्मिलित होते और सेवा कार्य करते थे।

—:०:—

अध्यात्म साधना सद्गुरु की प्राप्ति

मियांगंज ग्राम और आस-पास श्री जगदाचार्य के सम्बन्ध में लोग विशेष रूप से चर्चा किया करते थे कि यह बालक विशेष होनहार है। सन्त महात्माओं के दर्शन, धार्मिक ग्रन्थों का स्वाध्याय, पूजा-पाठ आदि की विशेष दिनचर्या से लोग प्रभावित थे। ग्राम के बाज़ार तथा अन्य अवसरों पर इनके सम्बन्ध में बातें होती रहती थीं। अन्य लोग भी विशेष महात्मा अथवा सत्संग कथा के अवसरों से सूचित करते रहते थे।

गंगागंज में गंगा के किनारे सन्त महात्माओं का प्रायः सत्संग होता रहता था। इसमें स्वामी जी अपने साथियों के सहित अवश्य उपस्थित होते थे। वहाँ सन्त सेवा करते और उनसे धार्मिक ग्रन्थ लेकर पढ़ते थे। स्वामी कमल प्रकाशानन्द. स्वामी सुखानन्द, स्वामी ब्रह्मानन्द (तरी दुर्गापुर वाले) इत्यादि के नाम उल्लेखनीय हैं। **इनके साथियों में सर्व श्री** त्रिभुवन नाथ दुबे, द्विजनापूर, सिद्ध गोपाल स्वर्णकार (गोपाल पूजन वानप्रस्थी) जगन्नाथ (राधेश्याम बावा) **लड़ैते लाल (स्वामी भजनानन्द) प्रयाग नारायण (स्व० स्वामी शुकदेवानन्द), श्यामलाल वैश्य (श्याम प्रकाश)**, रामभरोसे शुक्ल,

देवी सहाय, महापाल, लाला रामदयाल वैश्य मियाँगंज, लाला गंगाचरन मानीमऊ, लल्लू सिंह, (हरवंश पूजन वानप्रस्थी) ग्राम ददौरा कला के नाम विशेष हैं जो स्वामी जी पर श्रद्धा रखते थे और आज तक कुछ लोग उनके सम्पर्क में हैं।

उन्हीं दिनों गुरुसहायगंज के पास सराय प्रयाग में सद्गुरु देव श्री स्वामी एकरसानन्द सरस्वती जी निवास करते थे। वे अत्यन्त प्रतिभावान, ज्ञान सम्पन्न, सिद्ध महात्मा थे। इनका जन्म स्थान मध्यभारत में वर्धा के निकट ग्राम 'सिन्धी' है। इनका पूर्वाश्रम का नाम नारायण दास था। यह पालीवाल गौड़ ब्राह्मण थे। यह प्रथम ब्रह्मावर्त में पंडित के रूप में निवास करते थे।। सराय प्रयाग के भक्त इनकी प्रतिभा से प्रभावित होकर अनुनय, विनय पूर्वक अपने यहाँ ले आये। कुछ समय पश्चात् इन्होंने काशी में सन्यास लिया और दण्ड ग्रहण करके सराय प्रयाग की कुटी में निवास करने लगे। तत्पश्चात् दण्ड त्याग कर परमहंस सन्यासी के रूप में रहते हुए भक्तों को ज्ञान और धर्म की शिक्षा देते रहे।

श्री जगदाचार्य जी को जब इन महापुरुषों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त हुई तो वे इनके दर्शनों के लिये सराय प्रयाग गये। श्री स्वामी एकरसानन्द जी महाराज इनकी जिज्ञासा और प्रतिभा से अत्यन्त प्रसन्न हुए। यह (स्वामी जी) प्रायः उनके पास जाने लगे। अपने साथियों को भी अपने साथ ले जाने लगे। स्वामी जी ने उन्हीं से दीक्षा ग्रहण की और अपने अन्य साथियों को भी दीक्षित कराया। दीक्षा लेने के अनन्तर आप स्वामी नारदानन्द नाम से विख्यात हुए।

—:o:—

अध्यात्म विद्यालय का शुभारंभ

बाबा गंगादास जी गंगागंज में गंगातट पर निवास करते थे और वहीं प्रायः सत्संग हुआ करता था। एक बार उनकी कुटिया में जब चोरी हो गई तो बाबा जी भक्तों के आग्रह से मियाँगंज में श्री लालता प्रसाद शुक्ल के कमरे में ठहर गये और वहां नित्य सत्संग होने लगा। इस सत्संग में वयोवृद्ध, युवक और बालक सभी उपस्थित होने लगे।

पूज्य गुरुदेव

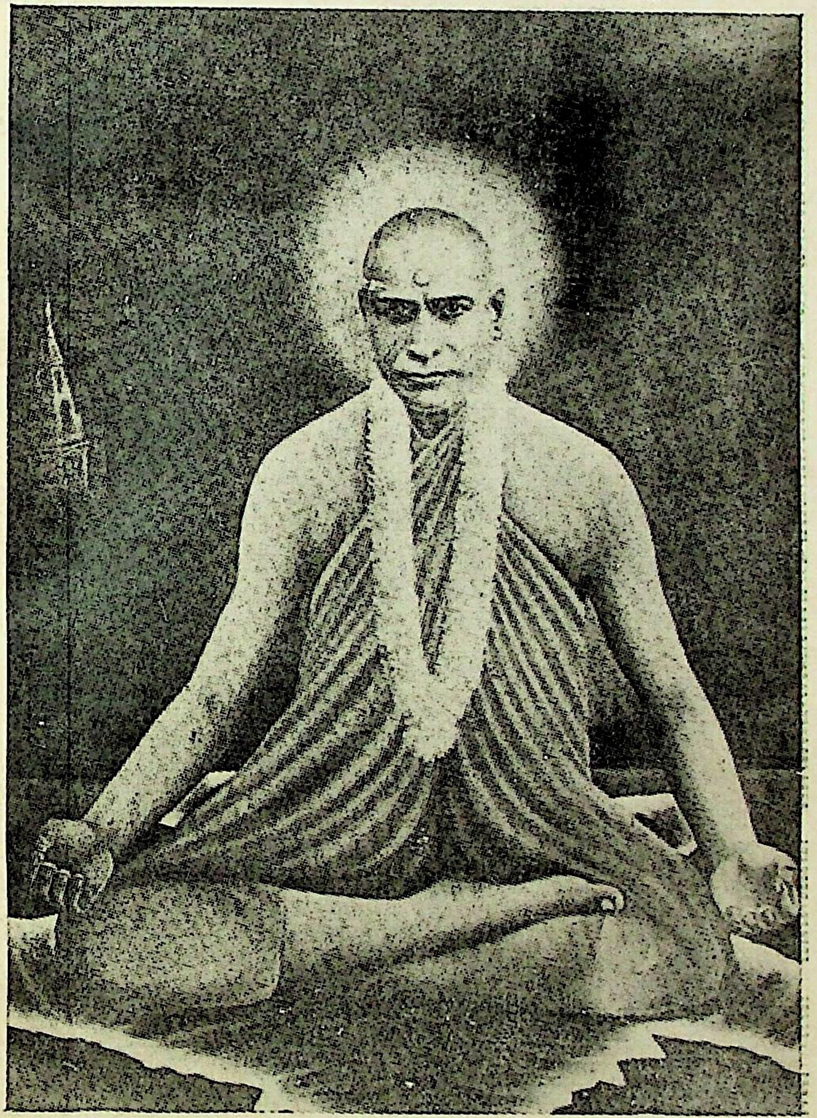

परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री १०८ स्वामी एकरसानन्द जी महाराज

एक दिन श्री प्रयाग नारायण (स्वामी शुकदेवानन्द) जब उस सत्संग स्थल के सामने से निकले और रुककर उधर देखने लगे तो स्वामी जी उन्हें निकट बुलाकर पूछा कि तुम कौन हो ? उन्होंने उत्तर में बताया कि "मैं प्रयागनारायण साहू हूँ"। तब स्वामीजी ने पूछा कि इस जन्मके पूर्व तुम्हारा क्या नाम रूप था ? उन्होंने कहा कि आप ही बतलाइये, हम नहीं जानते इस पर स्वामी जी ने कहा कि यह विषय गूढ़ है और बहुत समय तक सत्संग करने से ज्ञात हो सकता हैं यदि तुम्हें जिज्ञासा है तो सत्संग में आया करो। श्री प्रयाग नारायण की अवस्था उस सम १३-१४ वर्ष की थी। श्री स्वामी जी ने श्री गंगादास से कहा कि यदि विद्यार्थियों को इसी आयु में आध्यात्मिक शिक्षा दी जाय तो युवा अवस्था में संस्कार पक्के हो सकते हैं उस दिन से प्रयाग नारायण नित्य सत्संग में आने लगे।

धीरे-धीरे श्रोताओं की संख्या सत्संग में विशेष होने लगी और यह विचार हुआ कि यदि बाजार में किसी सार्वजनिक स्थान पर सत्संग रखा जाय तो अधिक लाभ हो सकता है। जब बाबा गंगादास जी वृन्दावन चले गये तो यह सत्संग स्वामी जी के मकान पर होने लगा जिसमे प्रयागनारायण (स्वामी शुकदेवानन्द), सिद्धगोपाल लड़ैतेलाल (स्वामी भजनानन्द) रामभरोसे, देवी सहाय इत्यादि नित्य सम्मिलित होते थे।

बाजार में सार्वजनिक स्थान पर सत्संग स्थापित करने का जो विचार था उसके संबन्ध में यह निश्चय हुआ कि रामनारायण (स्वामी विचारानन्द) के कमरे में सत्संग स्थापित किया जाय जिसको उन्होंने स्वीकार कर लिया। इस प्रकार मियांगन्ज में स्वामी जी ने **अध्यात्म विद्यालय का शुभारम्भ सं० १९७४ वि० में किया।**

यह सत्संग नित्य प्रातः ४ बजे प्रारम्भ होता था। श्री जगदाचार्य जी इसमें वक्ता थे। वे नित्य योगवाशिष्ठ की कथा कहते थे। यह सत्संग विद्यालय की भांति अत्यन्त नियन्त्रित व सुव्यवस्थित चलता था। ठीक समय पर सभी श्रोता उपस्थित होते थे और हर विषय को समझने की चेष्टा करते थे। मास्टर ईश्वर दयाल, सिद्धगोपाल, प्रयागनारायण प्रश्न किया करते थे और श्री स्वामी जी शंका समाधान करते थे। वे पुराना पाठ सुनते थे और मनन करने पर अधिक बल देते थे। संयम के नियम

मन्त्री श्री ईश्वर दयाल अध्यापक मियागंज, सहायक मन्त्री श्री सिद्ध-गोपाल तथा श्री स्वामी जी स्वयं थे। स्वामीजी सब को निष्काम भाव से सेवा करने की प्रेरणा देते थे और कार्यालय एवं मंत्रित्व के दायित्व को स्वयं वहन करते थे। इस समिति का उद्देश्य यह था कि ग्राम में कोई दीन दुःखी व भूखा न रहे। रोगियों को औषधि-उपचार की समुचित व्यवस्था थी। स्वयं सेवक उनकी परिचर्या करते थे। ग्राम में सुरक्षा की भी व्यवस्था यह समिति करती थी। ग्राम में रामलीला होती थी। उसमें समिति के स्वयं सेवक सेवा कार्य और व्यवस्था करते थे।

सं० १९७५ कार्तिक में देश में युद्धज्वर (इन्फ्लुन्जा) की महामारी भयानक रूप से फैल गयी। इस दुर्योग के अवसर पर बहु संख्यक मनुष्यों की मृत्यु हो रही थी। परिवार के लोग, सगे सम्बन्धी एक दूसरे की सेवा से हिचकते थे। मुर्दों को उठाने और मृतक संस्कार करने में लोग असमर्थ थे। गंगा जी का किनारा मृतक शरीरों से पट गया था। महान्, दुर्गन्धि फैल गयी थी और गंगाजल दूषित हो रहा था।

मियागंज की सेवा समिति का सेवा कार्य इस अवसर पर विशेष उल्लेखनीय और सराहनीय रहा। स्वामी जी अपने अध्यात्म ज्ञान से अन्य स्वयं सेवकों को निर्भयता और साहस की प्रेरणा देते थे। और स्वयं उनके साथ मिल कर कार्य करते थे। औषधि उपचार की व्यवस्था करना, मृतकों को उठाने में सहयोग देना, महामारी को दूर करने का प्रयास करना, अनाथ बच्चों के लालन पालन का प्रबन्ध करना आदि कार्य विशेष उल्लेखनीय हैं।

गंगा जी के तट पर मृतकों के शरीरों के दाह संस्कार की व्यवस्था के लिये सरकार से ५०) तथा और द्रव्य जनता से दान एकत्रित किया। स्वामी जी ने स्वयं सेवकों को प्रोत्साहित करके इस कार्य की व्यवस्था करवाई। उस अवसर मन्त्री ईश्वर दयाल ने मृतकों के ढेर में अग्नि लगाने का कार्य किया।

स्वामी जी इस अवसर पर स्वयं सेवकों को उपदेश करते थे कि तुम अमर आत्मा हो। धर्म कार्य करने से कोई विपत्ति नहीं आ सकती

तुम बीमार नहीं हो सकते। समाज की सेवा ईश्वर के निमित्त कर रहे हो। भगवान् की कृपा हम लोगों के साथ है। इस उपदेश से सब को बड़ा साहस और बल मिलता था। ईश्वर की कृपा से कोई स्वयंसेवक बीमार नहीं हुआ। और इस सेवाकार्य का जन समाज व अधिकारियों पर बड़ा प्रभाव पड़ा।

इस सेवा समिति ने कई वर्ष तक आई हुई आपत्तियों में सेवा कार्य किया। दुर्भिक्ष में अन्नहीनों को भोजन देने के लिये प्रत्येक घर में हंडियां रखी गईं। उनका संकलित अन्न दीन दुखियों को वितरित किया जाता था। गांव के झगड़े प्रेम पूर्वक समझा बुझा कर निपटाये जाते थे। केन्द्र तथा अन्य अधिकारियों के द्वारा समिति के कार्यों का निरीक्षण किया जाता रहा और सदैव इसके कार्यों की सराहना की गई।

—:o:—

गृह-त्याग

श्री स्वामी जी के जीवन-क्षेत्र में उनके पूर्व जन्म के साधना योग का प्रभाव उत्तरोत्तर प्रगट होता गया। वे अध्यात्म साधना के केन्द्र बिन्दु प्रतीत होते थे। सिद्धियोग के लक्षण होते हुये भी उन्होंने लोक संग्रह क लिये साधना पथ का अनुगमन किया। स्वधर्म पालन रूपी कर्म योग, नवधा भक्ति, श्रवण, कीर्तन आदि भक्तियोग और ज्ञान की सप्त भूमिकाओं का समन्वय उनकी साधना में प्रत्यक्ष दिखाई देता था। जिसके कारण अध्यात्म-विद्या के जिज्ञासुओं को बहुत ही अवलम्ब मिलता रहा।

महापुरुषों का जीवन-क्रम सहज ही विकाश की ओर—समस्त अवरोधों से उन्मुक्त होकर द्रुतगति से होता रहता है। श्री स्वामी जी का गृहजीवन अनासक्तमय, योग परक और निर्लिप्त था। उनकी माता एक मात्र पुत्र के प्रति यद्यपि वात्सल्य भाव से ओत प्रोत थीं किन्तु इनके साधना पथ में उनके द्वारा कोई बाधा न थी। इनको छोटी बहिन का पाणिग्रहण मानीमऊ में हो चुका था।

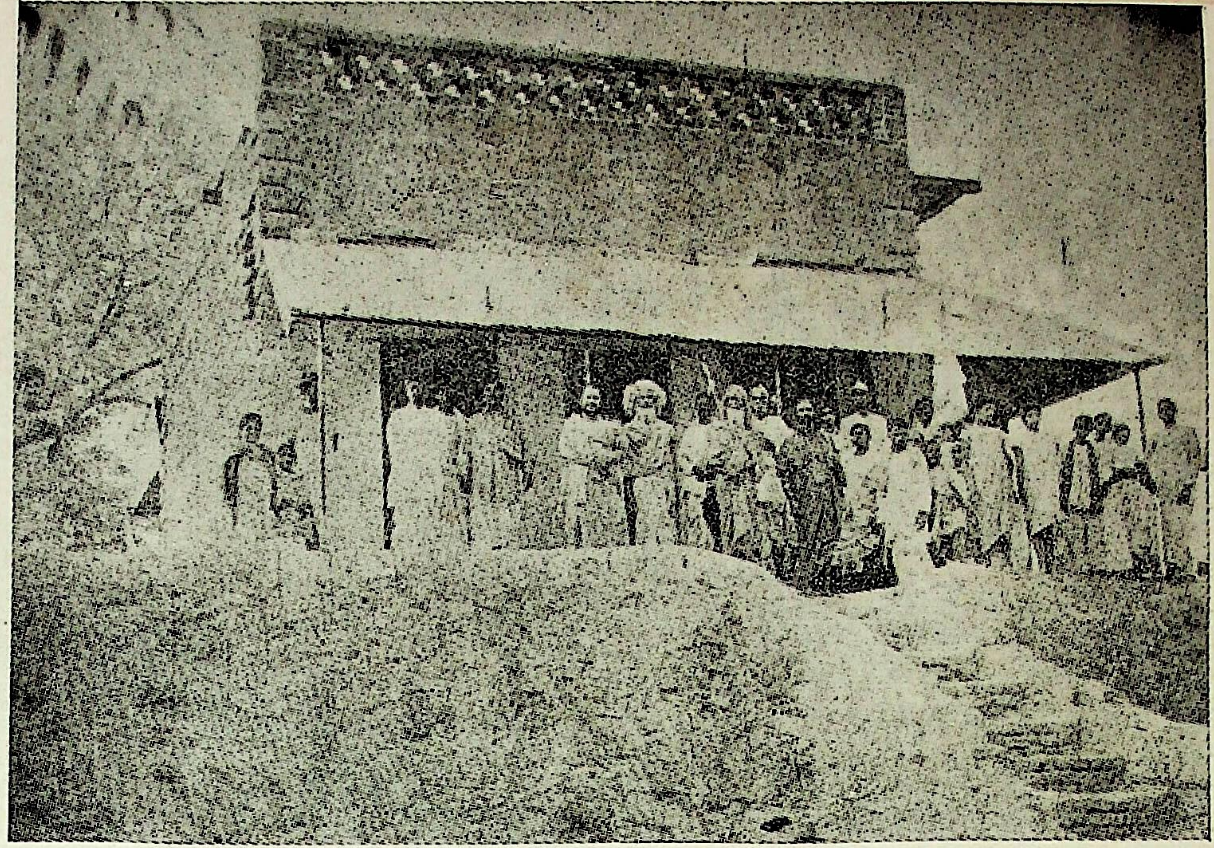

वैकुण्ठ आश्रम मोयांगंज

दैव योग से माता जी का देहावसान सं० १६८२-८३ में हो गया। उनके अन्तिम संस्कार से निवृत्त होने के उपरान्त स्वामी जी एकान्तिक साधना, स्वाध्याय और धर्म प्रचार की ओर विशेष रूप से अग्रसर हुये। १६८५ वि० में धर्मपत्नी के स्वर्गवास हो जाने के पश्चात् समस्त बाह्य अवशेषों से स्वतन्त्र होकर विरक्त हो गये। उस समय इनकी अवस्था तीस वर्ष की थी। **अपनी पैतृक सम्पत्ति भूमि आदि अपनी बहिन को दान करके गृह-त्याग कर दिया। लगभग १२५ बीघा भूमि ग्राम मानीमऊ में आज भी उनकी बहिन के पुत्र के अधिकार में है।** स्वामी जी के कई मकानों की डीहें आज भी मियांगंज ग्राम में मौजूद हैं। अपने साधना काल में स्वामी जी कुछ काल तक गुफा बनाकर अभ्यास करते रहे।

—:०:—

वैकुंठ आश्रम

गृह त्याग करने पर स्वामी जी गंगा के दक्षिण तट पर श्मशान घाट के निकट एक ऊँचे टीले पर अपने गुरुदेव की अनुमति से रहने लगे। यह स्थान प्राचीन तपोभूमि है। प्रसिद्ध महात्मा हाथी बाबा की समाधि अब तक यहां बनी हुई है। स्वामी परमानन्द की कुटिया भी इसी स्थान पर कुछ दूर हट कर बनी थी जहाँ वे निवास करते थे।

श्री स्वामी जी ने उक्त टीले में कई गुफाओं का निर्माण किया और टीले के ऊपर फूस की कुटिया निर्मित करके सत्सङ्ग का संचालन करने लगे कुछ काल पश्चात् मियांगंज का अध्यात्म-विद्यालय वैकुंठ आश्रम में आ गया और प्रयाग नारायण (स्वामी शुकदेवानन्द) तथा लड़ैतेलाल (स्वामी भजनानन्द) भी यहीं पर रहने लगे। कालान्तर में श्री श्याम प्रकाश भी आश्रम पर आ गये।

वैकुँठ आश्रम से आस-पास के क्षेत्र के ग्रामों में रामायण-पाठ, हरि नाम संकीर्तन का प्रचार व प्रसार होने लगा। जनता में भगवान् की भक्ति और धर्म के आचरण की प्रस्थापना होने लगी। लोग दुर्गुण, दुर्व्यसनों का त्याग करने लगे और सदाचार, परोपकार, सन्त सेवा आदि नियमों का

पालन करने लगे। प्रत्येक चतुर्दशी और पूर्णमासी को वैकुंठ आश्रम पर साधक भक्तों का जमघट होने लगा। चतुर्दशी की रात्रि में रामायण पाठ, संकीर्तन, नाम जप आदि कार्य क्रम होता था प्रातःकाल गंगा स्नान करके सभी भक्त जनता स्वामी जी का उपदेश श्रवण करती थी।

—:o:—

दीक्षित भक्त मंडली

आस-पास के बहुत से प्रसिद्ध व्यक्तियों ने स्वामी जी से शिक्षा व दीक्षा ग्रहण की और वैकुंठ आश्रम गुरुद्वारा बन गया। समस्त भक्तों के सहयोग से आश्रम का निर्माण हुआ।

श्री त्रिभुवन नाथ द्विवेदी जमीदार द्विजनापूरन स्वामी जी से दीक्षा लेकर ३० बीघा भूमि आश्रम को समर्पित की। पं० श्यामलाल द्विवेदी वैद्य मानीमऊ, गंगा सरदार तिवारी गंगागंज, ठा० चन्दीसिंह ग्राम दन्दूरा लक्ष्मणप्रसाद साह (भ्राता स्वामी शुकदेवानन्द). मदन लाल हलवाई (भ्राता स्वामी भजनानन्द), सिद्धगोपाल, स्वर्णकार (गोपालपूजन वानप्रस्थी), लल्लूसिंह परमार ग्राम दन्दूरा कलां (हरवंशपूजन वानप्रस्थी), पं० शिवनाथ तिवारी मुचुवापुर, पं० गजाधर प्रसाद मिश्र मानीमऊ, सरजू दुवे उदेतापुर, मैकूलाल हलवाई सरायमीरा, नारायण प्रसा सरीफपूर, रामभरोसे शुक्ल मियाँगंज आदि व्यक्तियों ने वैकुँठ आश्रमद पर स्वामी जी से दीक्षा ग्रहण की।

वैकँठ आश्रम साधकों और भक्तों की तीर्थ स्थली बन गई। इस स्थान पर अनेक प्रमुख महात्माओं ने निवास किया। **परमहंस श्री स्वामी रामदेव जी, वीतराग परम तपस्वी श्री स्वामी करपात्री जी महाराज भी इस आश्रम में ठहर चुके हैं। स्वामी सच्चिदानन्द, स्वामी हीरानन्द, श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी, स्वामी बालानन्द, लक्ष्मण स्वरूप ब्रह्मचारी, नागे स्वामी छिबरामऊ, स्वामी सुखानन्द आदि महात्मा भी यहीं निवास कर चुके हैं। श्री स्वामी आचार्यानन्द सरस्वती महाराज सद्गुरु देव भगवान् एकरसा-**

नन्द जी से दीक्षा लेने के उपरान्त यहीं विरक्त वेश में साधना करते रहे और सन्यास लेने के पश्चात् अब तक यहीं निवास करते हैं।

गीताप्रेस गोरखपुर से प्रकाशित श्रीमद्भागवत के अनुवाद कर्ता श्री मुन्नीलाल जी ने इसी आश्रम पर निवास करके यह पुण्य कार्य किया है। श्री जगत् प्रकाश, श्री पुत्तूसिंह आदि भक्तों ने साधना की दृष्टि से कुटी बना कर विरक्त जीवन बिताने का संकल्प किया था। श्री स्वामी प्रकाशानन्द (शरण जी) के अधिकाँश संशयों की निवृत्ति और विवेक की प्राप्ति वहाँ के साधनामय वातावरण से हुई थी।

यहां के प्रथम सत्संग समारोह का विशाल उत्सव कार्तिक मास में अत्यन्त महत्वपूर्ण हुआ जिसमें अनन्त श्री विभूषित पूज्यपाद श्री गुरुदेव भगवान् स्वामी एकरसानन्द सरस्वती जी महाराज का पदार्पण हुआ। आश्रम की स्वच्छता, सात्विक सजावट, सेवा और शुद्धिभाव भक्त जनता के लिए अनुकरणीय था। विभिन्न फाटकों की सजावट, शंखनाद, घण्टा ध्वनि, अपार भक्तों की भीड़, स्वागत, दर्शन, उत्सुकता अवर्णनीय है।

—:०:—

दैवी सम्पद् मंडल और मुक्ति की नसेनी

श्री सद्गुरुदेव की एकान्त गोष्ठी में विरक्त साधकों ने एक नियमावली बनाने और संस्था की स्थापना का विचार उपस्थित किया। वे बोले—"प्यारे! तुम्हारा विचार बहुत अच्छा है। नियमावली में थोड़े नियम होने चाहिये और संस्था में भक्त साधकों को संकलित करने की भावना हो। 'अच्छा, तो नियमावली कौन बनायेगा?' 'भगवन् जिसके लिए आपकी आज्ञा हो। गुरुजी कहने लगे:—नारदानन्द नियमावली बनाकर लावे, हम उसे देख लेंगे।

नियमावली अत्यन्त छोटे रूप में साधकों के हितकारी नियमों से परिपूर्ण बन गई! सद्गुरु देव देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए, बोले:—यह बहुत अच्छी बन गई है। मेरा आशीर्वाद है। इसका नाम "मुक्ति की नसेनी" होगा। जिसमें इसके गुण धारण करने की इच्छा है और जो

दुर्गुण और आसुरी भाव त्यागने के लिये कमर कस कर आगे आयेगा, वह इस संस्था का सदस्य होगा। इसमें तो गीता का सार आ गया है। इस संस्था का नाम **"दैवी सम्पद् मण्डल"** होगा। यह भगवान् से रजिस्ट्री की हुई संस्था है।

वैकुंठ आश्रम भक्त, शिष्यों की आस्था का केन्द्र, उनका गुरुद्वारा और धर्म प्रचार का मुख्य स्थल, अध्यात्म-शिक्षा की विद्या का विद्यालय, साधना की तपस्थली, वानप्रस्थियों का निवास स्थान बन गया था। उस का निर्माण भक्त शिष्यों और साधकों की सात्विक श्रद्धा और दान से हुआ है।

—:o:—

रातों रात कुँआ खोद डाला

आश्रम में गंगाजी से लेकर जल का प्रयोग होता था। एक दिन श्री स्वामी जी ने समस्त साथियों के साथ विचार किया कि यदि यहीं कुँवा हो जाय तो विशेष सुविधा हो। रात्रि का समय था, नींद नहीं आ रही थी। संकल्प को पूर्ण करने की धुन सवार हुई। श्री स्वामी जी ने स्वयं रात्रि भर में स्वामी शुकदेवानन्द और स्वामी भजनानन्द के सहयोग से सत्रह हाथ कुँआ खोद डाला। पुरुषार्थ और श्रम का अद्‌भुत कार्य हुआ। इसका जल बहुत ही अच्छा है। आज तक वैकुँठ आश्रम में विद्यमान है। इस प्रकार का और कोई कुँआ इस स्थान में नहीं है।

वैकुँठ आश्रम में अनेक चमत्कार पूर्ण अन्य घटनायें भी हुई हैं। एक बार एक पागल बृजलाल अहीर ग्राम ककवन जिला कानपुर का निवासी नंग धड़ंग भागता हुआ आश्रम के निकट आया। वह भूखा प्यासा था। स्वामी भजनानन्द ने जगदाचार्य की थाली का प्रसाद उसे खिलाकर पानी पिला दिया। थोड़ी देर के पश्चात् वह शान्ति पूर्वक छाया में बैठ गया और अपने पहिनने के लिये कपड़ा मांगने लगा। उसे वस्त्र दिया गया। उसने कहा कि मेरा चित्त यहाँ की रोटी खाने से शान्त हो गया है। मुझे आश्रम में रहने दिया जाय, मैं यहीं सन्तों की सेवा करूंगा।" धीरे-

धीरे वह शारीरिक परिश्रम करने लगा। बकना झकना बन्द हो गया। वह प्रसन्नता पूर्वक पानी भरता, मिट्टी ढोता तथा आश्रम की सफाई इत्यादि कार्य करता था। उससे पूछकर उसके घर कुशल पत्र डाला गया। उसने लिखवाया कि सन्त महात्माओं की कृपा से मैं अच्छा हो गया हूँ उनके भंडारा के लिये सामान अवश्य लाना। अन्त में उसके सगे सम्बन्धी आये। भंडारा करके आश्रम से उसे अपने घर ले गये।

इस घटना की चर्चा फैल गई। परिणामत: कई एक पागल बैकुंठ आश्रम अच्छे होने के लिए लाये गये और लोगों ने स्वामी जी से प्रार्थना की कि इन पागलों को भी अच्छा कर दें। स्वामी जी ने उत्तर दिया कि "मुझ में ऐसी कोई शक्ति नहीं है। यह तो भगवान् की कृपा और दैवी शक्ति का प्रभाव है जिसमें वह पागल अच्छा हो गया। मैं भगवान् से प्रार्थना करता हूँ कि वह इनका भी कल्याण करे। प्रार्थना करना ही मेरे अधिकार में है। परिणाम ईश्वर के हाथ में है।

इस प्रकार वैकुंठ का आश्रम का प्रभाव आस पास के ग्रामों में फैल गया। घर घर जन-जन में रामायण की चौपाइयाँ लोग गाते थे और राम-राज्य का अनुभव करते थे।

श्री स्वामी जी अब आश्रम में बाहर निकल कर अपने गाँव मियांगंज से होकर कहीं जाते थे तो जनता उनको राम की भावना से देखती थी और देव भाव से पूजा करती थी। विद्वान् लोग कहते कि श्री तुलसीदास जी का कथन अघटित हो गया :—

दोहा—"तुलसी वहां न आइये, जहाँ गाँव को ठांव।
गुन अवगुन जानत नहीं, लेत पुरानो नांव॥"

स्वामी जी पर यह कहावत भी चरितार्थ नहीं हुई कि गांव का योगी जोगड़ा और आन गांव का सिद्ध।" वे तो अपने ग्राम में ही सिद्ध होकर पूजे जाने लगे और समस्त भक्त समाज इनका नाम न लेकर **"छोटे भगवान्"** से सम्बोधित करने लगे। पूजनीय गुरुदेव स्वामी एकरसानन्द जी को "बड़े भगवान्" कहते थे।

स्वामी जी के प्रभाव एवं ख्याति के फैल जाने से कन्नौज, सरायमीरा, मकरन्द नगर, इत्यादि स्थानों के विशेष प्रतिष्ठित तथा अन्य धार्मिक व्यक्ति

दर्शन करने के लिये वैंकुंठ आश्रम पर आने लगे। स्वामी जी की प्रेरणा से नगरों और गाँवों मे सत्संगों की स्थापना की गई जो अब तक चल रहे हैं। इनकी संख्या पचास से अधिक होगी। इस प्रचार कार्य में स्वामी जी शुकदेवानन्द तथा स्वामी भजनानन्द का सहयोग सराहनीय रहा।

पूज्य गुरुदेव भगवान् की इच्छानुसार स्वामी शुकदेवानन्द उनकी सेवा में वैंकुंठ आश्रम से बैरी आश्रम चले गये और स्वामी भजनानन्द उसी समय मैनपुरी आ गये और वहीं रहने लगे। श्री स्वामी आचार्यानन्द इसी अवसर पर वैंकुंठ आश्रम आये थे। उनका जन्म स्थान भगवन्त नगर जिला हरदोई है। वह कान्य कुब्ज ब्राह्मण (माँझगाँव के मिश्र) के सम्पन्न परिवार में उत्पन्न हुये। आज भी वैंकुंठ आश्रम की व्यवस्था उन्हींके हाथों चल रही है।

अक्रोधेन जयेत् क्रोधम्

"स्वामी जी जब वैंकुंठ आश्रम में निवास करके धर्म प्रचार और साधकों के निर्माण का कार्य कर रहे थे। एक दिन स्वामी सुखानन्द जी रात्रि के नौ बजे आ गये। गंगा में स्नान करके भीगे वदन और गीली लंगोटी लगाये थे। वे परमहंस थे। जिस समय वह आश्रम पर पधारे। कई साधक स्वामी जी के निकट बैठे थे उस समय स्वामीजी को कुछ हल्का सा ज्वर भी था।

ज्योंही स्वामी सुखानन्द जी आये सब लोग खड़े हो गये। स्वामी जी ने भी खड़े होकर उनका स्वागत किया। स्वामी सुखानन्द जी का नाटक विचित्र था। वे स्वामी जी को ऊट-पटाँग खरी खोटी बातें सुनाने लगे अनर्गल प्रलाप करते हुये उन्हें उद्विग्न करने की चेष्टा करते रहे। इधर स्वामी जी विनम्र भाव से हाथ जोड़े हुये बीच बीच में केवल इतना कह देते थे कि भगवन्! आप जो कहते हैं सत्य है।

स्वामी सुखानन्द जी धारा प्रवाह से काफी समय एक नाटक करते रहे। वे कभी रोष की मुद्रा दिखाते, कभी फटकारते। अन्त में अपनी लंगोटी खोल कर फेंक दी और जोर जोर से क्रोध भरी बातें करने लगे। सब साधक लोग हृदय से कुढ़ रहे थे और उनके चित्त में बड़ा क्षोभ था। स्वामी सुखानन्द जी के सब प्रयास व्यर्थ हो गये। जगदाचार्य जी को तनिक भी

गुरुभाई श्री स्वामी आचार्यानन्द सरस्वती जी महाराज के साथ
श्री जगदाचार्य जी महाराज

क्षोभ, उद्वेग और रोष नहीं आया। वे सहन भाव से शान्त मुद्रा में खड़े रहे।

तनिक देर में सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। स्वामी सुखानन्द जी हंसने लगे। अपनी लंगोटी उठाकर बांध ली और स्वामी जी से कहा कि मैंने तुम्हें वाणी के बाणों से इतना क्षुभित किया पर तुम विचलित नहीं हुये। मैं भूखा हूँ तुम मुझे भोजन को भी नहीं पूछ रहे हो। स्वामी जी के संकेतानुसार एक साधक ने कुछ जल पान उपस्थित किया। स्वामी सुखानन्द जी ने प्रसन्न मुद्रा में कहा कि "आप सच्चे महात्मा हैं, आप सद्गुरु हैं, मैंने परीक्षा के लिए यह लीला की है।" सब साधकों से कहा कि इन को साधारण मत समझो। यह विश्व मे पूज्य और प्रसिद्ध होंगे। इनको सब लोग दंडवत करो, मैं भी दंडवत करता हूँ।

ऐसा कहकर स्वामी सुखानन्द जी ने सब साधकों के साथ स्वामी जी को दण्डवत् प्रणाम किया और हंसते हुये जलपान करने लगे। श्री जगदाचार्यजी ने कहा :—भगवन्! आप मेरे पिता, माता, और स्वामी हैं। आपने मुझे शिक्षा देन कें लिये हित दृष्टि से यह सब लीला की है। इसकें पश्चात् स्वामी सुखानन्द जी आश्रम से चले गये।

अरण्य कुटी शृङ्गी रामपुर

शृङ्गीरामपुर गंगा के तट पर अत्यन्त प्राचीन तीर्थ है। यहां पुराने घाट देव मन्दिर बने हुए हैं। देवी जी का--सिद्धपीठ है। महात्मा राम कृष्ण की "स्थल" नाम से प्रसिद्ध गद्दी है। यह गद्दी पूर्व काल में किसी सिद्ध महात्मा के द्वारा स्थापित हुई है। "स्थल" के निकट ही वृन्दावन नाम का अरण्य बड़ा शोभायमान है। उसमें अनेक रंग वाले फूलों वाले वृक्ष हैं। कुछ स्थान भयानक भी हैं। टीलों की गुफाओं में चीता, भेड़िया आदि हिंसक जीव भी रहते हैं। इसी अरण्य में स्वामी शिवानन्दजी की एक कुटी थी। जगदाचार्य जी वैकुँठ आश्रम से उनके दर्शनों के लिए जाया करते थे।

स्वामी शिवानन्द जी के शरीर त्याग के पश्चात् यह स्थान खाली

हो गया। महन्त, रमानन्द, उनके भ्राता शिवानन्द श्री प्रेमानन्द, श्री राज कुमार आदि भक्तों के आग्रह से धर्म प्रचारार्थं श्री स्वामी जी शृङ्गीरामपुर की अरण्य कुटी में निवास करने लगे और वैकुँठ आश्रम भी आते जाते रहे। यह कुटी एकान्तवास तथा तपस्या के लिये उपयुक्त थी। स्वधर्मानन्द (गैयावाले बाबा) स्वामी जी की सेवा में रहते थे। यहां प्रायः हिंसक जीव चीता आदि रमते रहते थे। पशुओं और बालकों पर आक्रमण करते थे। रात में कुटिया के आस-पास भी चक्कर लगा जाते थे। यहाँ भी शनैः शनैः लोगों की भीड़ भाड़ स्वामी जी के पास होने लगी और आस पास के ग्रामों सत्संग स्थापित हुये। कायम गंज, खुदागंज, कमाल गंज, रजोपुर आदि स्थानों के सत्संग अब भी चल रहे हैं।

तीर्थों में भ्रमण

स्वामी जी की यह इच्छा थी कि धर्म प्रचार और शाश्वत सिद्धान्तों के अनुसन्धान के लिये किसी विशेष तीर्थों में निवास किया जाय जहां साधना के अनुकूल वातावरण हो और तपस्या के योग्य भूमि हो। इस दृष्टिकोण से चित्रकूट, काशी, प्रयाग, अयोध्या, वृन्दावन, हरिद्वार, उत्तर काशी आदि तीर्थों में अधिक समय रहकर अन्वेषण करते रहे। किन्तु साधना के विशेष अनुकूल कोई स्थान प्राप्त नहीं हुआ। घूमते-घूमते देवकली (जिला लखीम पुर) ग्राम में पहुँचे।

देवकली आश्रम

जिला लखीमपुर में देवकली एक प्राचीन स्थान है, ऐसा कहा जाता है कि राजा जन्मेजय (परीक्षित के पुत्र) ने यही सर्पाहुति यज्ञ किया था। यहाँ एक विशाल सरोवर है। जिसकी मिट्टी में लालिमा हैं। उसी के निकट कुछ दूर हट कर एक प्राचीन कुँआ और कुटिया थी। स्बामी जी न उसीमें कुछ काल तक निवास किया। उनके साथ ही एक साधक भी थे। कुँआ साफ किया गया और वहीं सत्संग एवं स्वाध्याय का कार्य प्रारम्भ हुआ।

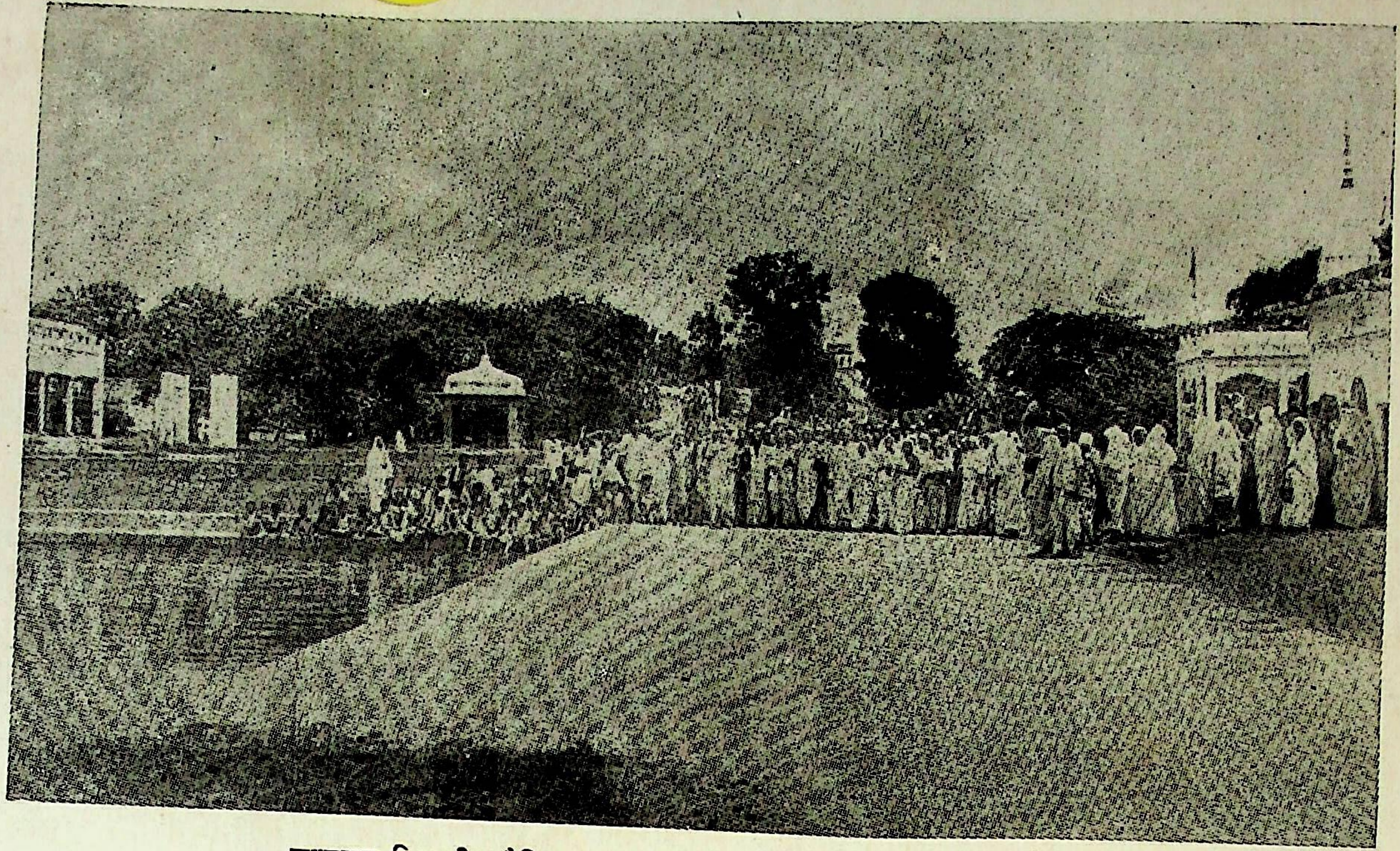

अध्यात्म विद्यापीठ नैमिषारण्य आश्रम में सरस्वती सरोवर का दृश्य

यहीं से लखीमपुर और अन्य स्थानों में धार्मिक प्रचार कुछ काल तक होता रहा। इनके त्याग, तपस्या और उपदेश का यहाँ भी विशेष प्रभाव पड़ा।

इसके उपरान्त, 'लखनऊ-गणेश गंज रामचरित मानस सम्मेलन' के कुछ प्रमुख व्यक्ति लखीमपुर आये और स्वामी जी की प्रख्याति सुनकर उनक दर्शन के लिये गये। स्वामी जी के रामचरित मानस के मार्मिक प्रवचन तथा तपोमय जीवन से प्रभावित हो कर उन लोगों ने स्वामी जी को अपन सम्मेलन की अध्यक्षता कें लिये आमंत्रित किया।

उक्त सम्मेलन में स्वामीजी के व्यक्तित्व और प्रवचनसे भक्त जनता अत्यन्त प्रभावित हुई। भक्त प्रवर श्री नागर जी, प्रोफैसर श्री लुम्बा जी एवं श्री चन्द्रभाल अवस्थी आदि विशेष भक्तों के अनुरोध पर कई वर्ष तक स्वामी जी उस सम्मेलन की अध्यक्षता करते रहे।

—:०:—

नैमिष टीला नैमिषारण्य

श्री ज्ञानेन्द्रदत्त वैद्य ने प्रचार और साधन युक्त तीर्थ की चर्चा चलने पर नैमिषारण्य को अत्यन्त उपयुक्त बतलाया और **अत्यन्त आग्रह पूर्वक स्वामी जी को नैमिषारण्य ले गये।** यहाँ कई दिनों तक तपस्थली, अरण्य एवं तीर्थ के विभिन्न स्थानों को देखते हुए एक दिन नैमिष टींला पर आये। यह स्थान स्वामी जी को पसन्द आया। एक कुटिया भग्नावस्था में यहां अवशेष थी। उसके आगे ध्वजा का चबूतरा था। लोगों से पूछने पर ज्ञात हुआ कि कुछ काल पूर्व यहाँ एक सिद्ध महात्मा रहते थे और उनका बड़ा प्रभाव था। उनके नाम इत्यदि का कुछ पता नहीं चला। सब की सम्मति से सं० १९९२ वि ई० में स्वामी जी नैमिष टीला में रहने लगे। कुटिया की सफाई होने पर एक पुरानी गद्दी का चबूतरा निकला। कुटिया की मरम्मत की गई और इस छोटे आश्रम का नाम "परमार्थ साधन आश्रम" रखा गया।

नैमिषारण्य तीर्थ का निवास श्री स्वामी जी ने एक महान् संकल्प और शास्त्र सिद्धान्त के प्रयोग के उद्देश्य से किया था। कई वर्ष पूर्व जब

वे वैकुंठ आश्रम में वास करते थे तो एक बार पूर्णिमा के उत्सव के अवसर पर भक्तों की एक गोष्ठी हुई जिसमें श्री विज्ञान पूजन जी (श्री बाबू राम वाजपेयी) राजा पांडे, सिद्ध गोपाल (गोपाल पूजन), पं० त्रिभुवन नाथ दूवे, पं० शिवनाथ तिवारी मुचुवापुर, सरयूप्रसाद दूबे उदेता पुर आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। उस समय एक महत्व पूर्ण प्रश्न पर विचार चल रहा था कि समाज में दुराचार, परस्पर कलह, भोग वासना की वृद्धि, दुर्वासना एवं सामाजिक कुरीतियों के कारण अनेकों प्रकार के संकट बढ़ रहे हैं। धर्म, कर्म में रूचि नष्ट हो गई है। क्या प्रयत्न किया जाय कि समाज में धर्म की रूचि बढ़े। महात्मा एवं सज्जनों का सम्मान हो, समाज समृद्धिशील एवं सुखी हो।

इस प्रश्न पर काफी समय तक विचार होता रहा। अन्त में श्री स्वामी जी के उपदेश एवं सुझाव को उत्साह पूर्वक सबने स्वीकार किया। उन्होंने अनेक शास्त्रों के प्रमाण देते हुए समझाया कि अशुभ कर्मों का बीज रजोगुण और तमोगुण है। इनके प्रभाव को दवाने वाला एक मात्र सतोगुण ही है। यह विषय श्रीमद् भागवान् स्कन्ध ११ के तेरहवें अध्याय ने उद्धव को समझाया है। श्री स्वामी जी ने दृढ़ता पूर्वक अपना निश्चय बतलाया कि हम उक्त अध्याय के इस श्लोक का प्रयोग करने के लिये एक बृहत् अनुसन्धानशाला का निर्माण करेंगे जिसमें सारा संसार धर्म पालन के लिये तत्पर होकर वास्तविक सुख शान्ति प्राप्त करेगा। हम ने इस गंगा तट पर यह व्रत ले लिया है कि इस विश्व हितकारी अनुसन्धान कार्य के लिए जीवन समर्पण कर देंगे। संसार की समस्त चिन्ताओं से मुक्त होकर भगवत् कृपा का अवलम्ब लेकर निरन्तर अहर्निश इस अनुसन्धान में पूर्ण शक्ति के साथ कार्य करेंगे।

उपस्थित भक्त जो चाहें इस महान् कार्य में अपना जीवन लगा सकते हैं। कई व्यक्तियों ने हाथ उठा कर संकल्प किया जिसमें श्री विज्ञान पूजन, श्री उमेश पूजन, श्री गोपाल पूजन ने उत्साह पूर्वक प्रतिज्ञा की कि हम लोग इसी समय चलने को तैयार हैं। सात्विक स्थान निश्चित होने पर हमको बुलाया जाय। एकादश स्कन्ध अध्याय १३।४ का श्लोक यह है:—

आगमोऽपः प्रजा देशः कालः कर्म च जन्म च
ध्यानं मन्त्रोऽथ संस्कारो दशैते गुण हेतवः ॥

श्री स्वामी जी दो तीन वर्ष तक सात्विक भूमि के संशोधन के लिये विभिन्न स्थानों में विचरण करते रहे। अन्त में नैमिषारण्य की तपोवन-भूमि इस अनुसन्धान कार्य के लिये निश्चित की गई ।

महामना श्री मालवीय जी से भेंट

इसी प्रसंग में यह संस्मरणीय और उल्लेखनीय है कि श्री प्रभुदत्त जी ब्रह्मचारी ने झूँसी में षट्मास नाम जप का आयोजन किया और उसकी समाप्ति पर विशाल समारोह मनाया गया। उक्त अवसर पर श्री स्वामी जी भी वहीं पधारे। महामना पं० मदनमोहन मालवीय से मिलने के समय हिन्दू जाति के उत्थान के सम्बन्ध में चर्चा प्रारम्भ हुई।

महामना मालवीय जी ने हिन्दू जाति के बालकों की शिक्षा पर विचार प्रकट करते हुए यह बतलाया कि हमने विश्व विद्यालय की स्थापना इस उद्देश्य से की थी कि उससे धर्मनिष्ठ व्यक्तियों का निर्माण होगा, किन्तु हमने अंग्रेजी शिक्षा की पाश्चात्य शैली अपनायी जिससे वास्तविक सफलता नहीं मिल सकी। हमने इस कार्य में जीवन लगा दिया, परन्तु हमें स्वयं सन्तोष नहीं है।

श्री स्वामी जी ने उनके सम्मुख निवेदन किया कि महामना जी ! हम भी हिन्दू जाति की सेवा करना चाहते हैं। आप हमें परामर्श दें कि हम शिक्षा के क्षेत्र में किस प्रकार कार्य करें! उन्होंने हर्ष प्रकट करते हुए कहा कि धर्म-शिक्षा के लिये आप किसी तीर्थ स्थान में संस्था स्थापित करें और उसमें भारतीय शास्त्रीय पद्धति का अनुगमन करें। मेरा विश्वास है कि इसमें सफलता मिलेगी।

श्री स्वामी जी को मालवीय जी का यह सुझाव पसन्द आया। उन्होंने अपना निश्चय प्रकट करते हुए मालवीय जी के सुझाव के प्रति प्रसन्नता प्रकट की और कहा कि हम इसी प्रकार की संस्था स्थापित करेंगे और अवसरानुकूल आप से निरीक्षण करावेंगे।

अपने इस पुनीत उद्देश्य को लेकर स्वामी जी ने नैमिषारण्य तीर्थ की भूमि को पसन्द किया था। नैमिष टीला के समीप की भूमि श्वेत उर्वरा बालुका से परिपूर्ण, भगवती गोमती के तट पर कुशों से आच्छादित थी। अरण्य का सुन्दर दृश्य भी था। अपने संकल्प की पूर्ति के लिये नैमिष टीला की प्राचीन तपस्थली में दो तीन साधकों के साथ निवास करने लगे। उसी अवसर पर "श्री परमार्थ साधन आश्रम" की छोटी सी नियमावली सं० १९९३ वि० में प्रकाशित की गई, जिसमें सात्विक साधकों का निर्माण करके भारतवर्ष एवं विश्व में धर्म प्रचार करने की योजना और नियम निर्धारित किये गये थे।

शौनक कुटी

नैमिष टीला से कुछ दूर हट कर एक और डीह भीष्म शैय्या के पास था। लोग उसको 'शौनक टीला' कहते थे। कालान्तर में श्री स्वामी जी ने अपने निवास के लिये उस पर पर्ण कुटी का निर्माण कराया और प्राचीन गुफा का पुनरुद्धार करके इसका नाम शौनक कुटी प्रचलित हुआ। श्री स्वामी जी ने यहीं कायाकल्प किया था।

इस कुटी के नीचे निकट ही पाकरी और वट वृक्ष की सघन छाया है जिसके नीचे नित्य-सत्संग की व्यवस्था है। इस कुटी के समीप की एक कुटी में वयोवृद्ध महात्मा शंकरानन्द जी निवास करते हैं। वे सं० २००२ वि० में ऋषिकेश से आकर यहाँ पर तपस्या कर रहे हैं तथा होम्योपैथिक औषधियों के द्वारा रोगियों का उपचार करते हैं।

परमार्थ साधन आश्रम

प्राकृतिक सात्विक वातावरण के पुनीत क्षेत्र में इस आश्रम की स्थापना अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यहाँ के साधक स्वावलम्बी, आदर्श नियमित जीवन व्यतीत करने वाले थे। वे निर्पेक्ष भाव से कन्द-मूल फल एवं

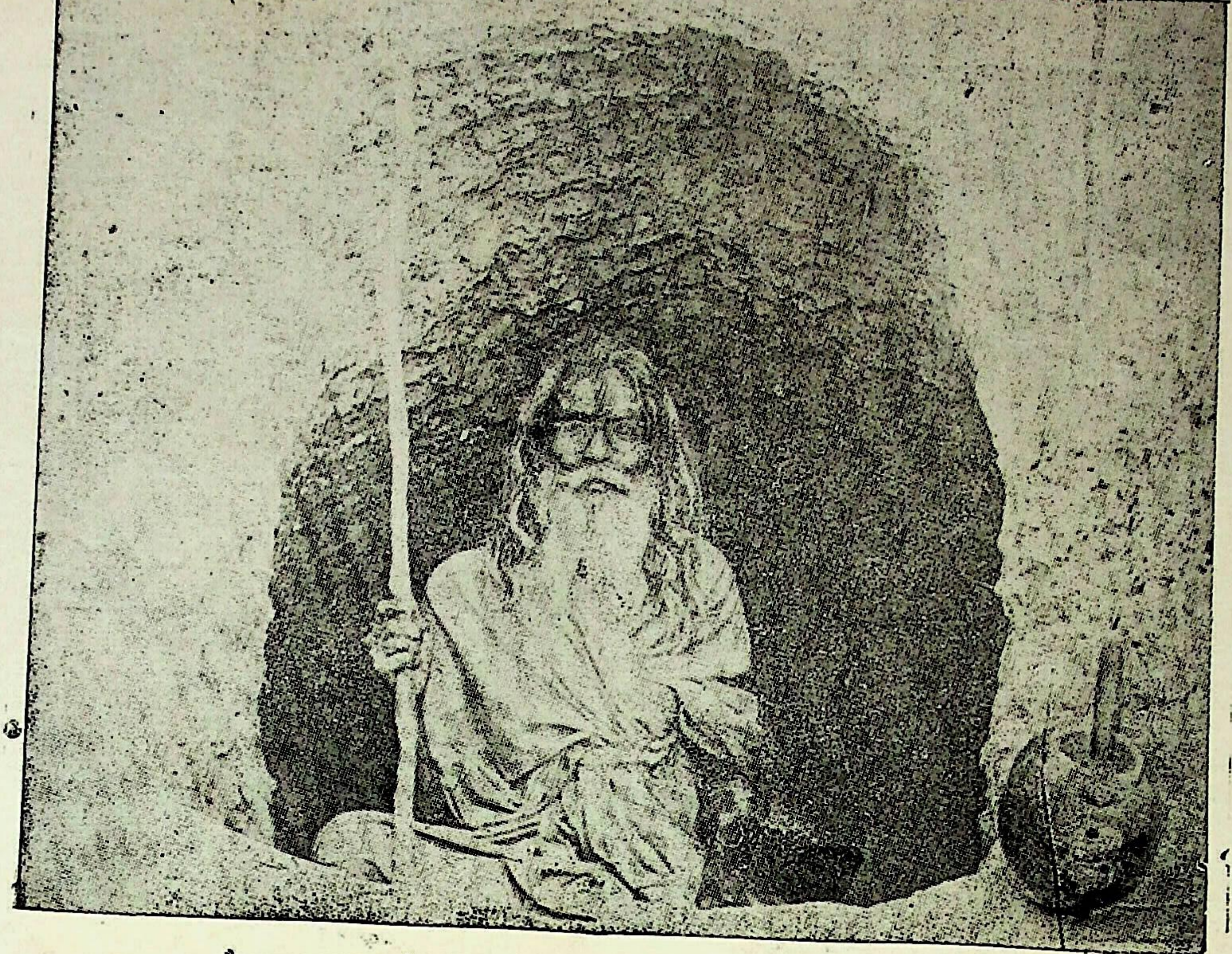

वैकुण्ठ आश्रम मीयांगंज गंगा तट को गुफा में पू० च० गुरुदेव भगवान्

अनायास ही प्राप्त भिक्षा से अतिरिक्त परिग्रह को त्याग कर जीवन व्यतीत करने लगे। निरन्तर छः मास तक रामचरित मानस का अखण्ड पाठ कन्द मूल-फलआहार की साधना के साथ चलता रहा। गोमती एवं नैमिषधारा के जल का सेवन और आश्रम का अपरिग्रही जीवन अत्यन्त आकर्षक था।

इस पुनीत आश्रम पर श्री हरी बाबा, श्री नारायण स्वामी टाट वाले, श्री स्वामी हीरानन्द तथा अन्यान्य तपस्वी सन्तों ने भी कुछ काल तक निवास किया। ग्रीष्मावकाश में शिक्षा विभाग के अनेक अध्यापक, प्राध्यापक और आचार्य निवास करके सात्विक साधना करते थे। स्थायी रहने वाले साधकों में श्री महात्मा शिवानन्द, श्री प्रेमानन्द, श्री योगेन्द्र, श्री दयानन्द, श्री नारायण जी आदि अनेक साधकों ने प्रारम्भिक साधनाएँ की हैं।

श्री स्वामी जी ने अपने इस पुनीत कार्य में पूज्यपाद गुरुदेव श्री स्वामी एकरसानन्द सरस्वती जी महाराज के शुभ आशीर्वाद सत्परामर्श समर्थन और प्रोत्साहन के दृष्टिकोण से उनसे नैमिष पधारने की प्रार्थना की। उनका शुभ पदार्पण अत्यन्त आकर्षक और महत्व पूर्ण था। उनके अभिनन्दन एवं दर्शन के लिये अपार भीड़ एकत्रित हो गई। स्व० स्वामी शुकदेवानन्द जी तथा स्वामी भजनानन्द जी भी उनके साथ में आये।

पूज्य गुरुदेव भगवान् ने समस्त भूमि का अवलोकन करके आशीर्वाद दिया कि नैमिष प्राचीन काल में विश्व-गुरु रहा है। यहाँ के धर्म प्रचार की ध्वजा विश्व में फहरायेगी जिससे विश्व का कल्याण होगा।

श्री महात्मा शिवानन्द और श्री प्रेमानन्द जी को साधन करने के लिये प्रेरणा दी। इसी अवसर पर एक विशाल भूमि का क्षेत्र लगभग ६-७ फर्लांग की वनस्थली अनुसंधान के निमित्त श्री शिक्षा सुधार समिति संस्था के अधिकार में प्राप्त की गई। और इस पर ब्रह्मचर्य तथा वान-प्रस्थ आश्रम की स्थापना का संकल्प किया गया।

इसी प्रसंग में उन भक्तों को स्मरण किया गया जिन्होंने वैकुण्ठ आश्रम में जीवन समर्पण करने का व्रत लिया था। श्री स्वामी जी ने महात्मा शिवानन्द जी से कहा कि सर्व प्रथम श्री बाबूराम वाजपेयी के पास पत्र भेज दो कि वह कुछ समय का अवकाश लेकर ब्रह्मचर्याश्रम की योजना में सहयोग

प्रदान करें। अकस्मात् दूसरे दिन श्री बाबूराम जी का पत्र प्राप्त हुआ जिसमें यह भाव व्यक्त किये गये थे कि मेरे हृयय में यह प्रेरणा हो रही है कि सम्भवतः नैमिषारण्य में मेरी आवश्यकता है। यदि वास्तव में यह बात सत्य हो तो मैं सेवा के लिये तत्पर हूँ। यह प्रेरणा उनको स्वप्न में प्राप्त हुई थी। सब साधनों को इस पत्र से बड़ा हर्ष हुआ, और श्री बाबूराम वाजपेयी को तत्काल नैमिष आने के लिये पत्र लिखा गया।

—:o:—

शिक्षा सुधार समिति

सोसाइटी एक्ट से रजिस्टर्ड यह संस्था सन् १९४२ ई० में कार्य करने लगी। नैमिषारण्य आश्रम की समस्त भूमि और सम्पत्ति इसी संस्था के अधिकार में है। उत्तर प्रदेश के विभिन्न स्थानों में इस संस्था द्वारा भूमि प्राप्त करके ऋषि आश्रम स्थापित किये गये हैं।

इस संस्था का उद्देश्य श्रुति, स्मृति पुराण प्रतिपादित धार्मिक शिक्षा का प्रसार करना है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये स्थान २ में अध्यात्म-विद्यालय, ब्रह्मचर्याश्रम, वानप्रस्थाश्रम, पुस्तकालय आदि की स्थापना करना है। नैमिषारण्य में अध्यात्म-विद्यापीठ के अन्तर्गत ये शाखायें सुचारु रूप से कार्य कर रही हैं। विद्यार्थियों में धार्मिक शिक्षा का प्रचार प्रसार और व्यवस्था के लिये "नैतिक शिक्षा परिषद्" की स्थापना हुई है जो अपनी दिशा में कार्य कर रही है।

श्री स्वामी जी का कायाकल्प

श्री स्वामी जी ने युवावस्था में ही विरक्त-जीवन ग्रहण किया, निरन्तर धार्मिक जन-जागरण, तीर्थाटन भगवद्भक्तिका प्रसार, साधक-निर्माण तथा हिन्दूधर्म के सर्वाङ्गीण विकास के कार्यों में अथक परिश्रम करते रहे। भविष्य के कार्यों की उपादेयता की दृष्टि से नवीनतम शारीरिक

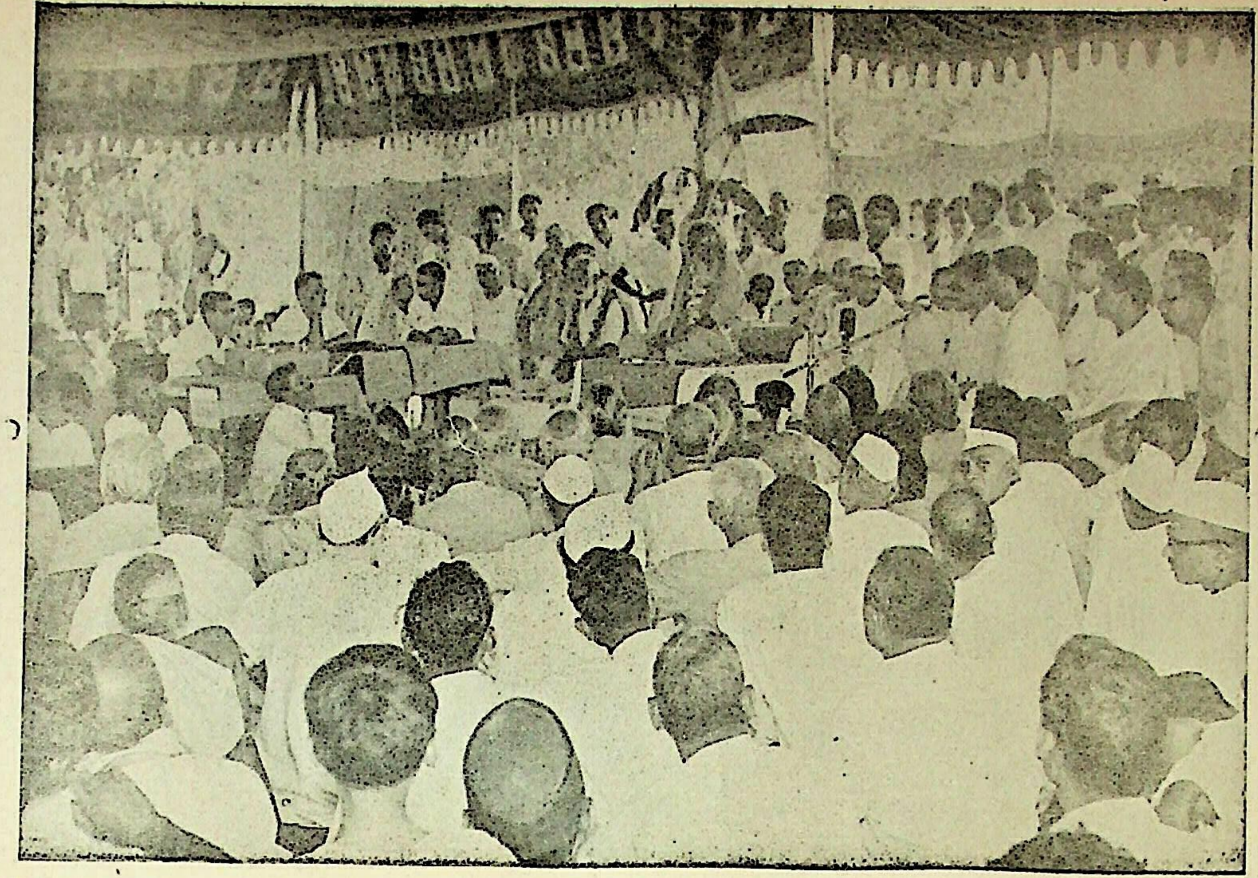

लखनऊ का महती सभा में पत्रकारों को सम्बोधित करते हुए

बौद्धिक एवं आध्यात्मिक शक्ति की आवश्यकता उन्हें विशेष रूप से प्रतीत हो रही थी।

संयोगवश प्रभु प्रेरणा से प्राप्त पं० काशीनाथ वैद्य आयुर्वेदाचार्य शाहजहाँ के सान्निध्य में शास्त्रोक्त रीति से शरीर शोधन कार्य का निश्चय किया गया। वर्तमान युग में यह कार्य अत्यन्त आश्चर्य युक्त और नवीन था। श्री वैद्य जी की सम्मति से समस्त उपकरण जुटाये गये, और श्री स्वामी जी के कई मास तक पृथक् रहने की व्यवस्था की गई।

श्री वैद्य जी ने अत्यन्त श्रद्धा एवं दायित्व पूर्वक इस कार्य का शुभ-आरम्भ सं० २००२ वि० में किया। इसमें कई मास तक सूर्य-दर्शन का पूर्ण निषेध रहा। अन्नादि का भोजन त्यागकर आंवले का शुद्ध प्रयोग कराया गया। गायत्री मंत्र से अभिमंत्रित आंवलों को पलास वृक्ष की गुहा में रखकर बीने हुए उपलों की आँच से विधिवत् पकाया गया, और उसमें शुद्ध शहद एवं घृत मिलाकर सात्विक रासायनिक पदार्थ तैयार किया गया।

कायाकल्प के भीषण प्रयोगों का स्मरण भी रोमाँचकारी है, नाड़ी शोधन, शिरोविरेचन स्वेदन आदि की प्रक्रिया में जीवन बलिदान की आशंका रहती थी। दो तीन मास के विचित्र प्रयोगों के पश्चात् पूज्य स्वामी जी का दिव्य शरीर बालकों के समान कोमल व स्निग्ध हो गया। उनका मस्तिष्क अत्यन्त प्रस्फुटित मेधाशक्ति युक्त नवीन सा प्रतीत होता था। उन्होंने अन्तःप्रेरणा के लिये एकान्त शौनक कुटी की गुफा में प्रवेश किया।

गुफा चारों ओर से बन्द थी। आस-पास रक्षा की पूर्ण व्यवस्था थी आन्तरिक साधनाओं द्वारा वृत्तियों को अन्तर्मुखी करके प्राणवायु का नियन्त्रण किया और समाधिस्थ हो गये तथा ऋतम्भरावस्था अन्तर्मुखी प्रज्ञा शक्ति के द्वारा आत्मानुभूति की परमानन्दमयी रसानुभूति को प्राप्त किया।

कई दिन की इस समाधि के बाद वृत्तियों का जागरण हुआ। इस प्रकार कई मास एकान्त वास के अवसर पर निकटवर्ती तथा दूरस्थ प्रदेशों के भक्तों की दर्शनाभिलाषा अत्यन्त उत्कृष्ट हो गई थी।

विशाल रुद्र महायज्ञ

श्री स्वामी जी के गुफा से निकलने के अवसर पर श्री रुद्र महा यज्ञ का आयोजन गया। वयोवृद्ध श्री दिवाकर जी आचार्य मैनपुरी ने शास्त्र विधि से याज्ञिक विधान निर्धारित किया। उत्तर भारत की भक्त जनता की दिव्य लालसायें जाग्रत हुईं। उनका सहयोग सराहनीय था। नैमिष के अरण्य प्रान्त में श्री स्वामी जी के दर्शनों के लिये बीस हजार से भी अधिक जन समाज का एकत्रित होना एक पर्व सा प्रतीत होता था। इसी पुण्य-अवसर पर ब्रह्मचर्य-आश्रम की विधिवत् स्थापना की गई।

श्री अध्यात्म-विद्यापीठ

वैकुण्ठ आश्रम और मियाँगंज में जो अध्यात्म-विद्यालय स्थापित किया गया था कालान्तर में उनका बृहत् स्वरूप अध्यात्म-विद्यापीठ के रूप में परिणत हो गया। ब्रह्मचर्याश्रम और वान-प्रस्थाश्रम उसी के अंग है। "परमार्थ साधन आश्रम" में साधकों का नवीन प्रवेश होता गया श्री वेदव्यास जी (राम सेवक मिश्र, ग्राम मेरापुर जि० फर्रुखाबाद) ब्रह्मचारी के रूप में प्रविष्ट हुये। श्री विज्ञान पूजन (बाबूराम वाजपेयी) ब्रह्मचर्याश्रम का संरक्षण-शिक्षण कार्य तथा श्री लल्लूसिंह (हरवंश पूजन) व्यवस्था कार्य करने लगे। श्री शिवदत्त जी मिश्र एम० ए० शिक्षा सुधार समिति व उत्तर प्रदेशीय दैवी सम्पत् मण्डल, के मंत्री पद पर कार्य करने लगे।

इसी समय स्वामी आत्मानन्द जी यहां आये और कुछ काल तक यहाँ निवास किया। श्री शिव पूजन वानप्रस्थी, लक्ष्मीचन्द तिवारी, श्री वाचस्पति तथा अन्य साधकों ने प्रवेश किया। अध्यात्म विद्यापीठ तथा ब्रह्मचर्याश्रम के वार्षिकोत्सवों के अवसर पर श्रीमज्जगद्गुरु शंकराचार्य श्री स्वामी भारती कृष्ण तीर्थ जी महाराज जगन्नाथ पुरी, श्री

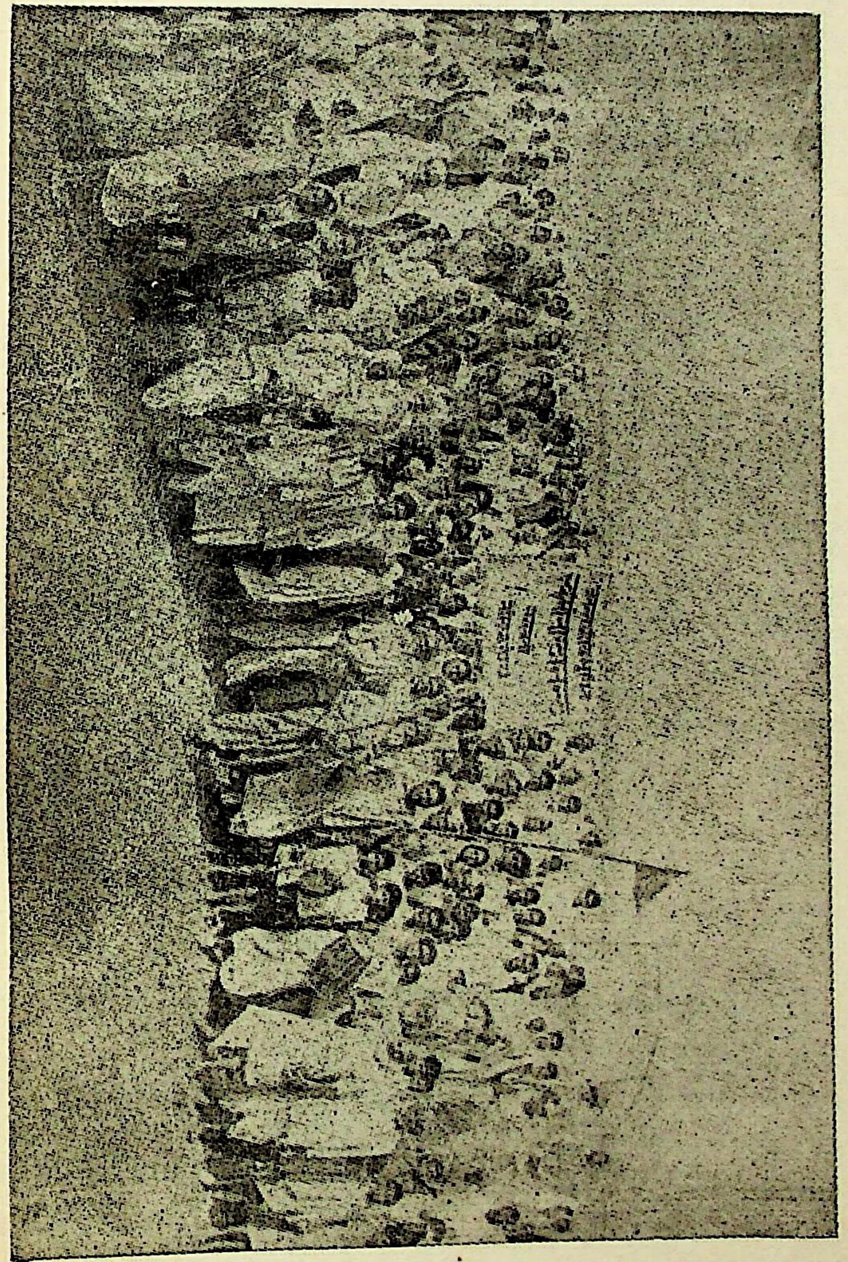

गंगातट मीयागंज में विशाल जुलूस के साथ श्री जगदाचार्य जो

राजर्षि पुरुषोत्तम दास टण्डन, दर्शन केसरी श्री गोपाल शास्त्री, श्री बाबाजी राघवदास का शुभ पदार्पण हुआ। इन्हीं दिनों श्री डा० श्यामा प्रसाद मुकर्जी, श्री पं० गोविन्द बल्लभ पंत का भी आगमन हुआ। सभी आगन्तुक महापुरुषों व विद्वान् नेताओं ने इस आध्यात्मिक विद्यापीठ के कार्य संचालन को देखकर प्रसन्नता एवं सम्मतियाँ प्रकट कीं।

श्री हिन्दू-प्रार्थना-समिति

हिन्दू जाति का अतीत कालीन इतिहास अत्यन्त गौरव पूर्ण है। इस महान् जाति में वर्ण आश्रम दृष्टि से अनेक विभाग हैं। उपासना आदि में अधिकारानुसार अनेक विभेद होते हुये भी वास्तव में अभिन्नता है। इसकी सामाजिक प्रणाली वैज्ञानिक है, किन्तु धार्मिक नेतृत्व की उपेक्षा और अभाव से मध्य युग में इस महान् जाति का एकता सूत्र कुछ निर्बल सा हो गया।

श्री स्वामी जी ने ईश्वरवाद के आधार पर प्रार्थना का संयोजन-सूत्र उपस्थित करने का प्रयास किया। सभी वर्ण वर्ग सम्प्रदायों में राष्ट्र-भाषा हिन्दी के माध्यम से "प्रार्थना" योजना निर्धारित की गई। रामचरित मानस की सामूहिक प्रार्थना "**जय जय सुरनायक ......**" और "**वह शक्ति हमें दो दयानिधे---...- --**" पर विभिन्न सम्प्रदायों संस्थाओं के महात्माओं एवं नेताओं ने अपनी सम्मतियाँ प्रदान कीं। इस प्रकार एक समय में एक ही प्रार्थना का समस्त देश (विशेष तया हिन्दी भाषी प्रान्तों में) प्रचार प्रसार किया गया।

उत्तर प्रदेश में हिन्दू प्रार्थना समिति की शाखायें प्रस्थापित हुईं। सं० २००३ ई० में कानपुर में उत्तर प्रदेशीय विशेष अधिवेशन किया गया। गोरखपुर के अखिल-भारतीय हिन्दू-सभा के अधिवेशन में डा० श्यामाप्रसाद मुकर्जी, डा० भोपटकर, महन्त दिग्विजय नाथ एवं श्री विशन चन्द सेठ के प्रयास से प्रार्थना समिति की योजना खुले अधिवेशन में स्वीकृत हुई। अयोध्या के महन्तों, महात्माओं, विशेषकर श्री स्वामी राम पदारथ दास वेदान्ती तथा स्वामी रामस्वरूप दास जी श्री वैष्णव ने

उत्तर प्रदेश और विहार के विभिन्न क्षेत्रों में प्रार्थना का प्रचार किया। आज यह प्रार्थना लक्ष-लक्ष नर-नरियों की व्यक्तिगत उपासना का स्वरूप बन गई और इससे आध्यात्मिक, सामाजिक और संघीय शक्ति का जागरण हुआ। ईश्वर-वाद के आधार पर सदाचार, सद्भावना, सामाजिक सेवा के रचनात्मक कार्यों को वल मिला है। एवं राष्ट्रीय उत्थान के महत्वपूर्ण कार्य में "हिन्दू प्रार्थना समिति के आयोजन" एक सक्रिय उपाय है।

इस हिन्दू-प्रार्थना-समिति का विशेष प्रभाव कानपुर नगर पर पड़ा। जिसका मुख्य कारण मज़दूर क्षेत्र से आरम्भ करना था। प्रचार मकरावट गंज के हातों से आरम्भ हुआ। इसका लाल इमली, काटन मिल, एलगिन मिल नं० १ और सी० ओ० डी आदि मिलों पर विशेष प्रभाव पड़ा जिससे नास्तिक संस्थाओं का प्रभाव दब गया। कुछ प्रमुख प्रचारकों के नाम उल्लेखनीय हैं, जिनकी निष्काम सेवा से सफलता प्राप्त हुई। श्री पं० राजमोहन मिश्र, श्री भगवान दास, श्री पं० विशुनदयाल त्रिपाठी, श्री पं० रामसूरत, श्री राधेश्याम, श्री भक्त देवी दयाल, श्री पं० गौरीशंकर मिश्र, भक्त चिरंजीव लाल, श्री गंगाप्रसाद वाजपेयी, श्री करुणाशंकर शुक्ल 'करुणेश' आदि जो अब भी प्रचार कार्य में तत्परता से संलग्न हैं। इस समय पूरे भारत में प्रार्थना प्रसार का कार्य चल रहा है। हिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्रों में अधिकतर इसी का प्रचार है। संगठन आस्तिकता, आचरण-सुधार और संयमी जीवन बनाने में विशेष उत्थान हुआ है।

गौरक्षा का कार्य भी इस समिति ने आश्चर्यजनक किया है, जिसके प्रभाव से प्रभावित होकर भारत-सरकार ने गो सेवा के लिए सक्रिय कार्य आरम्भ किया है।

वानप्रस्थ आश्रम और ऋषि आश्रमों की स्थापना

जब नैमिषारण्य के धार्मिक प्रचार एवं आध्यात्मिक शिक्षा के कार्यों से समाज को विशेष प्रेरणा मिलने लगी तब यह आवश्यकता प्रतीत हुई कि विभिन्न तीर्थों तथा नगरों में धार्मिक प्रेरणा और शिक्षा देने के लिये

उनके निकट ही शाखा केन्द्र हो इस दृष्टिकोण से उत्तरप्रदेश में ऋषि-आश्रमों की स्थापना का कार्य आरम्भ हुआ।

संचालन और प्रेरणा की दृष्टि से विरक्त सन्त और वानप्रस्थियों का निर्माण कार्य प्रारम्भ हुआ। अवकाश प्राप्त वृद्ध पुरुष यदि शास्त्रीय मर्यादानुसार साधना पथ में लग जावें और अपने अपने परिवार से पृथक् रहकर स्वाध्याय, संयम ध्यान और ज्ञानार्जन की ओर बढ़ें तो उनका विशेष कल्याण हो सकता है, और भगवत्सेवा भाव से वह धार्मिक जनता की सेवा भी कर सकते हैं।

श्रीस्वामी जी ने इस भावना से ऋषि आश्रमों के संचालन और साधना के शिक्षण कार्य हेतु वानप्रस्थाश्रम की स्थापना की। उनके लिये शास्त्रीय सरल नियम निर्धारित किये जिनका पालन करते हुए पीत वस्त्रधारी जटा-जूट से संयुक्त सैकड़ों वानप्रस्थी तपोमय जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

ऋषि आश्रम और वानप्रस्थाश्रम का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। इनके द्वारा रचनात्मक कार्यों का एक स्वरूप खड़ा हो गया है और धार्मिक जागरण की एक लहर दौड़ गई है। ऋषि आश्रमों में अध्यातम विद्यालय, पुस्तकालय, सत्संग औषधालय, गौशाला, पौशाला, ब्रह्मचर्याश्रम आदि की योजनायें हैं। जिनको देशकाल के अनुसार संचालित किया गया है। वानप्रस्थी उनका निरीक्षण व संचालन करते हैं। समस्त देश में १२५ ऋषि आश्रम स्थापित हो चुके हैं जिनमें वानप्रस्थी निवास करते है। आश्रमों की व्यवस्था सात्विक दान के आधार पर होती है।

—o—

भारत-भक्त-समाज

समस्त भक्तों को वैधानिक रूप से देशकाल की परिस्थिति के अनुकूल एक सूत्र में संयोजित करने के लिये 'भारत भक्त समाज' नाम की संस्था प्रस्थापित की गई। सन् १९६० ई० में सोसाइटी एक्ट से प्रमाणित होने के पश्चात् प्रयाग अर्ध कुम्भ के अवसर पर इसके उद्देश्य एवं विधान की घोषणा की गई। श्री स्वामी आत्मानन्द जी महाराज भूतपूर्व एडवोकेट

बिहार, अखिल भारतीय अध्यक्ष मनोनीत किये गये। आप परम तपस्वी, त्यागी विरक्त, विद्वान् सन्त हैं और भारत को ऋषि कालीन प्राचीन सभ्यता से विभूषित करने के अभिलाषी हैं। इसके उपाध्यक्ष श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती और श्री पं० रासभरोसे तिवारी सेवा निवृत्त एस्० पी० हैं।

भारत भक्त समाज की शाखायें--उत्तर प्रदेश, बिहार, पंजाब, मध्य-प्रदेश और राजस्थान में विशेष रूप से स्थापित की गईं। इसका प्रभाव विद्वान् व्यक्तियों, धार्मिक एवं सामाजिक नेताओं तथा अवकाश प्राप्त सरकारी पदाधिकारियों पर विशेष रूप से पड़ा है। राजनैतिक दलबन्दियों के धुँधले वातावरण को भी प्रकाश मिला है और निष्काम कर्मयोग के रूप में भक्तों को कार्य करने की प्रेरणा मिली है।

समस्त भक्तों की संस्था को व्यवस्थित रूप देने के लिए "भक्त" 'भक्त पाल', 'भक्त नायक' और 'भक्तमणि' के वैधानिक स्तर से एक सूत्र में पिरोया गया है, और वे समाज की सेवा में अग्रसर होकर आत्म-कल्याण, सदाचार की प्रस्थापना, परिवारिक शान्ति, मानसिक रोगों की निवृत्ति तथा भगवत्प्रेम के लिये अत्यन्त उत्साह से आगे बढ़ रहे हैं।

उत्तर भारत का धार्मिक गगन भारत भक्त-समाज के महोत्सवों से निनादित हो रहा है। उक्त अवसरों पर यज्ञ समारोह अध्यात्म विद्या के प्रचार दुर्गुण, दुर्व्यसन-त्याग, मादक वस्तुओं के निषेध, समाज सेवा, प्रेम युक्त व्यवहार, देशभक्ति, आराधना, उपासना, निष्काम-कर्मयोग, विधि निषेध, स्वधर्म पालन परोपकार धर्म परायणता की विशेष शिक्षा जन समाज को प्राप्त होती है, और सहस्रों नर-नारी अपने जीवन में महत्व पूर्ण परिवर्तन करके सुख शान्ति का लाभ प्राप्त करते हैं।

भारत-भक्त-समाज की तीर्थ यात्रा ट्रेन

अखिल भारतीय स्तर पर भारत भक्त समाज की शाखायें स्थापित करने एवं नैमिष के दिव्य संदेश और समस्त तीर्थों के दर्शन आदि भावनाओं

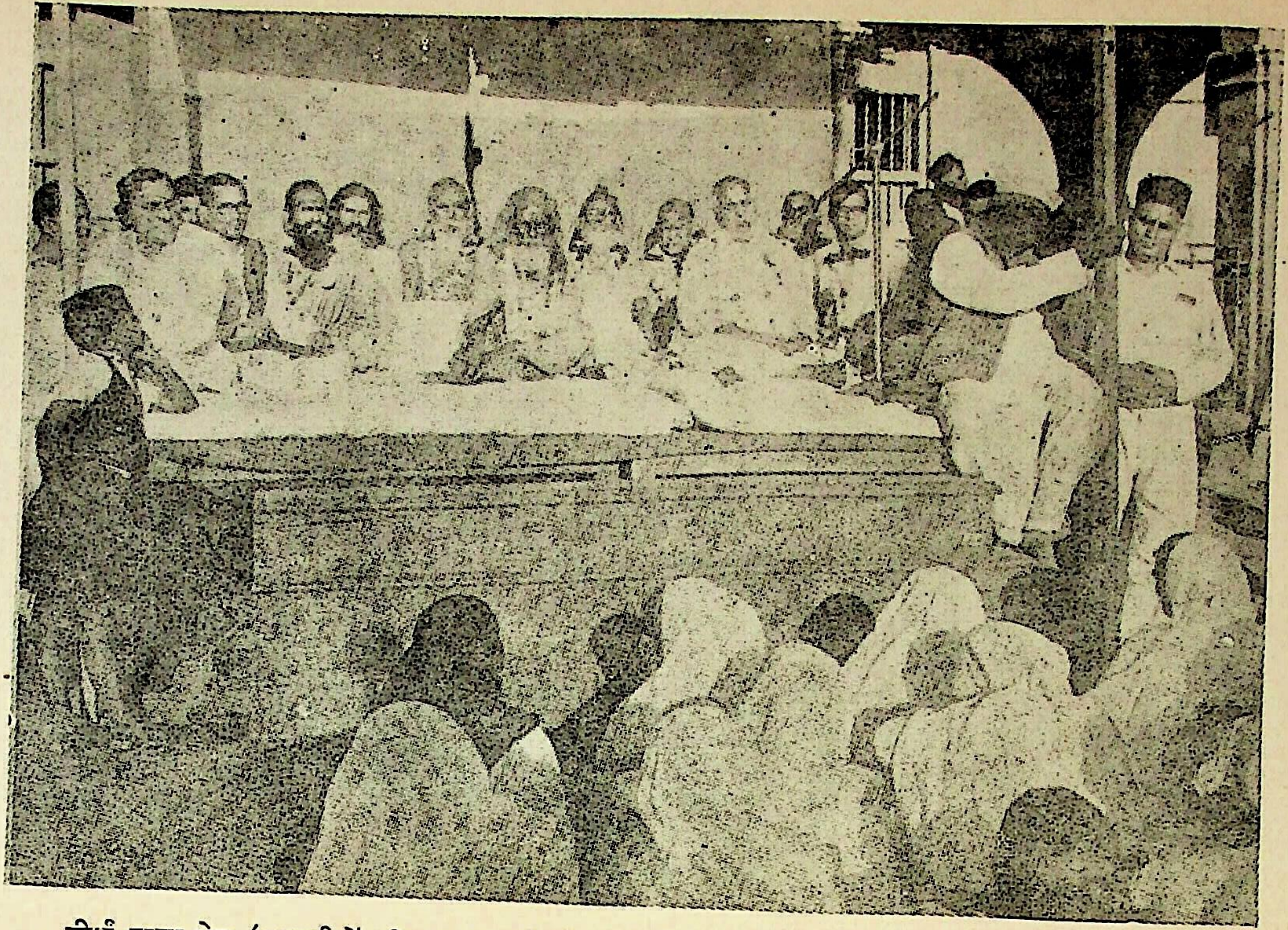

तीर्थ यात्रा ट्रेन (बम्बई में श्री जगदाचार्य जी महाराज का बम्बई के मेयर द्वारा) स्वागत समारोह

से तीर्थयात्रा ट्रेन को योजना निर्धारित की गई। श्री स्वामी जी के दृढ़ संकल्प प्रभाव और आशीर्वाद से योजना कार्य रूप में परिणत हुई। सरकार से स्वीकृति मिलने पर द्रुत गति से कार्य हुआ। २८ नवम्बर सन् १९६० ई० को कानपुर सेन्ट्रल स्टेशन से अत्यन्त समारोह पूर्वक स्पेशल ट्रेन सहस्रों भक्तों के विदाई देने के पश्चात् चल पड़ी। लगभग ५०० से अधिक भक्तों ने इस तीर्थ यात्रा में भाग लिया। दो माह से अधिक तीन धाम सात पुरी विभिन्न अन्य नगरों सरकारी बांधों इत्यादि का दर्शन करके फरवरी सन् १९६१ ई० में वापिस आगई।

इस यात्रा में श्री स्वामी जी के साथ में श्री स्वामी आत्मानन्द श्री स्वामी सनकानन्द गिरी अयोध्या, श्री स्वामी श्यामप्रकाश जी लखीमपुर खीरी, श्री स्वामी कृष्णानन्द, शास्त्रार्थ महारथी श्री पं० माधवाचार्य शास्त्री ने सैद्धान्तिक धर्म प्रचार के कार्य में पूर्ण सहयोग दिया। श्री ब्रह्मचारी विवेकानन्द व सर्वदानन्द ने संयोजन एवं व्यवस्था का विशेष कार्य किया। इस तीर्थ यात्रा ट्रेन का प्रायः समस्त तीर्थों एवं नगरों में बिशेष स्वागत हुआ। धार्मिक सभायें जुटाई गईं और शास्त्रों के दिव्य सन्देश द्वारा विभिन्न प्रान्तों को प्रेरणा दी गईं। अन्य भाषा भाषी प्रान्तों में द्विभाषियों द्वारा सन्देश देने की घटनायें बड़ी अपूर्व थीं।

भारत-भक्त-समाज का साहित्य

अध्यात्म विद्या के सरल सूत्रों भक्ति की भावना राष्ट्रीय और धार्मिक समन्वय के दृष्टिकोण से धार्मिक पुस्तक भण्डार और भारतभक्त समाज की ओर से साहित्य प्रकाशित किया गया है। श्री जगदाचार्य जी महाराज द्वारा लिखित "भारतीय संस्कृति दर्शन" सरल सुबोध ज्ञान प्रदान करता है। श्री विमलेश शास्त्री का वीर रस प्रधान "गजर्ना" काव्य एवं 'कीर्तन कुसुमाञ्जलि' अत्यन्त रोचक ढङ्ग से लिखे गये हैं इनके अतिरिक्त भक्ति-साधना, रामायण शिक्षासार को श्रीरामभरोसे तिवारी सेवा निवृत्त एस० पी० ने संकलित एवं नियोजित किया।

संस्था के उद्देश्य सिद्धान्त और कार्यों के ऊपर प्रकाश डालनेवाली "भव्य-भारत" श्री विज्ञानपूजन द्वारा लिखी गई। श्री रामदास मिश्र "विजय" हिन्दी प्रचारक मण्डल लखनऊ ने "सुख शान्ति के उपाय" और 'सुखमय जीवन के प्रेरणा सूत्र' प्रकाशित करके प्रचार प्रसार किया है। इसके साथ ही अनेक और छोटे-२ ग्रन्थ भी प्रकाशित हुये हैं।

'प्रार्थना' मासिक पत्रिका

विगत अठारह वर्षों से सनातन धर्म के सिद्धान्तों एवं हिन्दुत्व के अभ्युदय, चरित्र निर्माण एवं धार्मिक अभियान में गतिशीलता देते हुये आगे बढ़ रही है।

हिन्दी साप्ताहिक 'गौरव'

अपनी दिशा में प्रगति कर रहा है। यह पत्र अपने क्षेत्र में अनूठा है। धर्म और राजनीति का समन्वय, श्रुति सिद्धान्तों की उपादेयता और आदर्श धार्मिक घटनाओं, गुणदर्शन की भावनाओं तथा प्रेरणा, प्रोत्साहन, धैर्य, साहस, परोपकार, दुगुर्ण, दुर्व्यसन त्याग आदि आन्तरिक भावनाओं के जागरण का दिव्य संदेशवाहक है।

धर्म-विद्यालय

अध्यात्म विद्या सब विद्याओं में श्रेष्ठ है। उसके बिना अन्य विद्याओं और कलाओं का उपयोग हास्यास्पद, अशांतिकारक और दुःखप्रद है। अध्यात्म विद्या कर्मों का सात्विक नियन्त्रण करती है। बुद्धि में शुभ सकल्पों का सृजन करती है, और उसे राग द्वेष से रहित विशुद्ध बनाती है, अपनत्व का विस्तार करती है। संकीर्ण अहंता ममता का घेरा तोड़ कर "आतमवत् सर्वभूतेषु" और "वसुधैव कुटुम्बकम्" की उदात्त भावनाओं को दृढ़ करती है। अध्यात्म विद्या स्वधर्मनिष्ठ कर्मयोगी ईश्वर भक्त और विवेकी बनाती है।

श्री स्वामी जी ने विश्व विद्यालयों और कालेजों के क्षेत्रों में अध्यात्म विद्या की शिक्षा के प्रचार प्रसार का प्रयत्न किया है। विविध क्षेत्रों को प्रोत्साहन देकर शिक्षा की व्यवस्था की है। कानपुर तथा अन्य नगरों में ग्रीष्मावकाश के समय धर्म विद्यालय संचालित करके कई वर्षों से सफल सक्रिय कार्य किया जा रहा है, और विद्यार्थियों में इस शिक्षा का प्रभाव प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होता है।

ओमर वैश्य इन्टर कालेज कानपुर में स्थायी रूप से चरित्र और धर्म की शिक्षा के लिये अध्यापकों की नियुक्ति की गई है। ऋषि आश्रम शुक्लागंज तथा अन्य आश्रमों में निःशुल्क छात्रावासों की योजना चल रही है। जिनमें निवास विद्यार्थियों को सात्विक वातावरण और धार्मिक शिक्षा का सुलभ सुयोग मिलाता है।

“अध्यात्म-परीक्षा परिषद्”

श्री स्वामीजी की प्रेरणा और आशीर्वाद से संस्था धार्मिक प्रशिक्षण देकर परीक्षा लेती है। लखनऊ में इसका केन्द्रीय कार्यालय है। शिशु छात्रों से लेकर प्रौढ़ विद्यार्थी और नागरिक इसमें उत्साहपूर्वक भाग लेते हैं इसकी प्रबोधिनी प्रथमा मध्यमा और दिवाकर परीक्षायें होती हैं। पाठ्यक्रम निर्धारित है। यह संस्था उत्तर प्रदेश में विशेष रूप से और विहार राजस्थान मध्य भारत आदि प्रान्तों में शनैःशनै फैलती जा रही हैं। कई सहस्र परीक्षार्थी इसकी परीक्षाओं में प्रतिवर्ष बैठते हैं। भक्त केशवप्रसाद श्रीवास्तव तथा श्री देवीप्रसाद आदि भक्त कार्यकर्ताओं का कार्य सराहनीय है।

श्री अध्यात्म बिद्यापीठ के विशिष्ट स्नातक

श्री स्वामी जी ने अपने पूज्य गुरुदेव की प्रेरणा और शुभ आशीर्वाद-प्राप्त करके धार्मिक जन जागरण अध्यात्म साधना साधकों के निर्माण और अध्यात्म शिक्षा की व्यवस्था के लिये निरन्तर ५० वर्ष धारा प्रवाह वत् अनवरत परिश्रम किया है। वह अपनी इस दिशा में अनुकूल प्रतिकूल सभी परिस्थितियों में अदम्य-उत्साह अडिग धैर्य के साथ आगे बढ़ते रहे

हैं। उनको अन्ततोगत्वा प्रत्येक दिशा और क्षेत्र में सफलता प्राप्त हुई है।

अध्यात्म साधना व शिक्षा की दिशा में साधकों के निर्माण का अभूत पूर्व कार्य उन्होंने अपनी विलक्षण शैली से किया है। आपके समीप प्रविष्ट होने के पश्चात् साधकों को अध्यात्म पथ की एक दिशा का प्रकाश मिलता है। एवं समाज में कार्य करने की शैली का ज्ञान होता है। धर्म-नीति के सूत्र और नियम अवगत होते हैं। विरक्तता का रक्षा-कवच प्राप्त होता है। और अनुभव प्राप्त करने के लिये विश्व की प्रयोग-शाला में प्रविष्ट होने का मार्ग प्रशस्त होता है।

अनेक साधकों ने आपके निकट रह कर साधना और शिक्षा प्राप्त की, और वह विभिन्न क्षेत्रों में कार्य कर रहे हैं।

श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

आप शृङ्गीरामपुर के कुलीन कान्यकुब्ज ब्राह्मण वंश में उत्पन्न हुये। सत्याग्रह आन्दोलन में प्रयाग विश्व विद्यालय से बी० ए० की शिक्षा त्याग कर स्वदेश सेवा का कार्य करने लगे। इनका स्वभाव सात्विक कर्मयोग से प्रभावित और विरक्तता से युक्त है। यह सं० १९९३ वि० में श्री स्वामी जी महाराज के सम्पर्क में आये और दीक्षा लेकर साधना करने लगे। नैमिष टीला के सेवा कार्यों में आपका प्रमुख हाथ था। आज भी दण्डी सन्यासी के रूप में अध्यात्म विद्यापीठ के विभिन्न कार्य-क्रमों में सक्रिय भाग ले रहे हैं।

श्री स्वामी प्रेमानन्द सरस्वती

आप शृङ्गीराम पुर के निवासी गुजराती ब्राह्मण नैष्ठिक ब्रह्मचारी हैं। आप श्री स्वामी जी के सम्पर्क में दीक्षा लेकर सं० १९९३ वि० से अब तक कार्य कर रहे हैं। अब आपका दर्शन दण्डी सन्यासी के रूप में किया जा सकता है। आप नैमिष टीला पर निवास करते हुये साधकों को साधना शिक्षा देते हैं।

ऋषि प्रेमानन्द बाल ब्रह्मचारी

विगत ३५ वर्षों से धर्म एवं समाज की सवा कर रहे हैं।

सद्गुरु पूजन वानप्रस्थी

(भारत भक्त समाज के प्राण)

श्री योगेश्वरानन्द जी।

आप कान्यकुब्ज ब्राह्मण वंश में उत्पन्न फर्रुखाबाद जिले के निवासी नैष्टिक ब्रह्मचारी हैं। आपने सन् १९३१ ई० में वैकुण्ठाश्रम मियाँगंज में श्री स्वामी जी से दीक्षा ली, और उसी समय से अत्यन्त दक्षता दृढ़ता और भक्ति-भाव से साधना पथ पर चलते हुये श्री स्वामी जी के साथ साथ सन् १९४३ तक कार्य किया। अध्यात्म ज्ञान धर्म-नीति समाज सेवा की शिक्षा विद्यापीठ से प्राप्त कर के डलमऊ आश्रम (राय बरेली) को केन्द्र बना कर स्वतंत्र रूप से धर्म प्रचार का कार्य कर रहे हैं। इनकी संरक्षकता में वहां एक संस्कृत पाठशाला भी प्रस्थापित है।

श्री स्वामी दयानन्द जी:—आप कन्थरी जिला हरदोई के निवासी कान्यकुब्ज ब्राह्मण वंश में उत्पन्न हो नैष्ठिक ब्रह्मचर्यव्रती बन स० १९३१ ई० में श्री स्वामी जी के सम्पर्क में आये। आपने अध्यात्म विद्यापीठ से साधना धर्मनीति और ज्ञान की शिक्षा प्राप्त कर सं० २००० वि० से कचला क्षेत्र गंगाघाट को केन्द्र बनाकर धर्म प्रचार और शिक्षा के क्षेत्र में कार्य प्रारम्भ किया। इनकी प्रेरणा और प्रयास से कचला में एक कालेज चल रहा है।

श्री नारायण स्वामी:—आप नैपाल देशवासी ब्राह्मण वंश में उत्पन्न हुये, तथा सन् १९३६ ई० में लगभग १८ वर्ष की अवस्था में श्री स्वामी जी के सम्पर्क में आये और दीक्षा लेकर साधना और शिक्षा में प्रविष्ट हुये। आपने अत्यन्त कर्मठ और त्यागी नैष्ठिक ब्रह्मचारी के रूप में साधना धर्मनीति और ज्ञान शिक्षा प्राप्त की। सं० २००३ वि० में आप श्री स्वामी जी के परामर्श से मढ़ियाघाट मैगलगंज, जि० लखीमपु को केन्द्र बनाकर धर्मप्रचार कार्य कर रहे हैं।

श्री वाचस्पति जी :—कान्यकुब्ज ब्राह्मण वंश, वरगदिया ग्राम जि० हरदोई में उत्पन्न हुए। आपने श्री स्वामी जी से नैष्ठिक ब्रह्मचारी व्रत लेकर शिक्षा ग्रहण की। अब आप श्री नारायण स्वामी के सहयोग में मढ़िया के विशाल आश्रम में कार्य कर रहे हैं। वहीं पर एक संस्कृत विद्यालय

गौशाला भी स्थापित है और इस आश्रम के माध्यम से उस क्षेत्र में धर्म प्रचार का कार्य हो रहा है।

श्री वेदशिरा जीः—नैपाली ब्राह्मण वंश में उत्पन्न श्री ब्रह्मचारी जी सन् १९४१-४२ ई० में पूज्य स्वामी जी महाराज से दीक्षित होकर नैष्ठिक ब्रह्मचारी के रूप में अध्यात्म विद्यापीठ में शिक्षा प्राप्त करते रहे। सत्य परायणता तथा कर्मशीलता आपका प्रमुख गुण है, आप मढ़िया आश्रम पर व्यवस्था कार्य कर रहे हैं।

श्री कणाद जीः—गोंडा जिले में सरयूपारीण ब्राह्मण वंश में उत्पन्न आपने सन् १९४२-४३ ई० में श्री स्वामी जी का सम्पर्क प्राप्त कर नैष्ठिक ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया। अब आप श्री अध्यात्म विद्यापीठ के स्नातक हो कर मढ़िया आश्रम पर कार्य कर रहे हैं।

श्री वेदव्यास जी—भेरापुर, जिला फर्रुखाबाद में उत्पन्न कान्यकुब्ज ब्राह्मण वंश के दीपक। आप कुशाग्र-बुद्धि मेधावी छात्र थे। श्री स्वामी जी से प्रभावित हो कर आप सन् १९४०ई० में १८ वर्ष के लग भग आयु पार करके पूज्य स्वामी जी के सम्पर्क में आये। इनके माता पिता ने निवृत्ति-मार्ग अपनाने के लिए इन्हें एक जनसभा में श्री स्वामी जी महाराज को समर्पित किया। तभी से आप दीक्षित होकर नैष्ठिक ब्रह्मचारी के रूप में साधना में प्रविष्ट हुए। साधना काल में अध्यात्म ज्ञान, गीता, योगशास्त्र, और धर्म नीति की शिक्षा प्राप्त करके ब्रह्मचर्याश्रम में संचालक के कार्य को संभालते रहे। सन् १९५१-५२ में आपने ऋषिकेश को केन्द्र बनाकर स्वतन्त्र रूप से कार्य प्रारम्भ कर दिया। स्वर्गाश्रम के समीप आपका गीता आश्रम प्रस्थापित है।

श्री सत्यमित्रानन्द गिरि—कानपुर जिलावासी आप ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुए। नैमिष ब्रह्मचर्याश्रम में प्रविष्ट होकर मध्यमा विशारद तथा सा० रत्न परीक्षाओं में उत्तीर्ण होकर अध्यात्म ज्ञान साधना और धर्म नीति की शिक्षा प्राप्त करते रहे। यहां श्री वेदव्यास जी के निकट सम्पर्क में रह कर उनके ब्रह्मचर्याश्रम व्यवस्था रूप कार्यों में सहयोगी रहे। सम्प्रति भानपुरा (मध्यप्रदेश) को पीठ पर आसीन होकर धर्मप्रचार कार्य कर रहे हैं।

विवेकानन्द ब्रह्मचारी

कान्यकुब्ज ब्राह्मण वंश, मंगलपुर ग्राम जिला कानपुर में उत्पन्न श्री पं० उमाशंकर चतुर्वेदी (उमेश पूजन) के तृतीय चिरंजीवी। आप ब्रह्मचर्याश्रम में शिक्षा प्राप्त करके वाराणसी से वेदान्ताचार्य साहित्य-रत्न की उपाधि प्राप्त कर श्री स्वामी जी महाराज से दीक्षा प्राप्त करने के उपरान्त नैष्ठिक ब्रह्मचारी के व्रत में निष्ठावान् होकर अध्यात्म ज्ञान धर्मनीति अनुभवात्मक वेदान्त की शिक्षा प्राप्त करके पूज्य स्वामी जी के निजी सचिव पद का निर्वाह संस्था में दायित्वपूर्ण ढंग से कर रहे हैं।

श्री सर्वदानन्द ब्रह्मचारी :—आप कानपुर मण्डलान्तर्गत रसूलाबाद ग्रामवासी श्री पं० वाणेश्वरदयालु शुक्ल के सुपुत्र हैं। ब्रह्मचर्याश्रम से वेद मध्यमा, हिन्दी विशारद की शिक्षा प्राप्त करके श्री स्वामी जी महाराज से नैष्ठिक ब्रह्मचर्य की दीक्षा लेकर संयम, अक्रोध, सरलता, निश्छलता और सौम्यता के गुण धारण करके संस्था में दायित्वपूर्ण सक्रिय कार्य कर रहे हैं।

इनके अतिरिक्त सर्व श्री सहजानन्द, कृपानन्द, (केरलवासी) शौनक ब्रह्मचारी बी० ए०, ध्रुवचैतन्य (बिहार) अरुण चैतन्य, निर्मल चैतन्य, सियाराम आदि ब्रह्मचारी नैष्ठिक व्रतशील होकर श्री स्वामी जी से दीक्षा प्राप्त करके अध्यात्म साधना संयम धर्म नीति एवं विवेक की शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं।

कुंभ पर्वों पर धार्मिक प्रचार

अध्यात्म विद्यापीठ नैमिषारण्य और भारत-भक्त-समाज की ओर से हरिद्वार तथा प्रयाग के अर्ध कुम्भ एवं कुम्भ पर्वों पर शिविर और पण्डाल लगाकर शास्त्रीय धर्मों का प्रचार किया गया है। प्रत्येक कुम्भ पर्व पर विशेष प्रकार के आयोजन यज्ञ समारोह किये गये और उनके द्वारा धार्मिक हिन्दू जनता में ईश्वर भक्ति, सदाचार का प्रचार किया गया। विशेष कुम्भ पर्वों का उल्लेख इस प्रकार है।

हरिद्वार कुंभ सन् १९५० ई०

इस कुम्भ में हिन्दू प्रार्थना समिति की ओर से वेलराला क्षेत्र में पंडाल बनाया गया था। विभिन्न क्षेत्रों से आये हुये भक्तों के ठहरने की व्यवस्था उपदेश प्रवचन आदि का समुचित आयोजन था। इस अवसर पर श्री शारदापीठ द्वारका के जगद्गुरु शंकराचार्य अभिनव सच्चिदानन्द तीर्थ जी महाराज का शुभ पदार्पण हुआ। आपका अभिनन्दन किया गया। श्री शंकराचार्य जी द्वारा प्राप्त शुभाशीर्वाद और संदेश अत्यन्त प्रेरणाप्रद तथा उत्साहवर्धक था। प्रार्थना समिति के स्वयंसेवकों एवं कार्यकर्ताओं ने सराहनीय सेवा कार्य किया। श्री जगद्गुरु के साथ कुम्भ पर्व के अवसर पर नैमिषमण्डल के समस्त भक्तों एवं महात्माओं का विशाल जुलूस कुम्भ-स्नान के लिये विशेष प्रदर्शन के साथ शँख ध्वनि और घंटा निनाद करता हुआ गंगातट पर जिस समय गया, उस समय दर्शकों पर विशेष प्रभाव पड़ा।

हरिद्वार कुम्भ सन् १९६२ ई०

इस पर्व के अवसर पर पन्तद्वीप (चमगादर टापू) में विशाल शिविर भारत-भक्त-समाज की ओर से लगाया गया था। इसमें सात्विक विष्णु यज्ञ का आयोजन दर्शनीय था। उपदेश के लिये विशेष पंडाल सजाया गया, इसमें धार्मिक उपदेशों की व्यवस्था थी। पंडाल में इस पर्व पर भी शारदा-पीठाधीश्वर शंकराचार्य जी महाराज पधारे। आपके स्वागत के समय पंक्ति वद्ध भक्त माताओं के दीपमाल आरती के हेतु अत्यन्त आकर्षक थे। भगवान् शंकराचार्य स्वागत व्यवस्था से अत्यन्त प्रसन्न हुए, उनके हृदय में नैमिष की एक विशेष छाप पड़ी।

उनका शुभ सन्देश और आशीर्वाद मंगल सूचक था। पर्व तथा अन्य दिनों में गंगा स्नान के लिए पंक्तिबद्ध भक्त नर-नारी प्रार्थना का पीतपट ओढ़े "जय शिव शंकर हर हर गंगे" ध्वनि करते हुए सहस्रों की संख्या जिधर से निकलते थे उधर कौतूहल सा प्रतीत था।

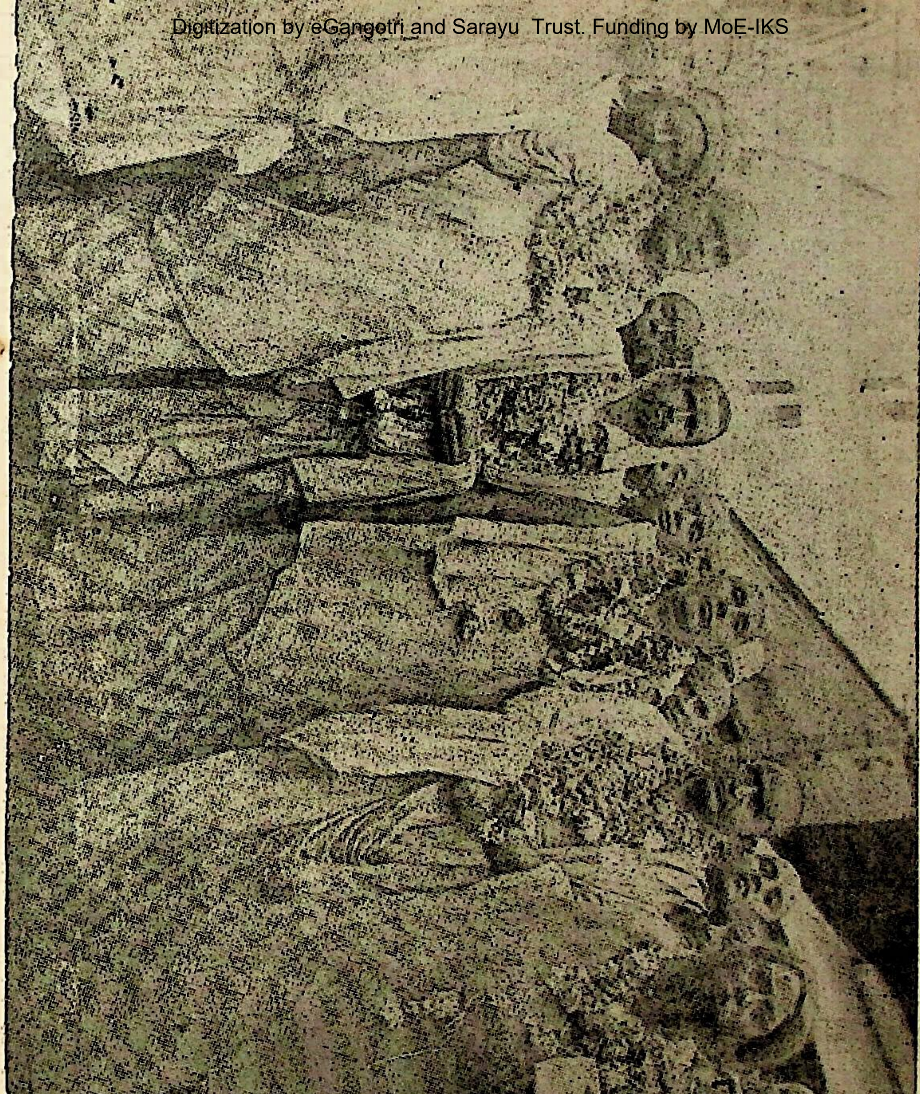

फूल बाग कानपुर में आयोजित साधु सम्मेलन में समागत सन्त वर्ग
सर्व श्री १०८ स्वामी विद्यानन्द जी मण्डलेश्वर
,, ,, ,, गुरुचरण दास जी ,,
,, ,, ,, वासुदेवाचार्य जी ,,
,, रामस्वरूप जी ,,
,, ,, ,, गंगेश्वरानन्द जी ,,
,, ,, ,, केशवानन्द जी ,,
,, ,, ,, कृष्णानन्द जी गिरी ,,

ज्योतिष्पीठाधीश्वर शंकराचार्य श्रीकृष्णबोधाश्रम जी महाराज की शोभा यात्रा का प्रदर्शन मेले के मार्गों में घूमता हुआ भारत भक्त समाज के पंडाल के सामने आया तो उस समय उनका विधिवत् पूजन किया गया और सैंकड़ों भक्त माताओं ने अपने २ थालों में दीपक जलाकर पंक्तिबद्ध आरती की। यह स्वागत सर्वाधिक अनूठा था। श्री जगद्गुरु ने प्रसन्न मुद्रा से सबको आशीर्वाद दिया। एक दिन इस अवसर पर भारत भक्त समाज की शोभा यात्रा का भी प्रदर्शन निकाला गया। समस्त क्षेत्रों में घूमता हुआ सप्त सरोवर, ब्रह्मकुण्ड तथा अन्य स्थानों में भी गया।

“अर्धकुम्भ प्रयाग १९४८ ई०”

इस अवसर पर हिन्दू प्रार्थना समिति का विशेष पंडाल निर्मित किया गया। सामूहिक प्रार्थना की महत्ता और उसका क्रियात्मक स्वरूप अत्यन्त प्रभावशाली था। पंडाल में समय समय पर गोस्वामी गणेशदत्त पंजाब, राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन, श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी, श्री स्वामी अद्वैतानन्द भारत सेवा संघ, श्री स्वामी चक्रपाणि जी महाराज वृन्दावन ने प्रार्थना समिति योजना की प्रशंसा की। एवं इसे इस युग में हिन्दू जाति को एक सूत्र में बाँधने का साधन बतलाया।

एक दिन समस्त मण्डलेश्वरों और विभिन्न सम्प्रदाय के महात्माओं का सम्मेलन किया गया सम्मेलन में प्रार्थना योजना की महत्ता और उपयोगिता पर सबने भाषण दिये और अपनी अपनी लिखित सम्मतियाँ प्रदान कीं जिनको ‘प्रार्थना” मासिक पत्रिका में प्रकाशित किया गया। इस पर्व के अवसर पर महात्मा गांधी का भस्मावशेष त्रिवेणी में प्रवाहित किया गया था। समिति के पंडाल में सामूहिक प्रार्थना हुई तथा शोक प्रस्ताव पारित किया गया।

——

प्रयाग कुम्भ सन् १९५४ ई०

इस कुम्भ में हिन्दू प्रार्थना समिति और अध्यात्म विद्यापीठ की ओर से शिविर और पंडाल का आयोजन मेला क्षेत्र में दो स्थानों पर किया गया। सात्विक विष्णु यज्ञ का विशेष आयोजन भी किया गया था।

इसी अवसर पर पर्व के दिन स्नानार्थी त्रिवेणी में स्नान करने के लिये विशेष उत्सुक थे। सभी भक्त नर नारी पंक्तिबद्ध चल रहे थे। श्री स्वामी जी सब से आगे थे। अकस्मात् उन्होंने एक खाली स्थान पर सब भक्तों को बिठा दिया और कीर्तन करने का आदेश दिया। सब लोग जी मसोसकर रह गये कि स्नान करने को देर हो रही है, यहाँ मार्ग में बिठा देने का क्या प्रयोजन है- स्वामी जी सब के हृदय की बात जान गये और बोले कि मेरे हृदय में अभी स्नान करने का संकल्प नहीं हो रहा है। जिन को मेरी बात पर विश्वास हो वह बैठें रहें जिन को जल्दी हो, वे जा सकते हैं। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि कोई भय है। दो व्यक्ति जाकर पहले आगे मार्ग देख आवें। उनके आने के पश्चात् जाना उचित होगा। अस्तु दो व्यक्ति भेजे गये और थोड़ी देर में उन्होंने सूचना दी कि आगे रास्ता बन्द है भीड़ अधिक होने के कारण भयानक दुर्घटना हो रही है। और बालक बृद्ध नर नारी कुचल कुचल कर मर रहे हैं। फिर तो चित्कार और हाहाकार सुनाई पड़ने लगा।

सब भक्त आश्चर्य करने लगे और अपने सौभाग्य की सराहना करते हुये स्वामी जी के आदेशानुसार दूसरे स्थान पर गंगा जी में स्नान करके शिविर में लौट आये। प्रार्थना समिति के शिविर में ठहरे हुये किसी व्यक्ति को किसी प्रकार की क्षति नहीं हुई।

अर्धकुम्भ प्रयाग सन् १९६० ई०

इस पर्व पर भारत-भक्त-समाज की सुसाइटीज एक्ट के अनुसार रजिस्ट्रेशन होकर घोषणा की गई। भारत भक्त समाज का शिविर और पंडाल सजाया गया। इसके पास ही भारत साधु-समाज का शिविर था

प्रयाग महाकुम्भ के समय विद्वत्परिषद् की अध्यक्षता करते हुए

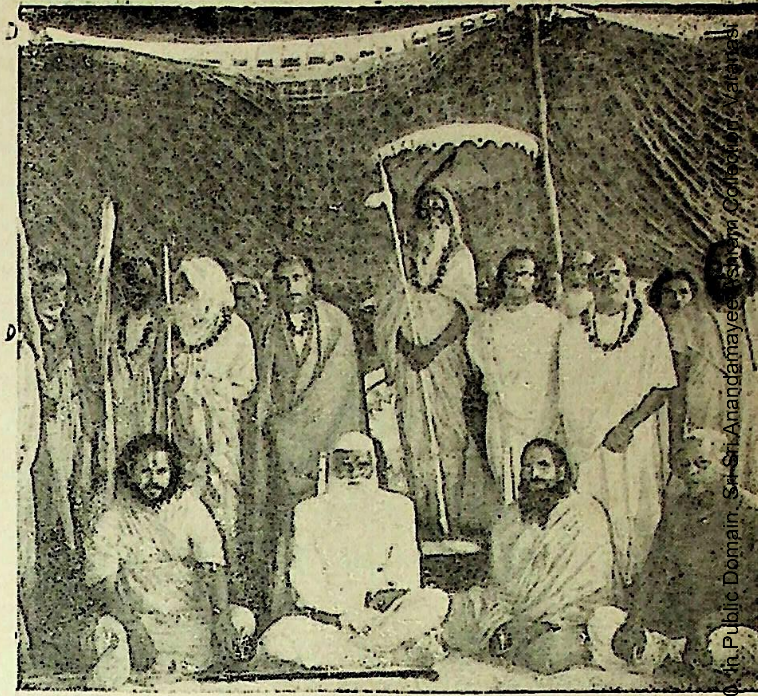

'शत कुण्डी यज्ञ' के अवभृथ स्नानार्थ उद्यत

जब माननीय गृहमंत्री श्री नन्दा जी उस शिविर में आये तो स्वामी जी को आमंत्रित करने के लिये भारत भक्त-समाज के शिविर में स्वयं उपस्थित हुये। स्वामी जी ने भारत-भक्त समाज के उद्देश्य, नीति, और कार्य शैली से उनको अवगत कराया और यह कहा कि भारत साधु समाज की सदाचार विषयक योजनाओं को भारत-भक्त समाज स्वयं कार्यान्वित कर रहा है। श्री नन्दा जी स्वामी जी की योजना और कार्यशैली से प्रभावित हो कर आशीर्वाद लेकर चले गये।

कुम्भपर्व प्रयाग सन् १९६० ई०

नैमिषारण्य की ओर से यद्यपि प्रति वर्ष माघ मास में मकर के अवसर पर साधक भक्त प्रयाग में निवास करके धर्म का प्रचार करते हैं। श्री स्वामी जी उस अवसर पर उपस्थित होकर धर्म की उपासना और ज्ञान का शुभ सन्देश तीर्थ यात्रियों को देते हैं, किन्तु कुम्भ के अवसर पर विशेष समारोह होता है।

इस कुम्भ पर भारत-भक्त-समाज का विशाल पंडाल और भक्तों के निवास का शिविर अत्यन्त मनोरम और दर्शनीय था। प्रातः ४ वजे से रात्रि के १२ वजे तक निरान्तर अबाध गति से प्रार्थना, कथा, प्रवचन कीर्तन की धारा प्रवाहित होती रहती थी। अनेक सन्त महात्मा, कथा-वाचक, बाहर से आकर इस पंडाल में समय प्राप्त करने की चेष्टा करते थे। जनता की अपार भीड़ होती थी। पं० जगन्नाथ शास्त्री की भागवत की कथा के समय पँडाल के सामने का आधा मार्ग अवरुद्ध हो जाता था। श्री स्वामी जी महाराज भक्तों, साधकों और महात्माओं की गोष्ठी प्रायः इस हेतु करते थे कि इस पर्व पर आई हुई भक्त जनता को कैसे किस प्रकार का पथ प्रदर्शन मिले। इन गोष्ठियों में विचार विनिमय के पश्चात् जो निर्णय होता था उनकी खुले पंडाल में घोषणा की जाती थी। श्री स्वामी जी का नित्य का उपदेश और सन्देश अत्यन्त महत्वपूर्ण होता था।

श्री स्वामी जी ने पत्रकारों के समक्ष प्रेसकांफ्रेन्स में धर्म और अध्यात्मवाद के आधार पर सदाचार की स्थापना और भ्रष्टाचार मिटाने की योजना पर प्रकाश डाला और भारत भक्त समाज के दृढ़ संकल्प और निश्चय को दृढ़ता के साथ उपस्थित करते हुये संस्था की उपयोगिता और महत्ता प्रकट की। उन्होंने यह भी घोषित किया कि प्राचीन काल के ऋषि सर्वहितकारी, जनता के कल्याण चिन्तक, निःस्पृही, और दूरदर्शी थे। उनकी कुम्भ जैसी पर्वों की योजनायें कितनी निर्बाध गति से चल रही हैं। अनेक शासनतन्त्र बदलते गये पर तीर्थों के आयोजन बराबर चलते रहे हैं और चलते रहेंगे। इतने बड़े कुम्भ जैसे आयोजन को कोई राजा या संस्था नहीं कर सकती। यहाँ समस्त धार्मिक जनता और सम्प्रदाय के प्रतिनिधि उपस्थित हुये हैं। इन विशाल पर्वों की व्यवस्था शासन को भी करनी पड़ती हैं।

आज की धार्मिक और सामाजिक समस्यायों को महात्माओं की गोष्ठी में सुलझाना आवश्यक है। इस पर्व में धार्मिक भावना से सभी यात्री आये हैं। अधिकांश पाप से डरते हैं और पुण्य संचित करना चाहते हैं। इस विशाल जन समाज की सद्भावना का सदुपयोग करना चाहिये इनकी श्रद्धा में अपार शक्ति है और इनका विश्वास कितना अडिग और दृढ़ है, गंगा और यमुना के जल में इनकी देवबुद्धि है। सन्त महात्माओं में इनकी आस्था है। यहां का सारा कार्य इनके धन से चल रहा हैं। सरकार को भी किराया और टैक्स देकर यहाँ आये हैं। यह जनता साधारण नहीं है। धर्म नीति के द्वारा किसी समाज का सुनिर्माण सम्भव है। वहां अनुशासन प्रेम से होगा और सेवा का आदान-प्रदान श्रद्धा और धर्म के माध्यम से होगा।

पत्रकारों पर स्वामी जी के इस विवेचन का विशेष प्रभाव पड़ा और सबने उनके विचारों का अपने २ पत्रों में प्रकाशित किया।

—:०:—

श्री जगदाचार्य महाराज, श्री जगद्गुरु शङ्कराचार्य गोवर्द्धन पीठाधीश्वर की अध्यक्षता में भाषण दे रहे हैं।

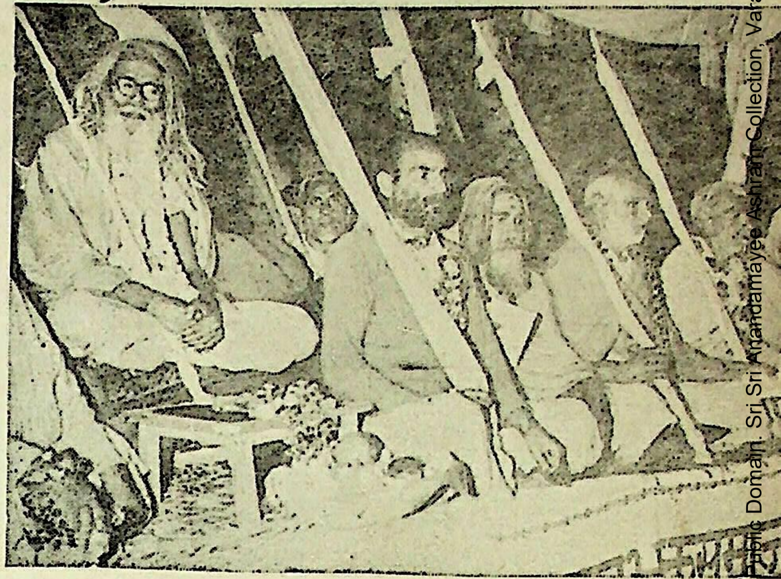

दण्डी मण्डल से धर्म रक्षा के सम्वन्ध में विमर्श

धर्म परिषद् की गोष्ठी

श्री स्वामीजी ने अन्य महात्माओं से सम्पर्क स्थापित करके विभिन्न सम्प्रदायों के संतों की परिषद् की बैठकें सम्प्रदाय-समन्वय, गौरक्षा, धर्म कर्म की मीमांसा,राष्ट्र रक्षा और समाज में भ्रष्टाचार की स्थापना के निमित्त आयोजित कराई। इन बैंठकों में समान विचार और विघटन रहित बातों पर मत निश्चित किये गये। अनेक महात्माओं ने धर्म परिषद् के माध्यम से कार्य करने की स्वीकृत दी। स्वामी नारायण आश्रम, ओंकारेश्वर, स्वामी सूर्यदेव पंजाब, स्वामी प्रकाशानन्द महामंडलेश्वर ....आदि महात्माओं ने बैठक की उपयोगिता अनुभव की और यह भी निश्चय किया कि समस्त महात्माओं का एक ऐसा मंच होना चाहिए जिसमें सभी सम्प्रदायों के महात्मा, उपासना पद्धतियों की बिभिन्नता होते हुए भी विचारों का समन्वय और उद्देश्य की एकता समाज के हित के लिए निर्धारित कर सके।

भारत-भक्त-समाज के पंडाल में विभिन्न सम्प्रदायों के महात्मा और जगद्गुरु कृपा पूर्वक पधारे। गोवर्धन-पीठ के शंकराचार्य श्री निरंजन देव तीर्थजी महाराज का भक्तों ने स्वागत किया। उनका धार्मिक संदेश बड़ा ही सारगर्भित और उपादेय था। और शारदापीठ के शंकराचार्य अभिनव सच्चिदानन्द तीर्थ जी महाराज का भक्तों ने स्वागत किया। जगद्गुरु निम्बार्काचार्य का शुभ आगमन अत्यन्त महत्वपूर्ण था। उन्होंने नैमिषारण्य के रचनात्मक कार्यों का उल्लेख करते हुए सर्वसंम्प्रदायों में समन्वय की भावना की सराहना की।

श्री स्वामीजी स्वयं अन्य संस्थाओं और संस्थाओं के विभिन्न पंडालों में आमंत्रित किये गए। उनमें उपस्थित होकर उन्होंने धर्म की व्यापक व्याख्या और विभिन्न उपासना पद्धतियों के द्वारा उपलब्ध होने वाले अक्षय सुख और शाश्वत् शान्ति के अवलम्ब एवं परमात्मा की एकता के समान उद्देश्य पर आस्था व्यक्त की।

कुम्भ में विश्व-हिन्दू-सम्मेलन

प्रयाग कुम्भ के इस पुण्य अवसर पर विश्व हिन्दू परिषद् की ओर से विश्व हिन्दू सम्मेलन का बृहत् आयोजन एक विशाल पंडाल में किया गया, जिसमें विभिन्न देशों के हिन्दू प्रतिनिधि सम्मलित हुये। परामर्श दात्री समिति में श्री स्वामी जी भी थे। यह सम्मेलन ३ दिन तक चला जिसमें शारदापीठाधीश्वर अभिनव सच्चिदानन्द तीर्थ एवं गोवर्धनपीठाधीश्वर स्वामी निरंजन देव तीर्थ, स्वामी राघवाचार्य, जगद्गुरु कृष्ण बोधाश्रम जी महाराज ज्योतिष पीठ भी उपस्थित थे।

इस अधिवेशन में विश्व के हिन्दुओं को धर्म के माध्यम से एकता सूत्र में आबद्ध करने एवं उनकी विभिन्न समस्याओं पर विचार और निर्णय करने के सम्बन्ध में परामर्श हुआ। स्वामी जी ने उक्त अवसर पर अपने विचार व्यक्त करते हुये शास्त्रीय सिद्धान्तों की दृढ़ता, देशकालानुसार, धार्मिक नियमों के पालन पर बल दिया और विश्व में हिन्दू जाति के जीवित एवं जागृत रहने के लिए समस्त विरोधियों और हानि पहुँचाने वाले तत्त्वों का शौर्य और साहस से सामना करने की प्रेरणा दी।

नैमिषपीठ का पुनरुद्धार एवं जगदाचार्य का अभिषेक

कई वर्षों से यह अनुभव किया जा रहा था कि नैमिषारण्य के अत्यन्त पुरातन सनातन धर्म पीठ का पुनरुद्धार धर्म गुरुओं और शास्त्रीय विद्वानों की प्रामाणिक मान्यता द्वारा किया जाय। इस पुनीत व्यास-पीठ पर आसीन होने हेतु श्री स्वामी जी महाराज से अनुरोध एवं प्रार्थना की गई और उनकी स्वीकृति प्राप्त होने पर कुम्भ पर्व में यह समारोह मनाया गया।

भारत-भक्त-समाज के शिविर में विशाल जन समूह के समक्ष शास्त्र विधि से स्वामी जी का अभिषेक किया गया। शास्त्रार्थ महारथी पं०माधवा-

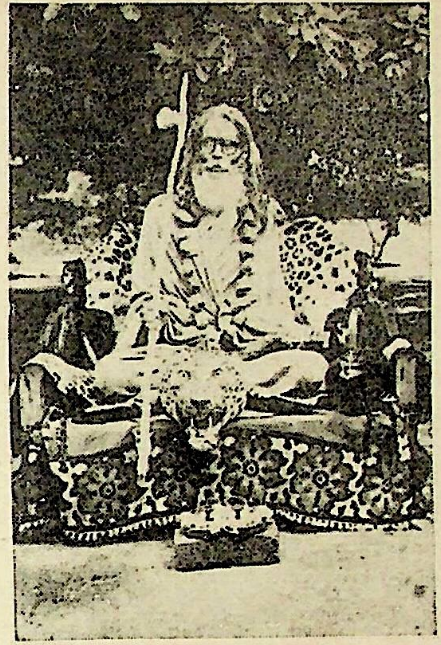

ध्याननिर्विषयं मन:

दांयी ओर शास्त्रार्थमहारथी जो भाषण देते हुए

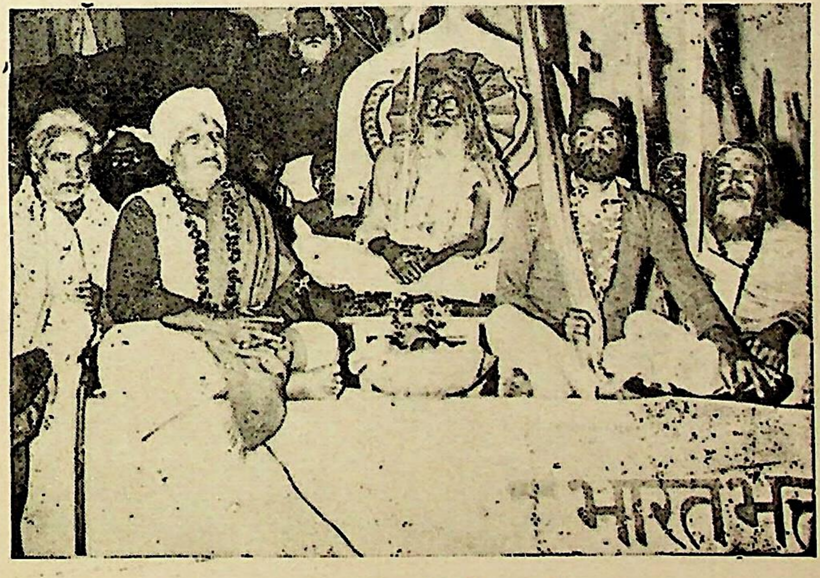

जगदाचार्य पद पर अभिषिक्त श्री महाराज

चार्य शास्त्री, धर्माचार्य श्री आद्याचरण पाण्डेय तथा अन्य शास्त्री पण्डितों ने अभिषेक पूजन किया। पं० माधवाचार्य जी ने धर्मसंघ, दिग्विजय मंडल, वीतराग परम त्यागी श्री करपात्री जी महाराज, जगद्गुरु शंकराचार्य द्वारिकापीठ, जगद्गुरु शंकराचार्य गोवर्धनपीठ, जगद्गुरु श्रृंगेरीपीठ एवं ज्योतिष् पीठ के शंकराचार्य की ओर से नौमिषपीठ के पुनरुद्धार की घोषणा अत्यन्त हर्षध्वनि के साथ की और श्री स्वामी जी महाराज को 'अनन्त श्री विभूषित जगदाचार्य नैमिष व्यासपीठाधीश्वर' घोषित किया।

तदनन्तर शास्त्रार्थमहारथी जी ने जगद्गुरुपीठों एवं श्री करपात्री जी महाराजकी ओर से शुभकामनाएं समर्पितकीं। वैष्णव संम्प्रदाय की ओर से महन्त रामलषणदास जी ने माल्यार्पण किया। पंजाब के महात्माओं की ओर से श्री स्वामी सूर्यदेव जी, और सनातन धर्म सभा, महावीरदल पंजाब ओर से प्रोफेसर वसिष्ठ जी ने मालायें अर्पित कीं। अनेक दण्डी सन्यासियों ने माल्यापण करते हुये हर्ष प्रकट किया।

चमत्कारिक घटनायें

श्री स्वामी जी के आशीर्वाद से अनेक भक्तों के रोग निवृत्ति संकट निवारण तथा अन्य प्रकार की चमत्कार पूर्ण घटनायें प्रायः होती रहती हैं, जिनका सम्पूर्ण वर्णन करना कठिन है, कुछ का यहाँ उल्लेख किया जा रहा है।

१. बाराबंकी में पं० रूपनारायण वकील तथा अन्य भक्तों के प्रयास से हिन्दू प्रार्थना समिति का अधिवेशन हो रहा था। सुन्दर पंडाल सजाया गया था। श्री जगदाचार्य महाराज के साथ श्री श्याम जी पाराशर वहाँ उपस्थित थे। जाड़े की ऋतु थी। अकस्मात् घनघोर बादल आ गये और घोर वर्षा होने लगी। दो दिन तक यही क्रम रहा। किसी के उपदेश व भाषण नहीं हो सकें। एक फोटोग्राफर ने चित्र लेने का प्रयास किया किन्तु बादल के कारण सफल नहीं हो रहा था। पाराशर बोले—स्वामी जी! आपको सब भक्त भगवान् कहते हैं, तो आज भगवन्ता दिखा दो, सूर्य निकल आवे और फोटो लिया जा सके। स्वामी जी ने मुस्कराते हुये कहा—पाराशर! भगवान की कृपा से असम्भव

सम्भव हो सकता है। अच्छा थोड़ी देर के लिए सूर्य का दर्शन होगा धूप निकलेगी उसी समय के अन्दर फोटोग्राफर अपना काम कर ले। कल तो बादल बिलकुल छट जायेगा और तुम्हारा भाषण सब जनता सुनेगी।

तत्काल ऐसा ही हुआ। भगवान सूर्य ने दर्शन दिया और शीघ्रता से फोटू लिये गये। फोटो लेने के पश्चात् पुनः बादल घिर आये और वर्षा जारी हो गई। पाराशर ने प्रसन्न होकर कहा कि आज मैंने सगुण भगवान् का सिद्धान्त स्वीकार कर लिया।

२. स्वामी जी सन् १९४९ में श्री बद्रीनाथ की यात्रा पर जा रहे थे। एक दिन एक चट्टी पर ठहरे, रात्रि में बादल था हल्की वर्षा भी होने लगी भक्तों का समूह साथ में था। अकस्मात् स्वामी जी प्रातःकाल उठे और सबको उपदेश दिया कि शीघ्र यहाँ से आगे चलना चाहिये। हल्की वर्षा के कारण भक्त जन प्रमाद कर रहे थे। स्वामी जी अपना दण्ड कमण्डलु लेकर अकेले चल पड़े। दो एक भक्त दौड़ कर उनके साथ लग चले। कुली चिल्ला पड़े "उठो चलो तुम्हारा भगवान् चला गया।" इस पर सभी भक्त तेजी से तैयार होकर चल दिये।

थोड़ी दूर निकल जाने पर शीघ्रता में भूली हुई किसी वस्तु को उठाने के लिये ब्रह्मचारी सर्वदानन्द एक भक्त के साथ लौटे तो देखा कि एक पहाड़ के गिरने से रास्ता रुक गया था और जिस चट्टी में ठहरे थे उसकी वह दूकान पहाड़ के गिरने से ढक गई थी एक खच्चर और कुछ व्यक्ति दब भी गये थे।

सर्वदानन्द जी ने इस दुर्घटना का वर्णन किया सभी भक्त आश्चर्य चकित होकर स्वामी जी के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने लगे। श्री स्वामी जी ने कहा कि मेरे हृदय में उथल-पुथल मची हुई थी और कोई हृदय में शीघ्रता से चलने की प्रेरणा दे रहा था यह सब आप और भगवान् की कृपा है।

३. सीतापुर नगर के श्री ललित मोहन के बहनोई किसी आफिस में ऊँचे अफसर थे। अकस्मात् कई महीनों तक बीमार रहे। चारपाई से उठना बैठना कठिन हो गया। डाक्टरों को रोग का कुछ पता नहीं चलता था। समस्त औषधि उपचार व्यर्थ हो गये। मृत्यु की आशंका

थी। सब ने सोचा कि स्वामी जी से दीक्षा दिला दी जावे और उनके दर्शन हो जावें।

श्री ललितमोहन की प्रार्थना पर स्वामी जी उनके यहाँ पधारे। उन्हें चारपाई पर बिठाया गया जैसे तैसे पूजन किया और दीक्षा संस्कार हुआ। स्वामी जी ने उनसे कहा कि तुम अच्छे हो जाओगे। भला बताओ तुम कितने दिन से नहीं हँसे हो। उन्होंने धीरे से कहा कि मुझे दो वर्ष से खुल कर हँसी नहीं आयी।

स्वामी जी ने उनको नैमिष लाने का आदेश दिया और कहा कि आज से इनको लाभ होना प्रारम्भ हो जायेगा। चातुर्मास के सत्संग में बाबू जी को नैमिष लाया गया। वे नित्य उपदेश में बैठाले जाते थे एक दिन मनोरंजक उपदेश करते हुये ऐसी घटना सुनाई जिससे सारी सभा ठहाका मार कर हँस पड़ी। सबके साथ बाबू जी भी जोर के साथ हँस पड़े स्वामी जी ने देखकर बतलाया कि बाबू जी तुम्हारा रोग चला गया अब तुम शीघ्र अच्छे हो जाओगे, सब चिन्तायें छोड़ कर खूब हँसो। यही दवाई है। बाबू जी उस दिन से धीरे २ रोग से मुक्त हो गये और अपने आफिस में कई वर्ष तक काम किया।

४. प्रयाग कुम्भ मेले की बात है। तमाम भक्त, ब्रह्मचारी साधक एक ही भंडारे में भोजन करते थे। स्वामी जी के कार्य की यह शैली है कि पहले से पूरे कार्य के लिये वजट और अर्थ संग्रह नहीं करते कार्य प्रारम्भ हो जाने पर आवश्यकतानुसार अर्थ की पूर्ति हो जाती है ऐसा उनका दृढ़ विश्वास है।

एक दिन भंडारे की कुछ आवश्यक वस्तुओं के लिये धन की आवश्यकता थी। श्री लक्ष्मीचन्द्र व्यवस्थापक थे। श्री स्वामी जी के साथ शौच जाते समय कमंडल लेकर संकोच के साथ इस सम्बन्ध में विचार करने के लिये चले। स्वामी जी ने कमंडलु ले लिया अरहर के खेत में शौच के लिये आते हुये एक भक्त प्रणाम करने के लिये दौड़ता हुआ आ गया। लक्ष्मीचन्द जी उसे रोकने लगे। स्वामी जी ने कहा कि हम इन्हें पहचानते हैं आकर प्रणाम करने दो। उस भक्त ने लगभग १००) चरणों

में भेंट करके प्रणाम किया और चला गया। स्वामी जी ने हंस कर कहा लक्ष्मीचन्द्र, तुम इसलिये मेरे साथ आये होगे। लो तुम्हारा काम हो गया।

५. सात जनवरी सन् १९६६ ई० की बात है। कुमारी सुमनलता श्रीवास्तव (पुत्री श्री भगवती प्रसाद श्रीवास्तव) १०६।३२३ गाँधी नगर कानपुर जिसकी आयु १५-१६ वर्ष की है, ३-४ माह पूर्व ज्वर से पीड़ित हुई। वह ज्वर से मुक्त तो हो गई परन्तु न जाने किस कारण से उसकी आवाज बन्द हो गई। सुनती थी परन्तु बोल न सकती थी और लिखकर उत्तर देती थी।

इस कन्या का उपचार माता पिता ने हैलेट अस्पताल कानपुर में मेडिकल कालेज के डाक्टरों से कराया। इन्जेकशन इत्यादि दिये गये किन्तु न कोई लाभ हुआ और न डाक्टरों को वीमारी का पता चला। होम्योपैथी और आयुर्वेदिक औषधियाँ भी व्यर्थ साबित हुईं।

कन्या के माता-पिता दुःखी होकर उसे शुक्लागंज कानपुर ऋषि-आश्रम पर लाये। श्री स्वामी जी को प्रणाम कराया और उपरोक्त समाचार बतलाकर कहा कि हम लोग बहुत ही गरीब हैं, धनाभाव के कारण वैसे ही अनेकों संसारी दुःखों में फंसे थे। यह कन्या जो पढ़ी लिखी है बीमार हुई और अब इसकी आवाज बन्द हो गई है। अतः इसका विवाह कैसे होगा और अपना जीवन कैसे बितायेगी, आपकी शरण है।

स्वामी जी ने उनकी करुण कथा सुनकर कन्या को अपने निकट बुलाया और सन्मुख बिठालकर एक २ अक्षर इस प्रकार कहलाने लगे जैसे माँ अपने छोटे बालक को बोलना सिखाती है। त, ट, ठ, क इत्यादि अक्षर स्वामी जो के आदेशानुसार कन्या कहती थी परन्तु आवाज सुनाई नहीं देती थी। थोड़ी देर के बाद ही स्वामी जी ने कहा—इसके अक्षरों को उच्चारण करने में बहुत ही धीमी २ वायु मुँह से बाहर निकलती है।

श्री स्वामी जी ने माता-पिता से कहा घबड़ाओ नहीं ईश्वर पर भरोसा रक्खो। यह कन्या २४ घण्टे में बोलेगी और रामायण पढ़ेगी कन्या के माता-पिता इसे लेकर अपने घर चले गये।

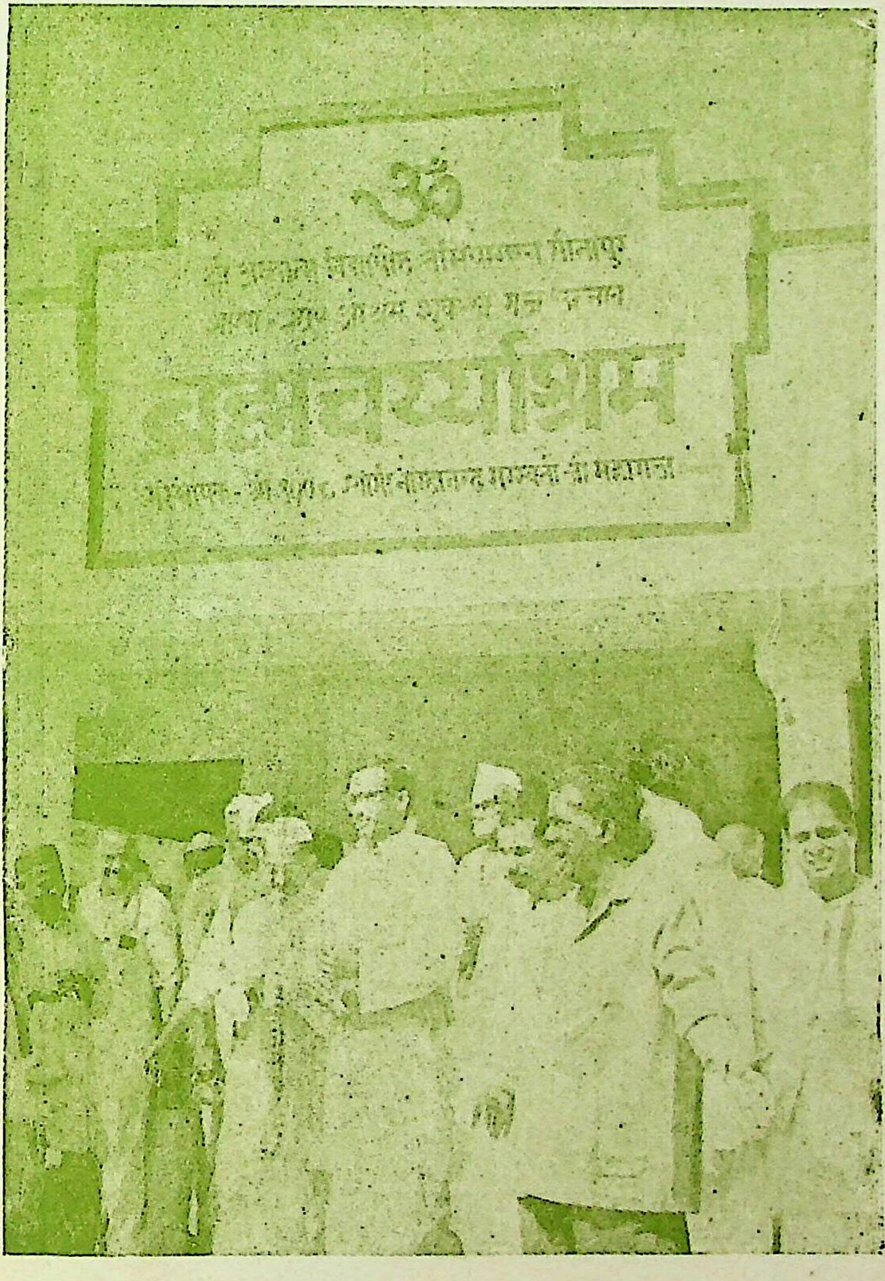
ॐ
ब्रह्मचर्याश्रम

ब्रह्मचर्याश्रम शुक्लागंज कानपुर में उत्तर प्रदेश के राज्यपाल
श्री विश्वनाथदास जी पत्रकारों के साथ

दूसरे दिन कन्या सुमनलता ने श्री स्वामी जी का फोटू सामने रखकर प्रणाम किया और कुछ सोचते २ सो गई। सोते में उसने स्वप्न देखा कि स्वामी जी शुक्लागंज में उसे अपने पास बिठाकर पढ़ा रहे हैं। और वह अक्षरों का उच्चारण कर रही है। स्वप्न में ही उसने जोर से 'गुरुदेव भगवान् की जय' का जयकारा लगाया और उसकी नींद टूट गई। उसके माँ बाप आवाज सुनकर कमरे में दौड़ कर पहुंचे। कन्या प्रसन्नता से मां के गले लिपट गई और कई बार 'गुरुदेव भगवान् की जय' बोलती रही। माता पिता अन्य पड़ौसी लोग यह देखकर चकित हो गये। कन्या ने स्वयं मुख से अपने बोलने का समाचार लोगों को बतलाया।

यह कन्या अब बिलकुल ठीक है अच्छी प्रकार बोलती है। श्री स्वामी जी की आज्ञानुसार "श्री हरिः शरणम्" का जप करती है और नित्य प्रति प्रार्थना करती है। कन्या को माता श्री स्वामी जी की शिष्या है। इत्यादि इत्यदि।

सद्गुरुदेव स्वामी एकरसानन्द सरस्वती के कुछ संस्मरण और महाप्रयाण

दैवी सम्पद् मंडल की स्थापना करते समम श्री गुरुदेव भगवान् ने स्वामी जी से कहा —प्यारे, जिसमें दिव्य गुण होंगे वही उसकी सदस्यता का अधिकारी है, नियम थोड़े रक्खो। नियमों में अधिक न बाँध कर गुणों के प्रचारक बनो। देखो संस्थायें सम्पत्ति और परनिंदा से दूषित हो जाती हैं। तपस्या, त्याग और सद्गुरु इन दिव्य सामग्रियों का आश्रय लेकर ऋषि धर्म कार्य में सफल हुये। प्यारे! तुम मुझे देखो! मैं टाट बिछा लेता हूँ छप्पर के नीचे रहता हूँ कच्ची कुटिया में रहना और वृक्ष के नीचे बैठना मुझे प्रिय है।

सुख सम्पत्ति परिवार बड़ाई। ये सब रामभक्ति के बाधक

एक बार स्वामी जी से कहने लगे प्यारे, रजोगुण के बढ़ने से धनिकों और राजाओं के दबाब में रहना पड़ता है तुम स्वयं देखते हो

कि लखना की रानी और उसके धनिक अन्य पारिवारिक लोग अधिक सम्पर्क बढ़ाते हैं तो मुझे प्रिय नहीं लगता। सन्त को निर्भय होकर एक ओर (सीताराम की ओर) बढ़ना चाहिये।

आदर और अनादरे।
"बचन भले वा बुरे।
धर जूते के तले॥
पहिन समता की चादर।
खान पान अधिकार छोड़ दुनिया के आदर॥
सोई नर सच्चा, जो है गुरु का बच्चा।

प्यारे! तुम लोग बतलाओ हीरे बनोगे कि काँच?

कंचन तजना सहज है सहज त्रिया को नेह।
मान, बड़ाई, ईर्ष्या, तुलसी दुर्लभ येह॥
जब लग आशा अर्थ की, तब लग सबको दास।
तबै दास सब होत हैं, जब जिय होय उदास॥

वेद के विधान अनुकूल अपना आचरण बनाओ प्यारे! वेद दूध है, उपनिषद दही और तुलसीकृत रामायण घृत है 'रामनाम' मिश्री है उसके रस के सामने सब सांसारिक रस फीके हैं।

वैकुण्ठ आश्रम का उपरोक्त उपदेश स्वामी जी ने ग्रहण करके व्रत लिया कि हम इसे कभी नहीं छोड़ेंगे। भूल होने पर क्षमा मांगेंगे और आपकी कृपा से अवश्य सफल होंगे।

इन्हीं उपदेशों के आधार पर विस्तार पूर्वक स्वामी जी उपदेश और प्रचार करते हैं। वे कहते हैं कि मेरे जो विचार श्रुति और गुरुदेव के उपदेश के अनुकूल हों वे ग्रहण करने योग्य हैं, इनसे विपरीत का त्याग कर देना चाहिए।

२. एक बार श्री गुरुदेव भगवान् ने उपदेश करते हुये शास्त्र के वचनों को आचरण में लाने पर बल दिया। वे बोले—शास्त्र में वर्णन किये गये ज्ञान और वैराग्य के साधन तभी सफल हो सकते हैं जब आचारण में

आ जावें साधनों की विधि निषेध का पालन करना चाहिये। उपासना निष्काम भाव से उत्तम है।

धर्म निर्णय का मापदण्ड शास्त्र सिद्धान्त गुरु के वचन आत्म अनुभव की एकता है। संसारी विषयी जीव, जिन्हें शास्त्र का ज्ञान नहीं है जो कर्म, उपासना और ज्ञान के समन्वय को नहीं समझते उनसे परामर्श लेना साधना में उलझन पैदा करना है।

गुरुदेव भगवान् अत्यन्त वात्सल्य भाव से इसी प्रकार उपदेश करते रहे। स्वामी जी प्रायः कहते हैं कि आज भी मुझे उन पूज्य गुरुदेव की अव्यक्त रूप से प्रेरणायें मिलती रहती हैं।

४. नैमिषारण्य में कुछ काल निवास करने के उपरांत श्री स्वामीजी सदैव की भांति जब मैनपुरी गुरुदेव के दर्शन के लिये गये तो उनके उपदेश में परिवर्तन देखा। वे कहने लगे—

'प्यारे' हमने अपने शरीर से वैदिक धर्म की जो शिक्षा दी है अब आज से उपदेश न देकर हम विराम लेना चाहते हैं। मेरे विरक्त शिष्य इस कार्य को सम्भाल लेंगे।

मनसुख लाल दुवे एडवोकेट समीप बैठे थे। वे गुरुदेव के विशेष कृपापात्र होने के कारण विनयपूर्वक बोले—आज का उपदेश हम सबको दुःखद प्रतीत हो रहा है। हम आपके साकार विग्रह को भगवान् समझते है, और किसी में हमारी निष्ठा नहीं हैं।

गुरुदेव बोले—देखो, मेरी आज्ञा मानो, यह आश्रम (मैनपुरी) जो मेरे नाम है साधू के लिये कलंक है। जाओ रजिस्ट्रार को आश्रम में बुला लाओ, उसे फीस दे देना। इस आश्रम का ट्रस्ट बना दो, मेरे छहों विरक्त शिष्य इसका संचालन करेंगे। उनकी आज्ञानुसार आश्रम का ट्रस्ट रजिस्ट्री किया गया। संचालन के लिये ६ विरक्त शिष्यों का नाम उसमें अंकित किया गया है।

(१) श्री स्वामी नारदानन्द जी सरस्वती (२) श्री स्वामी शुकदेवानन्द जी (३) स्वामी भजनानन्द जी (४) स्वामी आचार्यानन्द (५) स्वामी विचारानन्द (६) स्वामी समतानन्द।

५. गुरुदेव उन्नाव के उत्सव में पधारे। उनके जीवन काल का सार्वजनिक अन्तिम उपदेश वहीं हुआ। वहीं से विदाई के समय जब स्वामी जी नैमिष के लिये और गुरुदेव मैनपुरी की ओर जाने लगे तो उनका हृदय प्रेम से भर गया। स्वामी जी के प्रणाम करने पर हृदय से लगा लिया और अश्रु बिन्दु छलक पड़े। स्वामी जी भी उनकी इस लीला से गद्गद् हो गये। यह उनका अन्तिम दर्शन था।

६. महाप्रयाण के दिन मैनपुरी आश्रम में सबको बिठाकर पूछा कि आज कौन सी तिथि है। अब मुझे जाना है। तुम सब लोगों को मैंने ज्ञान की पूँजीं दे दी। रात्रि के १२ बजे के उपरान्त वे ब्रह्मलीन हो गये। उस समय सभी विरक्त शिष्य स्वामी नारदानन्द, स्वामी विचारानन्द स्वामी समतानन्द जनता को आश्वासन दे रहे थे। गुरुदेव नित्य हैं हम सबको नित्य उनसे प्रेरणा मिलती रहेगी। सब लोग धैर्य रक्खें। पर वास्तव में सबके हृदय स्वयं भर रहे थे। गुरुदेव के देह विग्रह के दर्शन के लिये एक विमान सजाकर विशाल जनसमूह के साथ मैनपुरी नगर में घूमाया गया और लौटने पर आश्रम में एक सभा हुई जिसमें गुरुदेव की लीलाओं का वर्णन करते हुये समस्त विरक्त शिष्यों और भक्तों ने निश्चय किया कि हम गुरुदेव भगवान् की मूर्ति स्थापित करेंगे और प्रतिवर्ष गुरुदेव पूर्णिमा को पूजन करके उत्सव मनावेंगे।

मैनपुरी आश्रम में मूर्ति की स्थापना हुई। गुरु पूर्णिमा को प्रतिवर्ष वहीं पूजन और उत्सव होता है। मूर्ति दर्शन से प्रत्यक्ष के समान प्रेरणा और आशीर्वाद प्राप्त होता है। स्वामी जी प्रतिवर्ष गुरु पूर्णिमा को दर्शन-पूजन करने मैनपुरी आश्रम जाते हैं।

वर्तमान समय का प्रचार कार्य

श्री स्वामी जी जगदाचार्य शब्द से अलंकृत होने के पश्चात् कालेज के विद्यार्थियों को आध्यात्मिक नैतिक शिक्षा देने का विशेष प्रयास कर रहे हैं। भगवत्कृपा और जनता के सहयोग से विश्व के मानव मात्र को लक्षित करके सक्रिय शिक्षा को व्यवहार में लाने का अधिक प्रयास कर रहे हैं। अपने प्रवचनों

राज्यपाल श्री विश्वनाथ दास महोदय सपरिकर अनुगमन करते हुए

द्वारा कालेज के विद्यार्थियों में अनुशासन चरित्र व धार्मिक शिक्षा देने के उद्देश्य से श्री हिन्दू धर्म-महा विद्यालय को स्थापना की गई। जो छात्र कालेज या विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं उनके लिये निःशुल्क छात्रावास की व्यवस्था की गई है। श्री जगदाचार्य जी का अनुभव है कि विद्यार्थियों में अध्ययन के समय दोष नहीं आते हैं बल्कि अतिरिक्त समय में ही दोष आने की संभावना होती है। अगर अतिरिक्त समय का उचित उपयोग किया जा सके तो उनको दोषों से बचाथा जा सकता है। इसलिये विद्यालय का प्रथम नियम है कि अध्ययनकाल से बचा हुआ समय विद्यार्थी छात्राघास को ही देगा, वहां समय के सदुपयोग की पूर्ण व्यवस्था रहती है। प्रतिभाशाली विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति देने का भी प्रवन्ध है बहुत से योग्य छात्र लाभ उठा चुके हैं—उठा रहे हैं। इस विद्यालय ने इन्टर बी० ए० और एम० ए० तक छात्रवृत्ति देकर अध्ययन कराया जाता है, जो छात्र इसके माध्यम से शिक्षा प्राप्त कर चुके हैं, उनमें निम्न उल्लेखनीय हैं :—श्री नर्वदेश्वरराय शौनक बी० ए०, श्री शिवराज सिंह बी० ए०, श्री श्यामसुन्दर शर्मा, और श्री उमेश चन्द्र शर्मा एम० ए० आदि। निम्न छात्र शिक्षा पा रहे हैं :—श्री राजकुमार त्रिपाठी एम० ए० बी० एड०, श्री चन्द्रशेखर पाण्डेय एम० ए०, श्री हरिशंकर शुक्ल बी० कॉम, उदयनारायण द्विवेदी बी० एम० सी०, श्री नारायण शुक्ल इन्टर, सुरेन्द्रनाथ श्रीवास्तव वी० काम०, मुन्नालाल द्विवेदी बी० ए०, आत्माराम बी० ए०, प्रेमनारायण दीक्षित एम० एस् सी०। इसके माध्यम से युवकों का चरित्र उत्थान होता है। अनुशासन आता है, भारतीयता का सम्मान करना सीख जाते हैं। आज्ञा पालक हो जाते हैं। सादा जीवन उच्च विचार जीवन में धारण कर लेते हैं। हृदय भारतीय गौरव से भर जाता है। श्री जगदाचार्य जी का विद्यार्थियों के प्रति उद्देश्य पूर्ण हो जाता है।

श्री अध्यात्म-परीक्षा-परिषद्

नई पीढ़ी में धार्मिक शिक्षा देने के लिये श्री जगदाचार्य जी की प्रेरणा

से अध्यात्म-परीक्षा-परिषद् का गठन किया गया है। यह लिखित और मौखिक दोनों प्रकार से परीक्षा लेती है। इसमें प्रत्येक वर्ष हजारों बालक गीता, रामायण की परीक्षा में बैठते हैं। उच्च श्रेणी में पास होने वालों को पुरस्कार दिया जाता है। इस परीक्षा में केवल हिन्दुओं के ही नहीं बल्कि मुस्लिम, ईसाई व अन्य वर्गों के भी बालक भाग लेते हैं।

श्री बाबाराम दास जी महाराज ग्वालियर इसके संरक्षक हैं। अध्यक्ष श्री विज्ञानपूजन जी, संयोजक श्री केशवप्रसाद श्रीवास्तव और मँत्री श्री देवीप्रसाद श्रीवास्तव हैं। इसका कार्यालय लखनऊ में है।

गो-रक्षा में निरन्तर प्रयास

गौमाता भारतीय संस्कृति की प्रतीक है। प्रत्येक हिन्दू गौ के प्रति बड़ी श्रद्धा रखता है करोड़ों लोगों की श्रद्धा का आदर होना ही चाहिये। अब जनतन्त्र का युग है। जनतन्त्र का आधार बहुमत है। बहुमत की दृष्टि से भी गो-रक्षा अनिवार्य है।

दिल्ली-यात्रा

गो-रक्षा के प्रश्न को सुलझाने की दृष्टि से भी जगदाचार्य जी दिल्ली गये। श्रद्धेय श्री करपात्री जी से वार्ता करते हुये जगदाचार्य जी ने कहा कि अन्य उपायों के साथ साथ प्रार्थना और देव-आराधना भी गौ रक्षा के लिये होनी चाहिये। पूजनीय श्री करपात्री जी ने इसका समर्थन किया। जगद्गुरु श्रीकृष्णबोधाश्रम जी, श्रीमुनि सुशीलकुमारजी आदि अनेकों संतोंसे भेंट हुई।

सामूहिक व्रत

ऋषि आश्रम लखनऊ के वार्षिक अधिवेशन में आयोजित गो-रक्षा दिवस के अवसर पर प्रवचन करते हुए जगदाचार्य जी ने कहा कि गौ-रक्षा के लिये भक्तों को सप्ताह में दो बार—बृहस्पतिवार सोमवार को व्रत रखना चाहिये और नित्य भगवान् से प्रार्थना करनी चाहिये। हजारों नर, नारियों ने हाथ उठाकर व्रत लिया।

राज्यपाल को गोरक्षामहाभियान का उद्देश्य समझाते हुए।

गो-माता की सेवा के लिये सहस्रों उत्सवों में जनता को प्रेरणा दी जाती है। गो-रक्षा, गो सेवा-दिवस प्रतिवर्ष मनाये जाते हैं। गोग्रास निकालना, गोपाष्टमी को उत्सव तथा गौ-पूजन व सभी उत्सवों में गो-दान की प्रथा को प्रोत्साहन दिया जाता है। गो माता के प्रति श्रद्धा बढ़ाना प्रचार के कार्य में एक प्रमुख स्थान है।

प्रस्ताव

सीतापुर, इटावा कानपुर और लखनऊ आदि की विशाल सभाओं द्वारा गोरक्षा के लिये प्रस्ताव पास किये गये हैं। भारत सरकार से निवेदन किया गया है कि कानूनन गो-वध बन्दी का आदेश अविलम्ब जारी किया जाय।

भारत की सुरक्षा

चीनी आक्रमण के समय फूलबाग की एक विशेष विशाल सभा में प्रवचन करते हुए श्रीजगदाचार्य जी ने कहा था कि राष्ट्र और धर्म की रक्षा के लिये ही भक्त और साधुओं का जीवन है। आपत्तिकाल में राष्ट्र के सभी वर्गों और वर्णाश्रमियों को सशस्त्र हो जाने का शास्त्रीय विधान है। उपस्थित पच्चीस हजार जनता को राष्ट्रीय सुरक्षा में सहयोग देने के लिये जनता से वस्त्र, भूषण, और धन देनेकी प्रेरणा दी। संस्था द्वारा नगर के जिलाधीश के माध्यम से सुरक्षा कोष में धन व सामान भेजा गया।

पाकिस्तान आक्रमण के समय भी संस्था द्वारा सुरक्षा कोष में अधिकाधिक सहयोग किया गया। भारत विजय के लिये सामाजिक प्रार्थना कीर्तन, अखण्ड, पाठ, प्रभात फेरियां, ओजस्वी नारे, जयघोष, किये गये। बिहार के अकाल के लिये भी जगह २ से आटा, अन्न, रुपया आदि भिजवाये गये हैं।

जन सम्पर्क

नैमिषारण्य के पवित्र प्राचीन तीर्थ से युग के अनुकूल जो अध्यात्म

सन्देश प्रसारित हुआ है उससे देश की धार्मिक जनता अत्यन्त प्रभावित हुई है। अगणित अधिवेशनों, महोत्सवों यज्ञ आदि के द्वारा विशाल जन संपर्क हुआ है। इन समस्त कार्यों में पूज्य श्री स्वामी जी का दृढ़ संकल्प ब्रह्म निष्ठा, अडिग विश्वास सूझबूझ और युक्तियों का समावेश है। प्रत्येक वर्ग के व्यक्तियों ने उनकी शास्त्र सम्मत योजनाओं का समर्थन किया है।

विभिन्न सम्प्रदायों के महात्माओं ने विचार पूर्वक परामर्श देते हुए कार्यों का समर्थन किया है। श्री स्वामी रामपदारथ दास वेदान्ती, श्री वासुदेवाचार्य अयोध्या, श्री चक्रपाणि जी, श्री स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती जी वृन्दावन, श्री प्रभुदत्त जी ब्रह्मचारी झूंसी प्रयाग ने विभिन्न अवसरों पर उपस्थित होकर सत्परामर्श दिया है। जगद्गुरु शङ्कराचार्य जी अभिनव सच्चिदानन्द तीर्थ शारदापीठ ने नैमिषारण्य हरिद्वार और कानपुर में पधार कर शुभाशीर्वाद देते हुए प्रसन्नता प्रकट की, ज्योतिष पीठाधीश्वर जगद्गुरु श्रीकृष्ण बोधाश्रम जी ने नैमिषारण्य में पधार कर आशीर्वाद और सम्मति प्रदान की है।

श्री स्वामी पथिक जी महाराज ने आत्मीयभाव से कार्यों का समर्थन करते हुये सहयोग प्रदान किया है। श्री बाबा रामस्वरूप जी वैष्णव श्री स्वामी सच्चिदानन्द जी महाराज, श्री स्वामी परमात्मानन्द सरस्वती आदि सन्तों ने अनेक अवसरों पर पधार कर सहयोग प्रदान किया। शास्त्रार्थ महारथी पं० माधवाचार्य शास्त्री जी ने अपना अमूल्य समय देकर योजनाओं में परामर्श देते हुए पूर्ण सहयोग प्रदान किया है।

श्री पराशर जी एम० ए० ने विभिन्न महोत्सवों पर उपस्थित होकर पूज्य श्री स्वामी जी महाराज के प्रति अपनी निष्ठा और श्रद्धा व्यक्त की अपने प्रसिद्ध पत्र "विश्व ज्ञान" में नैमिषारण्य की योजनाओं और कार्यों का खुले हृदय से समर्थन और प्रकाशन किया है। आर्यसमाज के प्रमुख उपदेशक श्री प्रकाशवीर शास्त्री एम० पी०, श्री वीर यज्ञदत्त शर्मा पंजाब ने मुक्तकण्ठ से यहां के कार्यों का समर्थन किया है।

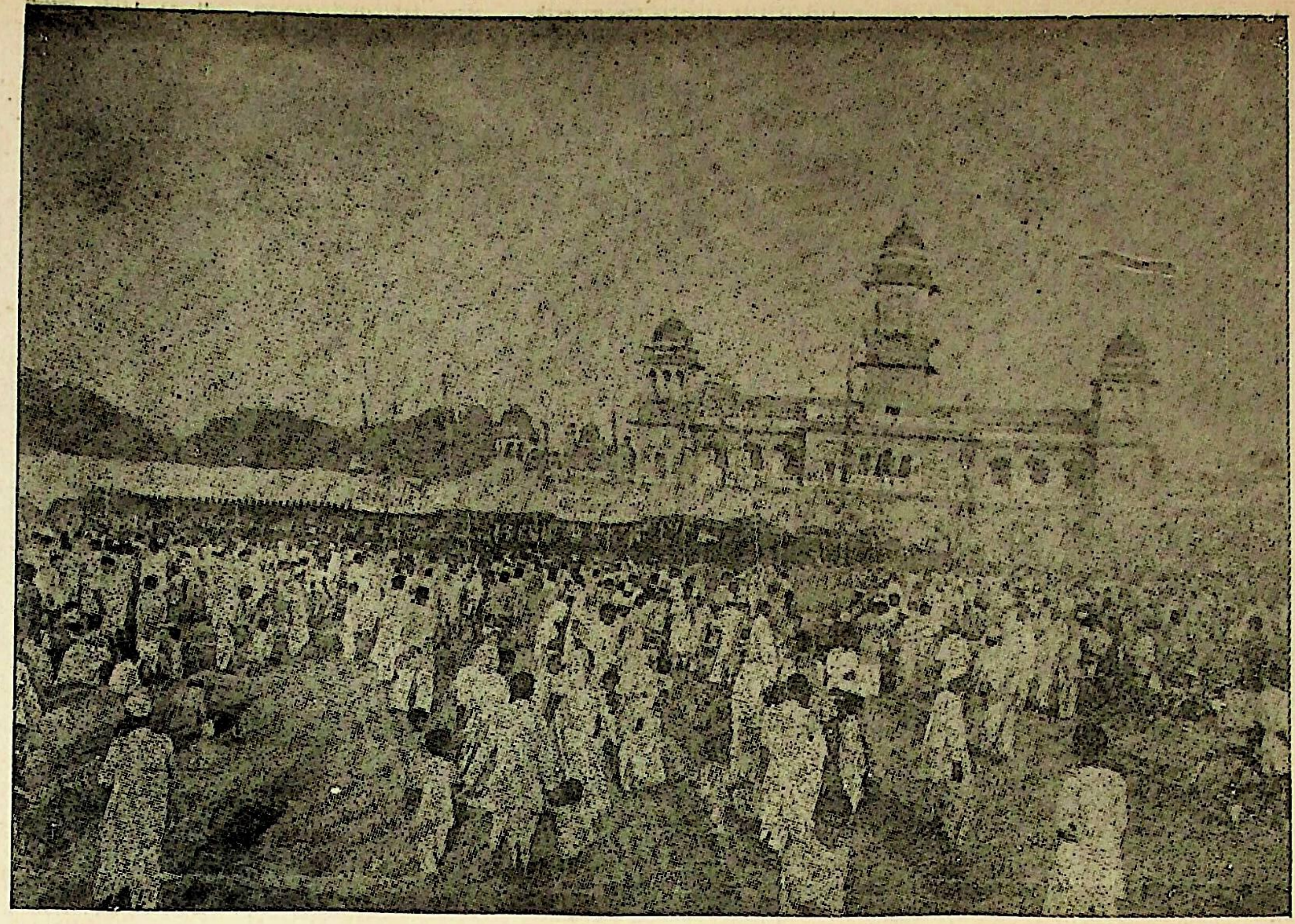

श्री जगदाचार्य जी के तत्त्वाधान में आयोजित फूल बाग कानपुर यज्ञ का एक विहंगम दृश्य

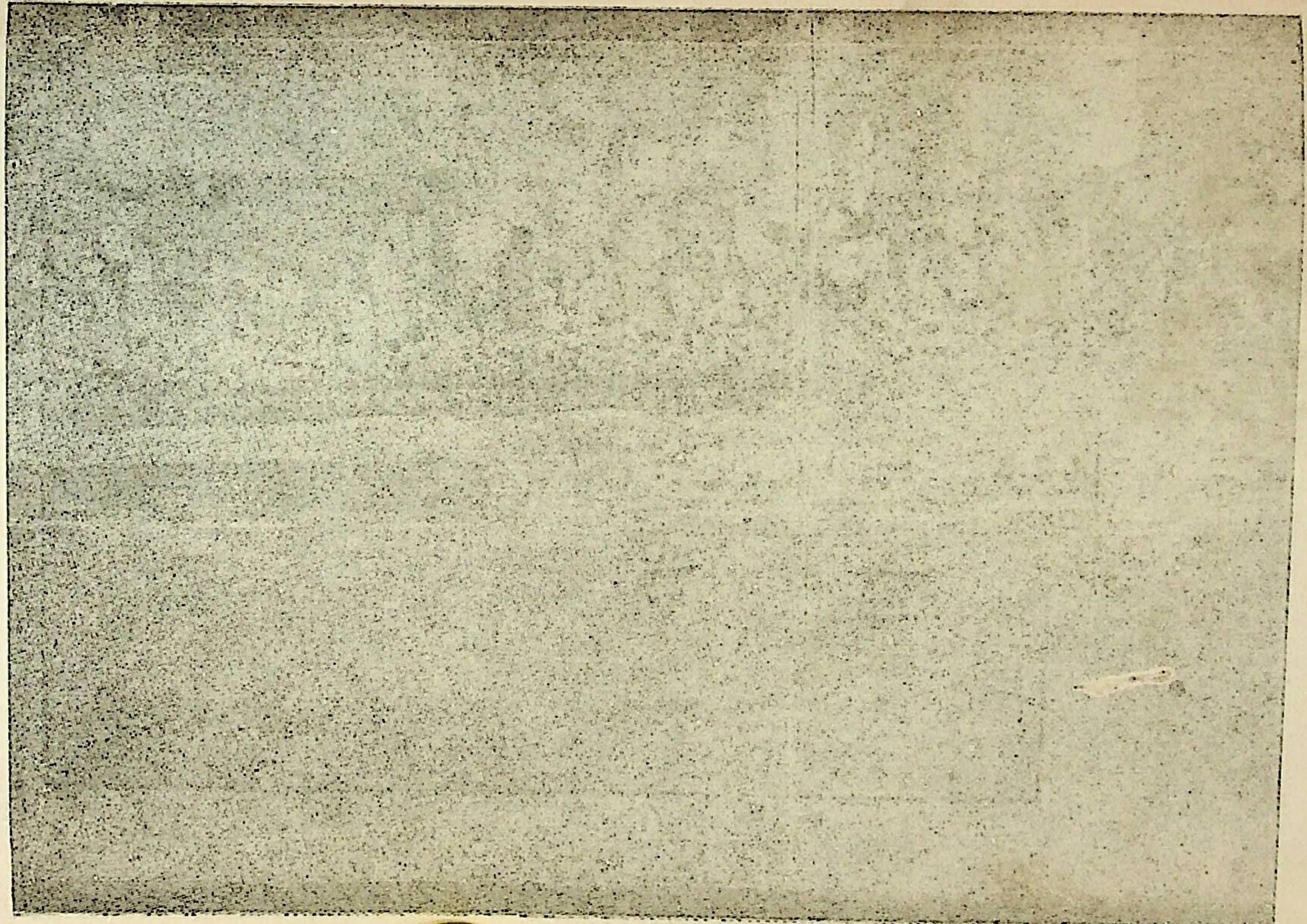

[illegible]

कानपुर के विशाल महायज्ञ के अवसर पर श्री जगद्गुरु निम्बार्काचार्य जी महाराज ने उपस्थित होकर आशीर्वाद देते हुए प्रसन्नता प्रकट की। परम पूज्य श्री गोलवालकर जी महाराज ने धार्मिक राष्ट्रीय चेतना से युक्त कार्यों पर अपनी प्रसन्नता प्रकट की। राजर्षि पुरुषोत्तमदास जी टण्डन, डा० श्यामाप्रसाद मुकर्जी, बाबा राघवदास जी, पं० गोविन्द वल्लभ पन्त जी से भी कई बार विचार विनिमय हुआ था और उन्होंने स्वामी जी के सामयिक धर्म संदेश की सराहना करते हुये अपनी श्रद्धा व्यक्त की थी।

जैन धर्माचार्य श्री आचार्य तुलसी से सर्व धर्म समवन्य और वेदों में सत्य, अहिंसा आदि के मौलिक सूत्रों की व्यापकता पर परामर्श हुआ है।

बिहार के भूतपूर्व विधि मंत्री बाबू जगत नारायण लाल एवं वहां के स्पीकर श्री विन्ध्येश्वरी प्रसाद वर्मा ने पटना की स्वागत सभा में हार्दिक अभिनन्दन करते हुए नैमिषारण्य के कार्यों के प्रति अपनी सद्भावनायें व्यक्त कीं और बिहार प्रान्त में रचनात्मक कार्यों के लिये आमन्त्रित किया।

काशी की पण्डित सभा ने श्री स्वामी जी के युग-सन्देश को हिन्दू जनता के लिये अत्यन्त उपादेय बतलाया, पंडित श्री राजराजेश्वर शास्त्री पद्मभूषण ने हार्दिक समर्थन करते हुये प्रसन्नता प्रकट की है। पण्डित कल्पनाथ शास्त्री मंत्री वर्णाश्रम-स्वराज्यसंघ ने सक्रिय सहयोग देते हुये योजनाओं के प्रति आस्था व्यक्त की है। अगणित महात्माओं, आचार्यों और विद्वानों ने जो अपना सहयोग दिया है विस्तार भय से उनका उल्लेख नहीं किया जा सका।

भारतीय संस्कृति की सक्रिय शिक्षा और हिन्दुओं के विभिन्न वर्गों और वर्णों के आत्मीय संयोजन की दिशा में स्वर्गीय महामना मालवीय जी का अति दृढ़ संकल्प था। जब वे जीवित थे तो श्री स्वामी जी को हिन्दू धर्म के उत्थान और जातीय एकात्मता की दृष्टि से अपने भाव व्यक्त करते हुये इस कार्य के हेतु अपना परामर्श दिया था। उन्होंने तीर्थों में संस्था स्थापित करने का सुझाव दिया था और प्रार्थना जैसी किसी सार्वजनिक

योजना की भावना भी प्रकट की थी। अपनी शुभ अभिलाषा का पूरक अध्यात्म विद्यापीठ और हिन्दू प्रार्थना समिति का रचनात्मक कार्य यद्यपि वे देख नहीं सके, किन्तु उनकी दिवंगत महान् आत्मा हर्षित होकर शुभाशीर्वाद अवश्य दे रही होगी। उनके पौत्र श्री पद्मकान्त मालवीय इन योजनाओं से अत्यन्त प्रभावित हुए और उन्होंने इन कार्यों में सक्रिय सहयोग देने का वचन दिया।

बहु संख्यक साधकों, भक्तों और जन नेताओं ने अपने २ क्षेत्रों में सेवा और सहयोग का कार्य किया है। शिक्षा के क्षेत्र में पं० गोपीनन्दन शर्मा प्रोफेसर अतरौली, श्री ओमप्रकाश शर्मा सीतापुर, श्री गोपालदत्त पाण्डेय काशीपुर, श्री भुवनेश्वरी दयाल, लखनऊ, प्रो० साहिबदयाल, हुताशनदेव पाण्डेय आदि विशेष कार्य कर रहे हैं।

कानपुर में सर हरगोविन्द मिश्र, पं० बाबूलाल मिश्र एडवोकेट, पं० ओंकारनाथ दुबे एडवोकेट, श्री रामस्वरूप अवस्थी वकील, श्री राजमोहन मिश्र, श्री ज्योति प्रसाद अग्रवाल, बैजनाथ अग्रवाल आदि आदि विशिष्ट व्यक्ति सक्रिय सहयोग तथा परामर्श दे रहे हैं।

इटावा में पं० सूबेदार दीक्षित, श्री गिरवरधारी वकील, श्री सदन सिंह जी, श्री कन्हैयालाल शर्मा शिकोहाबाद, पं० सुरेन्द्रनाथ चतुर्वेदी मैनपुरी, पं० दुलारे लाल जी, पं० बालकराम जी, श्री शेर बहादुर सिंह वकील श्री सुरेशचन्द्र मिश्र सक्रिय कार्यकर्त्ता हैं।

मेरठ में श्री बाबूलाल रिटा० इन्कमटैक्स कमिश्नर, श्री श्रीराम त्रिवेदी, शारदा देवी, सरोजनी देवी गैद्या, प्रचार कार्य कर रही हैं।

उन्नाव में बाबू हरिभजनदयाल वकील, ठा० गंगाबक्स सिंह चन्द्रभूषण तिवारी वकील और लखनऊ में प्रेमसुन्दर भागर्व, श्री जगदम्बाप्रसाद मिश्र रिटायर्ड तहसीलदार आदि महानुभावों के अतिरिक्त सान्दीपन शास्त्री, श्री बाबूलाल जी 'श्याम' श्री शम्भूदयाल जी, श्री सरदार

नारायण वाला, श्री देवीप्रसाद, श्री छोटे भइया और बच्चन बाबू आदि कार्यकर्त्ता उत्साह पूर्वक रचनात्मक कार्य कर रहे हैं।

बाराबंकी में पं० नागेश्वर दत्त पाण्डेय, बाबू रूपनारायण, श्री महाराजबली जी, श्री गजाधर प्रसाद जी शुक्ल और बहराइच में भक्त मङ्गल प्रसाद, श्री अवध बिहारी लाल, गोंडा में श्री राम बाबू, फैजाबाद में सेठ किशोरी लाल, श्री पुष्करदत्त जी, श्री सूरजमल जी, कार्य में सहयोग दे रहे हैं।

इनके अतिरिक्त निम्नांकित स्थानों में विभिन्न व्यक्तियों द्वारा संस्थात्मक कार्य हो रहा है।

शाहजहांपुर — श्री सेठ शिवप्रसाद, श्री गोपीनन्दन चतुर्वेदी, प्रेमनारायण श्री वास्तव, श्रीराम प्रसाद श्रीवास्तव, श्री सेठ लौंदूलाल, पं० अयोध्याप्रसाद द्विवेदी व श्री विश्वम्भरनाथ जी।

हरदोई—श्री अवध बिहारी वर्मा, रम्मनबाबू, धर्मपत्नी बाबू मन्नीलाल वकील, नारायणप्रसाद जी, सीताराम टण्डन व हेतराम जी।

सीतापुर—श्री विद्याविवेक, काशीप्रसाद, अमरनाथ सलूजा, नागरमल, श्री मदनलाल व प्रभा की माता जी।

नैमिषारण्य—पं० ब्रह्मानन्द, श्री शोभाराम, मन्नालाल, राममूर्ति व श्री स्वामी दयाल।

बरेली—श्री त्रिलोकीनाथ सेठ, श्री पाठक जी, राधागोपाल जी,

गोलागोकर्णनाथ,–श्रीराम चांदी वाले, सत्यदेव दीक्षित, रामविलास अग्रवाल, गङ्गाधर जी, राधेश्याम केडिया।

लखीमपुर—बाबू व्रजविहारी लाल गुप्त, सेक्रेट्री साहब, अभयसिंह राजा युवराज दत्त सिंह, पं० केदारनाथ त्रिवेदी नवीन।

काशीपुर—गोपालदत्त पाण्डेय जी।

हलद्वानी नैनीताल—एस० वी० एस० वर्मा, पीताम्बरदत्त पाठक, माता गंगादेवी जोशी।

इलाहाबाद—श्री गजाधर प्रसाद जी भार्गव एडवोकेट, श्री नन्दलाल मुकर्जी, आनन्दपाल सिंह, एडवोकेट पं० रमाकान्त जी त्रिपाठी, बद्रीप्रसाद सक्सेना, आद्यशंकर जी, भगवानबक्स सिंह चौहान, हरिशंकर गुप्ता।

ग्वालियर—पं० विश्वनाथ उपाध्याय, विजयबहादुरसिंह चौहान।

दिल्ली—श्री लल्लूमल पहलवान, परशुराम मेहरोत्रा, रामेश्वराचार्य शास्त्री।

बम्बई—श्री आनन्द किशोर नेवटिया, माधोप्रसाद जी नेवटिया, पं० कन्हैयालाल जी।

काशी—महंगीलाल जी व हजारी भानुप्रताप शुक्ल।

रामनगर—श्री शंकरदत्त शास्त्री।

प्रतापगढ़—श्री स्वरूपानन्द सब रजिस्ट्रार, दुर्गाप्रसाद त्रिपाठी।

झांसी—श्री बैजनाथ टन्डन व महावीर प्रसाद जी।

बस्ती—श्री चन्द्रभूषण पाण्डेय जी।

चित्रकूट—प्रेमपुजारी दास जी व प्रयागदास।

बिहार—जनकपूजन वानप्रस्थी।

मुरादाबाद—श्री वासुदेवाचार्य बच्चा गुरु, ज्योतिप्रसाद ज्योती गुरु तथा शाहूजी जी व रमेश चन्द्र अग्रवाल।

हाथरस—श्री चन्द्रशंकर वार्ष्णेय।

विदेशों को सन्देश

भारतीय संस्कृति का सन्देश विश्व के लिये है। इसका उद्देश्य प्राणि मात्र को सुखी बनाना है। नैमिषारण्य ने जहां देश में अध्यात्म का व्यापक प्रचार किया है वहां विश्व के अन्य देशों में भी आध्यात्मिक सन्देश और सक्रिय रूप रेखा भेजने का भी प्रयास किया गया है। एक अमेरिकन महिला पत्रकार ने अध्यात्म विद्या के लौकिक प्रयोग की जिज्ञासा उस समय प्रकट की जब वह श्री हरगोविन्द मिश्र के साथ भारत वर्ष की अद्‌भुत वस्तु के रूप में अध्यात्म विद्यापीठ देखने आई।

श्री जगदाचार्य जी के दर्शन से प्रसन्न होकर उसने व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र और अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रों में अशान्ति कलह के उन्मूलन में अध्यात्म विद्या क्या सहयोग दे सकती है? शारीरिक मानसिक रोगों से लड़ने में इसका क्या स्थान होगा' आदि प्रश्न किये। श्री जगदाचार्य जी ने

महिला के प्रश्नों का पूर्ण समाधान करके अमेरिका के लिये संदेश दिया। यह संदेश वहाँ के समाचार पत्रों में छपा था।

जर्मनी में शिक्षा के लिए गए भारतीय विद्यार्थियों में प्रमुख कानपुर के श्री राजकुमार वाजपेयी ने जर्मनी में एक सांस्कृतिक क्लब स्थापित किया। उसके लिये नैमिषारण्य से साहित्य भेजा गया। वहां प्रार्थना एवं भारतीय विचारों का प्रचार किया गया।

इङ्गलैंड में भी नैमिषारण्य का साहित्य जाता रहता है। इण्डोनेशिया और जर्मनी के यात्रियों ने भारत की यज्ञ परम्परा उपदेश तथा कथा प्रणालि से प्रभावित होकर नैमिष के कार्य-क्रम को अपने देश के लिये उपयोगी समझा है।

जापान के सर्व धर्म सम्मेलन में अध्यात्म दर्शन को मानवता के लिये परम उपयोगी बतलाया। श्री जगद्गुरु जी को जापान पधारने का सानुरोध आमन्त्रण दिया। आपको सन्देश और साहित्य भेजा गया।

नैमिष-सन्देश

भौतिक सृष्टि का प्रारम्भ ब्रह्मावर्त से हुआ है, लेकिन भौतिक जीवन के पश्चात् आध्यात्मिक जीवन का श्रीगणेश नैमिषारण्य ने ही किया है। यह विश्व की तपोभूमि है। तप में सहयोग देने वाले तत्त्व विद्यमान हैं। तप यहां सिद्ध होता है। आदिकाल से महर्षियों ने यहां तप किया है। तप बल से प्राप्त 'वसुधैव कुटुम्बकम्' एवं 'सर्वभूत हिते रताः' का सिद्धान्त प्राणी मात्र को दिया गया है। अपनी अनुभव रूपी स्मृतियां लिखकर मानव जाति का पथ प्रदर्शन किया है। परहित में अपनी हड्डियाँ तक देने में संकोच नहीं करना चाहिये। यही विश्व को सन्देश दिया है। इसी को परम धर्म बतलाया है। जीवन का लक्ष्य शाश्वत शान्ति और अनन्त आनन्द की प्राप्ति कहा, मोक्ष ही जीवन का अन्तिम उद्देश्य निश्चित किया। त्याग में ही जीवन का वास्तविक आनन्द होने की घोषणा की गई। धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष पूर्ण जीवन के प्रतीक कहे गये। अर्थ का अर्जन अवश्य करो, लेकिन धर्म के आधार पर धर्मयुक्त अर्थ वही है जो दूसरों के हित को हानि न पहुंचावे। कामनाओं की पूर्ति अवश्य करो, लेकिन धर्म के माध्यम से। धर्म के माध्यम का अर्थ है कि तुम्हारी कामनाओं की पूर्ति में समाज के किसी

वर्ग व्यक्ति की मर्यादा का उल्लंघन तो नहीं हो रहा है। इसीका ध्यान रखना धर्म माध्यम से कामनाओं की पूर्ति करना है धर्म युक्त अर्थ व काम का सेवन करने से मोक्ष स्वयं ही प्राप्त हो जाता है।

समाज को व्यवस्थित रूप से चलाने के लिये अनुशासक और अनुशासित के मध्य एक ऋषि समाज होना चाहिये। व्यासगद्दी पर जीवन मुक्त और राजगद्दी पर कर्मयोगी होना चाहिये।

धर्मनीति और राजनीति का समन्वय होना चाहिये ऋषि समाज के ऊपर दोनों का विश्वास होना चाहिये। सामाजिक व्यवस्था में गीता के त्रिगुणात्मक विभाजन का प्रयोग होना चाहिये। जगदाचार्य जी का विश्वास है कि वर्तमान सामाजिक समस्याएं धर्मनीति के आधार पर सरलता पूर्वक सुलझायी जा सकती हैं।

अपने लोक-हितकारी कार्यों के द्वारा जगदाचार्य जी ने प्रमाद आलस्य दीर्घ-सूत्रता और अन्याय को झकझोर दिया है निष्काम सेवी भक्तों का निर्माण करके। समाज भगवान् का है, समाज की सेवा करना ईश्वर की सेवा करना है, मैं समाज का हूँ और समाज मेरा है, यह भावना करके कर्मयोगियों को कर्मक्षेत्र में लगा दिया है। जो यह सब कर रहे हैं उनकी सबसे बड़ी पहिचान यही है कि उसके दर्शन होने पर हृदय परम शान्ति का अनुभव करता है। आंखें अपने को धन्य कह उठती हैं जीवन अपना लक्ष्य पा जाता है मन बुद्धि को समाधान मिल जाता है, उन्हें पा लेने पर सब कुछ पा जाता है। फिर कुछ शेष नहीं रहता है, यह चलता फिरता जंगम तीर्थ है, इनके दर्शनमात्र से सब तीर्थों का फल प्राप्त हो जाता है, इस तीर्थ से न मालूम कितने तीर्थ बन गये बन रहे हैं और बनेंगे। इस तीर्थ ने कितने ही आश्रम रूपी तीर्थ गांव२ नगर२ बनवा दिये हैं। जो बद्रीनाथ, केदारनाथ, गंगोत्री, जमनोत्री, काशी, अयोध्या, मथुरा, हरिद्वार जाने में असमर्थ हों वे अपने गांव या नगर के आश्रम रूपी तीर्थ में ही आकर सब तीर्थों का फल ले जायँ। इस युगपुरुष ने धर्म की प्राप्ति कितनी सरल कर दी है। हे सपूत भारत मां धन्य है तुमको पाकर।

—:o:—

नैमिषारण्य का १०८ कुण्डों का हरिहरात्मक महायज्ञ

—पण्डित नामवर जी शास्त्री व्यास 'मानस मराल' काशी

भारत के तीर्थों में 'नैमिषारण्य' परम पावन और महत्वपूर्ण तीर्थ माना जाता है। यह तीर्थ अस्सी हजार ऋषियों की तपोभूमि है। इसी तपोभूमि में बैठ कर समस्त ऋषि समय-समय पर अपनी तपःपूत वाणी के द्वारा विश्व को सुख-शान्ति का दिव्य सन्देश देते थे, जिसके द्वारा समस्त विश्व का कल्याण होता रहता था। आज भी उसी परम पावन तीर्थ नैमिषारण्य में जगदाचार्य १००८ श्री स्वामी नारदानन्द जी सरस्वती के द्वारा आदर्श मानवता की शिक्षा दी जा रही है। पूज्य स्वामी जी द्वारा जो 'अध्यात्म विद्यापीठ' स्थापित किया गया है, यह चारों वर्णों और चारों आश्रमों की स्थापना द्वारा आदर्श रामराज्य की धर्म नीति का शुभ-सन्देश दे रहा है। जिस प्रकार भगवान् वेदव्यास ने नैमिषारण्य तीर्थ में समस्त विश्व को आध्यात्मिक शिक्षा देकर उन्हें अध्यात्मवाद की ओर प्रवृत्त किया था, उसी प्रकार आज श्री स्वामी जी भी सभी मनुष्यों को आध्यात्मिक पथ का पथिक बनाने में रात्रिन्दिवा अनवरत संलग्न रहते हैं जगह–जगह अध्यात्म विद्यापीठ की शाखाएं ऋषि-आश्रमों के रूप में स्थापित हो कर वैदिक धर्म का प्रसार-प्रचार कर रही हैं। वैदिक धर्म के प्रसार-प्रचार में चारों वर्ण और चारों आश्रमों की मर्यादा के संरक्षण के साथ-साथ वेदों के अध्ययनाध्यापन, गोरक्षण, सदाचाररक्षण और चरित्र-निर्माण जैसे अनेकानेक महत्वपूर्ण विषयों की विशेष पुष्टि की जाती है।

नैमिष पीठाधीश्वर महाराज वेदों और यज्ञों के प्रतिष्ठापक हैं। आप जहां भी जाते है वहां वेदों और यज्ञों का विशेष प्रचार करते हैं। आपके उपदेश का तत्काल प्रत्यक्ष फल यह होता है कि समस्त भारत में—नगरों कस्बों और ग्रामों में अगणित यज्ञ-महायज्ञ हो गये और सर्वदा यज्ञ होते रहते हैं। आपके यज्ञ-प्रेमका सबसे श्रेष्ठ ज्वलन्त प्रमाण यह है कि नैमिषारण्य में स्थापित श्री अध्यात्म महाविद्यालय के स्वर्ण जयन्ती समारोह में १०८

कुण्डों का हरिहरात्मक महायज्ञ फाल्गुन कृष्ण सप्तमी से फाल्गुन कृष्ण अमावस्या तदनुसार ता० ३ मार्च से ११ मार्च सन् १९६७ तक करा कर भारत की याज्ञिक परम्परा को सजीव और वृद्धिङ्गत किया।

यह महायज्ञ बहुत ही विशिष्ट और स्तुत्य था। इस महायज्ञ के अवसर पर सर्व वैदिक शाखा सम्मेलन, गीतासम्मेलन, पुराणसम्मेलन, रामायणसम्मेलन और गोरक्षा आदि अनेक महत्वपूर्ण सम्मेलन हुए। इन सम्मेलनों में भाग लेने के लिए द्वारिकापीठ के श्री अभिनवशङ्कराचार्य जी, उत्तरप्रदेश के राज्यपाल श्री विश्वनाथ दास जी, बंवई के भूतपूर्व राज्यपाल बाबू श्री प्रकाश जी और प्रसिद्ध सनातनी नेता शास्त्रार्थ महारथी पं० श्री माधवाचार्य जी शास्त्री आदि महानुभाव पधारे थे।

नैमिषारण्य में होने वाले १०८ कुण्डों के हरिहरात्मक महायज्ञ का 'प्रधानाचार्य' पद काशी के सुप्रसिद्ध विद्वान् याज्ञिक सम्राट् पण्डित श्री वेणीराम जी गौड़ वेदाचार्य को दिया गया था।

यज्ञाचार्य जी के भाषण का यजमानों पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि सभी यजमानों ने यज्ञ के प्रारम्भ दिन से ही अपने-अपने कुण्डाचार्य का दक्षिणा सहित पूजन किया और यज्ञान्त में अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार अपने-अपने कुण्डाचार्य को शैय्यादान किया। जो यजमान प्रत्यक्ष रूप में शैया की सामग्री नहीं दे सके, उन्होंने शैय्यादान की वस्तुओं का यथाशक्ति मूल्य दे दिया।

६ मार्च को प्रातः ७ बजे पूज्य स्वामी नारदानन्द जी सरस्वती यज्ञ-मण्डप में पधारे और उन्होंने अपने भाषण द्वारा यज्ञ की महत्ता और आवश्यकता पर प्रकाश डालते हुए यज्ञ के यजमानों और ऋत्विजों का कर्तव्य बतालाया।

पूज्य स्वामी जी की आज्ञानुसार यज्ञ-प्रधानाचार्य जी ने अपने संक्षिप्त भाषण में कहा—"जगदाचार्य पूज्य श्री स्वामी जी महाराज का सारा जीवन ही यज्ञमय है। स्वामी जी के प्रत्येक कार्य यज्ञमय होते हैं। आप यहां "अष्टोत्तर शतकुण्डों का हरिहरात्मक यज्ञ" जो करा रहे हैं, मेरी समझ से इसमें भी एक वहुत वड़ा कल्याणकारी रहस्य है। वह यह कि भगवान् आद्य शङ्कराचार्य जी ने अपनी 'प्रश्नोत्तरी' में "किं कर्म कृत्वा

न हि शोचनीयं कामारिकंसारिसमर्चनाख्यम्" के द्वारा स्पष्ट सूचित किया है कि जो मनुष्य काम के शत्रु भगवान् शङ्कर का और कंस के शत्रु भगवान् कृष्ण का अर्चन–पूजन करता है, उसे कभी किसी बात की चिन्ता नहीं करनी पड़ती।' मेरी समझ से पूज्य स्वामी जी महाराज ने यज्ञ के यजमानों के कल्याणार्थ 'हरिहरात्मक अष्टोत्तर शतकुण्ड का महायज्ञ' कराकर इन्हें हरि और हर दोनों के यज्ञों को करने का अवसर प्रदान किया है, जिससे वे सभी प्रकार की चिन्ताओं से मुक्त होकर अपना जन्म सफल करें।

शास्त्रार्थ महारथी पण्डित श्री माधवाचार्य जी शास्त्री महाराज ने अपने भाषण में सर्वप्रथम यज्ञप्रधानाचार्य जी की कुलपरम्परा और विद्वत्ता का दिग्दर्शन कराते हुए कहा 'यज्ञ जैसे पवित्र कर्म में पाजामा, पतलून आदि पहन कर यज्ञमण्डप में प्रवेश करना शास्त्र दृष्टि से तो निषिद्ध है ही लौकिक दृष्टि से भी उचित नहीं है। अतः शास्त्रविरुद्ध कार्य करने से न तो इस लोक में सुख मिलता है और न परलोक में ही सद्गति प्राप्त होती है। आपने 'पजामा' का अर्थ अत्यन्त रोचक शब्दों में करते हुए कहा कि पाजामा का सीधा–साधा अर्थ है – 'अपान जामा' अर्थात् अपान वायु को जमा करने का साधन 'पाजामा' है। इत्यादि हास्य युक्त व्याख्यान को सुन कर सारी जनता आनन्द विभोर हो गई और सबने एक स्वर में 'शास्त्रार्थ महारथी जी की जय' पुकार कर आपके व्याख्यान का हार्दिक स्वागत किया।

नैमिषारण्य में हरिहरात्मक अष्टोत्तर शत कुण्ड के महायज्ञ के अवसर पर देवपुरी, विष्णुपुरी, चैतन्य पुरी, व्यास पुरी, साकेत पुरी, मोक्ष पुरी, हनुमान् पुरी, गोपाल पुरी, धर्म पुरी और वैकुण्ठ पुरी - इसप्रकार १० पुरियों का निर्माण किया गया था। देवपुरी में १०८ कुण्डों का हरिहरात्मक महायज्ञ, विष्णुपुरी में १०८ श्रीमद्भागवत का पारायण, चैतन्य पुरी में १०८ कीर्तन मण्डलियों द्वारा अखण्ड कीर्तन, व्यासपुरी में १०८ पुराणों का एवं वाल्मीकि रामायण का पारायण, मोक्ष पुरी में १०८ दुर्गा, गीता, उपनिषद् आदि का पारायण, हनुमान् पुरी में चारों वेदों का पारायण, गोपाल पुरी में १०८ सवत्सा गौओं का पूजन, धर्म पुरी में विविध सन्तों एवं अतिथियों का निवास और वैकुण्ठ पुरी में विशाल व्याख्यान मण्डप का निर्माण हुआ था, जिसमें स्वर्ण जयन्ती समारोह का उद्घाटन, सर्ववैदिक शाखासम्मेलन, हिन्दूप्रार्थना समिति, भारत भक्त समाज एवं अध्यात्म

विद्यापीठ का २७ वां वार्षिक अधिवेशन और कविसम्मेलन आदि विविध महत्वपूर्ण सम्मेलन हुए। व्याख्यान पण्डाल में प्रतिदिन प्रात ८ से १ बजे तक और रात्रि में ६ से १२ तक जगदाचार्य श्री स्वामी नारदानन्द जी सरस्वती की अध्यक्षता में बड़े २ धर्माचार्यों और महामहोपदेशकों के प्रवचन होते थे जिनके प्रवचनों को सुनने लिए अगणित नर-नारी उपस्थित होते थे।

७ मार्च को रात्रि में पं० श्रीवेणीरामजी गौड़ वेदाचार्य ने अपने प्रवचन को प्रारम्भ करते हुए कहा—मुझे नैमिषारण्य के १०८ कुण्डों के महायज्ञ में जो विशेषताएं देखने को मिल रही हैं, वे अन्य शतकुण्डी महायज्ञों में देखने को नहीं मिली। नैमिषारण्य के १०८ कुण्डों के महायज्ञ में एक नई बात यह दिखलाई दी कि प्रतिदिन यज्ञमण्डप में सायङ्काल आरती के समय १०८ शँखों, १०८ घन्टाओं, १०८ घड़ियालों की सुमधुर ध्वनियां और १०८ आरतियों के द्वारा आरती का करना–विशेष आकर्षक और सुन्दर प्रतीत होता है। जिस समय १०८ शंखों का सुमधुर शंखनाद होता था, उस समय प्रतीत होता था कि यह यज्ञमण्डप साक्षात् वैकुण्ठधाम अथवा शिवधाम है।

यज्ञ के प्रधानाचार्य जी के बाद शास्त्रार्थ महारथी पं० श्री माधवाचार्य जी महाराज ने अपना प्रवचन प्रारम्भ किया। आपने वैज्ञानिक ढंग से सनातन की महत्ता का विवेचन करते हुए कहा कि– सनातन धर्म ही सबसे प्राचीन और सर्वश्रेष्ठ धर्म है। सनातन धर्म परमेश्वर की भान्ति निर्विकार और अनादि है। इस प्रकार व्याख्यान का उपसंहार करते हुए आपने विशाल सभा में जगदाचार्य श्री स्वामी नारदानन्द जी के समक्ष एक प्रस्ताव उपस्थित किया- अब आप वृद्ध हो चुके हैं, अतः आपको शीघ्र ही अपना सुयोग्य उत्तराधिकारी बना लेना चाहिये, जो उत्तराधिकारी आपकी तरह वैदिक धर्म का संरक्षण और प्रचार करे। शास्त्रार्थमहारथी जी ने जगदाचार्य स्वामी नारदानन्द जी सरस्वती के सुयोग्य शिष्य ब्रह्मचारी वेदान्ताचार्य श्री विवेकानन्द जी का नाम उपस्थित करते हुए कहा कि- मेरी दृष्टि में यही आपके उत्तराधिकारी बनने के योग्य हैं। अतः यज्ञ का शुभावसर है शिवरात्रि के दिन इन्हें काशी के विद्वान् वेदाचार्य पं० श्री वेणीराम जी गौड़ द्वारा संन्यास विधि कराकर 'संन्यास' दे दिया जाय। शास्त्रार्थ महारथी जी के प्रस्ताव का सभी लोगों ने अनुमोदन किया और तदनुसार शिवरात्रि के पवित्र दिन शास्त्रार्थ महारथी जी के तत्वावधान में वेदाचार्य पं० श्री वेणीराम जी गौड़ ने विधिपूर्वक श्री विवेकानन्द जी को संन्यास

दिलाकर उन्हें 'नर' से 'नारायण' बना दिया —**'दण्डग्रहणमात्रेण नरो नारायणो भवेत् ।'**

शिवरात्रि के दिन श्री विवेकानन्द जी का सँन्यास ग्रहण विशेष महत्व रखता है। शिवरात्रि के दिन जो सँन्यास ग्रहण करता है, वह साक्षात् शिव स्वरूप बन जाता है।

श्री विवेकानन्द जी के सँन्यास ग्रहण करने के बाद स्वामी विवेकानन्द जी के संन्यास-दीक्षा के गुरु जगदाचार्य श्री स्वामी नारदानन्द जी सरस्वती, शास्त्रार्थ महारथी पं० श्री माधवाचार्य जी शास्त्री और वेदाचार्य पँ० श्री वेणीराम जी गौड़ ने संन्यास धर्म की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए स्वामी श्री विवेकानन्द जी से यह आशा व्यक्त की कि-आप नैमिषव्यास पीठ के संरक्षण के साथ-साथ समय-समय पर भगवान् आद्य शङ्कराचार्य की तरह समस्त भारत में भ्रमण कर धर्म का प्रचार कर सनातनधर्म की रक्षा करें।

नैमिषारण्य का १०८ कुण्डों का हरिहरात्मक महायज्ञ, अभूतपूर्व था तीर्थराज प्रयाग के कुम्भ पर्व की तरह यहाँ पर अपार भीड़ यज्ञ भगवान् के दर्शनार्थ दूर-दूर से आई थी। लोगों का अनुमान तो १० लाख जनता की भीड़ आने का था। बाहर से आने वाली जनता के ठहरने के लिये नैमिष आश्रम की ओर से हजारों टैन्ट, हजारों छालदरियां, हजारों रावटियां वगैरा लगाई गई थीं भोजन के लिये प्रत्येक पुरी में शुद्ध घृत की बनी हुई मिठाई, पूरी आदि की दुकानों का प्रबन्ध था। दुग्ध की अनेक दुकानों की व्यवस्था की गई थी। स्वतन्त्र रूप से भी बहुत से दुकानदारों ने बाहर से आकर अपनी पूरी, मिठाई दुग्ध की दुकानें खोल ली थीं, जिससे यात्रियों को किसी प्रकार के, कष्ट का अनुभव नहीं करना पड़ा। खाने-पीने की दुकानों के अतिरिक्त सैंकड़ों दुकान वस्त्रों की, पुस्तकों की, फोटो की, पान की और फलों की आई थीं।

फाल्गुन कृष्ण अमावस्या ११ मार्च सन् १९६७ को विशाल महायज्ञ की पूर्णाहुति बड़ी धूमधाम से सुसम्पन्न हुई।

—:०:—

श्री जगदाचार्य जी द्वारा प्रवर्तित प्रार्थनायें जो आज घर २ गाई जाती हैं।

प्रथम प्रार्थना

छन्द-जय जय सुर नायक जन-सुख-दायक प्रनतपाल भगवन्ता।
गो-द्विज-हितकारी जय असुरारी सिन्धु-सुता-प्रिय कन्ता॥
पालन सुर-धरनी अद्भुत करनी मर्म न जाने कोई।
जो सहज कृपाला दीनदयाला करहु अनुग्रह सोई॥
जय जय अविनाशी सब घट वासी व्यापक परमानन्दा।
अविगत गोतीतं चरित पुनीतं माया रहित मुकुन्दा॥
जेहि लागी विरागी अति अनुरागी विगत मोह मुनि वृन्दा।
निशि वासर ध्यावहिं गुन गन गावहिं जयति सच्चिदानन्दा॥
जेहि सृष्टि उपाई त्रिविधि बनाई सङ्ग सहाय न दूजा।
सो करहु अघारी चिन्त हमारी जानिय भगति न पूजा॥
जो भव भय-भन्जन मुनि-मन-रन्जन गंजन विपति बरूथा।
मन वच क्रम बानी छाँड़ि सयानी सरन सकल सुर यूथा॥
सारद श्रुति शेषा रिषिय अशेषा जाकहं कोउ नहि जाना।
जेहि दीन पियारे वेद पुकारे द्रवहु सो श्री भगवाना॥
भव-वारिधि-मन्दर सब विधि सुंदर गुन-मंदिर सुख पुञ्जा।
मुनि सिद्ध सकल सुर परम भयातुर नमत नाथ पद कँजा॥

द्वितीय प्रार्थना

वह शक्ति हमें दो दयानिधे कर्तव्य मार्ग पर डट जावें।
पर-सेवा पर-उपकार में हम जग-जीवन सफल बना जावें॥
हम दीन-दुःखी निबलों-विकलों के सेवक बन संताप हरें।
जो हैं अटके भूले भटके उनको तारें हम तर जावें॥
छल दम्भ, द्वेष, पाखण्ड, झूठ अन्याय से निशदिन दूर रहें।
जीवन हो शुद्ध सरल अपना शुचि प्रेम सुधा रस बरसावें॥
निज आन-कान मर्यादा का प्रभु ध्यान रहे अभिमान रहे।
जिस देश-जाति में जन्म लिया, बलिदान उसी पर हो जावें॥

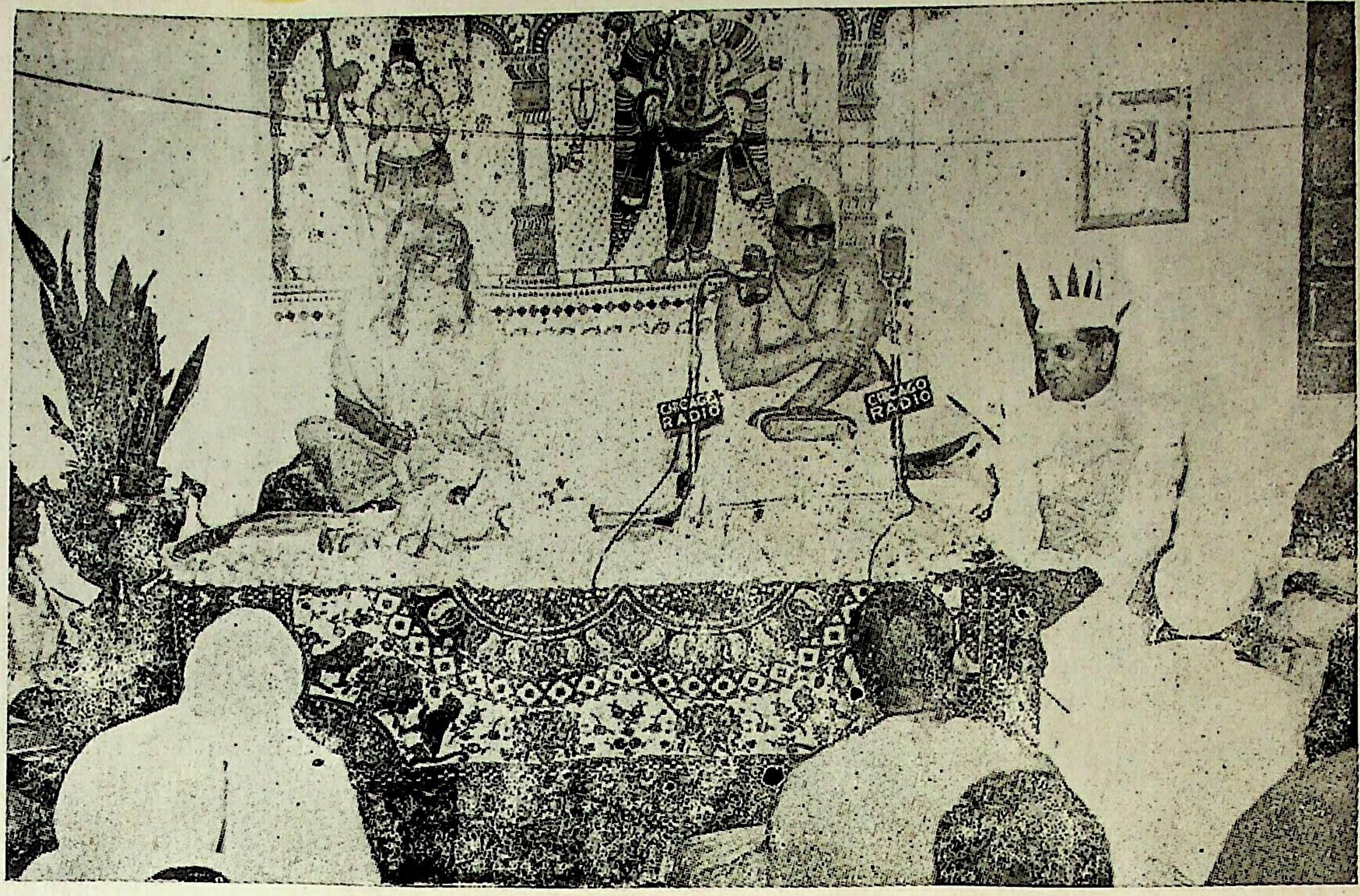
CHICAGO RADIO
CHICAGO RADIO

बम्बई में श्री स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज के साथ श्री जगदाचार्य जी महाराज (भारत भक्त समाज) तीर्थ यात्रा ट्रेन

नैमिषारण्य के प्रथम दर्शन

—श्रीमती माधुरी देवी श्रीवास्तव—

यतस्तु निमिषेणेदं निहतं दानवं बलम् ।
अरण्येऽस्मिंस्ततस्तेन नैमिषारण्यसंज्ञितम् ॥

नैमिष के रहने वालों को नैमिषेय कहते हैं। इसी नैमिषारण्य में सूत जी ने शौनकादि ८८ हजार ऋषियों को भागवती कथा सुनाई थी। रघुवँशी राजा सुदर्शन अपने पुत्र अग्निवर्ण को राजकाज सौंप कर नैमिष में ही तपस्या करने चले गये थे। नैमिष यज्ञ की भूमि है। वह पुनीत तपोभूमि है। नैमिष वन के ऐसे ही वर्णनों को पढ़ कर उस भूमि के विषय में मुझे एक स्वाभाविक जिज्ञासा थी। कोई भी वन हो उसके साथ रहस्य की भावना सन्निहित होती है। फिर जिस वन में ८८ हजार ऋषि रह सकें वह कोई छोटा-मोटा साधारण वन नहीं होगा। यदि यह भी मान लें कि ८८ हजार अतिशयोक्ति है, केवल ८८०० ही रहे होंगे फिर भी कोई मामूली जंगल नहीं होगा। जंगल के साथ जीव जन्तुओं की कल्पना स्वाभाविक ही है परन्तु उसकी अपेक्षा ८८,००० ऋषियों की तपस्या के फलस्वरूप उत्पन्न हुआ पावन वातावरण तो अलौकिक ही होगा। अवश्य ही नैमिष बड़ा सुन्दर आकर्णक और दिव्य रहने योग्य स्थान होगा जहां के आश्रम स्नानार्थ तीर्थ और उपवन राजमहलों व राजकीय जलाशयों और उद्यान-वटिकाओं से भी अधिक शान्ति और सुख दायक होंगे। तभी तो रघुवंशी राजाओं को भी वानप्रस्थ और सन्यास काल व्यतीत करने के लिये नैमिष अपनी ओर आकर्षित कर लेता था। साहित्य में लिखे इस नैमिष का वर्णन जब—नीमसार नामक तीर्थ की यात्रा और परिक्रमा करके लौटे हुए—भक्त करते थे तब वह बिलकुल विपरीत कुछ और ही जान पड़ता था जिसपर सहज विश्वास करने की इच्छा नहीं होती थी। कुछ समय पूर्व यह विदित

हुआ कि एक बड़े महात्मा के द्वारा नैमिष वन का प्राचीन रूप पुनः निखारा जा रहा है और उस पुण्य भूमि में वैदिक-संस्कृति के अनुरूप ही आश्रम स्थापित किया जा रहा है। यह एक हर्ष का विषय था। अभी तक ऐसे आश्रमों में जहां महिलाएं भी अपने स्वतः अधिकार में समान रूप से रह सकती हों एक छोटा–सा प्रयास ज्वालापुर वानप्रस्थाश्रम था।

लगभग एक वर्ष हुआ मुझे नैमिष के आश्रम को देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। वहां की व्यवस्था बहुत अच्छी लगी। चाहे कोई बाल्यावस्था में हो, चाहे प्रौढ़ में और चाहे अधेड़ वय में हो या वृद्ध, आश्रम के स्नेहार्द्र वातावरण में सभी रम गये हैं। वहां भारतीय संस्कृति का शुद्ध रूप दिखाई पड़ता है। प्राकृतिक सौन्दर्य तो है ही जिसमें आश्रमवासियों ने अपने श्रमदान से ध्यान के लिये लता-वितानों, टेढे मेढे पगडंडी वाले रास्तों कुँओं और छोटे-बड़े सभास्थलों को बना कर चार चाँद लगा दिये हैं।

आश्रम के एक ओर नदी कलकल करती है—दूसरी ओर निकट ही रेलवे स्टेशन और उसकी लाइन है। तीसरी ओर नीमसार की बस्ती जिस के मध्य में चक्रतीर्थ है। वहां की रेलगाड़ी भी आश्रम के नियमों के अनुकूल ही धीर गंभीर गति से चलती है—हावड़ा मेल की तरह धरती व आकाश को हिलाती हुई नहीं। आश्रमवासियों, अधिक रहने वालों तथा दो-चार दिन के लिये आने वालों–सभी के लिये सुचारु व्यवस्था है। वातावरण स्नेह व शान्ति से सिक्त है। कर्तव्य की भावना वहां आने वालों में कदाचित् एकाएक ही आ जाती है। सतसंगति की महिमा सदेह-सी जाग उठी है – उस पर शंका करने की आवश्यकता ही नहीं रह जाती। चातुर्मास वैसे ही हरा-भरा होता है और फिर नैमिष तो वन ही ठहरा। उल्लास और उत्साह तो आश्रम के कर्मचारियों, निवासियों तथा वहां के विद्यार्थियों में फूटा पड़ता है, प्रातः सायं मन्त्रोच्चारणों और भजनों की ध्वनि, दिन भर चहल-पहल। गृहस्थों व सपत्नीक वानप्रस्थियों की कुटियां अलग हैं और संन्यासियों तथा ब्रह्मचारियों के वासस्थान अलग। इस

सम्पूर्ण कार्य प्रसार व प्रबन्धसौष्ठव के प्रेरणास्रोत हैं जगदाचार्य स्वामी श्री नारदानन्द सरस्वती नैमिषपीठाधीश—जो दया, करुणा, क्षमा व स्नेह के मानों मूर्तिमान् अवतार हैं। उनकी प्रात: सायं प्रार्थना के समय भक्तगण मानों प्रार्थनास्थल की ओर अनायास खिंचे चले जाते हैं—सिकतामयी भूमि पदों को स्वच्छ करती रहती है सैंकड़ों लोग एकत्रित एक साथ प्रार्थना करते हैं—एकता और भाईचारे का संबंध, नवागत के लिये अतिथिसत्कार व अपनत्व की भावना आश्रम में प्रमुख है। परमपिता परमेश्वर की स्तुति के पश्चात् प्रत्येक व्यक्ति कर्तव्यनिष्ठ रहने को शक्ति के लिये प्रार्थना करता है। किसी भी देश या राष्ट्र के लिये इससे अधिक हितकारी और कोई प्रार्थना नहीं हो सकती। आस्तिकता के साथ-साथ यह नैतिकता, देशभक्ति, मानवप्रेम, परसेवा, परोपकार, त्याग सभी तो सिखाती है। प्रतिदिन दो बार ईश्वर से ऐसी प्रार्थना करने वाले का चित्त शुद्ध और स्निग्ध अवश्य ही होगा। स्वामी जी के लिये सब भक्त समान हैं—बच्चे, वृद्ध, छोटे बड़े, स्त्री-पुरुष।

आश्रम के नियमों का पालन सभी को समान रूप से करना पड़ता है। जो कोई भी नैमिष में जाकर समय या जीवन यापन करना चाहे उसके लिये स्वामी जी का हर समय खुला निमन्त्रण है—उनके पास हरेक वासी को सौंपने के लिये उसके योग्य काम भी है। सौंपा गया काम निश्चित समय में पूरा करना होता है। नैमिष का यह पुनरुज्जीवन मेरी समझ में उसके प्राचीन रूप से कहीं अधिक विकसित है क्योंकि इसमें महिलाओं को भी उनके अनुरूप और समान स्थान मिला है। कदाचिद् ८८००० ऋषियों वाले नैमिष में महिलाओं का प्रवेश वर्जित रहा होगा। नैमिष आश्रम के वर्तमान चित्र का श्रेय पूर्णतया जगदाचार्य श्रद्धेय स्वामी नारदानन्द जी सरस्वती को ही है—ईश्वर से प्रार्थना है कि स्वामी जी आश्रम को शीघ्र ही उसकी प्रौढ़ावस्था को पहुंचा दें और नैमिषपीठ भारतीय विद्याध्ययन व संस्कृति प्रशिक्षण का केन्द्र बनकर सारे संसार में प्र सिद्ध हो जाय। ●

अध्यात्म-भूमि भारत

—आचार्य राम शास्त्री 'वागीश'—

भारत धर्म-प्रधान देश है। यहां की संस्कृति अक्षुण्ण है प्राकृतिक नियम के अनुसार यही भूमि अध्यात्म-क्षेत्र है।

मुख्य चार दिशाएं हैं, पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण। इन दिशाओं के पृथक् २ एक २ दिक्पाल हैं, पूर्व दिशा के दिक्पाल इन्द्र हैं, पश्चिम के वरुण हैं, उत्तर के कुबेर और दक्षिण के यम हैं। सर्व प्रथम हम पश्चिम दिशा का विवेचन करें। इस दिशा का दिक्पाल वरुण है, वरुण जल का अधिष्ठातृ देव है, वेद कहता है कि 'अद्भ्य: पृथ्वी', पानीसे केवल पृथ्वी बनती है, अत: प्राकृतिक नियमके अनुसार पश्चिम दिशा में रहने वाले भौतिक विज्ञान में सर्वोच्च रहेंगे, क्योंकि उस दिशा का प्राकृतिक नियम है, इसलिये हम देखते हैं कि पश्चिम में भौतिक-विज्ञान का अत्यधिक बोल बाला है। जनता की ऐसी भावना है कि भारत इस ओर प्रगति क्यों नहीं करता इस में एक विशेष प्राकृतिक कारण है, भारत पूर्व दिशा में है, हम पूर्वी कहलाते , हमारी प्राच्य संस्कृति है, इस दिशा का दिक्पाल इन्द्र है 'इन्द्रो वै आत्मा' यह श्रुति बतलाती है कि आत्मा को ही इन्द्र कहते हैं अत: यह दिशा स्वभाव से ही अध्यात्म-प्रधान होगी, यही कारण है कि यहां महापुरुषों ने अध्यात्म-वाद में ही गति की है क्योंकि भौतिक विज्ञान नश्वर है और अध्योत्मवाद नित्य है

हमारा देश हजारों वर्षों से पराधीन चला आ रहा था, यहां के महापुरुषों ने अपनी पूर्ण शक्ति के साथ इस देश को स्वतन्त्र किया, परन्तु हमारे से सैकड़ों वर्ष पूर्व कई देश स्वतन्त्रता का सुख अनुभव करने लगे गये थे, और हमने पराधीनता में हजारों वर्ष व्यतीत किये परन्तु यह कटु सत्य है कि सैकड़ों वर्षों से स्वतन्त्र देशों की जननी ने अपनी भूमि में बहुत से चल-चित्र के पात्र तो उत्पन्न किये परन्तु अध्यात्म-विद्या का गुरु एक भी उत्पन्न नहीं हुआ। वैसे विद्वानों का होना, अथवा भौतिक विज्ञान के वेत्ता का होना महत्व नहीं परन्तु हजारों वर्षों की पराधीनता में भी इस भारतभू की ही जननीने एक नहीं सैकड़ों हजारों अध्यात्म वेत्ताओं को जन्म दिया जिससे सारा विश्व मण्डल अलंकृत हुआ।

इस पावन भूमि पर समय के सदुपयोग के लिये अनेक विभूतियां आती हैं। विभ्रान्त प्राणियों को वास्तविक सान्त्वना यहीं से प्राप्त होती है, जब मानव उद्धत

हो जाता है तो उसे अपने ठीक २ कार्य-क्रम में लगाने के लिये इसी देश की जननी महान् विभूति को गर्भ में धारण करती है। वही सन्त सांसारिक विषयवासनाओं से विरक्त होकर विश्व का पथप्रदर्शक बनता है।

मानव शब्द की व्याख्या तथा इसके स्वरूप की पहिचान ही जीवन का वास्तविक लाभ है, इसी मानव के लिये अनेक ग्रन्थों का संकलन हुआ तथा अनेक विधि-विधान निर्मित हुये। ऋषियों ने समाधि में बैठकर इसी मानवता को पूर्णरूप देने के लिये ईश्वरीय ज्ञान उपलब्ध किया। इतने अंकुश होने पर भी मानवता कोसों दूर चली जाती है इसका कारण केवल आचार हीनता है।

संसार में सबसे बड़ा भय मृत्यु का है, मृत्यु किन लोगों को अपना ग्रास बनाता है शास्त्रों ने स्पष्ट कर दिया है—

अनभ्यासेन वेदानाम्, आचारस्य च वर्जनात्।
आलस्याद् अन्नदोषाच्च, मृत्युर्विप्रान् जिघांसति ॥

जो मानव वेदाध्ययन नहीं करता, जो आचार से हीन है, जो आलसी है, और अन्नदोष से युक्त है, उन्हें मृत्यु अपना ग्रास बनाता है। भारत की आचार व्यवस्था सर्वोच्च है, 'आचारः प्रथमो धर्मः' सर्वप्रथम धर्म ही आचार की रक्षा है, जनता भोजन में प्रयोग होने वाले व्यञ्जन को भी आचार कहती हैं, इसका आचार नामभी इसी आचार के आधार पर रखा गया है। आपको अनुभव होना चाहिये कि जो आचार आम का अथवा नींबू का है जब मातायें उसे डालती हैं तो इसकी कितनी कठिन व्यवस्था करनी पड़ती है, जरासी असावधानी से आचार खराब हो जायगा। माता आदेश देती है कि आचार के पात्र में कोई हाथ न डाले उसे निकालने के लिये एक काठ की कड़छी होती है, मासिक धर्म से युक्त माता अगर आचार को देख लेवे तो यह नष्ट हो जाता है। इसी प्रकार इस आचार की व्यवस्था है अगर जरासी अवहेलना हो गई तो मानव आचार-हीन हो जाता है इसी लिये श्रुति ने कहा है कि—'आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः' आचार से हीन प्राणी को वेद भी पावन नही कर सकता। अतः मानव की प्रत्येक प्रक्रिया आचार में सम्मिलित है तथा यहां की वर्ण-व्यवस्था जो प्रकृति के रज, सत, तम, तीनों गुणों के संमिश्रण से बनी है वह प्राकृतिक है और उसमें जब विपर्यय होता है तो मानवता कांप उठती है। इसके साथ ही इसे पूर्णरूप देने के लिये यहां की आश्रम व्यवस्था थी, चार आश्रम हैं, ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास। आज का मानव आचार और वर्ण-आश्रम-व्यवस्था से सर्वथा शून्य है अतः वह इस आध्यात्मवाद का पूर्ण रसास्वादन नहीं कर सकता।

आज भारत की निर्मर्यादित मानवता का पूर्ण संकलन करने के लिये एक महान् विभूति श्रीस्वामी नारदानन्दजी सरस्वती के रूप में प्रकट हुई है, भारत में श्रीशंकराचार्यजी को जगद्गुरु का पद प्राप्त हुआ है, परन्तु इस पावन कुम्भ पर भारत के सव महापुरुषों ने मिलकर श्रीस्वामी नारदानन्दजी महाराज को जगदाचार्य पदसे विभूषित किया है। आचार्य और गुरु पद में अन्तर यह है, इस विकट समय में केवल (आचार्य की आवश्यकता है। इतिहास वतलाता है कि जव २ देश में मानवता का ह्रास हुआ है तव आचार्य वर्ग ने ही उसे शुद्ध स्वरूप प्रदान किया है।

श्री स्वामी नारदानन्द जी सरस्वती जगदाचार्य जी का पावन स्थल नैमिषारण्य है। वहीं से इन्होंने वर्ण-व्यवस्था, आश्रम-व्यवस्था, आचार-व्यवस्था को मूर्तरूप देने के लिये शंखनाद किया है, परिणाम स्वरूप इस व्यवस्था को निम्न चार मार्गों में विभक्त कर दिया है. अध्यात्म-विद्यापीठ, शिक्षा-सुधार-समिति, भारत-समाज, हिन्दू प्रार्थना-समिति। इस समय तक सैकड़ों आश्रमों की स्थापना हो चुकी है, जिसमें ऋषिशब्द का महत्व पूर्णरूप से दृष्टि गत होता है। उन्हें ऋषि आश्रमके नाम से ही पुकारा जाता है. यह श्रेय श्री स्वामी नारदानन्द जी सरस्वती जगदाचार्य को ही है. इस विकट काल में भी इस महान् विभूति से यह देश अलंकृत है। भारत का प्रत्येक मानव इसी पथ का अनुसरण करता हुआ पूर्ण मानवता अथवा पूर्ण सुख का अनुभव कर सकता है। जव तक हम श्री जगदाचार्य जी के पथ-प्रदर्शन में नहीं आयेंगे, यह विश्व हमारे लिए दुःख का घर बना रहेगा। आज भारत के प्रत्येक प्रान्त एवं नगर ग्राम में श्रीचरणों का जाना ही मानव जीवन का कल्याण है। इन्हीं शब्दों के साथ मैं श्रीचरणों का अभिनन्दन करता हूं।

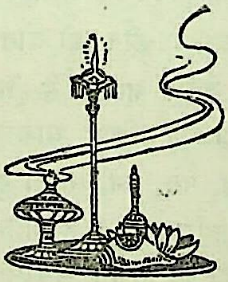

श्री जगदाचार्य महाराज के पट्टशिष्य

श्री स्वामी विवेकानन्द सरस्वती महाराज

पूज्य जगदाचार्य महाराज के विरक्त और गृहस्थी शिष्यों की गणना आकाश-मण्डल के तारागण की गणना के समान अपरिगणनीय है। पीछे के सन्दर्भों में कतिपय मुख्य २ विरक्त शिष्यों का नाम उल्लेख हुआ है, परन्तु जिस शिष्य को स्तनन्धय काल से लेकर पालन, पोषण, शिक्षण, विशिष्ट विद्याध्ययन और अन्त में चतुर्थाश्रम में प्रविष्ट हो जाने तक का सौभाग्य श्री जगदाचार्य महाराज की देखरेख और सतत-सन्निधि में ही प्राप्त हुआ हो वे हैं अनन्तश्री स्वामी विवेकानन्द सरस्वती महाराज।

जैसे सद्‌गुरुप्राप्ति सुदुर्लभ है वैसे ही अपने मन के अनुकूल सत् शिष्य की प्राप्ति भी सर्वसुलभ नहीं। फिर अपने जीवन काल में अपने तपोबल और महान् पुरुषार्थ के प्रभाव से सफल संस्था को संभालने वाले उनके कोई उत्तराधिकारी उनके जीवन काल में ही सामने आगए हों यह स्वर्ण काञ्चनयोग बहुत दुर्लभ है।

हमारे सामने ऐसे अनेक दृष्टान्त है जबकि बड़ी २ प्रसिद्ध संस्थाएं योग्य उत्तराधिकारी के अभाव में संस्थापक के जीवन के साथ समाप्त-प्राय: हो गईं। यह राष्ट्रका सौभाग्य ही है कि श्री नैमिषपीठाधीश्वर जगदाचार्य महाराज द्वारा संस्थापित शनाश्रिक ऋषिआश्रम, ब्रह्मचर्य्याश्रम वानप्रस्थाश्रम, विद्यालय और सत्सङ्गसंस्थान अपने भविष्य के प्रति चिन्तित नहीं किन्तु श्री जगदाचार्य महाराज ने अष्टोत्तरशत कुण्डात्मक महा-यज्ञ के समारोह के समय अपने लक्षाधिक शिष्य प्रशिष्यों और भारत के कोने कोने से पधारे हुवे विशिष्ट कोटिके महात्माओं एवं चूडान्त विद्वानों की उपस्थिति में अद्यावधि ब्रह्मचारी नाम्ना विख्यात श्री विवेकानन्द जी को 'स्वामी विवेकानन्द सरस्वती' रूप में विधिवत् दीक्षित ही नहीं किया, अपितु अपने द्वारा सञ्चालित समस्त धार्मिक संस्थाओं का एक मात्र उत्तराधिकारी एवं पट्टशिष्य भी स्वच्छा से घोषित किया। गगन भेदी जयकारों के उद्‌घोष से और दिगन्त व्यापी तालियों की गड़गड़ाहट से खुले अधिवेशन में जुटी लाखों जनता ने जिसका समर्थन किया।

यदि उक्त महानुभाव का संक्षिप्त परिचय उक्त अभिनन्दन ग्रन्थ में न रहे तो

पाठकों की स्वाभाविक उत्कण्ठा शान्त नहीं हो सकती अतः **'नामूलं लिख्यते किञ्चित् नानपेक्षितमुच्यते'** की नीति के अनुसार तदपि लिख्यत एव ।

वंश परम्परा और जन्म स्थान आदि

उत्तर प्रदेश-कानपुर मण्डलान्तर्गत देरापुर तहसील का ग्राम मंगलपुर आप का पैतृक आवास स्थान रहा है, विशुद्ध कान्यकुब्ज–कुल–प्रसूत श्री पं० उमाशङ्कर चतुर्वेदी (सम्प्रति-उमेश पूजन वानप्रस्थी) को आप के पिता होने का सौभाग्य प्राप्त हुवा था ।

आपके पूर्वज विद्याव्यसनी होने के साथ-साथ जिमींदारी और व्यापार आदि व्यवसाय में भी निपुण रहे जिनकी कुल प्रतिष्ठा और धर्म सेवा के प्रमाणभूत उनके द्वारा निर्म्मित मन्दिर कुँवे और तालाब अद्यावधि ग्राम की शोभा बढ़ा रहे हैं ।

श्री उमा शङ्कर जी अपने आरंभिक जीवन में राजकीय विद्यालयों में शिक्षक रूप में कार्य करते हुये बाईस वर्ष पर्य्यन्त एक ही स्थान रसूलाबाद में प्रधानाध्यापक पद पर आरूढ रहे ।

दो ज्येष्ठ भ्राताओं के अनन्तर हमारे चरितनायक अपने पिता के तृतीय पुत्र हुवे, जिनका विक्रमी सँवत् १९८६ माघ शुक्ला पौर्णिमा मघा नक्षत्र गुरुवार को गोधूलि-वेला में जन्म हुवा । संयोग वश उस समय पाठशाला के प्राङ्गण में सत्यनारायण भगवान् की कथा हो रही थी । समाप्ति पर ज्यों ही आर्तीकालीन शँख घड़ियाल बजने लगे भक्तजन 'जय लक्ष्मी रमणा' का भक्ति विभोर हो कर सुमधुर गान कर रहे थे तभी सामने के मकान से सद्योजात बालक की रोदन ध्वनि भी उसके साथ ही सम्मलित हो गई ।

बालक का नाक्षत्र नाम 'माधव प्रसाद' रक्खा गया परन्तु लोक-व्यवहार में रमाकान्त नाम प्रख्यात हुवा । बालक के मस्तक पर श्री वैष्णव तिलक ऊर्ध्व पुण्ड्र की भान्ति जन्म जात तीन समानान्तर रेखाएं विद्यमान थीं । आपकी आरंभिक शिक्षा पिता और सहायक अध्यापकों द्वारा ही सम्पन्न हुई ।

आपके पिता पं० उमाशङ्कर चतुर्वेदी सत्संग प्रेमी थे उनकी इच्छा थी कि में चारों आश्रम का यथाक्रम पालन न कर सका पर एक पुत्र ऐसा हो जिसे मैं गुरुकुल भेज कर २५ वर्ष तक ब्रह्मचारी रखकर वेदाध्ययन कराऊँ । उनके एक सहयोगी अध्यापक शरण जी, जो बाल ब्रह्मचारी थे २ मास का अवकाश लेकर गुरुदेव भगवान् श्री स्वामी नारदानन्द सरस्वती जी महाराज के पास वैकुण्ठाश्रम मियागंज

श्री जगदाचार्य महाराज उपदेश मुद्रा में

'गुरोस्तु मौनं व्याख्यानं शिष्यस्तु छिन्नसंशयः'

सन्निकट कन्नौज में रहे। उनके द्वारा गुरुदेव भगवान् की ज्ञान गरिमा तथा स्वभाव एवं कीर्ति सुन कर दर्शनार्थ गये। उनका चित्त पूज्यचरण गुरुदेव भगवान् की ओर आकर्षित हो गया। वे ग्रीष्मावकाश तथा दशहरा अवकाश में अपने मित्र पं० बाबूराम वाजपेयी (विज्ञान पूजन जी) के साथ सपरिवार जाने लगे। जिस समय उनके पुत्र रमाकान्त गर्भ में थे माता अरुन्धती देवी वैकुण्ठ आश्रम पर जाकर सत्संग करतीं तथा उपदेश सुनतीं। मार्गशीर्ष शुक्ला १४ को प्रति वर्ष वार्षिक उत्सव मनाया जाता था गर्भस्थ बालक पर इसका विशेष प्रभाव पड़ा, सत्संग और ज्ञान चर्चा के संस्कार पडे।

बालक अपने माता पिता के साथ वैकुण्ठाश्रम जाता और पास ही इमली के नीचे हाथी बाबा (बाबा रामदास) की समाधि पर खेला करता। गुरुदेव अपने प्रचार करने की योजनाएँ बनाया करते थे कि वर्णाश्रम-धर्म का पुनरुत्थान किया जाय, सतोगुणी भक्तों का एक समाज बनाया जाय, एक देवपुरी बसाई जाय जिसमें चारों वर्ण चारों आश्रम अपने २ कर्त्तव्य का पालन करें। उक्त दोनों मित्रों की सहायता से रसूलाबाद के आस पास सत्संग स्थापित हुये, प्रचार बढ़ा जनता की उत्कट अभिलाषा से एक उत्सव मनाने का निश्चय हुआ। सन्तों की कृपा हो गई स्वीकृति मिल गई। गुरु बाबा परमहंस परिव्राजकार्य श्री स्वामी एकरसानन्द जी सरस्वती अपने प्रमुख शिष्यों श्रीस्वामी नारदानन्द जी सरस्वती, श्री स्वारी शुकदेवानन्द जी, आचार्यानन्द जी सरस्वती आदि के सहित पधारे। लगभग ९००० भक्तों ने भारामऊ के उत्सव में भाग लिया। सन्त गण प्रसन्न हुये फिर तो प्रति वर्ष रसूलाबाद में पूज्यचरण श्री स्वामी नारदानन्द जी सरस्वती की अध्यक्षता में उत्सव मनाये जाने लगे और वे पधारने लगे।

एक बार सन् १९४१ में पूज्यचरण श्री गुरुदेव भगवान् पं० उमाशङ्कर चतुर्वेदी की कुटिया पर भिक्षा करने गये और दक्षिणा में एक पुत्र ब्रह्मचार्याश्रम की स्थापना हेतु माँगा। उस समय तक गुरुदेव भगवान् नैमिषारण्य में पहुंच गये थे और नैमिषारण्य नैमिषटीलापर परमार्थ-साधनाश्रम की स्थापना हो चुकी थी। रमाकान्त के माता पिता ने अपने तीनों पुत्रों को गुरुदेव के सम्मुख उपस्थित करके प्रार्थना की कि भगवान् जो आप के योग्य हो आप आज्ञा करें। गुरुदेव ने तृतीय पुत्र रमाकान्त (विवेकानन्द) को भेजने की आज्ञा दे दी। उनके पिता ने जुलाई सन् ४२ में रमाकान्त को नैमिष व्रह्मचर्याश्रम में प्रविष्ट करा दिया था बालक जूनियर हाईस्कूल परीक्षा उत्तीर्ण कर चुका था। कुशाग्र बुद्धि था, उन्नति करता गया। सन् १९४३ में नैमिष ब्रह्मचर्याश्रम पर ही वैदिक विधान से उपनयन संस्कार हुआ।

रमाकान्त ब्रह्मचारी ने रामायण अन्त्याक्षरी में कई रजत तथा स्वर्ण पदक प्राप्त किये और गीताप्रेस की परीक्षाएँ उत्तीर्ण कीं।

संस्कृत प्रथमा सन् १९४४ ई०, मध्यमा चारों खण्ड सन् १९४८, हिन्दी साहित्य विशारद सन् १९५१ ई०, हिंदी साहित्य-रत्न सन् ४८, संस्कृत-शास्त्री सन् १९५१ ई०, संस्कृत वेदान्ताचार्य परीक्षा सन् १९५४ में वाराणसी-संस्कृतविश्वविद्यालय से उत्तीर्ण कीं। कुशाग्र बुद्धि का प्रमाण यह है कि विश्व विद्यालय में प्रथम आने के कारण २५ रु० मासिक छात्रवृत्ति गवर्नमेन्ट की ओर से मिलने लगी। चरित्र रक्षा हेतु ब्रह्मचारी की गुरुदेव भगवान् ने श्री स्वामी विशुद्धानन्द जी के आश्रम मुँशीघाट वाराणसी पर रहने की व्यवस्था कर दी तथा शिक्षा पाते थे संस्कृत सन्यासी कालेज़ बनारस में। वेश भूषा का चरित्र पर तथा ब्रह्मचारी होने के स्वाभिमान पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। ब्रह्मचारी ने सदैव पीले अचलें एवं कोपीनधारण की। सहपाठी हँसते थे किन्तु उसने ब्रह्मचारी वेषभूषा नहीं छोड़ी, नित्य प्रातः सायं सन्ध्या तथा यज्ञ करना, जिसकी शिक्षा नैमिष ब्रह्मचर्याश्रम में मिली थी, तथा कई वर्ष तक पालन हो चुका—कभी न छूटा। ग्रीष्मावकाश तथा दशहरा आदि बड़े अवकाशों पर ब्रह्मचारी नैमिष परमार्थ साधनाश्रम नैमिषटीला पर गुरुदेव भगवान् की शरण में निवास करता था। पूर्व जन्म के संस्कार, माता पिता का तथा नैमिष आश्रम पर रह कर गुरुदेव भगवान् का संरक्षण, सब ने मिलकर उसे सदाचार-सम्पन्न अखण्ड ब्रह्मचर्य्य पालन करने वाला बना दिया।

वेदान्ताचार्य का प्रमाणपत्र प्राप्त कर ब्रह्मचारी नैमिषारण्य में गुरुदेव भगवान् के पास आकर गुरुसेवा में रह कर निवास करने लगा। अब परम कृपालु गुरुदेव भगवान् ने शौनक कुटी पर पकरिया के नीचे जहाँ प्रातःकालीन सत्संग ७ बजे से ९ बजे तक नित्य हुआ करता है उसके माता पिता को बुला कर जो अब लगभग ३ वर्ष से वानप्रस्थ आश्रम स्वीकार करके वानप्रस्थी वेषभूषा में नैमिष में निवास कर रहे थे उनका नाम उमाशङ्कर के स्थान पर गुरुदेव भगवान् ने उमेश पूजन रख दिया था पूछा—अब ब्रह्मचारी रमाकान्त वेदान्ताचार्य हो चुका है इस सम्वन्ध में तुम्हारी क्या सम्मति है, यदि गृहस्थ बनाना हो तो ले जाओ, किन्तु अब वालक भी गृहस्थी के झंझट में नहीं पड़ना चाहता था और पिता का भी पूर्व संकल्प उसे योगी के रूप में देखने का था—उमेशपूजन ने उत्तर दिया –गुरुदेव भगवान मैंने तो भिक्षा करते समय आपके दक्षिणा माँगने पर इसे दक्षिणा के रूप में समर्पित कर दिया था, दी हुई दक्षिणा कहीं वापिस ली जाती है अब यह आपकी शरण में रहेगा आप इसे अपनी शरणमें रक्खें और देशसेवा तथा प्रचार का कार्य लें। माता अरुन्धती ने भी सहर्ष सम्मति दी कि इसे नैष्ठिक ब्रह्मचारी बनाया जाय। संयोग से उस दिन इनके ज्येष्ठभ्राता श्रीकान्त चतुर्वेदी भी उपस्थित थे उनसे सम्मति

श्री जगदाचार्य महाराज के अन्यतम पट्टशिष्य

श्री स्वामी विवेकानन्द सरस्वती महाराज

मांगी गई तो उन्होंने भी नैंष्ठिक ब्रह्मचारी बनने की सम्मति दी। तब गुरुदेव भगवान् ने ब्रह्मचारी को गैरिक वस्त्र पहनाये और ब्रह्मचारी रमाकान्त का नाम विवेकानन्द ब्रह्मचारी रखा यह घटना ६ जून सन् १९५५ की है।

अब विवेकानन्द ब्रह्मचारी वेदान्त की क्रियात्मक शिक्षा पाने लगे, गुरुदेव प्रचार कार्य में सदैव अपने साथ रखते और धर्म नीति, भारतीय संस्कृति तथा भक्तियोग एवं कर्मयोग की शिक्षा देने लगे। महाभारत, मनुस्मृति कई बार पढ़ने की आज्ञा दी पश्चात् अपने सामने पढ़ा कर समझाई और कार्य रूप में परिणत करवाई। साथ ही उपनिषदें तथा योग-वाशिष्ठ का अध्ययन कराया और समझाया।

प्रयाग तथा हरिद्वार के पूर्ण कुम्भ पर गुरुदेव की आज्ञानुसार प्रचार तथा व्यवस्था कार्य किया,। इन्हें अपने स्थान पर कार्य करने की कला सिखाई गई।

अध्यात्म-विद्यापीठ की ओर से उस की स्वर्ण जयन्ती मनाने हेतु ब्रह्मचारी ने अपने कुछ विचार प्रगट किये, गुरुदेव भगवान ने अपना दृष्टिकोण समझाकर आशीर्वाद दिया। इस स्वर्णजयन्ती महोत्सव पर ११ पुरियाँ वसाई गई प्रत्येक पुरी में एक पृथक् आयोजन तथा अनुष्ठान कार्य रक्खा गया। १०८ कुण्डी यज्ञ हुआ जिसका यज्ञ स्थल १०८ हाथ लम्बा १०८ हाथ चौड़ा था। एक अभिनव कुम्भ जान पड़ता था. वहाँ का पूर्ण व्यवस्थाभार ब्रह्मचारी विवेकानेन्द ने सँभाला। गुरुदेव भगवान् के प्रति जनता की पूर्ण श्रद्धा सराहनीय थी, जिससे विना सरकारी सहायता के पूर्ण व्यवस्था स्वयंसेवकों तथा भक्तों द्वारा हुई, जिस की सब ने भूरि २ प्रशंसा की। इसी अवसर पर गुरुदेव भगवान् ने विवेकानन्द को संन्यास दिया। और उसका नाम श्री स्वामी विवेकानन्द सरस्वती हो गया।

हरि-हर पर्वत के पास यज्ञशाला में श्री ब्रह्मचारी विवेकानन्द को संन्यासाश्रम सम्बधी कार्यक्रम श्री पं० वेणीराम शर्मा याज्ञिक सम्राट् काशी द्वारा सम्पन्न कराये गए। ९ मार्च सन् १९६७ को महाशिवरात्रि के पावन पर्व पर गोमती नदी के किनारे प्रातः ९ बजे संन्यास की दीक्षा दी और दण्ड देकर स्वामी विवेकानन्द सरस्वती पद से विभूषित किया। संन्यास के अवसर पर सैकड़ों दण्डी संन्यासी एवं सहस्रों नर नारियों ने पं० माधवाचार्य शास्त्री के समक्ष अभिषेक एवं पूजन किया। श्री गुरुदेव भगवान् श्री स्वामी नारदानन्द सरस्वती जी महाराज ने उस विशाल समुदाय में उन्हें अपना पट्ट शिष्य एवं उत्तराधिकारी घोषित किया। सभी भक्त इस अभिनव संन्यासी की ओज पुंज दिव्य आभा से युक्त इस स्वरूप को देखकर प्रेमाश्रु बहा रहे थे। पूज्य गुरुदेव भगवान् ने भी अपना उत्तरदायित्व हलका करने के लिये अभिनव स्वामी को पूर्ण आशीर्वाद देते हुए अपने गले की माला पहनाई एवं तिलक किया। भारत से आए हुए दूर दूर के समस्त भक्तों ने पूज्य स्वामी जी को अपनी २ श्रद्धा अर्पित की।

गुरुदेव के कुछ संस्मरण

—श्री विज्ञान पूजन (बाबूराम वाजपेयी चाचा जी)

मैं सन् १९२९-३० में प्रशिक्षण के सम्बन्ध में प्रयाग रहा। स्वतन्त्रता की लड़ाई चल रही थी, महात्मा गान्धी तथा अन्य राष्ट्रीय नेताओं के भाषणों को सुनने का अवसर मिला, मुझ पर प्रभाव पड़ा। महात्मा जी का आत्म-बल उनकी वेष-भूषा, सक्रिय कर्म-योगी-जीवन, गीता के नित्य स्वाध्याय और उससे प्राप्त प्रेरणा, निर्भयता और निश्चिन्तता, ईश्वरी विश्वास आदि बातों को मैंने जीवन में उतारने का प्रयास प्रारंभ किया। गीता के अनुसार स्थित-प्रज्ञ विना हुए जीवन के प्रत्येक क्षेत्र के लिए अभयता नहीं प्राप्त हो सकती। पर स्थित-प्रज्ञ कैसे बना जाय, यह साधना केवल स्वाध्याय से नहीं हो सकी, पथ प्रदर्शक चाहिये। महात्मा गान्धी बहुत दूर थे।

मैंने अपने आप प्रयास जारी रखा, मेरे एक मित्र ने गुरुदेव का परिचय देकर उनकी तपस्या, त्याग, महत्ता, साधना की प्रशंसा की। मैंने राष्ट्र की आवश्यकता की दृष्टि से अनेक तर्क-वितर्क किये, अन्ततः उनके अनुरोध पर मिश्राँगंज वैकुण्ठ-आश्रम पर कई अन्य व्यक्तियों के साथ गया। रात्रि हो गई थी, हम सभी उनके दर्शन करके बैठे थे। आश्रम के वातावरण और गुरुदेव के साधारण परिचय का कुछ प्रभाव हुआ, अकस्मात् एक घटना हुई।

स्वामी सुखानन्द परमहंस रात्रि में ही गंगा-स्नान करके भीगे कपड़ों से आ गये, गुरुदेव ने खड़े होकर अभिवादन किया, हम सब भी खड़े हुए, परन्तु परमहंस जी ने आव गिना न ताव, गुरुदेव से अनर्गल प्रलाप करने लगे, उन्हें न मालूम क्या-क्या कह गए।

मुझे बड़ा संशय हुआ, एक महात्मा दूसरे महात्मा को हेय समझ कर क्यों कुछ कह रहा है। तर्क वितर्क चल रहा था, गुरुदेव की प्रति-क्रिया विचित्र थी, वे बीच बीच में कह देते ‘महाराज जी सब सत्य हैं” मै उनकी स्थिति को आँक रहा था। उद्वेग उत्पन्न करने वाले वाक् प्रहार से वे

तनिक भी उद्वेलित नहीं हो रहे थे, पर क्या वे भयभीत हैं ? नगण्य हैं, जैसा वे कहते हैं, वैसे ही हैं, इनमें अभयता नहीं प्रतीत होती, परन्तु क्रोध नहीं है, अपमान से दुःखी नहीं हैं, शान्त हैं।

यह क्या स्थित-प्रज्ञ हैं, दूसरे महात्मा का यह विषम आचार क्यों है ! आदि अनेक प्रश्न उठ रहे थे। पर यह क्या ! रंगमञ्च का नाटक बदल गया। वे ही महात्मा शीतल वाणी में बोलेः—

"अच्छा सभी लोग बैठ जाओ, अरे ! स्वामी जी तुम बड़े सहनशील हो। इतने कठोर वचन सुनकर तुमको क्रोध क्यों नहीं आया ? तुम इतना अपमान कैसे सह गये, तुम तो महा पुरुष हो, सच्चे साधु हो ! अच्छा हमको भूख लगी है, क्या कुछ खिलाओगे नहीं ?"

ऐसा कहकर वे खिलखिला कर हँस पड़े। गुरुदेव ने कहा--मेरे ऊपर आप की बड़ी कृपा है। उनके संकेत से परमहंस जी को एक भक्त सेवक ने भोजन कराया, उन्होंने प्रसाद बांट कर भोजन किया और हँस कर कहने लगे--

"तुम सब इनको साधारण पुरुष या महात्मा न समझो, ये महापुरुष हैं सद्गुरु हैं। जगत् के कल्याण के लिए प्रकट हुए हैं इनको साष्टाङ्ग दण्डवत् करो, ये वन्दनीय हैं, मैं भी दण्डवत् करता हूँ।" ऐसा कहकर स्वयं दण्डवत् करते हुए सब से वैसा ही करवा कर अत्यन्त विनम्र भाव से क्षमा माँगते हुए परिक्रमा करके रात्रि ही में कहीं चले गये। श्री गुरुदेव अत्यन्त संकोच और विनम्र भाव से उनकी प्रार्थना करते रहे, रोकते रहे, पर वे प्रणाम करके नहीं रुके।

मेरे मन पर इस घटना का बड़ा प्रभाव पड़ा और स्थितप्रज्ञा की मूर्तिमती शिक्षा प्रतीत हुई और परमहंस जी का ३६ वर्ष पूर्व का वचन ।"जगदाचार्य" "रूप में आज सार्थक हुआ।

(२)

वैकुण्ठ-आश्रम पर श्री गुरुदेव ने तरुण अवस्था में साधना और

तपस्या, विरक्त वेष में प्रकट की थी अनेक साथी थे, अपने पूज्य सद्गुरुदेव श्री स्वामी एकरसानन्द सरस्वती महाराज की प्रेरणा से साधकों के निर्माण का कार्य चल रहा था, अनेक साधक निवास करते थे। अपने हाथों गुफा, कुआँ का निर्माण किया, पुष्प वाटिका लगाई, आश्रम का सुरम्य निर्माण किया।

प्रत्येक पूर्णमासी को साधक भक्तों का मेला लगता था, श्री गुरुदेव का वैराग्य परक उपदेश हृदयों में गूँजता था, उस समय उनके नाम की सार्थकता थी।

नारद सिख जो सुनहिं नर नारी।
अवशि भवन तजि होंहि भिखारी।

उपदेश सुनकर वैराग्य का नशा सा चढ़ता था घर बार त्याग कर लोग पागल से होकर भक्ति-रस में झूमते थे। कन्नौज तहसील के पेशकार त्यागपत्र देकर गंगा-तट पर पड़े थे, उनका नाम श्री मेवालाल था, कलक्टर निरीक्षण करने वाले थे, मुसलमान तहसीलदार आश्रम पर दौड़े आए और गुरुदेव से निवेदन किया कि आप अपने भक्त को समझा दें कि वह मेरा मुआयना करवा दे। श्री मेवालाल अपनी धुन पर थे अन्त में युक्ति पूर्वक वे कार्य पर भेजे गये, त्याग-पत्र लौटाया गया।

अगहन की पूर्णिमा को वार्षिकोत्सव हुआ, सन् १९३२ के उत्सव में हम सभी उपस्थित हुए, श्रद्धा और सेवा का प्रवाह था, कोई भी गंगा-स्नान करके अपनी धोती नहीं धो पाता था, चरण धोने की धूम थी, पत्तल जूँठन उठाने को होड़ थी, आलस्य-प्रमाद का नाम न था। मधुर वचन, विनम्रता शील, सौजन्यता बरस रही थी।

विदाई का दृश्य अनूठा था सभी रो रहे थे, विदा होते, फिर लौटते, समझाये जाते, फिर मिलते, परस्पर प्रेमाश्रु बहाते बरवस ही जाते थे। आस पास के प्रतिष्ठित व्यक्तियों एवं भक्त समुदाय की गुरुदेव में देव-बुद्धि देखकर मेरी श्रद्धा बढ़ रही थी।

श्री श्यामलाल दुबे उस क्षेत्र के विशेष प्रतिष्ठित व्यक्ति थे, वे अपने साथियों के साथ विदा होकर जाने लगे, वे गुरुदेव से अवस्था में वृद्ध और

पितामह के समान थे। एक दम उन्होंने गुरुदेव के चरण पकड़ कर प्रणाम कर लिया, गुरुदेव संकुचित होकर बोले—बाबा जी, आपका कार्य मर्यादा विरुद्ध है, आप वयोवृद्ध हैं मेरे द्वारा पूजनीय हैं आपको ऐसा नहीं करना चाहिए।

श्री दुबे जी ने कहा—आप कोई छिपे हुए अवतारी पुरुष हैं आप साधारण मर्यादा से ऊपर हैं। हमने अपने कल्याण के लिएं, अपने को पवित्र करने के लिए यह कार्य किया है। आप देवता हैं। भगवान् हैं मेरे अपराधों को क्षमा करें और मेरा उद्धार करें।

मेरे ऊपर श्री दुबे जी के वचनों का विशेष प्रभाव पड़ा, जन्मभूमि के निकटवर्ती भक्तों की आस्था, श्रद्धा अत्यन्त यथार्थ-सत्य प्रतीत हुई।

(३)

श्री रामपुर प्रसिद्ध तीर्थ है, महात्मा स्वामी शिवानन्द जी व श्री स्वामी प्रेमानन्द जी की जन्मभूमि है। पूज्य श्री गुरुदेव भगवान् ने वहाँ आरण्य-कुटी में निवास किया है। अत्यन्त सुहावना विशाल वृन्दावन नाम का उपवन है और प्राकृतिक सुगन्धित बहुरंगे पुष्पों के वृक्ष हैं। मैं सन् ३२ में उनके दर्शनों के लिए गया। आस-पास के क्षेत्र में चर्चा थी कि स्वामी जी ने प्रेरणा दी है कि यदि यहाँ की जनता की यह अभिलाषा है कि गंगा जी जो कि पक्के घाटों और विश्रांतों को छोड़ कर कई मील दूर चली गई हैं और बहुत वर्षों से उनके पास नहीं आती हैं फिर से घाटों के पास बहने लगे तो समस्त नर नारी प्रतिज्ञा पूर्वक हरि नाम-जप, रामायण के पाठ करें। गंगा जी से प्रार्थना करें और गंगा-दशहरा के दिन सामूहिक रूप से विधि-विधान पूर्वक देवी की भावना से पूजन करें तो गंगा जी प्रार्थना से प्रसन्न होकर पक्के घाटों तक आकर बह सकती हैं।

वर्ष भर तक समस्त आस-पास की जनता व्रतशील होकर उत्साह पूर्ण भावना से "हरे राम हरे राम" का अधिक से अधिक जप करती रही, अखंड रामायण के पाठों की धूम थी, पास-पड़ोस में यह प्रश्न गूँज रहा था कि दशहरा को गंगा जी का पूजन होगा, रूठी गंगा मनाई जाँयगी महात्मा का संकल्प है, पक्के घाटों पर गंगा अवश्य आवेंगी।

गंगा-दशहरा को सामूहिक रूप से मंगल-कलश सजा कर शंख ध्वनि और बाजों के साथ पूजन सामग्री लेकर कई मील दूर गंगा-तट पर अत्यन्त श्रद्धा-पूर्ण भावनाओं से गंगा-देवी की पूजा की गई, अर्घ्य पुष्प, अक्षत, पंचामृत, नैवेद्य समर्पित करके विशाल समूह ने सामूहिक प्रार्थना और संकीर्तन किया। रात्रि निवास करके जागरण हुआ, प्रातःकाल पुनः स्नान, स्वस्ति वाचन और पूजन, प्रणाम करके विदा हुए।

दशहरा के पश्चात् ही गंगा की धारा शृङ्गीरामपुर की ओर कटाव करने लगी. नित्य दर्शन करने वालों की भीड़ बढ़ती थी और नित्य ही श्री गंगा जी शृङ्गीरामपुर की ओर आ रही थी। जनता में अपार हर्ष और उल्लास था, ज्येष्ठ पूर्णिमा के पश्चात् वर्षा के होते ही गंगा जी पक्के घाटों पर आ गई। उनका स्वागत और अभिनन्दन करने के लिए आस-पास की जनता आनन्द-विभोर होकर दौड़ पड़ी। गंगा जी के पूजन, आरती के सामान जुटाये गये और विधि पूर्वक पूजन-प्रार्थना हुई। कई वर्ष तक इस घटना की चर्चा रही और श्री गुरुदेव के प्रताप-प्रभाव, धर्म-प्रचार के कौशल की प्रशंसा की जाती रही।

कानपुर नगर में विशाल फूल बाग का प्रथम महोत्सव सन् १९५४ में हुआ, यह "अभिनव-कुंभ" के नाम से विख्यात है। लग-भग एक सहस्र महन्त, मण्डलेश्वर, महात्मा एकत्रित हुए बड़ी चहल-पहल भीड़ थी। श्री गुरुदेव भगवान् और स्वामी भास्करानन्द संयोजक थे। प्रबन्ध समिति ने स्वयं प्रबन्ध किया, अनेक संस्थाओं के नेता, जगद्गुरु तथा विशेष विद्वान् पधारे थे। समिति के प्रतिष्ठित व्यक्ति अपने दृष्टिकोण से व्यवस्था करते परन्तु महात्माओं की व्यवस्था में विशेष उदारता की अपेक्षा थी, अर्थ समिति और कोषाध्यक्ष नपा-तुला धन भी संकोच पूर्वक दे पाते थे, उन्हें उलझन भी होती थी, अन्त तक निभाना है, यदि कमी पड़ गई तो फिर कौन पूरा करेगा। महात्मा तो अपना दंड कमण्डलु और आसन समेट कर चले जायेंगे हम लोगों को तो यहीं रहना है, आखिर तक भुगतान करना पड़ेगा आदि शब्द भी निकल पड़ते थे।

गुरुदेव को यह बात विदित हुई, वे शान्त भाव से सब को निश्चिन्त

करते हुए महात्माओं की व्यवस्था स्वतः करवाने लगे। नित्य दो घन्टे प्रवचन उपदेश करते और उन्हीं श्रोताओं में से व्यवस्थापक नियुक्त कर देते, उन्हीं के द्वारा महात्माओं की सेवा और यज्ञ कार्य के निमित्त अर्थ संग्रह कराते, उनकी युक्ति, कौशल तथा प्रभाव से विशेष रूप से अर्थ संकलित होने लगा और उस से महात्माओं विद्वानों, अतिथितियों का विशेष स्वागत सत्कार होने लगा, यज्ञ समिति की ओर से व्यवस्था थी ही। सभी आगन्तुक आश्चर्य चकित थे कि मानों सारा कानपुर नगर अतिथि-सत्कार में लगा हुवा है। सब को परम संतोष था, यज्ञ प्रबन्ध-समिति को कुछ पता नहीं चला और उसकी अत्यन्त प्रशंसा हुई।

भक्तों के द्वारा संकलित धन और सामग्री प्रचुर मात्रा में थी। श्रद्धा और सेवा का प्रवाह चल रहा था, अब यह धन कोषाध्यक्ष के पास भेजा जाने लगा, दो चार दिन तक वे लेते रहे, उनसे कोई धन नहीं माँगता था, उन्हें देता ही था, वे बड़े चकित थे, जब उन्हें और समिति को श्री गुरुदेव जी के प्रभाव और कौशल का पता चला तो संकुचित और विनम्रभाव से लज्जित होकर उनके समीप आए और आँसू बहाते हुए चरण पकड़ लिए और कहने लगे "भगवन्! हम लोगों को क्षमा करो, हम लोग माया में लिपटे हैं। और उसी प्रकार से सोचते हैं अब आप अपनी माया समेट लो, हम पर कृपा करो, हम से सेवा ले लीजिए।"

श्री गुरुदेव भगवान् ने हँसते हुए कहाः—हम दण्ड-कमण्डलु वालों के पास क्या रखा है हमारे तो एक मात्र सम्बन्धी भगवान् ही हैं। हमारे भक्त जहाँ कमजोर पड़ते हैं तो हम भगवान् से प्रार्थना करते हैं उनको सब कार्यों की रिपोर्ट देकर निश्चिन्तता की नींद सोते हैं, हमारी तुम्हारी लाज तो उनके हाथ हैं, उन्हीं ने सब कुछ किया है उन्हीं की माया है, हमारा तुम्हारा तो झूठा अहंकार है, सब लोग उन्हीं अनाथ-शरणागत-वत्सल भगवान् का स्मरण करते हुए उनकी सेवा समझ कर कार्य करें और अपने अन्तः करण को पवित्र करें।

यज्ञ सकुशल धूमधाम से समाप्त हुआ, यह महोत्सव ऐतिहासिक था अन्त में बहुत सा धन और सामग्री बची रही जिसको विठूर और नगर की अनेक

भगवान् कृष्ण यह भी स्पष्ट कर देते हैं कि गुणों का कार्य आप से आप होता है यह जान कर गुणातीत स्वयं में सदैव शान्त रहता हैं शरीर का आश्रय ज्ञानी को यात्रा में धर्मशाला की भांति ही रहता है वह शरीर से, गुणों से, कर्मों से, प्रवृत्तियों, निवृत्तियों से सब से उदासीन भाव से रहता है।

भगवान् के इस उत्तर से निष्कर्ष यह निकलता है कि गुणातीत-ज्ञानी के जीवन में प्रपंच से सदा उदासीनता ही रहती है। योजनाबद्ध उसके कोई कार्य नहीं पाये जाते। शरीर से गुणों के अनुसार कार्य होते हैं। उनसे भी वह असंग तथा अवध्य रहता है।

असंगता तथा उदासीनता आन्तरिक तथ्य है जो बाहर से जानना कठिन है हम तो जो लक्षण भगवान् ने बताए हैं वह ही देख कर पहिचान कर सकते हैं।

"निर्मान, निर्मोह, असंग-वृती, अध्यात्म प्रेमी, नहि वासनाएं।
दीखे नहीं है सुख, दुःख जिसको, यही है स्थान गुरुदेव ने पाया ॥

——:०:——

मेरे आराध्य देव श्रीजगदाचार्य

—एक अनन्य भक्त—

श्री नैमिष पीठाधीश जगदाचार्य श्री स्वामी जी से प्रथम भेंट शृंगीरामपुर तीर्थ हुई।

अरण्य कुटी में श्री स्वामी १००८ शिवानन्द जी परमहंस भ्रमण करते हुए कभी २ निवास करते थे और इस अरण्य कुटी की शोभा बड़ी ही आकर्षक देख कर यहाँ विशेष निवास करते थे। एक समय विशेष निवास किया उस समय मैं उनकी सेवा में रहता था उसी अवसर पर बैकुण्ठ आश्रम से श्री स्वामी नारदानन्द जी व श्री स्वामी शुकदेवानन्द जी व श्री स्वामी भजनानन्द व श्री स्वामी विचारानन्द व कुछ और महानुभावों के साथ अपनी टोली लेकर दर्शनार्थ पधारे। मैं उस समय ठंडाई

पीस रहा था, तब तक श्रीस्वामी परमहंस जी सतसंग योगवशिष्ठ का चला रहे थे । मैं उस समय योग-वशिष्ठ के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं जानता था । मुझे इतना अवश्य ज्ञात है कि श्री परमहंस जी ने कहा कि तुम अभी बालक हो कुछ समझ में आता है तो बताओ कि श्री शिखरध्वज ने क्या त्याग किया चूडाला के कहने पर ? इतना परमहंस के कहते ही श्री स्वामीजी (नारदानन्द जी) सब साथियों में बोल उठे और सारी कथा मौखिक कह सुनाई । श्री परमहंस जी चकित होकर कहने लगे कि बड़ी ही सूक्ष्म बुद्धि है कि कथा का सारा रहस्य थोड़े शब्दों में कहा और आशीर्वाद दिया कि तुम होनहार बालक होओ । इतने समय में ठंडाई मैंने तैयार की और श्री परमहंस जीको गिलास में भर कर दी, परमहंस जी ने कहा आप लोग भी पियो तो श्री स्वामी जी ने कहा, मैं तो आपसे वह ठंडाई पीना चाहता हूँ कि जो कभी उतरे ही नहीं। इतने में गाड़ी का समय आ गया और आज्ञा माँगी, आज्ञा प्राप्त कर मुझ से कहा कि हम लोग आर्ती करेंगे कोई थाली या कोई और पात्र दो जिसमें कपूर जलाकर आर्ती हो सके। मैंने एक कर्छी दी और उसमें कपूर जलाकर आर्ती टोली के साथ की, वेद स्तुति की, जो श्री मानस में चार पांच छन्दों में है । बहुत मधुर भाव और स्वर से गद गद कंठ हो उठी । इस प्रार्थना से मैं बहुत प्रभावित हुआ व मैंने यह निश्चय किया कि याद करूँगा, गाड़ी का समय करीब होने से परमहंस जी को प्रणाम करके वे सब चल दिये ।

मेरा दूसरी बार मिलन—

इस बार स्वामी जी काषाय वस्त्र धारण किये थे यह मिलन पूर्व से ८–९ वर्ष बाद हुआ इसका विवरण इस प्रकार है। अरण्य कुटी से एक मील पर रजीपुर ग्राम है यहां पर सड़क कानपुर से फरूखाबाद जाती है । इसी सड़क पर पं० कैदार नाथ वैद्य जी का अस्पताल बना है । इसी अस्पताल में कानपुर के कुछ भक्तों ने श्री स्वामी जी से प्रार्थना की कि वहाँ का वातावरण बहुत सुन्दर है वहाँ आप को स्वास्थ्य लाभ भी होगा । भक्तों की प्रार्थना स्वीकार की और कानपुर से रजीपुर सन् ३०-३१ में पधारे । वहाँ पर समुचित व्यवस्था हुई। एक सुन्दर वाटिका थी जिसमें श्री भगवती दुर्गा जी का एक स्थान भी बना था । यहीं पर एक सतोगुणी कुटी श्री वैद्य जी ने बनवा दी और उसी में श्री स्वामी जी व योगेन्द्र ब्रह्मचारी स्वामी जी की सेवा में नियुक्त रहे और दवा का समुचित प्रबन्ध भी हुआ जिससे दिन-ब-दिन स्वास्थ्य अच्छा होता रहा । मैं इन दिनों बड़े स्थल में पूजा का कार्य करता था, स्थल एक प्रसिद्ध स्थान है और प्राचीन काल से चला आता है उस समय यहाँ के प्रमुख

संचालक श्री रामचन्द्र हुए, कई गद्दी के बाद यहाँ के वर्तमान महन्त प्रमुख कर्ता हैं। यह स्थान जमींदारी और माफीदारी के कारण फतेगढ़ कचहरी से विशेष सम्बद्ध रहता है। लगभग रोजाना जाना होता है। जब जब महन्त जी जाते थे तो श्री स्वामी जी का सतसंग भी करते थे।

क्योंकि मार्ग में कुटिया पड़ती थी। वे आकर मुझसे कहते थे एक महात्मा बड़े उच्च कोटि के विद्वान् व तपस्वी रजीपुर में आये हैं उनका उपदेश बहुत सुन्दर होता है। मुझ से कहते आपको उनका दर्शन करना चाहिए, मैं कह दिया करता था कि महात्मा का दर्शन बड़े भाग से होता है, यदि मेरे भाग्य में होगा तो मिलेगा। इस तरह कहते २ बहुत समय हो गया। एक दिन महन्तजी स्वामीजी से शहद देने को कह आये और आकर मुझे कहा कि सुबह आपको स्वामीजी को देने जाना होगा। बस मेरा भाग्य आज उदय हुआ ऐसा मैंने समझा और मैं प्रातःकाल पुष्प लेने बगीचे में जाया ही करता था तो शहद की बोतल ली और श्री स्वामी जी के पास पहुँचा तो क्या देखा कि स्वामीजी की उस समय शारीरिक सेवा हो रही थी। योगेन्द्र ब्रह्मचारी तेल की मालिस कर रहे थे मैंने शहद की बोतल रखकर के प्रणाम किया और स्वामी जी ने कहा बैठ जाओ। आपने नाम बूझा और कहा क्या करते हो। मैंने यथोचित बताया आज्ञा मांगी कि मुझे पूजा करनी है। श्री स्वामीजी ने योगेन्द्र ब्रह्मचारी से कहा उनको कुछ प्रसाद दो एक गोला मुझे प्रसाद में दिया और मैं चलता बना। मार्ग में मेरे विचारों में बड़ी उथल पुथल होने लगी वह यह कि इन महात्मा का मैंने कभी दर्शन किया परन्तु अर्सा होने के कारण समय का निश्चय न कर सका कि कब किया यह विचार यहीं तक रहा और बगीचा में आ गया जो कार्य करता था वह करने लगा। इधर फिर क्या होता है कि श्री स्वामीजी का स्वास्थ्य दिन २ अच्छा होने लगा और श्री वैद्यजी ने कहा श्री स्वामीजी को कुछ २ टहलना विशेष लाभकारी होगा। स्वामी जी टहलने लगे। कुछ दिन के बाद टहलते २ एक दिन अरण्य कुटी पर आये मैं भी अकस्मात् वहाँ पहुंच गया। बड़े भावुकता के साथ बोले कि मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मैं इस स्थान पर रहा हूँ फिर क्या था "जो रोगी के मन भावे सोई वैद्य बताये" की कहावत चरितार्थ हुई। मैंने कहा इस समय यहाँ कोई महात्मा नहीं है। आप कृपा करके कुछ समय यहाँ निवास करें तो हम लोगों का बहुत सुधार हो। यह तीर्थ स्थान है "तीर्थी कुर्वन्ति तीर्थानि" यह सुनकर कहने लगे कि मेरा भी विचार है कि यहाँ कूकू बाबा और शिवानन्द ने निवास किया है। यह बहुत पवित्र भूमि है। मैंने श्री शिवानन्द जी का दर्शन भी किया है। इनता कहते ही मैं जिस बात की खोज में था उसका पता लग गया और मैंने पूर्व का हाल कहा कि आप चार पाँच मूर्ति यहाँ पधार थे तब से मेरी आप के दर्शनों की अभिलाषा थी और जो घटना

उस समय की थी मैंने कही। आपने मुकस्राते हुए माना मेरी बातों का समर्थन किया। अब मैंने अपने साथियों से कहना प्रारम्भ किया कि कुटी बहुत दिनों से खाली है यदि यह महात्मा यहाँ आ जाएँ तो हम लोगों का बहुत सुधार हो। उस समय हमारे यहाँ का वातावरण बहुत दूषित था फिर क्या था। अवकाश पाते ही यह प्रार्थना सभी लोग करने लगे और महाराज ने स्वीकार किया बोले कि एक कुटी और साधारण सी दूसरी ओर बन जानी चाहिए मैं जल्दी ही यहाँ आना चाहता हूँ इतना कहते ही हम लोगों को अति हर्ष हुआ और कुटी की तैयारी होने लगी। महन्त रामानन्द जी के यहाँ छोटी ईंटें जिनका चलन पुराने समय में था बहुत पड़ी थीं दूसरे दिन ढुलाई शुरू हो गई और कुटी की जुराई शुरू हो गई। एक सप्ताह के बाद कुटी तैयार हो गई। और श्री स्वामी जी आ गये। आते ही सतसंग प्रारम्भ हो गया और इतना प्रभाव बढ़ा कि आस-पास के ग्रामों की जनता आने लगी और जनता बहुत प्रभावित हुई और प्रार्थना करने लगी कि हमारे यहाँ सतसंग होना चाहिए। श्री स्वामी जी ने सब की प्रार्थना स्वीकार की और ग्रामों में आना जाना प्रारम्भ कर दिया।

इस प्रकार वहाँ के कई ग्रामों में सत्संग होने लगा कुछ दिन के बाद हम स्थानीय लोगों ने विचार किया कि सभी लोगों को मिल कर एक बड़े सत्संग का आयोजन करना चाहिए। यह सर्व सम्मति से पास हो गया और श्री स्वामी जी ने स्वीकृति दी और समय व स्थान भी निश्चित कर दिया। ग्रामीण लोगों ने बड़े उत्साह से कार्य किया जिसमें आस के पास ग्रामों के अतिरिक्त कन्नोज व सरायमीरा के ग्राम के कुछ लोग पधारे जिससे विशेष शोभा बढ़ गई। इस उत्सव में एक घटना विशेष हुई। सिंगी रामपुर में एक प्रभु दयाल सेठ रहता था उसके पास धन बहुत था लेकिन धन का कोई सत प्रयोग न था, न कोई संतान ही थी। हम लोगों ने श्री स्वामी जी से प्रार्थना की कि महाराज, इसके पास धन बहुत है यदि आप की कृपा हो जाय तो इसके धन का धर्म में प्रयोग हो तो इसका भी कल्याण हो। श्री स्वामी जी ने कहा कि उसे यहाँ सत्संग में बुलाओ हम लोग सेठ जी को बुला लाये, सेठ जी ने सत्संग किया बड़े प्रभावित हुए और रोते हुए कहा कि हमारे कोई संतान नहीं है हम भगवान् का एक मन्दिर बनावा चाहते हैं। यदि आपकी कृपा हो जाय तो हमारे मकान के पास ही एक मकान है उसमें दो हिस्सेदार हैं। एक का हिस्सा तो हमारे पास आ गया दूसरा हिस्सा नहीं दे रहा है यदि आप उसे समझा दें तो यह कार्य मैं शीघ्र ही करना चाहता हूँ। श्री स्वामीजी ने हम लोगों से परामर्श किया और हिस्सेदार को समझाया वह भी मान गया और अपना हिस्सा लिख दिया। बस फिर क्या था उस जगह २५–३० हजार रुपये लगाकर भगवान् का मन्दिर बनवाकर प्रतिष्ठा की। हम लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ और

सब लोग प्रभावित हुए और हम लोगों ने प्रार्थना की, यहाँ की शोभा श्री गंगा जी की थी सो ५०, ६० वर्षों से पक्के घाटों छोड़ दिया तब से यहाँ की शोभा नष्ट हो गई। हम सब लोगों की आप से प्रार्थना है कि गंगा जी पक्के घाटों पर आ जायें। श्री स्वामी जी ने कहा कि आप लोग रामायण व गीता पाठ व कीर्तन की प्रतिज्ञा करो और दुर्गुण छोड़ो गंगा जी आ जायेंगी। फिर क्या था सैकड़ों ने प्रतिज्ञा की और भगवान् भी जो प्रतिज्ञा करे उसे एक गोला प्रसाद में दें। सब लोग रामायण, गीता का पाठ करने लगे श्री गंगा जी का उतर से घटाव प्रारम्भ हो गया और दूसरे वर्ष पक्के घाटों पर जिनको कि भक्तों ने हजारों रुपया लगा कर बनवाया था उनकी शोभा बढ़ा दी।

दीक्षा काल :—

मैं इनके सतसंग से प्रभावित हो ही गया था परन्तु पूर्ण निष्ठा नहीं हो पाई थी। अगहन का महीना आया और इस महीना की पूर्णमासी को वैकुण्ठ-आश्रम पर एक अखंड मानस पाठ के द्वारा महोत्सव उन दिनों वहाँ मनाया जाता था। जिससे आस पास की जनता अधिक मात्रा में एकत्रित होती थी: अवसर आया और श्री स्वामी जी अरण्य कुटी से वैकुण्ठ आश्रम को जाने के लिए तैयार हुए। मुझ से भी कहा कि तुम हमारे साथ चलो मैंने कहा चलेंगे और मैं साथ गया औ वहाँ के भक्तों का भाव देखकर मैं पूर्ण प्रभावित हुआ। जो भी भक्त आता था सो भगवान् की भावना से श्रद्धांजलि देता और गद्गद नेत्रों से अश्रुपात करता हुआ अपनी व्यथा कहता मेरे मन में उस समय यह भाव बना कि यह कोई साधारण मनुष्य नहीं है जिनका कि आदर एक अवतारी की भांति होता है।

मुझे यह दोहा उसी समय याद हुआ—

दोहा :— तुलसी वहाँ न जाइये, जहाँ आपनो ग्राम।
गुण अवगुण जाने नहीं, लेत पुरानो नाम॥

मेरे मन जो भी सन्देह थे वे इस ग्राम के निवासियों का व्यवहार देख करके नाश हो गये और यह निश्चय किया कि दीक्षा इन्हीं से लूँगा तथा इन्हें भावात्मक गुरु हृदय में उसी समय से स्वीकार कर लिया। पश्चात् स्थान पर आते ही प्रार्थना की वह भी स्वीकार की गई मुहूर्त निश्चय हुआ और मेरी दीक्षा हो गई। उस समय से गुरुदेव ने हमारी शरणागति स्वीकार करके अपने साथ सन् ३५ से इसी नैमिषारण्य में साथ ही में प्रचार कार्य में आज्ञा दी और मैंने यथाशक्ति आज्ञानुसार प्रचार किया और तब से आज तक श्री चरणों का साथ नहीं छोड़ा।

अनन्तश्री जगदाचार्य जी महाराज

लेखक :—वीतराग श्री १०८ नारायणाश्रम स्वामी

वेदाद्यागम-दुग्ध-सिन्धु-मथनात्तन्मेयमन्थाद्रिणा,
दिव्याभोग-विचार-वासुकि-वशादाश्रित्य धैर्यं परम् ।
ब्रह्मोद्‌वोध-सुधां विधाय दयया मर्त्यानमर्त्यानमी,
कुर्वन्तो गुरवो जयन्ति जगतां लक्ष्मीशवद्रक्षकाः ।।

भारतीय इतिहास की परम्परा में मुनि-महर्षियों का स्थान सदा से महान् रहा है। जब कभी वैदिक धर्म के प्रति समाज में ग्लानि उत्पन्न होती और अधर्म आचरण अत्यन्त प्रिय लगने लगते हैं तो ऐसे समय में कोई न कोई महान् आत्मा का अविर्भाव होने लगता है। ऐसे महान् आत्माओं में अनन्त-श्रीविभूषित जगदाचार्य श्री नारदानन्द सरस्वती जी महाराज का जीवन स्मरणीय है।

श्री स्वामी जी ने पुण्य भूमि नैमिषारण्य के गहन वन कानन एवं मन्दगामिनी गोमति नदी के रमणीय गुहा प्रदेश में रहकर, अमानुषिक तपः तथा मनन के अगाध उदधि में अवगाहन कर जिन रत्नकणों का संचय किया है, उसका मूल्यांकन करना कवि की काव्य कल्पना से भी अतीत है।

तपोभूमि नैमिषारण्य, सदा से महर्षियों का क्रीड़ा केन्द्र रहा है। संसार के सभी भागों से मुनिमहर्षि यहाँ आकर कठोर तपस्या में रत रहते थे। जब कभी मनुष्य समाज के लिए अध्यात्म प्रेरणा की आवश्यकता पड़ती तब सभी मुनि महर्षि इस पुण्य भूमि में ज्ञानसत्र करते और संपूर्ण वेद शास्त्र का मथन कर समाज को श्रेय प्रदान करते थे।

पर युग निर्माता महर्षियों की यह परम्परा महाभारत से कुछ ही हजार वर्ष बाद उच्छिन्न सी हो चुकी थी जिसे दुवारा "गीता शास्त्र की परम्परा के समान" आविर्भाव करने के लिए अनन्त श्री जगदाचार्य जी महाराज उत्पन्न हुए हैं। प्रकृति सुन्दर दृश्य शोभा से पूर्ण, सघनवन-झाड़ियों के मध्य, उस नैमिष टीला का वातावरण भी सदा मुनियों के मन को लुभा देने वाला है। जहाँ पर सघन व शीतल छाया से युक्त विशालकाय वट वृक्ष के नीचे बैठकर महाराजश्री अपने वचनामृत से भक्तों

का कल्याण करते हैं और देश विदेश से एकत्र हुए श्रोतागण, वल्कलाम्बर धारण किये वनचारी, तपस्वी, मुनि, सब ओर से घिराये बैठे रहते हैं।

दुबले पतले शरीर, वायु के समान स्फूर्ति एवं हिमालय के तुल्य सुदृढ़ निष्ठा से श्री स्वामी महाराज ने, थोड़े समय में जिस तरह के महान् कार्य किये हैं, उसे देखते हुए यह विश्वास किया जा सकता है कि सर्वेश्वर की प्रेरणा से किसी महान् आत्मा ने वैदिक संस्कृति की प्रतिष्ठापनार्थ भारत माता की गोद में आकर जन्म लिया है।

पुराण कथा के प्रसंग में हम सुनते आये हैं कि, पुरातन मुनि-महर्षियों के आश्रम में वेद-शास्त्र, अध्ययन-अध्यापन, के साथ-साथ ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एव संन्यास के नियम-धर्म चरित्रव्रत आदि सिखाये जाते थे। पर आज श्री नैमिषारण्य के 'अध्यात्म विद्यापीठ' में जाकर देखने पर ऐसा मालूम पड़ता है कि महर्षियों की पुरातन संस्कृति एवं पुराण कथा के मूर्तस्वरूप को श्री स्वामी जी ने साकार बनाकर दिखाया है।

मन्थर गति के साथ गजगामिनी के समान बहती हुई गोमति नदी की निर्मल जल धारा के समीप सघन वन कानन के मध्य में शोभायमान नैमिष अध्यात्म विद्यापीठ और उसके भीतर में स्थित ब्रह्मचर्यादि चारों आश्रमों की कल्पना पूजनीय श्री स्वामी जी महाराज के संकल्प का एक तरंग है, जिसे अगाध समुद्र के समान अपने हृदय में से निकाल कर बहाया है।

तपोभूमि की इस पवित्र भू भाग में अनेक ब्रह्मचारी, एक ओर अजिन मेखला दण्ड धारण किये वेदाध्ययन में रत रहते हैं तो दूसरी ओर अनेक सद्गृहस्थ पीतम्बर पहने मन्त्रपूत आहूतियों से देवताओं को सन्तुष्ट करते नैकविध यज्ञ यागादि अनुष्ठान में व्यस्त हैं। कितने ही वन में विहार करने वाले वानप्रस्थ पद्मासन लगाये ध्यान में बैठे हुए हैं तो अन्यत्र संन्यासीगण एकान्त में वेदान्त, श्रवण, मनन निदिध्यासन द्वारा आत्मा और परमात्मा को बोध करा देनेवाले-आत्मज्ञान में सक्त हैं।

ये सब अमानुषिक रचना, वैदिक संस्कृति के जीता जागता मूर्त स्वरूप श्री स्वामी जी महाराज के विनोद मात्र हैं। जिनका विस्तार 'एकोहं बहु स्याम्' इस श्रुति वाक्य को सार्थक बनाने के लिए किया गया है।

यद्यपि भगवान् आद्यशंकराचार्य ने भारतवर्ष की चारों दिशाओं में धर्म रक्षणार्थ चारों पीठ की स्थापना की और उनपर चारों पीठाधीश्वर आचार्यों को अभिषिक्त कर, धर्म रक्षा का कार्य सौंपा, तथापि पुराण प्रसिद्ध मुनि महर्षियों का यह व्यास पीठ रिक्त था, जिसे अलंकृत करके आचार्यश्री ने केवल नैमिषारण्य का ही

नहीं अपितु संपूर्ण भारत की संस्कृति के आदि प्रवर्तक पुरातन महर्षियों के आदर्श का स्थापन किया है। आज के संसार में धर्म के प्रति मनुष्यों की जैसी आस्था है उसे देखते हुए यह अनुमान लगाया जा सकता है कि धर्म का संघटन आज के जमाने का सब से महान् कार्य है। इस महान् कार्य के संघटन में महाराजश्री का अथक व अविरत प्रयत्न चल रहा है जिसकी पूर्णता का प्रतीक शत कुण्डात्मक महायज्ञ है। मैं आचार्यश्री के इस तरह के वैदिक धर्म प्रतिष्ठापनार्थ किये गये महान् कार्य की पूर्णतार्थ भगवान् से प्रार्थना करता हूं और साथ २ उस महान् पुरुष जगदाचार्य श्री का भी अभिनन्दन करता हूं जो इस प्रकार के अति मानुषिक (दैवी) कार्य करके संसार को सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा प्रदान कर रहे हैं।

शान्ति ! शान्ति !!

प्रश्न जिज्ञासु के, उत्तर गुरुदेव के

प्रस्तुत कर्ता : लल्लन प्रसाद व्यास

प्रश्न—परम श्रद्धेय गुरुदेव, मुझे आज बड़े सौभाग्य का अनुभव हो रहा है कि मैं आप से कुछ प्रश्नों के रूप में आपके समस्त आचार-विचार, आपकी विचार-धारा के पीछे समाज के लिए, समाज के सर्वतोन्मुखी विकास के लिये जो आपका अधिष्ठान चल रहा है, उस सब का परिचय भारतीय जनता को कराऊँ। इस उद्देश्य से मैं आपके सामने कुछ प्रश्न उपस्थित करूँगा। आशा है उनका आप जो उत्तर देंगे, उनसे समाज के विभिन्न पक्षों पर जो आपके विचार हैं वह हमारी भारतीय जनता तक पहुँच सकेंगे। प्रथम यह है कि यह जो सम्पूर्ण कार्य आपके चल रहे हैं, प्रचार कार्य भी तथा अन्य कार्य भी उनका उद्देश्य क्या है ?

उत्तर—उद्देश्य तो एक ही है—समाज का हित हो। हमारे प्राचीन काल के ऋषियों ने केवल मनुष्य का हित ही नहीं सोचा, उन्होंने प्राणी मात्र का हित सोचा है, मैंने जो ग्रन्थों का अध्ययन किया है, उनमें यह भाव व्यक्त होते हैं। प्राचीन काल के ऋषि

लोग विश्व कल्याण की बात सोचते थे और सारा जीवन उनका केवल इसी निमित्त होता था। मेरी श्रद्धा उन ऋषियों पर अधिक है और उन्हींकी वाणी हम को प्रिय है। हम यह चाहते हैं कि जो ऋषियों का कार्य अधूरा है, उसमें हम कुछ भाग बंटा लें। जहां तक मेरा सम्बन्ध है हम चाहते हैं कि उनकी योजना में हम पूरा योग दें। फिर भी ऋषियों की योजना को हम सामूहिक नहीं समझते हैं। जैसे गीता ग्रन्थ अर्जुन को सुनाया गया था, पर अब वह एक व्यक्ति को दिया गया उपदेश नहीं रहा है, यह उपदेश तो अब सार्वभौम हो गया है, सार्वजनिक है—उपदेश दिया तो अर्जुन को गया किन्तु उसका उद्देश्य इतना व्यापक है कि वह गीता सब देशों, सब काल के लिये हो गई है। इसी भांति मैंने ऋषियों के प्रत्येक कार्य का भी अध्ययन किया। उससे मैं इतना समझता हूं कि उनका जितना कार्य था वह किसी एक देश के लिए नहीं, एक क्षेत्र के लिए नहीं, एक जाति विशेष के लिए नहीं, एक काल के लिए नहीं था बल्कि सारे संसार के कल्याण के लिये था और उसी प्रकार से उन्होंने अपने विचारों को भी व्यक्त किया है। जैसे महर्षि पतंजलि आदि ने योगदर्शन में लिख दिया—मेरा जो जन्म है, यह मेरे लिये नहीं है, मेरे हित के लिये नहीं है, यह ईश्वरीय है, अमर है, जिसके बगैर सारा समय निरर्थक जायेगा। यह सार्वभौम है। यही नियम महाभारत का है—यह किसी जाति के लिये नहीं, किसी काल के लिये नहीं अपनाया गया है—यह सार्वजनिक कल्याण के लिये, सारी जातियों के कल्याण के लिये लिखा गया है। यह सभी समयोपयोगी है।

अतः मेरी समझ से इन ऋषियों के उपदेश सार्वभौम हैं, सब देशों के लिये हैं, सब जातियों के लिये हैं, सब काल के लिये हैं, इसलिये वह आज भी उपयोगी है, यही मेरी धारणा है। उनके सिद्धान्तों पर बहस हो सकती है लेकिन जब प्रयोग में वे सफल सिद्ध हो जायेंगे, तब बहस के लिये स्थान नहीं रहेगा। इसलिये हम सिद्धांतों को समझाने पर जोर नहीं दे रहे हैं, हम तो उनके प्रयोग पर जोर देते रहते हैं और उसका प्रयोग करना शनैः शनैः आयेगा। वर्तमान में भी वह उपयोगी हैं। यदि कोई कहें कि जब इतने उपयोगी नियम थे तो भारत का पतन क्यों हुआ ? ऋषियों के प्रति अब श्रद्धा क्यों नहीं रही ? तो मैं यह कहूँगा कि वह इतने गम्भीर, इतने सूक्ष्म नियम हैं कि सामान्य लोग उनकी गहराई तक नहीं पहुंच पाते हैं और इसलिये उनको समझने की उन्होंने उपेक्षा कर दी। वस्तुतः ऋषियों के जो सनातन नियम हैं उनकी उपेक्षा कर देने से ही देश का पतन हुआ है क्योंकि उन नियमों को समझने में उन्होंने उपेक्षा की। समझने के लिये प्रयास भी किया हो किन्तु ऐसा लगता है कि ऋषियों की वाणी, जो वेदों द्वारा प्रस्फुटित हुई है ठीक समझी न जा सकी उस

विशिष्ट व्यवस्था को जो भारतीय पद्धति थी, समझने के लिये तामसी पद्धति तो समर्थ नहीं हो सकती, राजसी वृत्ति वाला भी समझ नहीं सकता, केवल सात्विकी पद्धति वाला व्यक्ति ही उसको समझ सकता है। अगर सही सही हमारी इस व्यवस्था को समझाने वाली पद्धति है तो वह ऋचाओं के अनुसार स्थितप्रज्ञ वाली पद्धति है जो कि समाज के हित और परोपकार दोनों के ही लिये है—वह पद्धति जड़ समाधि ने नहीं अपनाई है चेतन समाधि में ही यह उत्पन्न हुई है और चेतन समाधि के बाद सविकल्प समाधि बनी रही—निर्विकल्प में पली और सविकल्प में बनी रही, यह ऋचाओं का एक बड़ा प्रत्यक्ष लक्ष्य है। अगर कोई ऋचाओं का प्रज्ञ न भी हो तो कम से कम उसको स्थितप्रज्ञ तो होना ही चाहिए। स्थितप्रज्ञ अर्जुन नहीं था इसलिए ऋचाओं की बात को वह समझ नहीं सका और अपने प्रियजनों को देखकर रोने लगता है। वेदव्यास युग के महान् प्रवर्तक रहे हैं। अर्जुन के मन में यह भावना उत्पन्न हुई कि जब मेरा अपना प्रियजन ही नहीं कोई रहेगा तब मुझे ऐसे राज्य की जरूरत नहीं है। यह जरूरी नहीं है कि सभी उपदेश का ठीक ठीक अध्ययन करें—लेकिन जब अर्जुन के मन का संशय दूर नहीं हुआ तब भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—जब तक तू स्थितप्रज्ञ नहीं होगा तबतक इस रहस्य को समझ नहीं सकता है—

श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला।
समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि॥

फिर अर्जुन कह पड़ा—

स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव।
स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत् किम्॥

अर्थ—भगवन्! स्थितप्रज्ञ की बात को मैं नहीं समझा—स्थित प्रज्ञा क्या होती है क्या स्थितप्रज्ञा वाले व्यक्ति की ही स्थिर बुद्धि होती है, वह कसे बोलता है उसके कैसे विचार होते हैं उसके लक्षण क्या हैं, मैं स्थित प्रज्ञ ही नहीं समझ पाया—वह कैसे उठता है कैसे बैठता है। तब भगवान् बोले कि शुद्ध कर्मवाले के लक्षण इस प्रकार हैं:—

प्रजहाति यदाकामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते॥

अर्थात्—संसार में जो भ्रम भरा हुआ है जो उस भ्रम में नहीं रह गया है और संसार के राग द्वेषों से जो बिलकुल अलग है, उसे ही स्थितप्रज्ञ कहते हैं। लेकिन अर्जुन

इतने से ही प्रसन्न नहीं दिखाई दिया—भगवान् समझ गये कि इतने से ही इसकी समझ में बात नहीं आई, अगर समझ जायेगा तो प्रसन्न हो जायेगा। भगवान् उसको और सरल करके कहते है :—

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥

स्थितप्रज्ञ का एक और भी लक्षण है—दुनिया जिसको दुःख समझती है ऐसे दुख का असर जिस मनुष्य पर यह पड़े कि वह दुःख नहीं है—सारी परिस्थितियाँ उसके विरुद्ध होते हुये भी जिसे उसका खेद न हो, दुःख से जो विचलित नहीं होता है, जिसकी संसार के सुखों में स्पृहा न रह गई हो—तो स्थितप्रज्ञ का यह भी एक लक्षण है। जिसने सारी इन्द्रियों को वस में कर लिया है, ऐसा मनुष्य स्थितप्रज्ञ कहलाता है। भगवान् फिर कहते हैं :—

यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम्।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥

अर्थ—जो न तो स्नेह करता है किसी शुभ चीज को प्राप्त कर न तो प्रसन्न होता है और न दुःख में ही जो दुखी होता है, जो राग-द्वेष आदि से निर्लिप्त है ऐसे मनुष्य की बुद्धि को स्थिर बुद्धि वाला समझना चाहिए। तो यह भी स्थित प्रज्ञ का एक विशेष लक्षण है। एक लक्षण यह भी है—

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥

जिस प्रकार कछुआ अपने सभी अंगों को समेट कर बैठ जाता है, ऐसे ही सब ओर से जो अपनी इन्द्रियों को अपने अपने क्षेत्रों में ही रहने देता है, इन्द्रियों के वश में नहीं रहता है तो यह भी स्थितप्रज्ञ का एक लक्षण है, लेकिन साधारण बुद्धि से ही यह समझ में नहीं आता है। असाधारण बुद्धि से ही समझ में आता है, अतः असाधारण बुद्धि से उसको समझते हुये जो दार्शनिक है, तत्वज्ञानी है, उसी दृष्टिकोण से समाज की व्यवस्था के लिये विधान बनाया जाता है। जब उस पवित्र दृष्टि से विधान बन जाता है, तब वह विधान सात्विकी, राजसी, और तामसी तीन भागों में विभक्त हो जाता है। कुछ ऐसे व्यक्ति होते हैं जिनको इसके अनुसार चलने के लिये दमन भी करना पड़ता है, क्योंकि समाज का जो उद्देश्य है वह सर्वभौम है। वैसे तो 'वसुधैव कुटम्बकम्' वाली बात अधिक उचित प्रतीत होती

है। आज भी समाज सारे विश्व को कुटुम्ब के रूप में देखना चाहता है लेकिन जब **विश्व** कुटुम्ब नहीं बनता है तब व्यवस्था मुश्किल हो जाती है। वैसे तो ऋषियों ने यह भी लिख दिया है कि विश्व कुटुम्ब बन चुका है और ऋषियों की योजना से ही वह बिगड़ा भी। इसमें भी एक शंका होती है कि वह व्यवस्था क्योंकर बिगड़ गई तो उसका उत्तर यह है कि ऐसा कौन सा कार्य है जिसको संसार में खरा कहा जा सकता है। यह शंका प्रत्येक कार्य के लिये उत्पन्न होती है कि जो एक बार बनाता है, वह बिगड़ना अवश्य है, यह प्रकृति का नियम है—तो बिगड़ क्यों गया, इसका उत्तर है कि यह तो प्रकृति का नियम है। तो समाज में एक व्यवस्था बनी जो कि बाद में बिगड़ गई। इसको इस प्रकार से भी कहा गया है कि अगर वह बिगड़ गई तो यह एक दोष है। इसलिये एक व्यवस्था ऐसी जरूर बनी है जिसमें विश्व कुटुम्ब बन गया है लेकिन वह व्यवस्था बिगड़ चुकी है इसलिये जिसको बनायें और उसमें कोई बिगाड़ पैदा हो जाय ऐसे कार्य को हम आरम्भ नहीं करते। जब बिगड़ी दशा है तभी हम उसको संभालने के लिये बैठे हैं कि जो व्यवस्था प्राचीन विश्व की हितकर है और सफल हो चुकी है, उसको हम पुनः सफल देखना चाहते हैं, यह हमारा उद्देश्य है।

प्रश्न—आपके इस महत्वपूर्ण कार्यक्रम के अन्तर्गत ऋषि आश्रमों की व्यवस्था प्राचीन रूप में है, ऐसा मैं समझता हूं। तो कृपा करके आप वर्तमान परिस्थितियों में ऋषि आश्रमों की उपयोगिता के ऊपर प्रकाश डालें?

उत्तर—वर्तमान समय में जब से भारत सम्पूर्ण रूप से स्वतंत्र हो गया है, तब से निर्माण कार्य बढ़ रहा है और अनेक प्रकार के निर्माण कार्य हो भी रहे हैं, सड़कों का निर्माण पहले से अच्छा हो चुका है और बन भी रही हैं, यातायात के साधन पहले से अच्छे हो गये हैं, टेलीफोन आदि की व्यवस्था हो गई है, अस्त्र शस्त्र भी पहले से अच्छे बनने लगे हैं, सिंचाई के जो साधन थे वह पहले से अच्छे हो गये हैं, पशुओं की नस्लों में सुधार किया गया है परन्तु इस समय मानवता गिर रही है जिसके कारण सफलता भी गिरती जा रही है। मानवता के माने हैं मानव चरित्र। अतः मानवता का निर्माण सबसे अधिक आवश्यक है। क्योंकि वर्तमान समय में जितने ही निर्माण एक तरफ अधिक हो रहे हैं उतने ही चरित्र निर्माण की ओर से लोगों में उपेक्षा की भावना घर करती जा रही है, जिसका एक भयंकर परिणाम होगा। यदि मनुष्य के अन्दर मानवता का निर्माण न करके केवल अन्य निर्माणों की ओर ही अधिक ध्यान दिया जायेगा, तो वह सारे निर्माण कार्य उपयोगी न सिद्ध होकर मनुष्य के लिये घातक सिद्ध हो जायेंगे। इसलिये शीघ्र से शीघ्र इस

बात की आवश्यकता है कि चरित्र से सम्बद्ध मानवता का निर्माण हो। ऋषि आश्रमों में पहले भी मानवता का निर्माण होता रहा है। ऋषि लोग उन आश्रमों में पढ़ने वाले प्रत्येक बच्चे को अपना ही बच्चा समझते थे और उन्हीं आश्रमों में, बड़े-बड़े राजा महाराजाओं का निर्माण हुआ है, जैसे रामचन्द्र जी, लक्ष्मण, कृष्ण भगवान् इन सब का निर्माण ऋषि आश्रमों में हुआ है, पांच पांडवों का निर्माण भी इन्हीं ऋषि आश्रमों में हुआ है, इसलिये ऋषि आश्रमों में मानवता के निर्माण की जहांतक बात है वह सत्य है। एक ओर जहां सार्वजनिक निर्माण के कार्य हो रहे हैं, कुछ लोग विकास के कामों लगे रहें तो कुछ लोग मानवता के निर्माण का भी कार्य लें। इस लिये हमने ऋषि आश्रमों का निर्माण किया है कि वहां पर मानवता का निर्माण हो। मानव निर्माण के बाद अन्य विकास के कार्यों में भी सुधार हो जायेगा। इस लिये ऋषि आश्रमों को संरक्षण और सुधार के लिये ही बनाया गया है।

प्रश्न—आपने कृपा करके ऋषि आश्रमों की उपयोगिता ऊपर प्रकाश डाला अब मैं आपसे निवेदन करूंगा कि ऋषि आश्रमों का आपने क्या स्वरूप निर्धारित किया है और इस सम्बन्ध में आपने किस सीमा तक सफलता अर्जित की है, इस सम्बन्ध में भी थोड़ा प्रकाश डालने की कृपा करें।

उत्तर—प्राचीन काल के जो ऋषि आश्रम थे उसमें अनेकों प्रकार के ऋषियों का निर्माण हुआ है। यहाँ पर ऋषि और मुनि इन दोनों का ही स्वरूप अधिक है। ऋषियों में मैं प्रथम राज ऋषियों के सम्बन्ध में बताये देता हूं इनमें कुछ देव ऋषि भी आते हैं जो कि इन आश्रमों में बनते थे। इन ऋषि और मुनियों का कार्य बंटा हुआ रहता था। इस बात को मानना पड़ेगा कि उनमें योग्यता अधिक होती थी। मुनियों में तो कोई शिक्षा के सम्बन्ध में कार्य करता था, कोई प्रबन्ध में अपना योग देता था और कुछ जो अनुसंधान होते थे उनका प्रचार और प्रकाशन का कार्य करते थे, कुछ योग साधनों का प्रचार व प्रसार करते थे—कुछ उपदेशक का काम करते थे जिसके द्वारा भाषणों को जन्म दिया गया और इस प्रकार से संस्कृत देव-वाणी बनी। ऋषि अपने पांडित्य के द्वारा राजाओं को राज-शिक्षा दिया करते थे, समय-समय पर वानप्रस्थआश्रम की व्यवस्था स्थापित करते और फिर उनमें संशोधन व परिवर्तन करते थे। ऋषियों का सहयोग ग्रामों में भी रहा है, पंडे, पुजारी दीक्षित, पाठक, चतुर्वेदी, अग्निहोत्री, ऐसे सम्बोधनों से वही व्यक्ति कहे जाते थे। कोई अग्निहोत्र करने का काम करता था तो कोई दीक्षा देने का। इन ऋषियों का एक प्रचारक और प्रसारक मंडल था जो केवल भारतवर्ष में ही नहीं अपितु सारे विश्व में फैला हुआ था।

इन ऋषियों से प्रेरणा लेकर हम लोग काम करते थे और इन्हीं ऋषियो से शिक्षा भी लेते थे। यह ऋषियों की प्रथम संगठन शक्ति थी दूसरी ओर राजर्षि बनाये जाते थे, वह राज व्यवस्था को ठीक करते थे। उन्हीं के द्वारा राज्यों का निर्माण होता था। इस प्रकार व्यापार, चरित्र-निर्माण और समाज में अनेकों पदार्थों के आविर्भाव में तथा अनेकों प्रकार के जो सामाजिक कार्य होते थे, उनमें ऋषियों की जिम्मेदारी अधिक थी। वह इस बात को देखा करते थे कि चरित्र की हानि करके तो कोई किसी प्रकार के पदार्थ को प्राप्त नहीं कर रहा है। अगर कोई किसी प्रकार का काम करे तो यह उनकी जिम्मेदारी होती थी कि उसमें किसी प्रकार की अनीति न होने पाये। कोई धर्म के विरुद्ध आचरण न करे। लोग अपनी शरीरिक उन्नति करें, कोई ऐश्वर्य को न बढ़ावें, ऐसे समाज का संरक्षण करें, जिसमें गरीबी दूर करें और जहां वे धन की वृद्धि करें जहां अनेकों प्रकार के जीविका के साधनों का संरक्षण करें, मानव जीवन की सामग्री का संकलन करें लेकिन उनको अर्जित करने में कोई किसी प्रकार की अनीति का प्रयोग न करे। यदि कोई ऋषि लोगों की बातों और उपदेशों से प्रभावित होकर किसी प्रकार की व्यवस्था में अनीति नहीं करता है तो ऋषियों के समान ही उसकी प्रतिष्ठा की जाती है लेकिन यदि कोई व्यक्ति ऋषियों के उपदेशों को टालकर के कुछ अपने ही पाखण्डों में आसक्त होकर नियमों का उल्लंघन करता है तो वह समाज के नियमों का उल्लंघन करता है वह अपराधी समझा जाता था। अपराधियों के लिये उस काल में ये नियम थे कि वह समाज से पृथक् हो जाता है तो राज्य-संस्था दण्ड के द्वारा उसको सुधारे। पहले धर्म संस्था उसको सुधारने का काम करती है लेकिन वह अगर असमर्थ हो जाती है तब राज्य-संस्था का काम रह जाता है कि वह-दण्ड के द्वारा उसका सुधार करे। इस तरह से जो समाज से पृथक् हुये व्यक्ति हैं वह उनको सुधारने का काम करती है। जो लोग सात्विकी प्रकृति के होते हैं वे तो समझाने से ही उन नियमों को समझ लेते हैं, इसलिये वह सनातन नियमों का किसी प्रकार से उल्लंघन नहीं करते हैं किन्तु जिनकी बुद्धि दूषित है, जिनका मस्तिष्क विकृत हो, जिनका मन बस में न हो, उसके संस्कार बुरे पड़ गये हों तभी वह नियमों का उल्लंघन करता है तो दण्ड देना पड़ता है लेकिन यदि फिर भी उन नियमों का उल्लंघन करता है तो फिर सामान्य दण्ड से उसको कड़ा दण्ड देना पड़ता है और यहांतक कि प्राण दण्ड भी। यह ऋषि आश्रनों के द्वारा व्यवस्था होती थी वहीं से राज्य-व्यवस्था के नियम बनते थे, धर्म-व्यवस्था के नियम बनते थे, वर्णाश्रम के नियम बनते थे उन नियमों की शिक्षा होती थी उनका पालन कराया जाता था विश्व कल्याण के लिये, जिसके फलस्वरूप राष्ट्र अनीति का कार्य नहीं करता था।

अब इस कार्य में हमने कहांतक सफलता पाई हैं, यह बताना आवश्यक है। प्रथम तो हमको कठिनाई यह पड़ी कि कैसे हम इस योजना को कार्यान्वित करने जा रहे हैं, इसको समझाने में समाज में हमको उल्टी ही विचारधारा प्रतीत हुई। समाज में एक ऐसा तर्क उपस्थित हुआ कि हम पुरानी बातों को पकड़ लेना चाहते हैं एक ऐसी वस्तु का सहारा लेना चाहते हैं जो कि प्रायः नष्ट हो चुकी है और उसमें किसी प्रकार की सफलता होने की आशा नहीं है। इसमें हमको समाज से सहयोग नहीं मिला। किन्तु हमें इसकी सफलता में पूर्ण विश्वास था और उसके लिये रात दिन कष्ट सहने के लिये तैयार हो गये। हमने सोचा कि समाज के जो लोग पुरानी रीति में काम करना उचित समझते हैं उनको हम अपने साथ ले लें और इसलिये जो समाज के लिये अनुपयुक्त लोग थे, वृद्ध लोग, उनका ही हमने आह्वान किया, वे लोग हमारी योजना में सम्मिलित होने लगे और इस प्रकार से हजारों रिटायर्ड लोग, हमारे साथ आ चुके हैं। यहां आने पर उनको शान्ति भी मिली और कई लोग जो कि समझते थे कि उनका स्वास्थ्य अब नहीं लौटेगा, वे स्वस्थ होने लगे, जो जीवन से निराश हो चुके थे और यह समझते थे कि किस तरह जीवन व्यतीत हो, उनको मरना तो है ही, इसलिये कि हम समाज के लिये अनुपयुक्त हैं अपने को अयोग्य समझने लगे, आज वह स्वास्थ्य लाभ करके अपने को योग्य भी समझने लगे हैं और आगे काम करने के लिये वे अग्रसर हुये हैं। जब इनमें से लोग अपने घरों में गये और उनकी स्थिति सुधरी हुई घर वालों ने देखी, लड़कों ने देखी तो इस योजना के प्रति उनकी श्रद्धा बढ़ी और इस तरह से नवयुवक भी इस ओर आगे आये। कुछ लोग यह देखने आये कि जो नई व्यवस्था हमने की है वह कैसे चल रही है और जब उनको इसमें कल्याण ही दिखाई दिया तो नौजवानों ने भी अपनी सेवायें देनी आरम्भ कर दी।

चूंकि इसमें पैसेकी प्राप्ति नहीं है इसलिए जो पैसे वाले थे, उन्होंने इसमें अपने पैसे का सदुपयोग समझा और वे भी अग्रसर हुये। उन्होंने जगह जगह का दौरा शुरू कर दिया है। इसके पश्चात् हमारा विचार यह हुआ कि जब लोगों की श्रद्धा बढ़ रही है तो हम विद्यार्थियों के अन्दर मानवता का निर्माण करें और इस लिये विद्यालयों में भी कार्य आरम्भ कर दिया है। कुछ विद्यालयों का वातावरण और कुछ विद्यालयों के वार्डन हमारे कार्य में सहायक रहे और फिर यह सोचा कि वह विद्यार्थी जिसके संस्कार अच्छे नहीं हैं उनके लिए क्या किया जाय, उनके कौन से संस्कारों में कमजोरी आ जाती है। मनन करने पर यह पता चला कि जबतक वह कालेजों में पढ़ते हैं तभीतक उनका पढ़ने में मन लगता है और फुरसत पाकर जैसे ही वे बाहरी आचार-विचार में आते हैं तो उनके संस्कार

उनको भौतिक सुखों के आकर्षण की ओर खींचते हैं। नया नया संसार उन्होने देखा है तो इसलिये उनकी इच्छा होती है कि वह उस व्यवस्था को देख लें लेकिन उनके सुधार के लिये कोई रास्ता नहीं सोच पाये। अब यह विचार है कि वह इस व्यवस्था को देख लें, उनके आने से क्या परिणाम होगा, ऐसी वहां पर शिक्षा भी धार्मिक कोई नहीं दी जाती है, जिसकी वजह से वह विषय-भोगों में फंस जाते हैं और इस तरह संसार के वातावरण से आकर्षित होकर एक उच्छृङ्खलता सी उनमें आने लगनी है और फिर वह दिन प्रति दिन बढ़ती ही जाती है। कुछ लोग उनको बढ़ावा भी देते हैं और उनसे अपना काम निकाल लेते हैं। कुछ लोग ऐसे हैं कि जो विद्यार्थियों को पकड़ करके उनके घर से धन ले लेते हैं और उनसे अनेकों लाभ उठाते हैं तो यह विद्यार्थियों की दशा भी कैसे ठीक हो, जो इस प्रकार की परिस्थितियों में बिगड़ जाते हैं उनको किसी न किसी प्रकार नियंत्रित किया जाय। जब इतना हम कर लें तब हमारे जो ऋषि आश्रम हैं, उनमें छात्रावास बनाया जाय और ऐसे छात्रावासों में ठहराने के लिये कुछ उनसे लिया न जाय, निःशुल्क उनको शिक्षा दी जाय क्योंकि कुछ न कुछ प्रलोभन उनको ऐसा दिया जाय कि तुम्हारी पढ़ाई में ये छात्रावास सहायक होंगे, तुम को टीचर नहीं लगाना पड़ेगा, हम दो चार मास्टर रख देंगे और जो तुम्हारे कमजोर विषय हैं, उनको ठीक किया जायेगा इस प्रलोभन का कैसे पता लगे, इसके लिये हमारा अभियान चल रहा है। उनमें कम से कम एक घंटा धार्मिक शिक्षा भी आवश्य दी जाय। जो उनके संरक्षक हैं वे उनके सुधार के लिये कुछ उपाय सोचें, या तो विद्यार्थी को यहां भेजें या स्वयं करें। ६ घंटा तो वे स्कूल में जाते हैं तो वह ६ घंटे उनके निकल गये, बाकी ६ घंटे अपने सम्मुख ही रख कर उसकी देख भाल करें बाकी १२ घंटों में ऐसे उपायों से उनसे काम लिया जाय जिसको वे सुख पूर्वक ग्रहण कर सकें। यदि उसका अच्छा परिणाम हुआ तो उसकी सफलता को देख कर अवश्य ही जनता को वह ग्राह्य होगा। फिर हम उसके विस्तार के बारे में भी देख रहे हैं। जब विद्यार्थियों में चरित्र की उन्नति होगी और उसका विस्तार होगा तब खेतों में, किसानों में और सामान्य लोगों में इसका प्रचार व प्रसार महिलाओं में, नगरों में, घरों में, गांवों में सर्वत्र करें। फिर इसका प्रचार करने के लिये प्रचारकों को भेजें और जहां जहां पर प्रचार कार्य हो, वहां पर जब लोगों में चारित्रिक उन्नति होगी तो उनके हृदयों में सुख और शान्ति उत्पन्न होगी। इस प्रणाली में बड़े बड़े विद्वान्, वाइस चान्सलर, चान्सलर और अधिकारी भी श्रद्धा रखते हैं और पूर्ण आशा है कि हमें इस कार्य में पूर्ण रूप से सफलता मिलेगी।

प्रश्न—यह सर्वविदित है कि आपने अपने कार्य का अधिष्ठान ईश्वर-वादी रक्खा है, वर्तमान परिस्थितियों में इसकी क्या उपयोगिता है और वह कहां तक व्यावहारिक है ?

उत्तर—वर्तमान समय में जो ईश्वरवादिता है, इस विषय में यही कहा जा सकता है कि यह हर धर्म में फैला हुआ है। ऋषियों की प्रणाली में ईश्वर का साक्षात्कार भी होता है, ईश्वर से प्रकट रूप में मिलने की बात भी सामने आती है, ईश्वर के बहुजनन वाले लक्ष्य को लिया गया है लेकिन आजकल इस पर इतना ध्यान नहीं देते हैं। किसी को कोई चमत्कार हो गया, किसी ईश्वर के नाम पर तो उस को इतना ऊंचा उठाया गया ईश्वर के नाम पर, जो कि मेरी समझ से एक भ्रम है। जो वास्तव में ईश्वर है वह मनुष्य के भीतर होता है। ईश्वर सृष्टि की चीज नहीं है, अन्ध विश्वास की चीज नहीं है। ईश्वर तो वैज्ञानिक भी होता है, ज्ञानी भी होता है और इसका ज्ञान ऋषियों को भी होता है, ईश्वर का अनुभव हो सकता है और हो रहा है। जिसे ईश्वर का सही ज्ञान होता है, उसके जीवन चरित्र में किसी तरह की चीज नहीं पाई जाती हैं। जैसे शंकराचार्य जी, सन्त तुलसीदास, सूरदास आदि सन्तजन हैं, उनके आचार-विचार में, उन भावनाओं में किसी को यह साहस नहीं होता है कि यहाँ पर कोई उनके चरित्र पर या जीवन पर कोई दोष निकाल दें। उन्होंने जो न्याय किया, जो अप्रत्याशित बातें उन्होंने पैदा कीं तो उसी को लोग यह समझने लगे कि यह ईश्वर ही थे। यह कहते थे कि हम तो ईश्वर नहीं हैं लेकिन ऐसी निष्ठा लोगों में हो गई कि वह उन्हीं को ईश्वर मानने लगे। स्वामी रामदास जी से मैंने ईश्वर का ज्ञान प्राप्त किया है। ईश्वर से हमारी भलाई होती है तो हम उस ईश्वर के प्रचारक हैं, जो कि बहुजनन वाले, धर्म का काम करने वाले हैं, जो कि जन-जीवन के लिये कल्याणकारी सिद्ध हो जाय और जनता उस ईश्वरीय बहुजनन वाले को ईश्वर समझने लगे और उससे समाज को किसी प्रकार की क्षति नहीं है।

जिससे सभी का उत्थान और सार्वजनिक हितकार्य होता हो तो तब वह सही ईश्वरवाद है। वर्तमान स्थिति में तो ईश्वरवादिता का दम्भ ही दिखाई प्रतीत होता है। उसमें प्राणों की भी आशंका है और दिखाई भी नहीं देता है तो इस भाव ने निराशावादिता को जन्म दिया, इसलिये यह समझ कर कि जो कुछ भी करता है, ईश्वर ही करता है, उसमें मृत्यु की आशंका न हो। अगर लोग आशावादी होंगे और उसीके अनुरूप सारी व्यवस्था हो तो निराशावादिता दूर हो सकती है। ईश्वरवादिता

का अगर सच्चा प्रचार किया जायेगा तो ईश्वर तो विश्व के बीच है और विश्व कल्याण के लिये सोचने वाला है। जो ईश्वर का मित्र होगा, धार्मिक प्रवृत्ति वाला होगा, वह भी विश्व कल्याण की बात को सोचेगा और सोच कर न्याय की बात करेगा। महात्मा गांधी ईश्वरवादी थे। वह कहते थे कि दैवी शक्ति मेरे में आई है जो कि ईश्वर से मिली है। स्वामी रामदास, शंकराचार्य, महामना मालवीय, हमारे देश में बहुत से ईश्वरवादी हुए हैं। उन्होंने समाज की सेवा की है। जो मनोवृत्ति उच्च विचारों को लेकर व्यक्त की जाती है उसका असर भी ऊँचा होता है यही कारण है कि तुलसीकृत रामायण लिखी गई, यह सच्ची ईश्वरवादिता है। इसलिये झूठी ईश्वरवादिता का शमन किया जाय और सच्ची ईश्वरवादिता का प्रचार किया जाय; उससे शीघ्र ही लोगों की पापवृत्ति नष्ट हो जायेगी और लोग जन-हित के कामों में लगेंगे। इससे अन्त में एक सन्तोष प्राप्त होगा जिससे कि वह अधिक सुख प्राप्त करने की भावना से विरक्त होगा। आज जितना भी भ्रष्टाचार फैला हुआ है वह केवल अधिक सुख की कामना को लेकर ही है। जब उसका भौतिक सुख समाप्त हो जायेगा ईश्वर के भजन से तब फिर भ्रष्टाचार कहाँ रह जायेगा। इसलिये ईश्वरवादी होना अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होता है किन्तु वह सच्चे अर्थों में ईश्वरवादी होने से ही होता है।

प्रश्न—वर्तमान में समाज में जो अनेक प्रकार की कुरीतियों और अराजकता का उदय हुआ है, उसका कारण अनेक विद्वान् शिक्षा-व्यवस्था में कुछ अभाव को बताते हैं। यदि ऐसा है तो कल्पना अर्थात्—भारतीय कल्पना के अनुसार शिक्षा का स्वरूप क्या होना चाहिए ?

उत्तर—शिक्षा का सम्बन्ध मस्तिष्क से है, हृदय से हैं और स्वास्थ्य से है। स्वास्थ्य हृदय और मस्तिष्क तीनों स्वस्थ हों, तभी वह मनुष्य स्वस्थ माना जाता है। यह तीन प्रकार के स्वास्थ्य तभी उत्तम हो सकते हैं जब कि विद्यार्थियों को चरित्र के सम्बन्ध में शिक्षा दी जाय, जितने और विषय पढ़ाये जाते हैं उनके साथ-साथ ही चरित्र के बारे में भी उनको शिक्षा मिलनी चाहिए, केवल मुख्य तौर से चरित्र ही न पढ़ाया जाय, मौखिक रूप से बल्कि व्यावहारिक चरित्र पढ़ाया जाय। पढ़ाने वाले स्वयं चरित्रवान् हों और वातावरण भी चरित्र को दूषित करता है, इसलिये ऐसे वातावरण में उनको भेजेंगे जहां पर कि चरित्र का पोषण होता है, न कि उनका शोषण होता हो। इसके साथ-साथ में बुद्धि और हृदय का ज्ञान मनोवैज्ञानिक ढंग से पढ़ाने में पूरा नहीं होता है इसलिये वह केवल मौखिक ज्ञान न हो।

क्योंकि बुद्धि के अन्दर जो ज्ञान आता है, वह आत्मा से आता है इसलिये यह आवश्यक है कि इस आत्मतत्व का ज्ञान अनिवार्य रूप से विद्यार्थियों को कराया जाय परन्तु दर्शन तो अनिवार्य न हो सके—दर्शन-शास्त्र का कोई न कोई उपयोग तो होता ही है, लेकिन सामान्य ज्ञान, जैसे नागरिक-शिक्षा है, या नगर में रहने के लिए जिस सामान्य विचारधारा की आवश्यकता होती है, वह सब पढ़ाया जाय लेकिन उसके साथ आत्मतत्व ज्ञान को तो अनिवार्य कर दिया जाय, प्रत्येक विद्यार्थी को वह पढ़ना ही पड़ेगा, चाहे और विषयों को कोई अपनी रुचि के हिसाब से ले भी, तब भी तत्व-ज्ञान अनिवार्य रूप से उसको पढ़ना होगा। तो इस ज्ञान से जो बुद्धि का स्रोत आत्मा है, उससे उसका सम्बन्ध बना रहे। हर विद्यार्थी चाहता है कि उसकी बुद्धि बढ़े, विद्या बढ़े लेकिन उनको इस बात का ज्ञान नहीं है कि बुद्धि को बढ़ाने के लिए अनिवार्य स्रोत कौन-सा है, धीरे-धीरे वे उस स्रोत का मधुर मंत्र प्राप्त करें और यह मधुर मंत्र प्राप्त करना हरएक विद्यार्थी के लिए अनिवार्य होना चाहिए। वह है गायत्री मंत्र, तथा ईश्वर प्रार्थना स्तोत्र इसको हरएक विद्यार्थी को अपने अधिकारानुसार पढ़ना चाहिए और उसका पाठ करना चाहिए।

प्रश्न—जैसा कि आपने कहा कि गायत्री मंत्र का जाप करना चाहिये, तो क्या इसका जाप हर एक कर सकता है ?

उत्तर—प्रत्येक में एक बुद्धि है, जैसे कि कुछ लोगों को पौराणिक चीजों का अध्ययन करना है और विशेष अध्ययन करना है तो उसके पीछे बुद्धि है, किसी को विद्या का अध्ययन करना है, उसके पीछे भी बुद्धि है। जैसे किसी को खेती करना है और मिडिल तक ही पढ़ना है, तो इतनी शिक्षा तो अनिवार्य हो, यह शिक्षा तो सामान्य हुई, लेकिन कुछ विद्यार्थी जिनको कि वेद की विशेष शिक्षा प्राप्त करनी हो, उन प्रत्येक द्विज विद्यार्थी के लिये यह आवश्यक है कि वह गायत्री मन्त्र वैदिक पद्धति से जपें, जिनको सामान्य ज्ञान प्राप्त करना हो तो पौराणिक-पद्धति से पढ़ें या तांत्रिक-पद्धति से पढ़ें क्योंकि बुद्धि के विकसित होने में फिर वह मंत्र का ही काम कर सकता है और बुद्धि का विकास न करके जैसे सैनिक सिपाही को आज्ञा का पालन करना सिखाया जाता है बनिस्बत बुद्धि के विकास के, क्योंकि उनमें पूरी बुद्धि अगर विकसित हो जायेगी तो वह फिर मंत्र हो जायेगा इस लिये यह जरूरी है कि उसका वह विकास अधूरा रहे। अगर अधूरा नहीं रहेगा तो सैनिक भी नहीं बन सकेगा, फिर उनकी धारणा तार्किक हो जायेंगी, फिर वह पता लगायेंगे कि कहां पर हमारी लड़ाई हो रही है

और कोशिश करेंगे कि हम वहां न जायं क्योंकि उनको फिर चिन्ता होने लगेगी कि कहीं हम मारे न जायं। तो जो सामान्य पढ़ जाय वह सैनिक बने और जिसको आगे ज्ञान अर्जित करना हो तो वह कौन विधि से कौन सा जाप करे वह मैंने बता दिया है। जिस तरह से सैनिक के लिये सामान्य पढ़ाई है उसी तरह से किसान, मजदूर का काम करने वाले हैं उनके लिये भी सामान्य ज्ञान की जरूरत है इसलिये उनको इसकी आवश्यकता नहीं है लेकिन जिनको संसारिक नीति को देखना है उनका ज्ञान अधिक होना ही चाहिये और उसके लिये उनको नित्य गायत्री का जाप कर ईश्वर से बुद्धि के बढ़ाने के लिये प्रार्थना करनी चाहिये।

प्रश्न—गायत्री का जाप किस परिस्थिति में हो ? उसके लिये कोई विशेष स्थान तथा वातावरण होना चाहिये ? कौन सी विधि सही है ?

उत्तर—यदि परिस्थिति उसके पास नहीं है तो फिर सामान्य विधि से करे और यदि परिस्थिति अच्छी हैं तो विशेष विधि से करे, इसके लिये तो शास्त्रों में छूट दे दी गई है। क्योंकि केवल गायत्री मंत्र ही नहीं बल्कि जितने भी धार्मिक ग्रंथ बने हुये हैं उन सब में इतनी छूट दे रखी है कि केवल खाना पूरी कर दे। इसके लिये आवश्यक नहीं है कि कोई मनुष्य अपने निर्वाह के लिये किसी विधान का उल्लंघन करे। जब वह असमर्थ हो जायेगा तभी विधान का उल्लंघन कर सकता है और यदि विधान का उल्लंघन करता है तो फिर कड़ा विधान मनुष्य के लिये बनाना पड़ता है इसलिये उसको इतना सरल करके रखा है कि जिससे कि उसको किसी तरह से विधान का उल्लंघन न करना पड़े।

प्रश्न—विश्वविद्यालय शिक्षा के सम्बन्ध में भी कुछ प्रकाश डालें। क्या उक्त शिक्षा सभी स्तरों पर लागू हो ? किस प्रकार से छात्रों को अनुशासन में लाया जा सकता है ?

उत्तर—हम यह प्रयास कर रहे हैं कि सभी कालजों के विद्यार्थी छात्रावास की योजना में सम्मिलित हों, कुछ कालजों के विद्यार्थी इस योजना में सम्मिलित हो भी रहे हैं। सहस्रों विद्यार्थियों की मनोवृत्ति को बदलने में भी हम सफल रहे। उनकी मनोवृत्ति यह हो कि विद्यालय से निकलें तो वह हर साल फर्स्ट डिवीजन में पास हों और कम से कम सैकेन्ड डिवीजन से नीचे न हों।

जहां हम विद्यार्थियों का निर्माण कर रहे हैं तो देखें कि उसके साथ-साथ वह विद्यालयों में भी निर्बल न रहें और फिर मनोवृत्ति में भी वे पूर्ण चरित्रवान हों। इस प्रकार के आदर्श विद्यार्थी हजारों की संख्या में प्रचार के लिये छोड़ दिये जायेंगे

और फिर वे विद्यालयों की शिकायतें बतलावें। उन शिकायतों की जांच करने के लिये तथा उनमें जो त्रुटियां हों, उनको दूर करने के लिये एक कमेटी बनाई जाय, यह प्रस्ताव है। जिन साधनों से विद्यार्थी आदर्श बनें उन सिद्धांतों को यदि उचित समझें तो सरकार स्वयं ही उनको उपयोग में ले आये। यदि उपयोगी साधन हैं तो उनके द्वारा फिर हजारों विद्यार्थी और शिक्षा ग्रहण करेंगे। यह भी एक सामायिक प्रश्न है कि कहीं पर विद्यार्थियों की संख्या ज्यादा है उनके लिये क्या किया जाय, उनमें क्या सुधार किये जायं। तो इसका जब प्रकाशन हो जाएगा, गांव-गांव में तब जनता को विशेष लाभ होगा, क्योंकि हम अभी हजारों विद्यार्थी तो नहीं तैयार कर पाए लेकिन सैंकड़ों की संख्या में तो पहुंच ही गई है, जो कि निर्मित होकर अपने काम पर चले गए, कुछ सेना में हैं, कुछ को हम बुला सकते हैं। जो कार्य पर चले गए हैं वह समाज की सेवा में किनने उपयोगी हैं, उनको भी देख लिया जाय और जो काम पर नहीं गए, अध्ययन कर रहे हैं, उनको भी देख लिया जाय। अगर उन लोगों को कालेज के लोग देखेंगे तो उनसे उनको भी प्रेरणा मिलेगी और उससे समाज का हित ही होगा।

प्रश्न—हमारी राज्य व्यवस्था में जो दोष पैदा हो रहे हैं उसका एक कारण यह भी है कि देश के विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार की गड़बड़ियाँ व्याप्त हैं। आपकी कल्पना के अनुसार राज्य-व्यवस्था क्या होनी चाहिए जिससे कि वह सुचारु रूप से चले। जिस के द्वारा राज्यों का सुन्दर निर्माण हो सकता है वह कौन से साधनों से सम्भव हो सकता है?

उत्तर—राज्य-व्यवस्था के लिए राज्य में छोटे-बड़े न्यायालय तो हों ही किन्तु जो सबसे चोटी पर के न्यायालय हैं, उसके निर्णय के कोई ऐसे साधन चालू नहीं हो सके कि वहां पर भी आसानी से आदमी जा सके। ऊंची चोटी के न्यायालय का जो निर्णय होता है वह सही ही मान लेना चाहिये। इसी प्रकार से जो नवीन वियार्थी आते हैं वह कुरुक्षेत्र में भरती किये जाते हैं तो उनकी परीक्षा करके फिर भरती किये जाते हैं। इस प्रकार से इसकी बजाय जिनको अनुसंधान करना हो, उनके लिये ऊंचा इम्तिहान हो और क्लर्क और छोटे-छोटे आफिसर बनने के लिये तो कुछ नीचे से ही उनको शिक्षा देने के लिये कुछ प्रबन्ध करना चाहिए और उनको भी कुछ ऊंची श्रेणियों में काम करने के लिये समय दिया जाय, उसमें उनकी परीक्षा हो जाय और जो बेहतर विद्यार्थी हैं उनको आगे बढ़ाया जाय।

जहां पर उन्हें अनुसंधान करना है, जीवन का निरीक्षण करना है तो उन्

की दशा भी समझ लें कि उनकी क्या परिस्थिति है। केवल कागज का मुआइना करने से ही पूरी बात समझ में नहीं आयेगी। सबक का ज्ञान तो वहां से होगा और जब सबक का निर्माण ज्ञान हो गया फिर उसके बाद जो विद्यार्थी जनतंत्र की कार्य प्रणाली में सफल हों, उनकी जांच कर ली जाय और अगर जांच में वह खरे नहीं उतरते हैं तो फिर उनको नीचे से भरती किया जाय। कार्य करने से पहले उनको उसी ट्रेनिंग में रख दिया जाय और साल दो साल की ट्रेनिंग में ६ महीने उनको व्यवहारिक चरित्र की शिक्षा दी जाय, उस चरित्र शिक्षा में यदि कहीं पर ढील होती है तो उन को जेलों में न भेज कर के, जैसा कि विदेशों में होता है कि कोई आदमी आर्थिक संकट के कारण चोरी करता है तो उसे जेल में रख कर कारगर बनाया जाय।

जब आर्थिक संकट नहीं होगा तो वह चोरी नहीं करेगा, लेकिन केवल आर्थिक संकट ही कारण नहीं है। बड़े घरों के लड़के भी चोरी करते हैं तो उसमें आर्थिक संकट का प्रश्न नहीं है बल्कि उसमें भौतिक लिप्सा का दृष्टिकोण जो कि उसके संस्कारों से उत्पन्न होते हैं तो वह एक तरह से मशीन का बिगड़ा हुआ पुरजा होता है और जिस तरह से मशीन के बिगड़े हुए हिस्से को कारखाने में ले जाकर सुधारा जाता है तो उसी तरह से मनुष्यों को सुधारने के लिए उनको जेल भेजा जाता है और उसे सुधारशील बनाया जाता है तो वहां पर उसको काम सिखाया जाय तो उससे उद्योग का मसला भी हल हो जायेगा। इस तरह से जब वह काम सीख लेंगे तो जिनके पास काम वगैरा है, धन है, जिनके संस्कार घटे हुए हैं तो उनके संस्कार इन आश्रमों में ठीक कर दिये जायं और उससे उसको सही रास्ते पर लाने के लिए मजबूर किया जाय जिस तरह से कि पुलिस किसी काम के लिए किसी को मजबूर करती है। इस प्रकार से चरित्र में जहां-जहां पर गलतियां पायी जायं और जिन जिन के चरित्र में खराबी पायी जाय उनको वहां पर भेजा जाय साल दो साल के लिए और जब चरित्र ठीक हो जाय, तभी आये। यदि फिर खराबी होती है तो फिर आयेंगे इस तरह से बड़ी-बड़ी जेलों की तरह से यह क्षेत्र भी बनें।

यहां पर यदि घर के लोग उनको स्वयं ही छोड़ जायं तो बेहतर होगा और जब इस प्रकार से शिक्षा का अनुपात होगा तभी वह लोग अच्छे बनेंगे। जैसे जेल का भय रहता है तो उस भय से आदमी चोरी नहीं करता है लेकिन अब यह भय भी उपयोगी सिद्ध नहीं हो रहा है, इसके साथ-साथ ईश्वर का भी भय हो, परलोक का भी भय हो। दुष्कर्मों से वर्तमान में क्या मानसिक क्लेश होते हैं यह भी शिक्षा दी जाय जिससे कि वह अपने वर्तमान मानसिक क्लेशों को भी समझ सके और परलोक

के क्लेशों का भी भय रहे तो मनुष्य वहुत कुछ शिक्षा पाकर सुधर सकता है। इस तरह से लोग जो भी कार्य करेंगे वह ठीक तरह से करेंगे, जैसे अदालतों में किसी केस के सम्बन्ध में झूठी गवाही लोग देते हैं तो वह भी नहीं रह जायगी। इसके लिए कुछ लोगों को तैयार किया जाय और दस-दस, पांच-पांच की टोली में उनको गांवों में भेजा जाय। जो सच बोलने वाले हों जिन की अगर बोटी बोटी कटवा ली जाय लेकिन असत्य को नहीं बोलेंगे, जिनका इस तरह का त्याग हो। इससे सबसे बड़ा सुधार झूठी गवाही देने के लिए होगा।

जो लोग जनता की आवाज को दबाते हैं वह पहले से ही जाकर अपना दबाव डालते हैं कि हमारा काम करो तो हम तुमको यह बना देंगे। जनता गुन्डों से डरती है तो जितने गुन्डे हैं उनको गुन्डा एक्ट में भरती कर दिया जाय और जो भरती हो जाय, उसको वोट देने का अधिकार ही न रहे। जिस तरह से वकील अगर इसमें भरती हो जाता है तो उस को मुत्तअल कर दिया जाता है तो वह फिर कैसे मुकदमा ले सकता है। इसी तरह से, जब वोट देने का अधिकार ही नहीं रहेगा तो फिर दबाव किस के लिये डालेगा।

प्रश्न—प्रश्न यह है कि कौन इस कार्यवाही को करे, क्योंकि ऐसा भी सुनने में आया है कि जिनकी आर्थिक स्थिति अच्छी है और बहुत से जो हमारे कर्णधार हैं, उनमें भी ऐसे तत्व हैं जो अपने हाथ से इस तरह के दूषित कर्म करते हैं। जब स्थिति इस सीमा तक पहुँच चुकी है तो इसको कैसे कार्यान्वित किया जा सकता है।

उत्तर—इसको कार्यान्वित करने के लिए राजनैतिक पदों से अलग जो लोग समझते हैं कि हम जनता की सेवा कर सकते हैं तो वह अलग से राजनैतिक पदों के बाहर अपने लिए एक सामाजिक और धार्मिक क्षेत्र बनावें, जो कि जनता की सेवा करें और दूसरों को भी जनता की सेवा में लगाने का प्रयास करें। जब इस तरह की संस्थायें हो जायेंगी तो लोगों की उन पर श्रद्धा अधिक होगी इसलिए जनता पहले उनके साथ होगी, जो भ्रष्ट और चरित्रहीन हैं उनका साथ नहीं देगी। जब उसको साथ ही नहीं मिलेगा तो चरित्रहीनता अपने आप समाप्त हो जायेगी। इसके लिए सब से पहले उन लोगों को लिया जाय जो कि रिटायर्ड हों : एक लाख से अधिक रिटायर्ड लोग मिल जायेंगे जो कि इस तरह से जनसेवा का कार्य करने के लिए तैयार हैं। जब इस तरह के लोग पूरे मिल जायँ तो उनको गाँवों में विभक्त कर दिया जाय और एक-एक को अगर ७–७ गाँव भी दिये जायं तो सात लाख गाँवों में

यह कार्य आरम्भ हो जायेगा। इसके साथ ही नगरों के लोगों का सहयोग भी मिल जायेगा। इससे लोगों के मन में धारणा होगी कि यह लोग अपना रिटायर्ड जीवन जनसेवा के काम में ही लगाना चाहते हैं और इस प्रकार से इन लोगों को भी अपना जीवन स्तर बनाना होगा कि उनका बाकी जीवन जन-कल्याण के ही काम के लिए है तो अवश्य ही जनता उनके साथ सहयोग करेगी और फिर यह जो कठिनाई आपने बतलाई है, यह नहीं हो सकती है।

प्रश्न—हमारे कर्णधारों ने बहुत सोच-समझ कर, जिस दूरी तक वे सोच सकते थे, उसके आधार पर उन्होंने लोकतंत्रात्मक राज्य की स्थापना देश में की है। वर्तमान व्यवस्था को देखते हुए आज की परिस्थिति में ऐसा लगता है कि इसमें अनेक दोष आ गये हैं। इसके क्या कारण आप समझते हैं और उनको दूर कर के उनमें क्या परिवर्तन हो जो कि अपनी प्रथा के अनुकूल हो और उससे हमारा देश भी लाभान्वित हो?

उत्तर—जनतंत्र उचित होता है। यथार्थ में जनतंत्र यह भी नहीं है कि एक क्षेत्र ऐसा बनाया जाय, ब्लाक, उपब्लाक, तहसील, जिले और गाँवों में यही बने रहें और उसका नाम यही बना रहे। गाँव की जनता के बीच में एक मध्यम वर्ग है उसको असल में सुधारना है क्योंकि यही मध्यम वर्ग गवर्नमेंट और जनता के बीच में कार्य करने वाला है। वह सरकार को भी सहयोग दे और गवर्नमेंट के यहाँ अगर कोई अनुचित काम हो, तो उसमें जो कोई भी गलती करे, उसको समझायें और जनता यदि कोई अनुचित काम करती है तो वह जनता के लोगों को भी समझाये। आज जनता गवर्नमेंट से असन्तुष्ट है इसको मिटाने के लिए दोनों का सामन्जस्य करना होगा। यही वह मध्यम वर्ग है जो कि ऋषियों के यहाँ भी विभिन्न रूप में विद्यमान रहे और उनका भिन्न-भिन्न कार्यक्षेत्र हुआ करता था, लेकिन आज वह अपने कार्य को भूले हुए से प्रतीत होते हैं। यदि युद्ध चलाने का ही कार्य होता तो उसके लिए हमारे इतिहास साक्षी हैं कि शासक और शासित में अपने-अपने अधिकार क्षेत्र बने हुए थे और उसमें यह भी सत्य है कि अनुशासित को सभी ने प्रसन्न रखा और अनुशासित को प्रसन्न रखना ही अनुशासक की सफलता है। इसलिए अनुशासित को प्रसन्न रखने के लिए हमारे शास्त्रों में व्यवस्था है।

जब कभी राजा पर या सरकार पर प्रायः अनुशासित वर्ग बिगड़ जाता है तो उसके लिए एक समिति बनाई जाती है और यह उस समिति का काम हो जाता है कि वह कोई सुझाव दे, कोई माध्यम सोचे और उसके उपचार को बतलायें तब अनुशासक वर्ग

का यह कर्तव्य हो जाता है कि उसको कार्यान्वित करके अनुशासित वर्ग को प्रसन्न करे। जब इतना बड़ा दृष्टिकोण होगा तो ऐसे विवाद का अवसर नहीं आने पायेगा लेकिन जब विवाद भीषण रूप धारण कर लेता है तब यहाँ पर समिति बनती है, जनता से परामर्श आरम्भ होता है एक दूसरे पर दोषारोपण होते हैं और वाद विवाद इस बात पर होता है कि नियंत्रण क्यों न किया जाय। भीषण रूप धारण होने के बाद अगर हम कमेटी बनाते हैं यह ठीक नहीं है। कमेटी का एक प्रकार से स्थायित्व हो जाना चाहिए और जब कमेटी बनी रहे तो जब कोई विरोधी तत्त्व उत्पन्न होते हैं उस समय वह उसका समन्वय करे, उस समय कभी भी देश में अशान्ति नही पैदा होगी।

इसका अखिल भारतीय रूप होगा और उसका कर्तव्य होगा कि जहाँ इस प्रकार के परमाणु उत्पन्न हों, जिससे कि देश में भीषण दुर्घटना होने वाली हो, उनके भावना में आने से पूर्व ही सुधार करे। यदि भावना में किसी चीज के आने से पहले ही सुधार किया जायेगा तो फिर भीषण रूप नहीं आने पायेगा। हमारे यहाँ पर युद्ध तो बहुत थोड़े से हुए लेकिन वह भीषण युद्ध नहीं हुए जो कि प्राचीन काल में हुआ करते थे, जिस प्रकार के विप्लव इस और प्राचीन काल में हुए हैं, उनको हम भूल गए। इस समय भी भले ही थोड़े बहुत विप्लव हुए हैं लेकिन एलेक्शन के समय में गाँवों में दो दल हो गए हैं, वहाँ पर मठ वगैरह बन्द हो गए। वहाँ पर ऐसे साधन नहीं होते हैं कि रोज-रोज वहाँ पर किसानों के कार्य के नाम पर कलह होते हैं, उनको जाकर ठीक किया जा सके। इसलिए जो इस तरह से गृह कलह हुआ करते हैं इसके लिए एक संस्था की नियुक्ति की जानी चाहिए, जो गाँवों में ही रहे और उसका फिर यह कर्तव्य हो जाता है कि वह ऐसे प्रयास करे जिससे कि इस तरह के गृह कलह उत्पन्न न हो सकें।

प्रश्न—इस प्रसंग में यह भी प्रश्न उठता है, जैसा कि आपने कहा कि जनता और सरकार के बीच में एक माध्यम हो जो कि जनता की शिकायतों को दूर करे तो क्या इसका प्रबन्ध जनता के लोग करें या इस प्रकार की संस्था सरकार के सुझाव पर बनाई जाय ?

उत्तर—इस प्रकार की संस्था का जो निर्माण हो वह जनता से चुने हुए लोगों से हो, जब कि इस संस्था का निर्माण जनता से चुनाव कर के नहीं होता है। ऐसी संस्था का प्रशिक्षण विशेष कार्य के लिए जैसे होता है, उसी प्रकार से होना चाहिए। उसके कामों की देख भाल वह स्वयं करे और वह जिस प्रकार के साधन

बताये, सरकार को उसके अनुसार चलना चाहिए। यही प्राचीन काल में ऋषि-मुनियों के द्वारा होता था।

राष्ट्रीय-एकता

प्रश्न—राष्ट्रीय एकता का प्रश्न अपने देश में और भी जटिल हो गया है क्योंकि यहाँ विभिन्न मतों के अनुयायी और विभिन्न जातियों के लोग हैं जिनकी समाजिक मान्यतायें सांस्कृतिक मान्यतायें अलग-अलग हैं। इन परिस्थितियों में आपके क्या विचार हैं ? क्या भारत में वास्तव में भावात्मक एकता है लोगों में ? वह राष्ट्रीय एकता से कैसे सम्बन्ध रखती है ?

उत्तर—जब मनुष्यों में किसी प्रकार की गलत धारणा पड़ जाती है तो उस धारणा को बदलने में समय लगता है। कितनी ही धारणायें तो कालेजों से निकल जाती हैं। जो नये विद्यार्थी होते हैं जिनमें यह भावना होती है कि मैं मुसलमान हूँ, मैं ईसाई हूँ, हिन्दू हूँ और यहाँ पर हिन्दुओं की जैसी संस्कृति है मैं इसमें नहीं पढ़ सकता हूँ तो पहले उन भाइयों को सम्भालना होगा। वह ऐसे विद्यार्थी होंगे जिनकी अवस्था १६ वर्ष तक की हो—उनकी कच्ची बुद्धि हो, क्योंकि कच्ची बुद्धि में जो संस्कार पड़ जाते हैं वह पक्के हो जाते हैं। अगर १० वर्ष का लड़का है तो वह कम से कम ६ वर्ष में अपनी पढ़ाई कर ले जाता है और इसीलिए हर काम के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वह १६ वर्ष की अवस्था में भरती किया जाय। इसी तरह से कुछ मुसलमान और कुछ ईसाइयों को लेकर, कुछ हिन्दुओं के लड़के, कुछ नास्तिक विचार धारा के लड़के, जिनकी उम्र १६ वर्ष की हो, उनको आत्म-विद्या पढ़ाई जाय और जब वह आत्म-विद्या को पढ़ लेगा तो जो झूठी मान्यतायें है उनको समझ जायेगा। वह केवल उन झूठी मान्यताओं को समझेगा ही नहीं बल्कि उनके जो भयंकर परिणाम हुए हैं, उनको भी समझ जाएगा। इस के लिए हम लोगों को देखना पड़ेगा और उन बच्चों को बताने के लिए समय देना पड़ेगा कि वह झूठी मान्यतायें न मानें बल्कि सच्ची मान्यताओं को मानें जो कि आज का सब से बड़ा प्रश्न है।

प्रश्न—आत्म-तत्त्व पर आज तक किसी ने भी जोर नहीं दिया है, क्या यह सत्य है ?

उत्तर—बिना आत्म-तत्त्व के भावात्मक एकता को कोई नहीं समझ सकता है। इसके लिए मैं एक उदाहरण दे देता हूं कि एक महिला अपने आंगन में बैठी हुई है,

उस घर में व्याह शादी है, उसके बहुत से रिश्तेदार, नातेदार आये हुए हैं, ६०-७० लड़के उसके समीप वैठे हुए हैं, उसके रिटायर्ड स्वामी बैठे हैं। भावात्मक एकता का सम्बन्ध कुछ तुलाओं पर व्यक्तिगत और वैधानिक एकता से भी होता है। आप इस बात को समझ लें कि भावात्मक एकता क्या होती है। भावात्मक एकता में किसी व्यक्ति को मनुष्य अपना मान लेता है फिर वह चाहे उसको मार बैठे, चाहे कितना ही नुकसान कर वैठे, चाहे कितना ही दंगा-फिसाद करे, उसको वह फिर भी अपना ही प्रतीत होता है, वह चाहे सेवा करे, चाहे हानि पहुँचाये, वह अपना ही उसको समझता है तो यह दृढ़ एकता है। उस महिला के पति को सम्बोधित करके किसी विद्वान् ने कहा कि यह जो बीच में बैठे हुए हैं इनका ६० आदमियों से सम्बन्ध है तो यह भावात्मक एकता है। यह किसी की भी शक्ति के बस की बात नहीं है कि जो उस सम्बन्ध को तोड़ दे, जैसे पति-पत्नी का सम्बन्ध है, भाई बहिन का, माता-पिता का सम्बन्ध है, यह ऐसी पुष्ट भावात्मक एकता है कि जबतक जीवित रहेगा, तबतक यह रहेगा। किन्तु एक दूसरे में भिन्नता है, एकता के अनेकों भेद है जिनको विद्वानों ने पूर्ण रूप से व्यक्त कर दिया है।

उन्होंने पूछा एक आदमी से कि इस महिला के प्रति आपकी क्या भावना है, तो उस के उत्तर में वह जवाब देता है कि यह मेरी स्त्री है, उन्होंने पूछा कि आप की यह भावना कबतक रहेगी तो उसने कहा कि जबतक जीवन रहेगा तबतक यह मेरी पत्नी है और मैं इस का पति हूं और जीवन पर्यन्त इसी भाव से इसको देखता रहूंगा। तो यह मौलिक अधिकार है। कुछ लोग उसकी फोटो को ही मरने के बाद भी उसी रूप में देखते रहते हैं तो यह अटूट एकता है। मरने पर भी वह उसके नाम को पसन्द करता है, उसके कपड़ों से उस को मोह हो जाता है, पितृ-पक्ष में उसके नाम से लोगों को भोजन कराता है। तो उसके कपड़ों में भी वही स्त्रीभाव उसका है। उस स्त्री के बाप के प्रति एक भाव है, उसके मरने पर भी उसको ससुर ही कहेगा। एक भाव लड़के पर होता है क्योंकि उस लड़के की स्त्री उस आदमी की लड़की है इसलिये अपने लड़के की स्त्री के पिता को वह कहेगा कि यह मेरा समधी है और लड़की के मर जाने के पश्चात् भी उसकी वह भावना मिटी नहीं है।

किसी लड़के को वहां पर देखा तो उससे पूछा कि तुम्हारा इस से क्या सम्बन्ध है तो वह कहता है कि यह मेरी बहन है और यह भावना जीवन पर्यन्त रहेगी। इसलिये समाज के अन्दर जो वैधानिक जो सम्बन्ध हैं उनको कोई नहीं भुला सकता है, उसी प्रकार से एक आदमी ने कहा कि यह तो मेरी भावज है, दूसरे को

पूछा तो उस ने कहा कि यह मेरा बेटा है। लड़के को पूछा तो उसने कहा कि यह मेरी मां है, कोई कहता है यह मेरी मौसी है तो इस प्रकार से इस महिला को किसी ने मौसी, किसी ने मां, किसी ने चाची, किसी ने भौजाई किसी ने ताई करके उसको बताया और हरएक शब्द में भावना भिन्न भिन्न होती गई,। कोई व्यक्ति मां की भावना से उसको देखता है, कोई चाची की भावना से तो कोई बहिन की भावना से उसको देखता है इस प्रकार से ६० व्यक्तियों ने अलग अलग भावना से उसको देखा है सभी में वह भावना निहित है जो कि जन्म पर्यन्त तक चलने वाली है। यह तो एक पारिवारिक भावना से सम्बन्ध रखता है लेकिन विदेशों के साथ इसका व्यवहार किस प्रकार से होगा, क्योंकि उनके साथ तो परिवार का कोई सम्बन्ध नहीं है तो वहां ,पर किस प्रकार से लागू होगा। जैसे कोई किसी को मित्र मान लेता है तो मित्र भी दो प्रकार के होते हैं।

एक तो स्वाभाविक तौर से ही मित्र बन जाता है। एक का माध्यम पैसा या स्वार्थ भी होता है। इनमें जो मित्रता पैसे के माध्यम से होती है उसमें स्वार्थ पूरा न होने पर कमी भी आने लगती है, लेकिन जो बिना स्वार्थ की मित्रता होती है वह अटूट होती है। ऐसे में एक तो वह भी होती है कि जिसमें पैतृक सम्बन्ध भी हो जाते हैं जैसे एक मुसलमान में हिन्दू पत्नी के प्रति भाव पैदा हो जाता है तो उसी तरह से हिन्दू में मुसलमान पत्नी के लिए एक भाव पैदा हो जाता है और यह हर एक के साथ में हो जाता है चाहे वह ईसाई हो, मुसलमान हो, पारसी हो, या हिन्दू हो। इस प्रकार की भावात्मक एकता वस्तुओं में ही नहीं, व्यक्तियों में ही नहीं बल्कि राष्ट्रों में भी हो सकती है क्योंकि उस भावात्मक एकता से इस देश का कोई सम्बन्ध नहीं है, इसका भाव से सम्बन्ध है।

जैसे हमने किसी समाज को मित्र मान लिया तो वह भावात्मक एकता हो गई। कुछ में मान्यताएँ होती हैं तो उसमें भावात्मक एकता नहीं होती है, जैसे मुसलमानों की अपनी कई एक मान्यतायें होती हैं लेकिन भावात्मक एकता में मान्यताओं का कोई स्थान नहीं रहता है और जब उसका कोई स्थान नहीं है तो वह संसार ही दूसरा है। आप कहते हैं कि यह अड़चनें डालेंगे तो धारणा में, खान-पान में जो मान्यतायें है यह बनी रहें क्योंकि जैसे-जैसे यह कमजोरी बढ़ेगी तो भावात्मक एकता भी बढ़ेगी क्योंकि इसका सम्बन्ध केवल भावना से रहता है। जो मैंने विषय आपको बताया है या जो विवेचना की है वह अपने अनुभव के आधार पर ही किया है, पुस्तकों के अध्ययन के आधार पर नहीं किया। जब उनसे मेरा अनुभव वास्तविक हो जाता है तभी मेरा विचार उसके विस्तार करने का होता है क्योंकि बिना अनुभव किये किसी

भी वस्तु का अगर विस्तार करने की बात सोची जाय तो उसमें सफलता मिलने की कोई आशा नहीं रहती है और यह मेरा ही अनुभव नहीं है जो विद्वान् हैं उनके भी यह अनुभव है, जो विज्ञान के आदर्श में सिद्ध भी हो चुके हैं और आज भी उन कार्यों को हाथ में लिया जा सकता है।

प्रश्न—आज सभी इस बात को अनुभव करते हैं कि हमारे विकास और उन्नति के कार्यों से देश की सामान्य जनता प्रभावित नहीं हुई है क्योंकि हमारे देश के अधिकांश क्षेत्रों में भ्रष्टाचार बहुत पनपा है। क्या आप इसके वास्तविक कारणों का विश्लेषण करेंगे और वह किस प्रकार से दूर हो सकते हैं कृपया इस पर भी प्रकाश डालें ?

उत्तर—इस भ्रष्टाचार के निवारण के रास्ते को जानने के लिए प्रकृति का भी ध्यान करना होगा। जिस प्रकार से संसार की रचना हुई है, मनुष्य शरीर की रचना हुई है, उस प्रकृति से कैसे संसार बनता है और प्रकृति दो तत्वों से बनी हुई है, इन दो तत्त्वों से संसार बना—नर और नारी। रात-दिन, सर्दी-गर्मी, जन्म-मृत्यु, मान-अपमान, इन दोनों तत्त्वों को शास्त्रों ने द्वन्द्व शब्द से सम्बोधित किया है। ज्ञान-अज्ञान, सत्य-असत्य, इस प्रकार के पर्यायवाची शब्दों से प्रतिद्वन्द्व शब्द बना है। सदाचार तो आता है दुराचार को मिटाने की योजना से। तो जबतक दुराचार न मिटे तो इन दोनों में प्रतिक्रिया होगी। जब दुराचार मिटायेंगे नहीं तो कोई आचार-सदाचार नहीं हो सकता है। दुराचार क्या चीज है इसको पहले समझने की बड़ी आवश्यकता है। दैवी प्रेरणा से जिसमें दुराचार का आभास होता है तो उसका विरोध करें, परन्तु दुराचारों की संख्या अधिक हो जाने से उसकी प्रतिक्रिया नहीं होती है। सदाचार प्रतिकार नहीं कर सकता है। इसलिए दुराचार को मिटाने के लिए यह आवश्यक है कि इसकी निन्दा करने के बजाय हम सदाचार को फैलायेंगे। यह भी सम्भव नहीं है कि यह तुरन्त दूर किया जा सके। इसके लिये इस पर जोर दिया जाय कि हम सदाचार लायेंगे. दुराचार को मिटाने की चर्चा जहांतक हो कम की जाय और सदाचार बढ़ाने की चर्चा खूब की जाय। लोग इसकी पूरी शिक्षा लें और लोग बलिदान के लिये तैयार हो जायं और किसी को आरोप न लगायें, केवल यह समझें कि मेरा जीवन केवल इस लिये है कि मैं अपने जीवन को सदाचारी बनाऊं, इस प्रकार से जब इस का प्रसार किया जायेगा तो दुराचार अपने से ही समाप्त हो जायेगा।

प्रश्न—इधर आपने अनेक समाचार पत्रों में देखा होगा कि जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में जन-जीवन अनियंत्रित सा होता जा रहा है, अनुशासनहीनता

बढ़ती जा रही है, विशेष रूप से जो हमारा युवक वर्ग है उसमें यह भावना जोर पकड़ती जा रही है। बहुत से लोग इसका कारण यह भी बताते हैं कि इसके पीछे कुछ राजनैतिक प्रवृत्तियां हैं, जिनका कारण उनका सम्बन्ध कुछ व्यवसायों से होने से इस प्रकार की मनोवृत्ति उनमें घर करती जा रही है। तो आप का क्या अनुभव है वह कैसे दूर हो सकती है ?

उत्तर—इस अनुशासनहीनता को दूर करने के लिये हमारे सामने केवल एक मार्ग है, हमको राम के चरित्र से बहुत प्रेरणा मिलती है। राम स्वयं नीति का पालन करते थे तथा जो मनुष्य भी नीति का पालन करने वाला होता था, उनसे अपना निकट का सम्बन्ध रखते थे। नीति का पालन करने के लिये हृदय परिवर्तन कीं बड़ी आवश्यकता है और हृदय परिवर्तन के लिए राम नाम एक ऐसा तत्त्व है कि उसके बिना हृदय परिवर्तित होता नहीं है। रामचन्द्र जी ने जिस व्यक्ति के भी हृदय को परिवर्तित करने का प्रयास किया, उससे उन्होंने इतना असीम प्रेम किया कि लाखों मातायें अपने नन्हें बालक पर भी उतना प्रेम नहीं कर सकती हैं। अपने प्रेम के बल पर ही उन्होंने वानरों की सेना मनुष्यों के लिए बनाई और उसी सेना के बल पर रावण पर चढ़ाई की। राम के पास देने के लिए न पैसा था न धन था परन्तु एक अनन्त धन प्रेम उनके पास था। तो प्रेम ऐसी चीज है कि जिसके लिये ईश्वर को भी भू-खण्ड पर नीचे उतारा जा सकता है। ईश्वर भी कहते हैं कि मैं केवल प्रेम से ही किसीके वशीभूत हो सकता हूँ। इसलिये बस में करने के लिये संसार में इससे बढ़कर कोई दूसरा उपाय नहीं है। प्रेम से वशीभूत होकर भगवान् भी सेवक बन जाता है और नीची से नीची सेवा कर सकता है पर यह सब होगा प्रेम से ही। जब मनुष्य ईश्वर जैसा बन जाता है प्रेम से, तो एक तो प्रेम तत्त्व के द्वारा मनुष्य का हृदय परिवर्तित किया जाय और परिवर्तित करके फिर उसको नीति की शिक्षा दी जाय, उससे नीति का पालन कराया जाय। नीति को ऐसी बरते कि उस नीति वृद्धि में किसी प्रकार का अकर्म नहीं होगा, उससे ऐसे कार्य किये जाएं कि जिस से लोगों की जीवन की आवश्यकतायें पूरी होती जायं। नीति में कम से कम इतना तो ध्यान रखा जाय कि रोटी, कपड़ा, मकान तथा जीवन निर्वाह की सामग्री पूरी हो जाय तथा जीवन की सामग्री की उपलब्धि भी इस प्रकार से व्यवस्थित कर दी जाय कि जिससे भोजन पूर्ति की चिन्ता किसी को न रह जाय। जब सारी व्यवस्था ठीक हो जाय और प्रेम भी बढ़ जायगा लोगों के हृदयों में और प्रेम की शिक्षा लोगों में हो जाये, और आवास, भोजन वगैरह सब जीवनोपयोगी वस्तुएं जुट जायेंगी तो जिन चीजों के लिए आदमी भ्रष्टाचार करता है, जब वही न रहेंगी, क्योंकि जीवन निर्वाह

की सामग्री उसको थोड़े से परिश्रम से प्राप्त हो सकती है और उसका स्वार्थ भी पूरा हो जायेगा, तब भ्रष्टाचार नहीं रहेगा। फिर उसका उसको ख्याल भी नहीं रह जायेगा और उसका ध्यान केवल इसी बात की ओर रहेगा कि मरने के बाद भी अगले जन्म में मैं क्या करूंगा। इस जन्म में यदि परमार्थ करता है तो ठीक है उस का ध्यान यही होगा अगले जन्म में भी परमार्थ करूं जिससे कि मेरा अगला जन्म फिर सफल हो, इस लिये उसका परलोक भी सुधर जाता है।

इस प्रकार धारणा और जीवन के सुधरने से जाति सुधर जायेगी। राम ने जानवरों को भी अपने परिवार जनों के जैसा स्नेह दिया जिस का फल यह हुआ कि रावण पर चढ़ाई करने के बाद राम विजयी हुये लेकिन फिर भी रावण को प्रिय बना लिया और जिन-जिन राज्यों को अपने बस में कर लिया, लंका को विभीषण को सौंप दिया, बालि को मार कर सुग्रीव को वहां का राजा बना दिया। यह इस बात की प्रेरणा देता है कि वह स्नेह से वे राज्यों की व्यवस्था कर के लौटे हैं। आज विश्व की समस्या भी इसी प्रकार की है। आज जो कुछ भी लोग करते हैं या कहते हैं उनका कथन सत्य नहीं प्रतीत होता है। जीवन सामग्री आज नहीं उपलब्ध हो रही है इस के प्रति कोई ध्यान नहीं देता है कि कैसे इस संकट को दूर किया जाय। जहां जहां पर अन्न संकट था उन उन राज्यों को उनकी राज्य व्यवस्था ठीक करके उस संकट से बचाया जा सकता है लेकिन जीवन में लोगों को सुधार की ओर कोई भी ध्यान नहीं रह गया है क्योंकि हम को धर्म पर विश्वास नहीं रह गया है। अगर धर्म की चर्चा करते हैं, राम राज्य की चर्चा होती है तो लोग समझते हैं कि यह सत्य घटना नहीं है। राम का जीवन केवल उपन्यास ही नहीं है, यह कठिन सत्य है। जब सत्य आयेगा तभी असत्य का नाश होगा। यह जीवन में आज भी घटित हो सकती है। हमने भी अपने जीवन में संकल्प किया है कि जो लोग इस भ्रम में हैं कि रामराज्य की बात एक उपन्यास की बात है हमने उसको सही सिद्ध करने के लिये ही दे रखा है कि वह सही इतिहास है और जो जो व्यक्ति यह समझ रहे हैं कि मेरी बात ठीक है वह मेरे साथ अपने जीवन को देने के लिये सहर्ष तैयार रहते हैं।

प्रश्न—अपने प्राचीन भारत में बहुत सी ऐसी व्यवस्थायें समाज को सुनियोजित रूप से ले जाने के लिये बनीं थीं जैसे आश्रम व्यवस्था इत्यादि। आज उनके अस्तित्व और उनकी उपयोगिता के सम्बन्ध में सहज ही एक सन्देह की भावना उत्पन्न हो गई है। लोगों का विचार है कि आज की स्थिति में वह उपयोगी नहीं है। इस सम्बन्ध में आप का क्या मत है? क्या वह उपयोगी हैं और आज की स्थिति

में क्या वह व्यावहारिक भी हो सकती है ?

उत्तर—इस व्यवस्था के बारे में दो बातें मैं कहूँगा। प्रथम तो यह कहूंगा कि जैसे कि सत्य के लिये, नूतन आविष्कार करने के लिए आविष्कारक ने अपना सारा जीवन अर्पण कर दिया—लोक कल्याण के लिए वह संसार के सब सुखों को भूल गया, उसने अपने प्राणों का मोह, अपने आराम का मोह त्याग दिया और सत्य की ढूंढ में अपने सतत प्रयत्नों के साथ जीवन पर्यन्त लगा रहा, उनके पीछे सरकारों ने भी अपने अनेक साधनों को जुटाया, तब कहीं जाकर वह आविष्कार कर पाये लेकिन इस पर भी किसी किसी आविष्कारक को सफलता नहीं रही, इसी तरह से ऋषि पद्धति के लिये आविष्कारकों ने, अनेक मनुष्यों ने अपने भारत में भी प्रयास किये। जिन पदार्थों का कहीं पर भी उल्लेख नहीं पाया जाता है उनका भी आविष्कार हो गया। राकेट, वायुयान, रेल, जिनका उल्लेख पाया जाता है उनके लिए अनुसंधान आन्दोलन नहीं हुये, इस प्रकार के जितने भी अनुसंधान हुये हैं, वे सब अनुमान के आधार पर हुए हैं लेकिन उनके लिये भी साधन जुटाये गये हैं, जबतक साधन नहीं जुटा पाएंगे, अनुसंधान सफल नहीं हो सकेगा।

आविष्कार हो जाने के बाद यदि उसकी शिक्षा देने लगें तो फिर उसमें आविष्कार से कम धन लगता है। यह इसी प्रकार से है जैसे कोई नई मोटर खरीद ले कि टूटी-फूटी में अधिक धन लगता है करीब करीब उसी तरह की एक व्याख्या इसकी यह है।

दूसरी व्याख्या यह है कि चाहे वर्णाश्रम व्यवस्था फैली हुई हो, या कोई और व्यवस्था फैली हुई हो लेकिन कुछ समय के बाद उसका नामोनिशान भी नहीं पाया जाता है। तो क्या यह व्यवस्था तो असफल हो गई है। कुछ का इतिहास मिलता है, कुछ मिट चुकी हैं। जो अभी दो सौ वर्ष की व्यवस्था फैली हुई है तो उनके लिये आगे क्या किया जाता है उसमें भी नूतन व्यवस्था आनी चाहिये। एक समय के लिये वह नूतन व्यवस्था बनी लेकिन आज का संसार वह है नहीं। इसके लिये तो नूतन आविष्कार होगा ही। नई व्यवस्था के अर्थ हैं कि जो पुरानी है, उसका जीर्णोद्धार किया जाय, जिसको पुनरुद्धार भी कह सकते हैं और या फिर एक नई ही व्यवस्था बनाई जाय। मेरी समझ से तो अधिक अच्छा यही है कि जो पुरानी व्यवस्था है, उसको ही दोहराया जाय, उसको नूतन बनाने के लिये कम से कम इतना तो सिद्ध हो चुका है कि उसमें अधिक समय लगेगा। इसके अतिरिक्त वह सिद्ध भी नहीं है। जो चीज सिद्ध नहीं है, केवल कल्पना में है, उसको अपना कर हम नई व्यवस्था पैदा कर सकते हैं परन्तु उसमें धीरे धीरे ही सफलता मिलेगी, कुछ समय भी लगेगा।

प्रश्न—आज भारतवर्ष में समाज जिन परिस्थितियों में चल रहा है, उसके प्रति जिस प्रकार का असन्तोष फैल रहा है, अराजकता सर्वत्र व्याप्त हो रही है, उसको देख कर धर्म के सम्बन्ध में भी लोगों को सन्देह उत्पन्न हो चला है। इन परिस्थितियों में भारत का भविष्य आप को क्या लगता है ?

उत्तर—इसके लिए हमको प्रकृति से शिक्षा मिलती है। प्रकृति ने बनाया और प्रकृति ने ही उसको मिटाया और उसको ऐसा मिटाया कि वह पूर्ण रूप से मिट गई और जब वह पूर्ण रूप से मिट गई तो फिर से उसका उत्थान हुआ—इसलिए उत्थान, पतन, यह तो प्रकृति का नियम है। इसमें किसी मनुष्य का दोष नहीं है। इस समय यह जो व्यवस्था बिगड़ी है यह सब प्रकृति के नियमों के अनुसार हो रहा है और जब यह पूर्ण रूप से बिगड़ जायेगी, अपनी चरम सीमा पर पहुंच जायेगी। बिगड़ते बिगड़ते, तब फिर उत्थान होगा फिर मिटेगी, फिर बनेगी और यह क्रम सदा ही चलता रहेगा। जैसे पूर्णमासी के बाद अमावस्या अवश्य ही आयेगी, धीरे-धीरे प्रकाश घटेगा और अमावस्या के बाद धीरे-धीरे फिर प्रकाश बढ़ेगा। मेरी समझ से अभी लोग खुशहाल हैं, चोरी करने में, झूठ बोलने में, लड़ाई झगड़े में लोगों को संतोष है। इस बदलाव में भी उनको संतोष है क्योंकि जितने पैमाने में यहां पर अराजकता है, वह संकट तो है लेकिन इतना बड़ा संकट नहीं है कि सारे लोगों को असन्तोष हो। जबतक मनुष्य में सन्तोष रहेगा, तबतक उसमें प्रेरणा का आविष्कार नहीं होगा। जैसे कि मनुष्य में बरदाश्त करने की शक्ति होती है तो वह छोटी-मोटी बीमारी की चिन्ता नहीं करता लेकिन जब उस के शरीर में इतना दर्द होने लगे जिस को वह सहन नहीं कर सकता, तब परेशानी होती है, तब दवाई के लिए दौड़ता है। प्यास जब असह्य हो जाती है तब वह पानी के लिए भागता है।

जब मनुष्य सहन करने के अयोग्य हो जाता है तब वह मरने से भी नहीं डरता है। इस लिये अभी वेदना असहनीय नहीं हुई है, केवल कुछ कष्ट बढ़ता जा रहा है, यह बढ़ता जायेगा और जबतक यह असहनीय नहीं हो जायेगा, तबतक वह कष्ट को सहन करता जायेगा, जबतक दर्द उसके सहन करने के योग्य है। आज प्रत्येक मनुष्य जानता है कि विचारधारा में परिवर्तन आ रहा है जितने भी बुरे काम हैं सब बढ़ते जा रहे हैं, अनाचार बढ़ता जा रहा है, चरित्र में गिरावट बढ़ती जा रही है, समाज का नैतिक पतन बढ़ता जा रहा है लेकिन अभी वह सब सहन करता जा रहा है। खराबी तभी उत्पन्न होती है जब कि वह सहन करने के काबिल नहीं रह जाता है।

उदाहरण के लिए प्रसव वेदना को ले लीजिये। कहते हैं कि प्रसव वेदना में

सबसे अधिक दर्द और वेदना होती है। तो वह प्रसव वेदना अभी आरम्भ नहीं हुई है, कुछ-कुछ है लेकिन यह बढ़ेगी अवश्य—जब प्रसव वेदना अपनी चरम सीमा पर पहुँचेगी तभी नये शिशु का जन्म होगा। अभी खराबी व्यवस्था में इतनी नहीं हुई है कि नई व्यवस्था का आविर्भाव हो सके, ऐसा मेरा अपना विश्वास है।

प्रश्न—वर्तमान स्थिति में देशवासियों के लिये आप का सन्देश क्या है।

उत्तर—वर्तमान परिस्थितियों में जिन व्यक्तियों के दिल में दर्द दिखाई पड़ता है तो ऐसे दर्दवाले मनुष्यों को—जिस प्रकार से अगर आँख का दर्द होता है तो वह आंख के अस्पताल में भर्ती होते हैं, उसी प्रकार से जिन लोगों के दिलों में देश के प्रति दर्द है उनके लिए अस्पताल बनाये जायं और उनको वहाँ पर एकत्रित किया जाय ताकि वे अपने दर्द का कुछ उपचार ढूंढ निकाल सकें—तब तो उनका दर्द दूर हो सकता है। जिनको दर्द नहीं होता है वे इन अस्पतालों में क्यों जायेंगे। जिन लोगों के दिलों में इस प्रकार का दर्द है उनके लिए एक कसौटी होगी और जब वे उस कसौटी को पास कर लेवें, तब उनको प्राचीन ऋषियों की विचारधारा को दिया जाय और इस प्रकार से उनको स्वस्थ बनाया जाय। जिनके पास इस प्रकार का दर्द अपने देश और समाज के लिये नहीं है, वे एक प्रकार से अपराधी ही होंगे और अपराधियों के लिए इस प्रकार की व्यवस्था हो कि जो इस प्रकार का सामाजिक अपराध करेंगे, उनको पहले तो समझाया जाय, नहीं समझते तो कुछ दण्ड का भी प्राविधान किया जा सकता है।

जैसे कैदियों को एक बार के अपराध में मामूली सजा होती है लेकिन घोर अपराध करने में प्राणदण्ड भी दिया जा सकता है—इस प्रकार की व्यवस्था उनको सुधारने के लिये की जा सकती है। जिन लोगों को दुःख है इस व्यवस्था से, जो इस प्रकार से मानसिक तौर पर बीमार हैं, जब उनको इस बात का पता लगेगा कि कहीं पर उनका उपचार भी किया जा सकता है तो जैसे कि एक आदमी को नौकरी नहीं मिलती है तो वह नौकरी दिलाने वाले के पास जाता है, उसी प्रकार से ये लोग भी अपनी मानसिक शान्ति के लिये आयेंगे और उनके लिए किस प्रकार का कोर्स रखा जायेगा। इस पर विचार किया जा सकता है कि देश की कैसे उन्नति होगी। जिनको दर्द है वह फिर अवश्य ही इस बात को सोचेंगे।

——:०:——

भारतीय संस्कृति के जागरूक प्रहरी

श्री जगदाचार्य श्री स्वामी नारदानन्द जी

"रामायण, गीता और शास्त्रों का पूर्ण अनुसंधान करके क्यों नहीं देखा जा रहा कि इन महान् ग्रन्थों में समाज रचना और राष्ट्र उत्थान के कितने तत्त्व निहित हैं। स्वयं अपने जीवन में अनुभव करके देखो कि इन भारतीय रत्न रूपी ग्रन्थों में व्यावहारिकता भी है या यों ही गाने बजाने के साधन रच दिये हैं।"

एक आध्यात्मिक ज्योति संसार को अपना सन्देश सुना रही है। ध्यान लगा के सुनो अवश्य सुनायी देगा। मन्द, मधुर स्वर सुनायी देगा। वाणी ओजस्वी होगी। वाक्यों में दृढ़ता मिलेगी। विचारों में स्पष्टता होगी। अद्भुत सूझ-बूझ दीखेगी। नपी-तुली भाषा होगी। प्रत्येक प्रश्न का सुलझा हुआ उत्तर होगा। समस्या कहते ही समाधान हो जायगा। युग के सही मार्ग का दर्शन होगा। यही युग धारा को मोड़ने वाले प्रहरी की पहिचान है। युग धारा के सन्मुख खड़ा प्रहरी कह रहा है—"आज के युग की पुकार है कि सनातन धर्म व संस्कृति पर पुनः अन्वेषण हो। बुद्धि और ज्ञान की कसौटी पर हमारा धर्म खरा उतरेगा। अपने ऋषियों के प्राचीन अनुसंधान पर मुझे गौरव है। विचारने योग्य विषय है कि विज्ञान के युग में जब कि गन्ना-खोही से कागज बनाने का सदुपयोग कर लिया गया। सीरे के कीमती प्रयोग निकाले जा रहे हैं। तब तुलसी कृत रामायण और गीता का पूर्ण अनुसंधान करके क्यों नहीं देखा जा रहा कि इन महान् ग्रन्थों में समाज रचना और राष्ट्र उत्थान के कितने तत्त्व निहित हैं। स्वयं अपने जीवन में अनुभव करके देखो कि इन भारतीय रत्न रूपी ग्रन्थों में व्यावहारिकता भी है, या यों ही गाने बजाने के साधन रच दिये हैं। अपनी खोज से ही निष्कर्ष निकालो कि अध्यात्मवाद समाज तथा व्यक्ति के लिये उपयोगी है कि नहीं।"

आज सड़कों का निर्माण बहुत तेजी से हो रहा है। वायुयानों की गति बढ़ रही है। भौतिक निर्माण के लिये विज्ञान दिन-रात प्रयत्न कर रहा है। भौतिक वस्तुओं की रक्षा के लिये भयंकर शस्त्रों का निर्माण कर रहा है। लेकिन जो सड़कों पर चलेगा, वायुयान पर उड़ेगा, महाविनाशकारी शस्त्रों का प्रयोग करेगा, उस के निर्माण के लिए कोई प्रयत्न नहीं हो रहा है। आज प्रथम कोटी का बुद्धि जीवी भौतिक निर्माण में लगा हुआ है। द्वितीय नौकरी करता है और बचा हुआ

मानव-निर्माण का कार्य कर रहा है। इसी लिए विश्व अशांति, अन्याय और अविश्वास की गोद में जी रहा है। लेकिन इस गोद में अधिक समय तक जीवित नहीं रह सकता है। अगर विश्व को जीवित रखना है तो मानव-निर्माण कार्य को प्राथमिकता देनी होगी।

एक प्यारा बालक गंगा तट स्थित एक ग्राम (मियागंज, कन्नौज) में खेल रहा है। हिन्दु, मुसलमान, बालक, युवा, वृद्ध, स्त्री, व पुरुष यह सब का प्यारा है। शंखनाद, घंटाध्वनि बालक को विशेष प्रभावित करती है। देवदर्शन कराने पर रोता हुआ बालक चुप हो जाता है। एकान्त वास व मौन विशेष प्रिय हैं। ग्राम के बालक उसके पास सदैव उपस्थित रहते हैं। बालक अपने साथियों से मिल कर पूजा व लीला कर रहा है। उम्र बढ़ रही है। ज्ञान जिज्ञासा तीव्र हो रही है। किशोर सत्संगों में जा रहा है। सन्तों-विद्वानों व समाज सुधारकों से शंका-समाधान कर रहा है। धर्म सम्मेलनों में व्याख्यान सुन रहा है। आदर्श वाक्य व श्लोकों को तार कोल की सहायता से कुओं के खम्बों पर लिख रहा है। ग्राम के बड़े-बूढ़े युवक के चरण छूने को बढ़ते हैं, वे रोक देते हैं, और कहते हैं कि मर्यादा का पालन अनिवार्य है।

ग्रन्थों का अध्ययन, मनन व निदिध्यासन प्रारम्भ हो गया। सनातन धर्म, इस्लाम, जैन, बौद्ध, साम्यवाद, समाजवाद व पूंजीवाद सब का अध्ययन किया। संपूर्ण भारत का भ्रमण किया। भाग्य से छोटी अवस्था में ही सत् गुरु की प्राप्ति भी हो गई। गुरु कृपा से ज्ञान व वैराग्य भी किशोर अवस्था में ही आ गए। आप का यौवन काल आर्यसमाज और सनातन धर्म के संघर्षमय वातावरण में ही व्यतीत हुआ। वर्तमान स्थिति से आप सन्तुष्ट नहीं थे। राग-द्वेष से युक्त धर्म को स्वीकार नहीं किया। भारतवर्ष के सम्पूर्ण तीर्थों, नगरों व ग्रामों का भ्रमण करके देश काल और समाज की परिस्थिति का अध्ययन किया। परतंत्रता से पीड़ित हिन्दू जाति के धार्मिक, सामाजिक उपेक्षा का ज्ञान प्राप्त करके धार्मिक जागरण करने का दृढ़ संकल्प किया।

अब प्रयोग का समय आ गया। गंगा तट स्थित "वैकुण्ठ आश्रम" में साधक स्वाध्याय तथा साधना करने लगे। वेद, पुराण व अन्य शास्त्रों का गम्भीर अध्ययन चलने लगा। श्रीमद्भागवत के एकादश स्कन्ध अध्याय १३ में भगवान् श्रीकृष्ण और उद्धव के सम्वाद प्रसंग में स्वाध्याय करते हुए जगदाचार्य जी को एक विश्व-हितकारी तत्त्व ज्ञान का आभास हुआ। इसके प्रयोग के लिए अत्यन्त पवित्र स्थान की खोज प्रारम्भ हो गई। स्थान प्राप्त करने में बहुत परिश्रम किया। किसी व्यक्ति ने नैमिषारण्य

की प्रशंसा की थी। यहां वन में निवास करने पर बुद्धि ने निश्चय किया कि उक्त प्रयोग यहां होना चाहिये। प्रयोग का मूल मन्त्र निम्न था :—

आगमोऽप: प्रजा देश: काल: कर्म च जन्म च।
ध्यानमंत्रोऽथ संस्कारो दशैते गुणहेतव: ॥

श्रीकृष्ण भगवान् उद्धव से कहते हैं कि मनुष्य के दु:ख का कारण उसके पाप कर्म तथा मनोविकार ही हैं। यदि दूषित विचार न हों तो अपराध या पाप नहीं हो सकते। दूषित विचार न रोके गये तो अपराध और पाप के दु:ख बढ़ते रहेंगे। इनको रोकने के लिये सात्विक शास्त्र, आहार, कुटुम्ब, देश, काल, कर्म, जन्म, ध्यान, मंत्र और संस्कार ये सभी शुद्ध सात्विक पदार्थ जहाँ उपलब्ध हो, वहाँ विशेष काल तक निवास करने से अन्त:करण में सतोगुण की वृद्धि होती है, सतोगुण की वृद्धि से धर्म बढ़ता है। उससे मनुष्य में भगवत् भक्ति के लक्षण प्राप्त होते हैं। इससे प्रकट होता कि विचार को शुद्ध करने के लिये उपरोक्त साधना विशेष उपयोगी है।

नैमिषारण्य में गोमती तट स्थित नैमिष टीले पर 'श्री परमार्थ साधन आश्रम' की स्थापना करके प्रयोग प्रारम्भ किया गया। इस साधन से साधकों के हृदय में ईश्वर के प्रति आस्था प्रेम, मैत्री, करुण व दृढ़ विश्वास बढ़ने लगा। सात्विक भोजन के द्वारा अनुभव हुआ कि इससे स्वास्थ्य, बुद्धि शुद्ध तथा आयुकी वृद्धि होती है। सात्विक समाज में निवास करने से भय, द्वेष और कलह मिट जाती है। हृदय में स्वाभाविक सुख, शान्ति का स्रोत बहने लगता है। प्रयोग से ज्ञात हुआ कि युवावस्था में प्रवेश से पूर्व यदि संस्कार शुद्ध रखे जायं तो चरित्रवान् व्यक्ति का निर्माण किया जा सकता है। यह कार्य गुरुकुल प्रणाली द्वारा शिक्षा देने पर ही हो सकता है। इस कार्य को पूर्ण करने के लिये ब्रह्मचर्याश्रम की स्थापना की गई। इससे बहुत से साधकों का निर्माण हुआ है।

विश्व-हितकारी ज्ञान आधार पर समाज के निर्माण का निश्चय किया गया। अब नवीन शारीरिक शक्ति, नवीन आधार और नवीन साधकों के द्वारा नवीन समाज का निर्माण करना था। इस कार्यकी पूर्ति हेतु गुरुदेव ने प्रथम अपना काया-कल्प किया। यह कार्य बहुत कठिन था। इसके द्वारा गुरुदेव का शारीरिक और आध्यात्मिक नवीन जन्म हुआ गुरुदेव बालवत् हो गये। इससे समाज में एक नवीन जागरण हुआ। दर्शनों के लिये अपार भक्त आये। साधकों की श्रद्धा बढ़ गई। भक्तों की संख्या तेजी से बढ़ने लगी। समाज के प्रत्येक वर्ग से व्यक्ति आने लगे। आश्रम का विस्तार होने लगा। निर्माण कार्य में तेजी आ गई। प्रचार कार्य का क्षेत्र बढ़ने लगा। निमंत्रणों का तांता

लग गया। रुद्र महायज्ञ का प्रथम आयोजन किया गया। जनता पर इसका बहुत अनुकूल प्रभाव पड़ा।

उपरोक्त कार्य को व्यवस्थित रूप से चलाने के लिये 'शिक्षा सुधार समिति' का गठन किया गया। इस समिति ने सम्पूर्ण भारत में स्थित भूमि अपने अधिकार में ले ली। उस भूमि पर अध्यात्म-विद्या के शिक्षण व प्रसार के लिये ब्रह्मचर्याश्रम, वान-प्रस्थानाश्रम, संन्यासाश्रम, गोशाला, पुस्नकालय तथा अध्यात्म-विद्यालय आदि का निर्माण किया गया। इसका लाभ समाज को भी हो, इस कार्य की पूर्ति के लिये 'श्री अध्यात्म-विद्यापीठ' की स्थापना की गई। इसका श्री गणेश तो 'बैकुण्ठ-आश्रम' में ही हो चुका था। नैमिषारण्य में उसीको व्यवस्थित रूप दिया गया। इस पीठ से बहुत से साधक अध्यात्म-विद्या की शिक्षा प्राप्त करके अपना व समाज का कल्याण कर चुके हैं और कर भी रहे हैं। इसका वार्षिक उत्सव भी मनाया जाता है। इन उत्सवों में श्री जगद्गुरु शंकराचार्य से लेकर राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन, डा० श्यामा प्रसाद मुकर्जी, पं० गोविन्द वल्लभ पन्त जी, श्री के० एम० मुन्शी, श्री प्रकाश जी, श्री विश्वनाथदास जी तक पधार चुके हैं। सभी ने इसके कार्यों की मुक्त-कंठ से प्रशंसा की है।

मध्ययुगीन धार्मिक, राजनैतिक व सामाजिक उथल-पुथल के पश्चात्य भारत की धार्मिक एकता कुछ क्षीण सी हो गई थी। इस कमी को दूर करने के लिए गुरुदेव ने भी 'हिन्दू प्रार्थना समिति' की स्थापना करके प्रार्थना योजना का कार्य क्रम रखा। सम्पूर्ण भारत के धर्माचार्यों का सम्मेलन बुलाकर, उसमें 'जय जय सुर नायक' और वह 'शक्ति हमें दो दयानिधे' नामक दो प्रार्थनाऐं स्वीकृत कराईं। इसका प्रचार सम्पूर्ण भारत में किया जा रहा है। इसके द्वारा धार्मिक और राष्ट्रीय दोनों प्रकार का जागरण हुआ है। आज सहस्त्रों नर-नारियों की यह व्यक्तिगत और सामूहिक उपासना का आधार बनती जा रही है। बहुत से स्कूलों, कालेजों में भी इसका प्रयोग होता है। मिलों में मजदूर करते हैं। खेतों में किसान करते हैं। महलों में भी होती है। झोंपड़ियों में भी होती है। बाल, युवा, वृद्ध सभी इसके द्वारा मानसिक सुख, शान्ति का अनुभव करते हैं।

सम्पूर्ण भारत में तीर्थ रूपी आश्रमों का निर्माण किया गया है। इन तीर्थों द्वारा समाज को भारतीय संस्कृति का संदेश दिया जा रहा है। अध्यात्म-विद्या की उपयोगिता बतलाई जा रही है। भारत के गौरव से परिचय करवाया जा रहा है। भारतीयता का दर्शन दिया जा रहा है। 'गौरव साप्ताहिक' और 'प्रार्थना मासिक' पत्रिका के द्वारा इसका प्रकाशन किया जा रहा है। आश्रमों का प्रबन्ध कार्य अनुभवी वानप्रस्थियां

द्वारा होता है। गाँव-गाँव, नगर-नगर, सत्संग स्थापित किये गये हैं। कुछ संत्सग अपने वार्षिक उत्सव मनाते हैं। उत्सवों में यज्ञ, संत, महात्मा व विद्वानों के उपदेश होते हैं। इसके द्वारा समाज में एक आदर्श-वातावरण बनाने का प्रयत्न किया जाता है। समाज को सत्य मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी जाती है। इसके माध्यम से समाज में धार्मिक चेतना जाग्रत होती है।

आज समस्त वर्गों ने अपनी-अपनी संस्थाओं का निर्माण कर लिया है। स्वामी जी को प्रेरणा हुई कि भक्तों की भी एक संस्था होनी चाहिए। 'भारत भक्त समाज' उसी प्रेरणा का साकार रूप है। इस संस्था का विशेष प्रभाव अवकाश प्राप्त अधिकारियों, सामाजिक, राजनैतिक नेताओं पर पड़ा। बहुत से भक्तों ने अपना शेष जीवन इसकी सेवा में समर्पित कर दिया है। सम्पूर्ण भारत को नैमिष संदेश सुनाने के लिए इसने 'तीर्थ यात्रा ट्रेन' का भी आयोजन किया गया था।

विद्यार्थियों में अनुशासन चरित्र व धार्मिक शिक्षा देने के उद्देश्य से भी 'हिन्दू धर्म महाविद्यालय' की स्थापना की गई। जो छात्र कालेज या विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। उनके लिए निःशुल्क छात्रावास की व्यवस्था रखी गई है। गुरुदेव का अनुभव है कि विद्यार्थी अध्ययन के समय नहीं बिगड़ता। बल्कि अतिरिक्त समय में ही पथ-भ्रष्ट होता है। अगर विद्यार्थी के अतिरिक्त समय का उचित प्रयोग किया जा सके, तो उसको दोषों से बचाया जा सकता है। इसीलिए विद्यालय का प्रथम नियम है कि अध्ययन काल से बचा हुआ समय विद्यार्थी छात्रावास को ही देगा। वहाँ समय के सद् उपयोग की व्यवस्था रहती है। प्रतिभाशाली स्नातकों को छात्रवृत्ति देने का भी प्रबन्ध है। बहुत से योग्य छात्र इस विद्यालय से लाभ उठा चुके, उठा रहे हैं। इससे युवकों का चरित्र-उत्थान होता है। उनमें अनुशासन आता है। भारतीय विचार-धारा के प्रति श्रद्धा जागृत होती है। भारतीयता का सम्मान करना सीख जाता है। सादा-जीवन, उच्च-विचार जीवन में धारण कर लेता है। हृदय भारतीय गौरव से भर जाता है। गुरुदेव का युवकों के प्रति उद्देश्य पूर्ण हो जाता है।

भौतिक सृष्टि का प्रारम्भ ब्रह्मवर्त से हुआ है। लेकिन भौतिक जीवन के पश्चात् आध्यात्मिक जीवन का श्रीगणेश नैमिषारण्य ने ही किया है। यह विश्व की तपोभूमि है। तप में सहयोग देने वाले तत्त्व यहाँ विद्यमान हैं। तप से यह सिद्ध होता है। आदिकाल से महर्षियों ने, यहाँ तप किया। तप-बल से प्राप्त 'वसुधैव कुटुम्बकम्' एवं 'सर्वभूत हितेरताः' का सिद्धान्त प्राणीमात्र को दिया। अपनी अनुभव रूपी स्मृतियाँ लिख कर मानव-जाति का पथ-प्रदर्शन किया। परहित में अपनी हड्डियों तक देने में संकोच नहीं करना चाहिए—यही विश्व को संदेश दिया। इसी को परम धर्म

बतलाया। जीवन का लक्ष्य शाश्वत शान्ति और अनन्त आनन्द की प्राप्ति कहा। मोक्ष ही जीवन का अन्तिम उद्देश्य निश्चित किया। त्याग में ही जीवन का वास्तविक आनन्द होने की घोषणा की गई। धर्म, अर्थ, काम मोक्ष पूर्ण जीवन के प्रतीक कहे : अर्थ का अर्जन अवश्य करो, लेकिन धर्म के आधार पर, धर्म-युक्त अर्थ वही है, जो दूसरों के हित को हानि न पहुंचावे। कामनाओं की पूर्ति अवश्य करो, लेकिन धर्म के माध्यम से। धर्म के माध्यम का अर्थ है कि तुम्हारी कामनाओं की पूर्ति में समाज के किसी वर्ग, व्यक्ति या मर्यादा का उल्लंघन तो नहीं हो रहा है। इसीका ध्यान रखना धर्म-माध्यम से कामनाओं की पूर्ति करना है। धर्म-युक्त अर्थ व काम का सेवन करने से मोक्ष स्वयं ही प्राप्त हो जायेगा।

समाज को व्यवस्थित रूप से चलाने के लिए अनुशासक और अनुशासित के मध्य एक ऋषि-समाज होना चाहिए। व्यास गद्दी पर जीवन मुक्त और राज गद्दी पर कर्मयोगी होना चाहिए। धर्म नीति और राजनीति का समन्वय होना चाहिए। ऋषि समाज के पास दोनों का विश्वास होना चाहिए। सामाजिक-व्यवस्था में गीता के त्रिगुणात्मक-विभाजन का प्रयोग होना चाहिए। गुरुदेव का विश्वास है कि वर्तमान सामाजिक समस्यायें धर्म नीति के आधार पर सरलता से सुलझाई जा सकती हैं। धर्म-नीति की व्याख्या करते हुए, गुरुदेव कहा करते हैं कि दूसरों को सुख देना ही धर्म है, कष्ट देना ही पाप है।

अपने लोक हितकारी कर्मों के द्वारा गुरुदेव ने प्रमाद, आलस्य, दीर्घसूत्रता और अन्याय को झकझोर दिया है। निष्काम सेवी भक्तों का निर्माण करके, 'समाज भगवान् का है, समाज की सेवा करना ईश्वर की सेवा करना है। मैं समाज का हूँ और समाज मेरा है' यह भावना भरके कर्मयोगियों को कर्मक्षेत्र में लगा दिया है। जो यह सब कर रहे हैं, उनकी सब से बड़ी पहिचान यही है कि उनके दर्शन होने पर हृदय परम शान्ति का अनुभव करता है। आंखें अपने को धन्य कह उठती हैं। जीवन अपना लक्ष्य पा जाता है। मन, बुद्धि को समाधान मिल जाता है। उन्हें पा लेने पर सब कुछ पा जाता है। फिर कुछ शेष नहीं रहता है। यह चलता-फिरता जंगम तीर्थ है। इनके दर्शन मात्र से सब तीर्थों का फल प्राप्त हो जाता है। इस तीर्थ से न मालूम कितने तीर्थ बन गये, बन रहे है और बनेंगे। इस तीर्थ ने कितने ही आश्रम रूपी तीर्थ गाँव-गाँव, नगर-नगर बना दिये हैं। जो बद्रीनाथ, केदारनाथ, गंगोत्री, जमनोत्री, काशी, अयोध्या, मथुरा व हरिद्वार जाने में असमर्थ हों, वे अपने ग्राम या नगर के आश्रम रूपी तीर्थ में ही आकर सब तीर्थों का फल ले जावें। इस युगपुरुष ने धर्म की प्राप्ति कितनी सरल कर दी है। हे सपूत ! भारत मां धन्य है तुम को पा कर।

——:०:——

हरिहरयाग मीमांसा

लेखक—स्व० महामहोपाध्याय पं० विद्याधरजी गौड़, अग्निहोत्री
अनुवादक—याज्ञिक सम्राट् पं० श्री वेणीराम शर्मा गौड़, वेदाचार्य

परम पवित्र यह भारत देश अन्यान्य देशों की अपेक्षा बहुत श्रेष्ठ है, यह केवल हम ही नहीं कहते हैं, देशान्तरों के लोग भी यह निर्विवाद स्वीकार करते हैं। क्योंकि वहाँ के धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इस चार पुरुषार्थों में दूसरे और तीसरे पुरुषार्थ को ही प्रधानता देते हुए अपनी जाति और सभ्यता की अभिवृद्धि के लिए सचेष्ट रहते हैं, किन्तु वे यथार्थ रूप में अपने-अपने मनोरथ को सिद्ध नहीं कर पाते। जो देश भोग-विलास में आकण्ठ डूबा रहता है और धर्म-मार्ग से पराङ्मुख है, उसका जल्दी ही विनाश हो जाता है। इस विषय में उदाहरणों की कमी नहीं है। परन्तु हमारा भारतवर्ष विधाता की प्रथम सृष्टि से लेकर इस क्षण तक धर्म की प्रधानता में अटल आस्था रखता है, यही इसकी अन्यान्य देशों की अपेक्षा श्रेष्ठता का हेतु है। धर्म का त्याग कर स्वेच्छाचारिता में वर्तमान लोग पशुओं के तुल्य ही हैं, इसमें किसीको भी संशय नहीं, बल्कि ऐसे लोगों की अपेक्षा पशु श्रेष्ठ हैं, क्योंकि वे मनुष्यों की तरह पाप के भागी तो नहीं होते। इसीलिए कहा है—

'पशुतैव वरं तेषां प्रत्यावायाप्रवर्तनात्।'

'धर्माचरणहीन मनुष्य होने की अपेक्षा पशु होना अच्छा है, क्योंकि पशुओं को पाप नहीं लगता।'

देशान्तरों के लोगों का व्यवहार पशुओं का सा है, भारत निवासी वैसे नहीं हैं। प्रत्येक भारतीय जन की शास्त्रोक्त अपने-अपने धर्म में हार्दिक प्रीति नियत थी, यह प्राचीन इतिहास देखने से हमें ज्ञात होता है। प्राचीन महामति महर्षिगण वेद, आम्नाय आदि शब्दों से भी अभिहित होनेवाली भगवती श्रुति का पठन-पाठन द्वारा निरन्तर सेवन करते थे, उसीमें उनको बहुत अधिक गौरव प्राप्त हुआ था। उन्होंने—

सत्यं सत्यं पुनः सत्यमुद्धृत्य भुजमुच्यते।
न वेदाच्च परं शास्त्रं न दैवं शङ्करात्परम्॥

'हम सत्य कहते हैं, सत्य कहते हैं, फिर हाथ उठाकर सत्य कहते हैं कि—वेद से बढ़कर कोई शास्त्र नहीं है और शङ्कर जी से बढ़कर कोई देवता नहीं है।'

ऐसी घोषणा करते हुए वेदोक्त धार्मिक बातों का, जो जगत् का कल्याण करने वाली हैं, प्रचार के लिये बड़े परिश्रम से विविध प्रकार के स्मृति, पुराण आदि धार्मिक ग्रन्थों की रचना की थी। इस प्रकार के ग्रन्थों के निर्माण में प्राचीन पुरुषों का दूसरा अभिप्राय यह है—कहा गया है कि—भारतवर्ष का उत्कर्ष आध्यात्मिक और आधिदैविक शक्ति के अधीन है। आध्यात्मिक और आधिदैविक शक्तियां धर्माचरण के अधीन हैं, इस लिये धर्म का प्रचार अत्यन्त आवश्यक है। अतएव इन दोनों शक्तियों का त्याग कर रहे वैदेशिक लोग आधिभौतिकी शक्ति का अवलम्बन कर परस्पर जूझ कर विनाश को प्राप्त होते हैं, यह अनुमान सहज में किया जा सकता है। पूर्वोक्त दोनों शक्तियों की अभिवृद्धि के लिये हेतुभूत वेदोक्त धर्म की व्याख्या करने के लिये व्यास, जैमिनि आदि महर्षियों ने दर्शनों का निर्माण किया।

वेद-बोधित श्रेय का साधन धर्म का स्वरूप है, यह बताते हुए शास्त्रकारों का याग, दान, होम ही धर्म है, ऐसा अभिप्राय नहीं है, किन्तु—

'अयं तु परमो धर्मो यद योगेनात्मदर्शनम्।'

'बाह्य चितवृति के निरोध से जो आत्मा का यथार्थ ज्ञान है, यह परम धर्म है।'

—इत्यादि याज्ञवल्क्य स्मृति के प्रमाणों से आत्मज्ञान भी धर्म है, ऐसा आशय है।

यह प्रतिपादन कर रहे शास्त्रकारों का यह आशय प्रतीत होता है कि वेद में कर्म, ज्ञान और उपासना के रूप में विभक्त तीन कांडों के प्रतिपाद्य विषयों में भेद होने पर भी उनका परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। अतएव ग्रन्थकारों का तत् तत् स्थलों में ज्ञान और भक्ति का 'धर्म' शब्द से व्यवहार सङ्गत होता है। उन में कर्म-आधान से सिद्ध गार्हपत्य, आहवनीय तथा दक्षिणाग्नि रूप तीन अग्नियों द्वारा साध्य अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमास चातुर्मास्य, ज्योतिष्टोम प्रभृति श्रौत कर्म अनन्त हैं, वैवाहिक अग्नि (औपासनाग्नि) द्वारा साध्य उपनयन, विवाह आदि स्मार्त कर्म भी बहुत से हैं। कुशकण्डिका आदि संस्कार से संस्कृत अग्नि द्वारा साध्य रुद्रयाग, विष्णुयाग, चण्डीयाग, हरिहरात्मकयाग-रूप पौराणिक कर्म भी विविध हैं। जब ज्ञानचक्षु महर्षियों ने यह देखा कि आगे श्रौत-स्मार्त कर्मों के अनुष्ठान में लोगों की श्रद्धा कम हो जायगी, तब लोग पुराणों द्वारा उक्त कर्मों के अनुष्ठान द्वारा अपना-अपना मनोरथ पूर्ण करें, यह सोच कर उन्होंने पौराणिक कर्मों को प्रचलन किया था। जो पुरुष जिस देवता को यह मेरा आराधना योग्य है अथवा यह मेरा अभीष्ट

सिद्ध है फलदायक है, निश्चय करता है, जैसे—कोई रुद्र को, दूसरा विष्णु को तीसरा देवी को, कोई अन्य हरिहरात्मक देवता को, वह उस-उस देवता को कर्मों से सन्तुष्ट कर अपना अभीष्ट फल भोग करें, ऐसा पौराणिक-कर्म-प्रवर्तक ऋषियों का अभिप्राय प्रतीत होता है। उनमें हरिहरात्मक याग के अनुष्ठान के सम्बन्ध में किन्हीं किन्हीं को निम्ननिर्दिष्ट शङ्काएं होती हैं—हरिहरात्मक याग का विधान कहां किया गया है? यह नाम कैसे सिद्ध होता है? दो देवताओं को एक कुण्ड में आहुतियां किस प्रमाण से दी जाती हैं, उसका क्या फल है, इस में कौन से मन्त्र विनियुक्त हैं? उनका विभाग कैसे होता है और किस प्रकार यह भाग किया जाता है? इन शङ्काओं पर हमारा उत्तर इस प्रकार है—

पौराणिक यागों का श्रौत और स्मार्त कर्मों की तरह प्रत्यक्ष विधि-वचनों से ही अनुष्ठान होता है, ऐसा कोई नियम नहीं है। श्रौत कर्मों में भी बहुत स्थलों पर प्रत्यक्ष विधि न होने पर भी कल्पित विधि से अनुष्ठान स्वीकार किया जाता है। जैसे-दर्श और पूर्णमास—इन दो यागों में आग्नेय याग का कल्पित विधिबल से अनुष्ठान स्वीकार किया जाता है। उसका उत्पत्तिवचन है—

'यदाग्नेयोऽष्टाकपालोऽमावास्यायां पौर्णमास्यां चाच्युतो भवति।'

'आठ कपालों वाला आग्नेय याग अमावस्या और पौर्णमासी में अर्थात् दर्शपूर्णमास में अवश्य करणीय है।'

—इस वाक्य में न तो कोई यागबोधक शब्द है और न कोई विधि विभक्ति ही है। फिर भी विधि की कल्पना कर याग का अनुष्ठान किया जाता है, यह सर्वसम्मत है इसी तरह के उदाहरण श्रौतकर्मों में—

'अग्निहोत्रं जुहोति', 'सूक्तवाके प्रस्तरं प्रहरति',
'यस्य पर्णमयी जुहूर्भवति', 'यस्य खादिरः स्रुवो भवति',
'अक्ताश्शर्करा उपदधाति', 'तां चतुर्भिरभ्रिमादत्ते'

—इत्यादि बहुत से हैं। इन सब वाक्यों में वर्तमान काल का बोधक लट्लकार है, विधि-बोधक लिङ्ग लकार नहीं है, फिर भी कल्पित विधि द्वारा शास्त्रकारों ने इन्हें विधिवाक्य माना है। कहीं पर अर्थवाद वाक्य ही स्तुति में विहित न होने के कारण अनर्थक होने से अनुपपन्न होने के कारण शास्त्रकारों द्वारा विधिकल्पक मान लिये जाते हैं। जैसे—

'औदुम्बरो यूपो भवति ऊर्ग्वा उदुम्बरः, ऊक्, पशवः ऊर्जैवास्मा ऊर्जं पशूनाप्नोति, ऊर्जोऽवरुध्यै''

यह समग्र वाक्य, जो स्तावकत्व पक्ष में विहित नहीं है, स्तुति में अनुपपत्ति होने से औदुम्बर विधायक मान लिया जाता है। उससे जो औदुम्बरत्व का विधान हुआ, उसकी इस सम्पूर्ण वाक्य से स्तुति की जाती है, यह मीमांसकों का सिद्धांत है।

इस प्रकार "हरिहरदेवतया यजेत" (हरिहर देवता से याग करे) ऐसे वाक्य का श्रवण न होने पर भी हरिहर देवता के स्तुति बोधक वाक्यों से हरिहर देवता याग विधायक वाक्य की कल्पना कर उसका अनुष्ठान विवाद का विषय नहीं होना चाहिए। अन्यथा पुराणों में तत्तत् स्थलों में उपलब्ध होने वाले देवता स्तावक वाक्य अनर्थक ही हो जायँगे। उन वाक्यों की सार्थकता तत्तत् देवताओं की आराधना, जप, ध्यान, पूजा, तर्पण और हवन से होती है, यह सभी कर्मकाण्डियों का सम्मत विषय हैं। हरिहर देवता सम्बन्धी ध्यान और पूजन कूर्म पुराण आदि में उपलब्ध होते हैं। यह देखकर हमारे पूर्वज शिष्ट पुरुषों ने हरिहरात्मक याग का भी अपने अनिन्दित आचरणों से प्रचलन किया था। जो हरिहर उभयात्मक अभिन्न देवता की उपासना करते हैं, उनका यह अनुष्ठान कैसे निन्दा का विषय हो सकता है। इस प्रकार पुराणादि में उपलब्ध हो रहे हरिहर सम्बन्धी ध्यान, स्तुति और पूजा के प्रतिपादक श्लोकों से हरिहरात्मक याग के विधायक वाक्य की कल्पना की जाती है—

"हरिहरात्मकयागेन स्वाभीष्टं सम्पादयेत्"

अर्थात् हरिहरात्मक याग से अपने अभीष्ट को प्राप्त करे, अथवा शिष्टाचार से उस प्रकार की विधि का अनुमान होता है। जबतक शिष्टाचार के विरुद्ध स्मार्त अथवा श्रौत प्रमाण उपलब्ध नहीं होता, तबतक वह आचार प्रमाण है, यह शास्त्र प्रदर्शित सरणि है। कहीं पर स्मृतियों अथवा पुराणों में 'हरिहरात्मकयागं न कुर्यात्' (हरिहरात्मक याग न करे) ऐसा निषेध उपलब्ध नहीं होता। किसी दृष्ट कारण से भी यह कर्म निन्दित प्रतीत नहीं होता।

इस समय रुद्र, विष्णु, देवी आदि के जितने पौराणिक याग किये जाते हैं या कराये जाते हैं, इन का विधान पौराणिक वचनों से कल्पित विधि वाक्यों से ही स्वीकार करना चाहिए. स्मृतियां और पुराण श्रुतिमूलक होने से ही प्रमाण हैं। कहीं भी "रौद्रेण यजेत" "वैष्णवेन यजेत" ऐसी प्रत्यक्ष विधि उपलब्ध नहीं होती, जिससे ये प्रत्यक्ष श्रुतिमूलक हों। यद्यपि "शतरुद्रियं जुहोति" ऐसी विधि उपलब्ध होती है, तथापि जिस पद्धति से इस समय रुद्रादि याग किये जाते हैं, उनका मूल वह विधि है, ऐसा नहीं कहा जा सकता, किन्तु अनुमित श्रुतिमूलक ही हैं, ऐसा स्वीकार करना चाहिये। इस प्रकार हरिहर देवता के स्तावक पुराण वचनों से

अनुमित जो विधि-वाक्य है, वह शिष्टों द्वारा अनुष्ठीयमान हरिहरात्मक याग का मूल है, यह सिद्ध होता है।

इस याग के नाम के सम्बन्ध में कुछ लोग इस प्रकार के प्रश्न करते हैं— किस प्रमाण से इस याग का 'हरिहर' नाम पड़ा ? उसके सम्बन्ध में यह कहा जाता है—मीमांसा में चार निमित्तों से नाम की सिद्धि कही गई है—मत्वर्थलक्षणा न करनी पड़े इस भय से "उद्भिदा यजेत पशुकामः" इत्यादि उद्भिद् याग आदि नामों की, वाक्य भेद के भय से (चित्रत्व और स्त्रीत्व दो गुणों के विधान से वाक्य भेद होगा उसमें गौरव होगा इस भय से) "चित्रया यजेत पशुकामः" इत्यादि में चित्रा याग आदि नामों की, तत्प्रख्य शास्त्र से अर्थात् अन्य शास्त्र से (भाव यह है कि 'अग्निहोत्रं जुहोति' यह वाक्य अग्नि रूप गुण का विधायक है। यदि अग्निहोत्र को कर्म नाम मानें, तो द्रव्य और देवता दोनों का अभाव होने से कर्म (याग) का स्वरूप ही सिद्ध नहीं होगा। इस कारण दर्विहोम में इस से अग्निदेवता रूप गुण का विधान किया जाता है, ऐसी शङ्का होने पर कहा गया है कि अन्य शास्त्र से देवता प्राप्त है, अतः अग्निहोत्र कर्म नाम है) "अग्निहोत्रं जुहोति" इत्यादि में अग्निहोत्र याग आदि की। 'तद्व्यपदेशात्' अर्थात् उसके (श्येन के) धर्म का कथन होने से "श्येनेनाभिचरन् यजेत" इत्यादि में श्येन याग आदि की। इस प्रकार श्रौत कर्मों में नाम की सिद्धि का नियम रहने पर भी 'सोमयाग' 'आग्नेययाग", 'उपाँशुयाग' इत्यादि कर्म नामों का याज्ञिक जन व्यवहार करते हैं। ये नाम पूर्वोक्त प्रमाणों से सिद्ध नहीं किये जा सकते। 'ज्योतिष्टोम' नाम तत्प्रख्यशास्त्र से सिद्ध किया जा सकता है, किन्तु 'सोमयाग' नहीं। ऐसी स्थिति में 'सोमेन यजेत' यहां पर मत्वर्थलक्षणा के बिना ही शाब्दबोध होगा। इसी प्रकार 'आग्नेयोऽष्टाकपालः' यहां पर भी मन्त्रवर्ण रूप तत्प्रख्यशास्त्र से अग्नि की प्राप्ति मान कर 'आग्नेय शब्द' यदि नाम कहा जाय, तो आग्नेय शब्द आग्नेय के अधिकरण में गुण समर्पण करता है, यह सिद्धांत कट जायगा। इसलिए इस प्रकार के नामों के व्यवहार का मूल याज्ञिक जनों की प्रसिद्धि है, यही कहना चाहिये। 'सोम' द्रव्यवाला होने से 'सोमयाग' 'अग्नि देवताक होने से 'आग्नेय याग', 'उपांशु' किये जाने के कारण 'उपांशुयाग' इस प्रकार याज्ञिकों की प्रसिद्धि की उपपत्ति होती है। इसी [प्रकार 'रुद्रयाग' नाम रुद्र देवता वाला होने से है। तत्प्रख्यशास्त्र से ही यहां नाम की सिद्धि हो जायगी, ऐसा नहीं कहना चाहिये, क्योंकि तत्प्रख्यशास्त्र रूप से अभिमत रुद्रमन्त्र में रुद्र शब्द के तुल्य शङ्कर, मयस्कर आदि शब्द भी हैं, इस लिए 'शङ्कर याग' 'मयस्करयाग' ऐसा व्यवहार होने लगेगा। परन्तु वह अभिष्ट नहीं है, व्यवहाराभाव उसमें बाधक है।

अतः जैसे रुद्रदेवता वाला होने से 'रुद्रयाग' यह प्रसिद्ध है, इसी तरह ही विष्णु

अतः जैसे रुद्र देवता वाला होने से रुद्रयाग यह प्रसिद्ध है इसी तरह ही विष्णु देवता वाला होने से 'विष्णु-याग 'ऐसी प्रसिद्धि है, वैसे ही हरि-हरदेवता वाला होने से 'हरिहरात्मक-याग' यह नाम भी सिद्ध होता है। इस प्रकार कहीं पर द्रव्य को लेकर, कहीं देवता को लेकर, कहीं अन्य गुण (अङ्ग) को लेकर याज्ञिक-व्यवहार की उपपत्ति सिद्ध होती है, केवल मीमांसा में वर्णित पूर्वोक्त चार प्रमाणों से ही नहीं होती। इससे 'पुरोडाश-याग', 'पशु-याग' इत्यादि व्यवहार का भी समाधान हो गया।

यदि मीमांसा की दृष्टि से विचार किया जाय, तो आजकल किये जा रहे रुद्रादि याग कर्मों का—'याग' शब्द से व्यवहार असङ्गत होगा, क्योंकि ये 'यजेत' इस प्रकार की विधि से विहित नहीं हैं। इस विषय में वैदिकों की प्रसिद्धि का ही आश्रय करना होगा। वैदिक अथवा मीमांसक जन उपनयन अथवा विवाह में किये जा रहे होमों का उनमें देवता के उद्देश्य से हविस् का त्याग होने पर भी, 'उपनयन याग' 'विवाह-याग' इस प्रकार उनका 'याग' शब्द से व्यवहार नहीं करते। श्रौत-कर्म जो 'अग्निहोत्र' है, जिस में देवता के उद्देश से द्रव्यत्याग रूप याग होता ह, उसमें भी 'अग्नि-होत्र-याग' शब्द का व्यवहार किसी को भी सम्मत नहीं है। इस लिए इस प्रकार के स्थलों में 'रुद्र-याग', 'विष्णु-याग' इत्यादि की जैसे उपपत्ति होती है, वैसे ही 'हरिहरात्मक-याग' इसकी भी उपपत्ति होगी। इस तरह नाम की असङ्गति नहीं है, यह सिद्ध हुआ।

एक कुण्ड में दो देवताओं का याग कैसे ?

एक कुण्ड में हरिहरात्मक याग का अनुष्ठान कैसे ? हरि की जब होम द्वारा आराधना की जाय, तो तब वह आराधना 'पुरुषसूक्त' से होगी और रुद्र की जब होम से आराधना की जायगी, तब वह 'रुद्राध्याय-मन्त्र' द्वारा होगी। तब वे रुद्रयाग और विष्णुयाग होंगे। वे दो याग एक कुण्ड में किस प्रकार किये जा सकेंगे ? इस प्रकार का आक्षेप कुछ लोग करते हैं।

इस सम्बन्ध में हमारा यह कथन है—दर्श और पूर्णमास—इन दो योगों में 'आग्नेय याग' होना है और वह प्रकृति याग है। यदि इसकी विकृति भी अग्नि देवताक हो, तब आग्नेय-याग याज्या और पुरोनुवाक्या के मन्त्रों से ही वैकृत

आग्नेय के करने पर दर्शपूर्णमासिक आग्नेय याग किया——ऐसा व्यवहार क्या किसी को सम्मत हो सकता है ? कोई भी इस प्रकार का व्यवहार नहीं करता। वैसे ही प्रस्तुत हरिहरात्मक-याग 'रुद्राध्याय' से और 'पुरुषसूक्त' से किया जाय, तो वह न तो 'रुद्रयाग' होगा और न 'विष्णुयाग' ही होगा, किन्तु उनसे विलक्षण ही यह कर्म होगा। ऐसी स्थिति में इसका एक कुण्ड में अनुष्ठान कैसे न होगा ? भिन्न-भिन्न देवताओं का एक कुण्ड में होम कैसे हो सकता है, ऐसी शङ्का नहीं करनी चाहिये। क्योंकि पौर्णमास्य अथवा दर्श में विभिन्न देवताओं के एक ही आहवनीय अग्नि में होम किये जाते हैं। इस याग में हरिहर का देवतात्व 'अग्नीषोम' आदि के तुल्य व्यासज्य वृत्ति है, अतः कुछ भी अनुपपत्ति नहीं। किन्तु इतना अन्तर अवश्य है—श्रौत कर्मों में विधि से प्रतिपाद्य देवता को स्वीकार किया जाता है कहीं तद्धित से देवता की विधि होती है, कहीं चतुर्थी विभक्ति से और कहीं मन्त्र वर्णों से उक्त देवता की विधि होती है। किन्तु हरि और हर में वैसी विधि हम पाते नहीं, परन्तु हरिहर क्षेत्र आदि में हरिहरात्मक देवता प्रसिद्ध है और उसके पूजन आदि प्रचलित हैं, अतः उसके समाराधन के लिए शिष्ट पुरुषों ने याग भी चलाया है, इस कारण हरि और हर में देवतात्व व्यासज्य वृत्ति से माना जाता है। यदि व्यासज्य वृत्ति देवतात्व न होता, तो हरिहरमण्डल, हरिहर-ध्यान, हरिहर स्तुति, हरिहराष्टोत्तरनामावलि इत्यादि भी न होते। सर्वतोभद्र, लिङ्गतोभद्र की भांति 'हरिहरमण्डल' ही हरिहर में व्यासज्य वृत्ति देवत्वका बोधन करता है।

एक बात और है, वह यह कि याज्ञिक लोग मीमांसकों के तुल्य देवता का स्वरूप स्वीकार नहीं करते। मीमांसक एक मात्र शब्दगम्य देवतात्व मानते हैं, वे न तो देवताओं के हस्त पादादि अवयव मानते हैं और न उनकी फलप्रदातृत्व शक्ति को ही स्वीकार करते हैं। किंतु याज्ञिक लोग देवताओं को विग्रह आदि से युक्त तथा फलप्रदान में सक्षम मान कर अपने-अपने अभीष्ट फल की प्राप्ति के लिए उस-उस देवता की जप, होम आदि से तृप्ति सम्पादित करते हैं। इस लिए मीमांसकों के मत में विधि से विहित ही देवतात्व है, परन्तु याज्ञिकों के मत में विधि और उससे अतिरिक्त प्रमाणों से बोध्य देवतात्व है, यह सिद्ध होता है। इस प्रकार हरि-हर में व्यासज्य वृत्ति देवतात्व का स्वीकार एक कुण्ड में रुद्राध्याय से और पुरुष सूक्त से 'हरिहरात्मक याग' करने में कोई दोष नहीं है, यह सिद्ध हुआ।

दूसरी बात यह है कि कात्यायन श्रौतसूत्र के निम्न निर्दिष्ट दो सूत्रों— "फलकर्म-देशकालद्रव्यदेवतागुणसामान्ये" (१।७।३) तथा "तद्भेदे भेदः"

(१।७।४)—से फल कर्म आदि का भेद होने पर कर्म का भेद और उनका अभेद होने पर कर्म का अभेद कहा गया है। प्रस्तुत स्थल में हरिहर में विद्यमान देवता एक है, भिन्न नहीं है। इससे उनका एक कुण्ड में अनुष्ठान करने से किसी को भी विरोध नहीं है।

किस कर्ममें हरिहर का किस तन्त्र से कैसे अनुष्ठान होता है? इस प्रश्न का यह उत्तर है—अनेकों के उद्देश से एक बार के अनुष्ठान को तन्त्र कहते हैं। जैसे—दर्शपूर्णमास यागों में अनेक आग्नेयादि छह प्रधानों के उद्देश से प्रयाज, अनुयाज आदि का तत् तत् पर्व में एक ही बार अनुष्ठान होता है। उसमें जिनका सम्भव हो, उन अंगों का तन्त्र होता है और जिनका सम्भव न हो, उनकी आवृत्ति होती है। ऐसा न्याय निर्णीत मार्ग है।

'अप्रवृत्तकर्मा लौकिकोऽर्थसंयोगात्'। (१।३।२८)

इस कात्यायन सूत्र को लेकर जो कोई यह कहते हैं कि प्रकृत कर्म में रुद्राध्याय से होम की समाप्ति होने पर फिर पुरुष सूक्त से होम करने पर अग्नि लौकिक हो जायगी। इस विषय में हमें कहना है—हरिहरात्मक-याग प्रयोग के समाप्त न होने के कारण यह अप्रवृत्तकर्मा कैसे हुआ? हरि और हर के व्यासक्त देवता होने पर भी वैसे अर्थात् व्यासक्त देवता वाले मन्त्रों के उपलब्ध न होनेसे रुद्र और विष्णु याग से सम्बद्ध मन्त्रों को उनका अङ्ग मानकर यह प्रयोग करना चाहिये, इस कर्म का अनुष्ठान करने वाले हमारे पूर्वज शिष्ट पुरुषों का यह आशय है। ऐसी स्थिति में रुद्रहोम की समाप्ति होने पर भी प्रस्तुतः प्रयोग के समाप्त न होने के कारण अग्नि में लौकिकत्व का आपादन कैसे किया जा सकता है?

दूसरी बात यह भी है कि—

शृणु देवि महाभागे! यागं हरिहरात्मकम्।
कुर्वन् सिद्धिमवाप्नोति पुत्र-पौत्रप्रदायकम्॥

'हे देवी, हे महाभागे, सुनो पुत्र-पौत्र प्रदायक हरिहरात्मक याग का अनुष्ठान करता हुआ पुरुष सिद्धि को प्राप्त होता है।'

इत्यादि तन्त्रान्तर के वचन से हरिहरात्मक याग तन्त्रानुष्ठान प्रतीत होता हैं, इस लिए प्रकृत हरिहरात्मक याग में कात्यायन श्रौतसूत्र की प्रवृत्ति कैसे होगी? इस कारण हरिहरात्मक-याग निर्दोष होने, शास्त्र प्रतिपादित होने, शिष्ट पुरुषों

के आचार में स्वीकृत होने, अपने-अपने अभिलाषा का साधक होने तथा अगर्हित होने से अवश्य स्वीकार है।

जो लोग हरि और हर को एक ही प्रयोग से प्रसन्न कर अपने-अपने अभीष्ट सब फल प्राप्त करना चाहते हैं, दो देवताओं का समभाव से एकीकरण कर समाराधन कर रहे उन लोगों की सुविधा के लिये शिष्ट पुरुषों द्वारा प्रचलित 'हरिहरात्मक-याग' उचित प्रतीत होता है।

न हि कल्याणकृत् कश्चिद् दुर्गतिं तात गच्छति ।

इस भगवदुक्ति के अनुसार हरिहरयाग का अनुष्ठान करने और अनुष्ठान कराने में अनुष्ठान करने वाले तथा अनुष्ठान कराने वालों की सद्गति ही होगी, यह निश्चित है।*

——:०:——

---

* टिप्पणी—इस प्रकार के अनेकवेद, कर्मकाण्ड और धर्मशास्त्र के विद्वत्ता पूर्ण निबन्धों को पढ़ने के लिए देखिए—'महामहोपध्याय पण्डितश्रीविद्याधर गौड़ स्मारक ग्रन्थ'। यह स्मारक ग्रन्थ ५०० पृठों का १०) रुपये में ७।१४, सकर कन्द गली, वाराणसी के पते पर प्राप्त हो सकता हैं।

सफलता की कुँजी सद्गुरु शरणागति

श्री हंसराज अग्रवाल

एम० ए०, पी०ई० एस०

हम सफलता चाहते हैं, ऐहलौकिक और पारलौकिक । पारलौकिक की अपेक्षा भी ऐहलौकिकी अधिक, क्योंकि यह व्यक्त है, रोचक है, लुभावनी है । श्रेय की अपेक्षा प्रेय हमें अधिक पसन्द है परन्तु जिन पर सद्गुरु की कृपा हो जाती है वे श्रेय के लिए प्रेय को सहज में न्योछावर कर देते हैं । भगवद् गीता में भगवान् श्रीकृष्ण से अर्जुन ने बारम्बार यही प्रार्थना की है कि "मैं तीनों लोकों का राज्य भी न्योछावर करने को तैयार हूँ परन्तु आप मुझे ऐसा ज्ञान देने की कृपा करें जिससे मैं श्रेय को प्राप्त कर सकूं । पारलौकिक अनन्त सुख अथवा मोक्ष का अधिकारी बन सकूं" । भगवान् कृष्ण अर्जुन के परम सखा थे, अर्जुन की भगवान् में दृढ़ भक्ति थी । परन्तु ज्ञान की प्राप्ति तो सखा को नहीं कराई जा सकती । वह तो कोई विरला गुरु अपने किसी विरले अधिकारी शिष्य को कराता है । अतः अर्जुन ने विनीत और विनम्र शब्दों में शिष्यत्व स्वीकार कर के जगद्गुरु भगवान् कृष्ण की अनन्य शरण गति ग्रहण की और कहा :—

शिष्यस्तेहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम् ।

अर्जुन ने दृढ़तापूर्वक स्पष्ट कह दिया ।

यत् श्रेयः स्यात् निश्चितं ब्रूहि तत् मे ।

जो श्रेय हो, आप मुझे निश्चित रूप से उसी का ज्ञान कराइये ।

तब भगवान् ने अर्जुन को वह अमृत पान कराया जिससे उसे इस संसार की भी सफलता मिली और परलोक की भी । न केवल अर्जुन का ही कल्याण हुआ, अपितु सदा के लिए सभी मुमुक्षुओं का ।

सच्ची सफलता के लिए चाहिए अर्जुन जैसी अनन्य शरणागति और जगद्-गुरु भगवान् कृष्ण जैसा उपदेष्टा । जहां कृष्ण और अर्जुन का मेल हो जाय वहाँ पर संसार की सभी विभूतियां स्वयं एकत्रित हो जाती हैं ।

गीता के अन्तिम श्लोक में संजय ने धृतराष्ट्र को कहा था—

यत्र योगेश्वरः कृष्णः यत्र पार्थो धनुर्धरः ।
तत्र श्रीः विजयः भूतिः ध्रुवा नीतिः मतिः मम ॥

हे राजन्! विशेष क्या कहूं जहां योगेश्वर श्रीकृष्ण भगवान् हैं और जहां गांडीव धनुषधारी अर्जुन है, वहीं पर श्री, विजय, विभूति और अचल नीति है ऐसा मेरा मत है। जैसे बी० ए० पास करने वाला मैट्रिक पहले पास कर लेता है वैसे ही श्रेय का अधिकारी प्रेय को पहले प्राप्त कर लेता है। परन्तु जो मैट्रिक तक भी बड़ी कठिनाई से पहुंचता है, बी० ए० तक तो पहुंचने का प्रश्न ही पैदा नहीं होता। इसी प्रकार सांसारिक सफलता को ही जब हम अपना लक्ष्य बना लेते हैं तो सांसारिक सफलता भी कठिनाई से मिलती है और पारलौकिक सफलता की तो बात ही अलग है।

किसी मुमुक्षु सन्त ने क्या सुन्दर कहा है—

हमें भगवान् की चाह नहीं होती, भगवान् के पदार्थों की चाह होती है, अत; भगवान् से हम वंचित ही रहते हैं।

सद्गुरु अनन्य भक्ति और सच्ची श्रद्धा के भूखे होते हैं धन और सम्पत्ति के नहीं। जो शिष्य गुरु को धन से रिझाना चाहते हैं अथवा जो लोभी गुरु शिष्यों से धन की आशा रखते हैं और उसको प्राप्त करने से रीझ जाते हैं वे दोनों ही भ्रम में हैं। ऐसे गुरु शिष्यों की संसार में कमी नहीं है वे अध: पतन को प्राप्त होते हैं।

सन्त कबीर ने क्या सुन्दर कहा है—

साधु भूखा भाव का धन का भूखा नांहि।
धन का भूखा जो फिरे सो तो साधु नांहि॥

शास्त्रों में सद्गुरु को प्रभु से भी ऊंचा स्थान दिया है।

गुरु गोबिन्द दोऊ खड़े काके लागौं पाय।
बलिहारी गुरु आपने जिन गोबिंद दियो दिखाय॥

गुरु की कृपा से ही भगवान् की प्राप्ति हो सकती है, अन्यथा नहीं।

शिवे रुष्टे गुरुस्त्राता गुरौ रुष्टे न कश्चन।

भगवान् रूठ जाएं तो गुरु रक्षक हैं, गुरु रूठ जाए तो परमात्मा भी रक्षा नहीं करता। अतः शिष्य को बड़ी सावधानी के साथ बर्ताव करना चाहिए और ऐसा

कोई काम न करना चाहिये जिस से सद्‌गुरु रूठ जाएं।

जो गुरु रूठे होय तो तुरन्त मनाइये।
हुए दीन अधीन चूक बंकसाइये॥

यदि किसी कारण गुरु रूठ जायें तो शिष्य को लापरवाही नहीं बरतनी चाहिये, अपितु तुरन्त उन्हें मनाना चाहिये और बड़ी नम्रता पूर्वक अनुनय विनय करके अपनी भूल के लिये क्षमा याचना करनी चाहिये।

कबिरा ते नर अंध हैं गुरु को कहते और।
हरि रूठे गुरु ठौर है गुरु रूठे नहिं ठौर॥

वास्तव में स्थिति यही है कि जिसका गुरु रूठ जाता है उसका लोक में और कोई सहारा नहीं रहता। जब तक गुरु पथ-दर्शन नहीं करता तब तक उसके आगे अंधेरा ही अंधेरा हैं। किसी काम में सिद्धि प्राप्त नहीं हो सकती परन्तु जब गुरु प्रकाश दिखा देता है तो बेड़ा पार हो जाता है। कहा भी है—

ताको पूरी क्यों परे गुरु न कटाई बाट।
ताको बेड़ा बूडि है फिर फिर अवघट घाट।

पीछे लगा जाई था लोक वेद के साथ,
आगे से सतगुरु मिला दीवा दीन्हा हाथ।

जैसे धोबी पत्थर को शिला पर कूट-कूट कर साबुन की सहायता से कपड़े के मल को दूर कर के उसे स्वच्छ-साफ बना देता है, जैसे ही गुरु सुरति का अभ्यास करा-करा कर प्रभु नाम की सहायता से शिष्य के मल दोष को दूर कर के उसके अज्ञान और मोह का नाश कर देता है और अन्तर्ज्योति को प्रकाशित कर देता है—

गुरु धोबी शिष्य कपड़ा साबन सिरजनहार,
सुरति सिला पर धोइए निकसे जोति अपार।

सद्‌गुरु अपने शिष्य का पुनः-पुनः निरीक्षण करके उसके पशुत्व को मनुष्यत्व में और उसके मनुष्यत्व को देवत्व में परिवर्तित कर देता है। ऐसे गुरु के बार-बार बलिहार जाइये।

बलिहारी गुरु आपने घड़ीं घड़ी सौ बार,
मानुष से देवन किया करत न लागी बार ।

एक और दृष्टान्त में बताया है कि गुरु कुम्हार की भाँति शिष्य रूपी पात्र का सुधार करता है । यद्यपि वह ऊपर से चोट लगाता प्रतीत होता है परन्तु अन्दर हाथ का सहारा भी दे लेता है । यद्यपि बाहर से गुरु कठोर प्रतीत हो, परन्तु वास्तव में उसका हृदय बड़ा कोमल होता है । उसके सभी प्रयास शिष्य के कल्याण के लिए होते हैं । वैद्य की भाँति यदि वह कड़वी दवाई भी देता है तो उसका उद्देश्य स्थायी स्वास्थ्य प्रदान कर रोगी का हित करना होता है । सद्गुरु से बढ़कर मानव का और हितू नहीं हो सकता ।

गुरु कुम्हार शिष कुंभ है गढ़-गढ़ काढ़े खोट,
अंतर हाथ सहारदे बाहर मारे चोट ।

ऐसा सद्गुरु जिसे मिल जाये वह धन्य है । उसके जीवन का परम लक्ष्य पूरा हो जाता है । परम गुरु जी की अपार कृपा होते ही शिष्य का हृदय-कमल खिल जाता है, उसका अज्ञान और मोह नष्ट हो जाता है और ज्ञान रूपी प्रकाश का साक्षात्कार हो जाता है—

गुरु कृपाल कृपा जब कीन्हीं हिरदे कमल बिगासा,
भागा भ्रम दसो दिसि सूझ्या परम ज्योति परकासा ।

ऐसे सद्गुरु की प्राप्ति के लिये हमें भगवान् से सदा इन शब्दों में प्रार्थना करनी चाहिए—

सो दिन कैसा होयगा गुरु गहेंगे बांह,
अपना करि बैठाइंगे चरण कमल की छांह ।

यदि हमारी प्रार्थना के अन्दर सचाई है, यदि वह भावना से युक्त है, तो वह शीघ्र ही फलीभूत हो जाएगी और सद्गुरु से भेंट हो जाएगी । हमारी प्रार्थना में तड़प होनी चाहिए । ऐसा न हो कि मुख से प्रार्थना हो और मनुवा कहीं और हो । प्रार्थना में अतुल शक्ति होती है—

एक अंग्रेज टैनिसन ने कहा है—

प्रार्थना के द्वारा अचिन्त्य वस्तुओं की प्राप्ति हो जाती है ।

यद्यपि सद्गुरु का उपदेश सब शिष्यों के लिए समान होता है तो भी अधिकारी शिष्य पर उसका विशेष प्रभाव पड़ता है। जैसे सूर्य की समान किरणों का भी सूर्य-कान्त मणि पर विशेष प्रभाव पड़ता है, परन्तु मिट्टी के ढेले पर नहीं।

अधिकारी शिष्य में तीन गुण नितान्त आवश्यक हैं—

१. विनम्र भाव—गुरु में परा भक्ति ; गुरु में प्रभु की सी भावना। जैसे कहा भी हैं :—

यस्य देवे परा भक्तिः यथा देवे तथा गुरौ।

२. प्रतिभा और आचरण—शंका का वारम्वार समाधान कराना और उस पर आचरण करना।

३. निश्छल सेवा-भाव।

इत तीनों गुणों से रीझ कर सद्गुरु अपने ज्ञान का भण्डार अधिकारी शिष्य पर स्वयं न्योछावर कर देता है—

तद् विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनः तत्त्वदर्शिनः।

उपरिलिखित इन तीनों गुणों का शिष्य के अन्दर समावेश हो जाने से उसकी स्थिति निम्न प्रकार की हो जाती है—

ध्यान मूलं गुरोर्मूर्तिः पूजामूलं गुरोः पदम्,
मंत्रमूलं गुरोः वाक्यं मोक्षमूलं गुरोः कृपा।

उसके हृदय मन्दिर में सदा गुरु की मूर्ति का निवास हो जाता है और वह सदा उसी में लीन रहता है। पूजा के योग्य पदार्थों में वह गुरु के चरण कमल को पूज्यतम मानता है। गुरु के द्वारा कहे गये वचन में उसकी उतनी ही श्रद्धा होती है जितनी कि मन्त्र में।

उसे संसार में एक वस्तु की चाह होती है, और वह है गुरु की कृपा। बस इतना हम ने करना है शेष सब उत्तरदायित्व सद्गुरु का है। उसकी कृपा से मूक वाचाल हो जाते हैं और पंगु पर्वतों को पार कर जाते हैं। गुरु की कृपा से असम्भव भी सम्भव हो जाता है, मानव परम पद मोक्ष को भी प्राप्त कर लेता है और तो क्या ?

गुरु की कृपा का एक मात्र उपाय है गुरु की अनन्य शरणागति। यदि हम इसे अपना सकें तो बस फिर वेड़ा पार है।

एक रोमांचकारी सत्य घटना

अनोखा बलिदान

—श्री भक्त रामशरणदास—

सन् १९४७ में पाकिस्तान वन जाने की घोषणा होते ही समस्त पंजाब, सिंध, वंगाल में मुसलिम गुण्डों ने हिन्दुओं को बड़ी बुरी तरह से मारना काटना, सताना एकदम से प्रारम्भ कर दिया था। निरपराध हिन्दुओं को या तो तलवार के वल पर हिन्दू-धर्म को छोड़ कर मुसलमान बनने के लिये बाध्य किया जा रहा था अन्यथा उन्हें मार काट कर समाप्त किया जा रहा था।

पंजाब के ग्राम टहलराम में भी मुसलमान गुण्डों की सशस्त्र भीड़ ने हिन्दुओं के घरों को चारों ओर से घेर लिया तथा हिन्दुओं के सम्मुख यह प्रस्ताव रखा कि 'या तो सामूहिक रूप से कलमा पढ़ कर तुम सब लोग मुसलमान हो जाओ अन्यथा तुम्हें अभी मौत के घाट उतार दिया जायेगा। वेचारे वेबस हिन्दुओं ने मन में सोचा कि जब तक बाहर से हिन्दू मिलिट्री न आ जाय इतने समय तक कलमा पढ़ने का बहाना करके जान बचाई जाय और बाद में पुन: हिन्दू बन जाया जाय। उन्होंने मुसलमानों के कहने से उस समय कलमा पढ़ लिया किन्तु मन में राम राम का जप करने लगे।

—"ये काफिर हैं हमें धोखा दे रहे हैं, हिन्दू सेना आते ही ये अपनी जान बचा कर भाग जायेंगे। इन्हें गोमांस खिला कर इनका धर्म भ्रष्ट किया जाय और जो इनमें से गो-मांस न खाय उसे अभी मौत के घाट उतार दिया जाय।"—एक शरारती मुसलमान गुण्डे ने धर्मान्ध मुसलमानों की भी भीड़ को सम्बोधित करते हुए कहा।

"ठीक हैं इन्हें गोमांस खिलाकर इनकी परीक्षा अवश्य की जाय।"—मुसलमानों की भीड़ ने इसका समर्थन किया।

मुसलमानों ने उस गांव टहलराम के एक सुप्रतिष्ठित व्यक्ति तथा हिन्दुओं के परम श्रद्धेय नेता पं० श्री बिहारी लाल जी से कहा कि—'आप सभी लोग गोमांस खाकर यह सिद्ध करें कि आप वास्तव में अपने सच्चे हृदय से अपना हिन्दू-धर्म छोड़ कर मुसलमान हो गये हैं। जो आप में से इस समय गोमांस नहीं खायेगा उसे हम समझेंगे कि वह मुसलसान नहीं बना है और उसे फिर हम काफिर समझ कर मौत के घाट उतार डालेंगे।

पं० विहारी लाल जी ने मुसलमान गुण्डों के मुख से गोमांस खाने की बात सुनी तो उनका हृदय एकदम से हाहाकार कर उठा। अब अपना धर्म कैसे बचेगा यह चिन्ता सवार हो गई। उन्होंने अपने मन में विचार किया कि धर्म की रक्षा करने के लिए अपने प्राणोत्सर्ग करने का और अपना सर्वस्व समर्पित करने का समय समीप आ गया है। उनकी आंखों के सम्मुख धर्मवीर हकीकतराय तथा प्रातःस्मरणीय श्री गुरु गोविन्दसिंह जी महाराज के दुधमुंहे पुत्रों द्वारा धर्म की रक्षा के लिए अपने प्राणोत्सर्ग करने की झांकी उपस्थित हो गई और बन्दा वीर-वैरागी द्वारा धर्म की रक्षा के लिये अपने शरीर का माँस गर्म-गर्म चिमटों से नुचवाये जाने का दृश्य सामने आ गया।

पं० श्री विहारीलाल जी ने विचार किया कि इन ज़ालिम गोहत्यारे धर्म-हत्यारे म्लेच्छों के अपवित्र हाथों से मरने की अपेक्षा स्वय धर्म-रक्षार्थ हँसते-हँसते प्राण देना अधिक अच्छा है, हमारे प्राण रहते ये ज़ालिम मुसलमान म्लेच्छ हमारी बहिन-बेटियों को उड़ा कर न ले जायें और उनके पवित्र शरीर को इन महान् पापात्माओं का स्पर्श भी न हो सके ऐसी कोई युक्ति तत्काल निकालनी चाहिए।

पँ० श्री बिहारीलाल जी ने मुसलमानों से कहा कि तुम हमें चार घण्टे का समय दो, जिससे सभी लोगों को समझा-बुझा कर इसके लिए तैयार किया जा सके। मुसलमान लोग इसके लिए तैयार हो गए।

पं० बिहारी लाल जी ने अपने घर पर जा कर घर के समस्त परिवार वालों को एकत्रित किया। घर के एक कमरे में पत्नी, बहिन, बेटियाँ, बालक, बूढ़े आदि सभी को एकत्रित करके उन्होंने उन्हें बताया कि "मुसलमान नराधम हमें गोमांस खिला कर हमारा प्राण-प्रिय धर्म भ्रष्ट करना चाहते हैं। अब एक ओर तो हमारे सामने गोमांस खा करके अपना धर्म भ्रष्ट करना है और दूसरी ओर धर्म की रक्षा के लिये अपने प्राणोत्सर्ग करना है। अब आप सभी मिल करके निश्चय करो कि हमें इन दोनों मार्गों में से कौन सा मार्ग अपनाना है और क्या करना है ?

सभी स्त्री-पुरुष, बाल, वृद्धों ने यह बात ध्यान से सुनी और फिर सभी ने बड़ी निर्भीकता पूर्वक उत्तर दिया कि—गोमांस खा कर अपना धर्म भ्रष्ट होकर हमें अपना परलोक बिगाड़ने की अपेक्षा धर्म की बलिवेदी पर अपने प्राण दे देने अच्छे हैं। हम सभी लोग धर्मरक्षार्थ हँसते-हँसते मृत्यु का आलिंगन करने के लिए तैयार हैं।"

पं० बिहारी लाल जी महाराज ने महिलाओं को यह आदेश दिया "तुरन्त नाना प्रकार के सुस्वादु भोजन बनाओ और उसे भगवान् को भोग लगाकर खूब छक

करके खाओ—और अन्तिम वार खाओ, और फिर खूब सुन्दर-सुन्दर वस्त्राभूषण पहन कर धर्म की रक्षा के लिए मृत्यु से खेलने के लिये मैदान में डट जाओ।

आज्ञा की देर थी फिर क्या था तुरन्त तरह-तरह के बड़े-बड़े सुस्वादु भोजन बनाये जाने लगे। भोजन बनने पर श्री ठाकुर जी महाराज को भोग लगा कर सब ने डट कर भोजन किया तथा सबने अच्छे-अच्छे वस्त्राभूषण पहने। सज कर एवं वस्त्राभूषण धारण करके सभी एक लाईन में बराबर-बराबर खड़े हो गये। सभी में आज अपूर्व उत्साह व्याप्त था। पं० श्री बिहारी लाल जी का समस्त परिवार गो-रक्षार्थ अपने प्राणों पर खेल कर सीधे गो-लोकधाम जाने के लिये शीघ्रातिशीघ्र मृत्यु का आलिंगन करने के लिये बड़ा व्याकुल हो रहा था।

सभी को एक लाईन में खड़ा करके पं० बिहारी लाल जी ने कहा—

"आज हमें हिन्दू से मुसलमान बनाने और पूज्य गोमाता का मांस खाने के लिये बाध्य किया जा रहा है। हमें आज यह धमकी दी गई है कि यदि हम गो-मांस खाकर मुसलमान नहीं बनेंगे, तो हम सभी को आज मौत के घाट उतार दिया जायगा। हम सभी अपने प्रिय सनातन-धर्म की—हिन्दू-धर्म की रक्षा के लिये, पूज्य गोमाता की रक्षा लिये हँसते-हँसते बलिदान होना चाहते हैं।"

सबने श्रीभगवत्स्मरण किया और पं० बिहारी लाल जी ने अपनी बन्दूक उठा कर धायँ! धायँ!! करके अपनी धर्म-पत्नी, पुत्रियों, बन्धुवों बन्धुवों तथा अन्य सभी को गोली से उड़ा दिया। किसी के मुख से उफ तक न निकली, हँसते हुए और मुस्कराते हुए गोरक्षार्थ, धर्मरक्षार्थ बलिदान हो गये। घर लाशों के ढेर से भर गया।

अब पं० बिहारीलाल एवं उनके भाई दो व्यक्ति ही जीवित थे। दोनों में आपस में यह संघर्ष हुआ कि पहिले आप मुझे गोली मारें! दूसरे भाई ने कहा कि नहीं आप पहिले मुझे गोली का निशाना बनायें। अन्त में दोनों ने अपने-अपने हाथों में बन्दूक थाम कर और एक-दूसरे के आमने-सामने खड़े होकर एक-दूसरे पर गोली दाग दी। पूरा का पूरा परिवार ही धर्म रक्षा के लिये बलिदान हो गया।

मुसलमानों की भीड़ ने जब कुछ समय पश्चात् पुनः ग्राम टहलराम में अन्दर प्रवेश किया तब उन्होंने ग्राम की गली-गली में हिन्दू वीरों की लाशें पड़ी हुई देखीं। पं० श्री बिहारीलाल जी के मकान में घुसने पर लाशों के ढेर देखकर और धर्म-गो प्रेम का ज्वलन्त उदाहरण देख कर गुण्डे दान्तों तले अंगुली दबाते रह गए।

——.०.——

श्री जगदाचार्य अद्भुत आध्यात्मिक विभूति हैं

—अनन्तश्री स्वामी आत्मानन्द महाराज हिमालयवासी

अनन्तश्री विभूषित नैमिषव्यासपीठाधीश्वर परिव्राजक जगदाचार्य श्री स्वामी नारदानन्द सरस्वती जी महाराज एक अद्भुत आध्यात्मिक विभूति । मेरा इनका परिचय कम से कम २५ वर्ष पूर्व का है। दैवी विधान के अनुसार मुझे इनका प्रथम दर्शन परम पुनीत सतयुगी तीर्थ नैमिषारण्य में हुआ था। इनको देखते ही मुझे आर्य-जाति की ऋषि कल्पना मूर्तिमान् हो गई है । मुझे भारतीय संस्कृति में स्वाभाविक श्रद्धा रहती है परन्तु उसके वर्तमान स्वरूप को देखकर अवश्य महान् क्लेश व घृणा होती है । दैवयोग से इस पावन-मूर्ति को देखकर मेरी सुप्त श्रद्धा जागृत हो गई है। मुझे वह तेज पूर्ण परम मेधावी, धीर गम्भीर, सरल, दृढ़ निश्चयी एवं प्रेम पूर्ण लक्षित हुए। मैं इतना इनसे प्रभावित हुआ कि एक षट्मास मुझे ज्ञान ही नहीं हुआ कि समय कैसे व्यतीत हो गया। वह परम-रम्य नैमिषारण्य का शान्त एकान्त जीवन था । आनन्दालाप एवं स्वच्छन्द सानन्द विहार होता रहता था । ऋषि जीवन का यह मेरा प्रथम अनुभव था ।

इस शुद्ध स्वच्छन्द वातावरण में सद् विचार की लहरें गगन चुम्बन किया करती थीं । मेरे विचार में आया कि यदि यहां आध्यात्मिक विश्व-विद्यालय होता तो कितना अच्छा होता । मानव का सत् संकल्प कभी व्यर्थ नहीं जाता है। अस्तु, विचार-विमर्श, सत्संग, आत्मरमण के अतिरिक्त यहां दूसरा कार्य ही क्या था । आबादी अत्यल्प एवं शुभ भावनाओं की तरङ्गें निरन्तर लहराती ही रहती थीं ।

फिर नवीन संवत्सर का शुभ अवसर आया । नैमिष विश्व का केन्द्र माना जाता है, जहां चक्र तीर्थ, श्री ललिता देवी का मन्दिर एवं व्यास भगवान् तथा मनुशतरूपा का समाधि स्थल है । यह हिमालय की तरह तपःपीठ है जहां ऋषियों ने तपोबल से भगवान् को प्रकट करके विश्व का पाप ताप हरण किया । लोगों की ऐसी प्रबल धारणा है कि नैमिष-परिक्रमा करना मानों विश्व परिक्रमा करना है । मैंने भी इस महापुरुष की सन्निधि में इस परिक्रमा को सम्पन्न किया । इसमें मुझे भारत माता की एक झांकी मिली । ग्रामीण भाई बहन, सन्त महात्माओं का भिन्न २ प्रकार देखने को मिला । श्री स्वामी जी महाराज कहते थे कि यह फिर भी विश्व केन्द्र होगा । मुझे सहसा उस समय इस में प्रतीति नहीं होती थी। किन्तु मै स्वाभाविकतया श्री स्वामी जी महाराज के शुभ विचारों का एक अङ्ग बन गया ।

श्री स्वामी जी महाराज के साथ मैंने अवधपुरी का विलक्षण भ्रमण किया है। वह कितना प्राकृतिक आह्लाददायक एवं भारतीय व्यवस्था का परिचायक था, यह वर्णन नहीं हो सकता है। अनुभव तथा ज्ञान का विषय है। मुझे भगवान् श्री राम से परम प्रेम था, अतएव इस पावन भूमि में विचरने में मुझे विशेष आनन्द आता था। इस प्रकार इस सम्मेलन यात्रा-भ्रमण, विचार-विमर्श तथा निवास के बाद मैंने श्री स्वामी जो से विदा ली।

मैंने एक जीवन पथिक की हैसियत से आगे की यात्रा प्रारम्भ की। बहुत दिनों के बाद फिर भी घूमते फिरते श्री स्वामी जी का दर्शन हुआ जब कि स्थान का रूपान्तर हो चुका था। प्राचीन अरण्य जीवन का एक सम्यक् स्वरूप उपस्थित हो चुका था। वर्णाश्रम-धर्म एवं विद्यालय का निर्माण हो चुका था एवं भक्त मण्डली का पड़ाव पड़ने लगा था। इस भूमि का यह समृद्धशाली रूप देखकर परम आनन्द हुआ एवं मेरी सहानुभूति इसके साथ दिनोंदिन बढ़ती गई।

मेरा श्री स्वामी जी से अद्भुत मिलन था। मैं आधुनिक युग का एक आधुनिक व्यक्ति अपनी मौलिक सभ्यता में गौरव रखने वाला था तो श्री स्वामी जी प्राचीन सभ्यता के निष्णात पंडित मर्मज्ञ एवं ऋषि जीवन के आदर्श उपस्थित करने वाले महापुरुष थे। बहुत दिनों तक विचार विनिमय शंका समाधान होता रहा। यह पूरब पश्चिम दो विचार धाराओं का सम्मेलन था। मुझे सन्देह था क्या वैज्ञानिक युग के साथ सनातन-धर्म योग खा सकता है। रूढ़िवादिता से तो मैं कदापि सन्तुष्ट नहीं हो सकता था, परन्तु श्री स्वामी जी महाराज ने यह सिद्ध कर दिया कि सनातन-धर्म पूर्ण वैज्ञानिक एवं व्यावहारिक है, एवं इसी के द्वारा भारत का उत्थान सम्भव है। इस प्रकार मैं श्री स्वामी जी महाराज का सहयोगी बन गया। विचार का मिलना ही वास्तविक मिलन है। पर वह निष्काम होना चाहिये। सकाम तो व्यापार है।

इतना ही नहीं, श्री स्वामी जी महाराज में एक विशेषता मुझे यह मिली कि आप में 'सर्वभूतहिते रता:' का भाव कूट कूट कर भरा है। भारतीय संस्कृति एवं सनातन वैदिक धर्म की एकमात्र यही विशेषता है जो मैंने इन में परिपूर्ण पाया, जिससे मुझे इन में अत्यधिक प्रेम हो गया। आज भारत में इसकी कमी है जिसकी पूर्ति के लिये आप पधारे हैं ऐसा मुझे ज्ञात होता है।

भारत के उत्थान, अभ्युदय के लिये आपने कई संस्थाएं खड़ी की हैं यथा अध्यात्म-विद्यापीठ, भारत-भक्त-समाज, प्रार्थना-समिति, शिक्षा-सुधार समिति, धर्म महाविद्यालय इत्यादि। आपके सभी कार्य मौलिक एवं आदर्श हैं जिनकी वर्तमान

काल में नितांत आवश्यकता है। आज मेरे देश में देशभक्ति नहीं, अधिकांश स्वार्थ के पुजारी हो रहे हैं। यह अज्ञात का प्रताप है। स्व की शिक्षा का ही लोप हो हो गया। श्री स्वामी जी महाराज सच्चे शिक्षक, परिव्राजक के रूप में निःशुल्क व्यावहारिक आध्यात्मिक शिक्षा नित्य निरन्तर देते रहते हैं। ऐसा निस्वार्थ, शुद्ध ज्ञानी, कर्मयोगी बिरला ही कोई मिलेगा। यह पुण्य प्रदेश भारत ही है, जहां नर रूपमें नारायण विचरते आज भी पाये जाते हैं। अतएव यह देश गुरुप्रदेश कहलाता है।

यह संघर्ष एवं क्रान्ति का युग है। सर्वत्र संघर्षमय जीवन है। दो विचारधाराएं जगत् में फैल रही हैं, पूंजीवाद एवं साम्यवाद। दोनों में संघर्ष अनिवार्य है, वर्ग संघर्ष अथवा दल संघर्ष। जिसका परिणाम आज जगत् में प्रलय की आंधी वह रही है मानव बुद्धि हतप्रभ हो रही है। ऐसे सकट काल में आचार्य देव वैदिक सनातन धर्म की घोषणा करते हैं, जो समन्वयात्मक एवं मर्यादित है जहां संघर्ष के बजाय सहयोग है। घृणा द्वेषके स्थान में प्रेम है। सिद्धान्त की एकता है. तथा व्यावहारिक भिन्नता में मर्यादारूपी संयम का नियंत्रण है। मर्यादारूपी विधान के अन्तर्गत सभी सुशोभित एवं हितकर है। मर्यादा का व्यतिक्रम करते सभी कुछ अहितकर एवं विनाशकारी सिद्ध हो जाता है। यहाँ मानव की उत्पत्ति पशु से नहीं, परमात्मा से मानी जाती है। इसी को आप अपने उपदेश, आचरण, तर्क, युक्ति, प्रमाण एवं उदाहरण द्वारा जगत् के समक्ष उपस्थित करते निर्भीक विचर रहे हैं।

सौभाग्य का विषय है कि गत कुम्भ के शुभ अवसर पर साधु संत एवं सज्जन पण्डित वर्ग ने एक नवीन पद का निर्माण कर एक महान् गुरुतर भार आप को योग्य समझ कर सौंपा है। आप जगदाचार्य बनाये गये हैं। भारत में चरित्र का दारुण अभाव हो रहा है स्वतंत्र होने पर भी लाख चेष्टा करते हुये यह करवट नहीं बदल रहा हैं। अब इस देश में राजा नहीं रहा, विधान धर्म निरपेक्ष हो गया। एक मात्र सहारा इस देश का सद्-गुरु रह गये। साधन के बिना सिद्धि नहीं मिलती है। चरित्र के बिना ज्ञान नहीं होता है। ज्ञान के बिना सुख शान्ति नही। अतएव इस महान् क्षति की पूर्ति के लिये आप सदृश आचार्य देव का प्रतिष्ठान हुआ, जिससे देश समाज एवं जगत् का कल्याण हो। आपने रामराज्य का अपने पीठ में स्थापन किया है। मेरी परमात्मा से विनय है कि वह कृपया इसे पल्लवित, प्रस्फुटित एवं विकसित करे। शुभम् शान्तम् आनन्दम्। ❁

आत्मानन्दः
हिमालयवासी

श्री स्वामी रामपदार्थ दास जी वेदान्ती की सद्भावना

जब कभी धार्मिकता शिथिलोन्मुख होती है, तब उन दिव्य महा विभूतियों का आविर्भाव होता है जिनसे देश सचेत हो जाता है और अपने जीवन को सार्थकता के साथ आगे बढ़ाने की कोशिश करता है, उन महा विभूतियों में ही स्वामी श्री पूज्य श्री नारदानन्द जी महाराज हैं। धार्मिक प्रचार कुछ कालान्तर में सफलता प्राप्त करता है जैसे आप का सुझाव सद्यः प्रार्थना कृपा से सफल होता है। आज उन्हीं की देश-देश में, ग्राम-ग्राम में, घर-घर में तथा जन-जन में ऐहिक पारलौकिक सब प्रकार सुख सौख्य के देने वाली 'जय २ सुरनायक' प्रार्थना हो रही है। आपका देश उपकार उनके क्रियात्मक उज्ज्वल रूप को धारण किये नैमिषारण्य में साक्षात् विद्यमान है।

वेदान्ती रामपदार्थ दास
जानकी घाट अयोध्या

मुनि हरमिलापी जी की सद्भावना

यह जानकर परम हर्ष हुआ कि हमारे अभिन्नात्मा यतिवर्य जगदाचार्य श्री स्वामी नारदानन्द सरस्वती जी महाराज को अभिनन्दन-समिति द्वारा अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट करने का शुभ आयोजन किया गया है। मैंने श्री स्वामी जी महाराज को जहां तक अनुभव किया है हर प्रकार से इस सम्मान के योग्य हैं। और विद्वत्ता का सम्मान प्रदान करने के कारण आपकी अभिनन्दन समिति भी यथायोग्य धन्यवाद एवं आशीर्वाद की पात्र है। हमारी शुभ कामनायें सदैव आपके साथ हैं और रहेंगी।

—:o:—

दहर विद्या

—लेखक वीतराग श्री १०८ नारायणाश्रम स्वामी

मनुष्य का जीवन ज्ञान से ही बड़ा बन सकता है। ज्ञान अन्तःचेतना का उद्‌बोधक है, जिस के अविर्भाव से ही मनुष्य के मन में स्थित असंख्य जड़ तन्तुओं का उच्छिन्न होना सम्भावित है। विश्व के सब मानव विज्ञान के सर्वोच्च शिखर पर पहुँच कर भी जिस अभाव का अनुभव कर रहे हैं और जिसके बिना भौतिक जड़ प्रकृति से जायमान वैभवों का सदुपयोग नहीं हो पाता, इस चिन्मय विज्ञान-घन तत्त्व का अनुभव सब के लिए परमावश्यक है।

उपनिषदों में उक्त आत्मा के रहस्यों को उद्बोधन करने के लिए अनेक उपाय युक्ति व उदाहरण प्रसिद्ध हैं। पर हम सब मानव उसे समझने के लिए उतनी चेष्टा नहीं कर पाते, जितनी करनी चाहिये। कारण कि हमारा मन भौतिक वातावरण में इतना तन्मय हो चुका है कि, जिससे हम अपने को उसी प्रकार खो बैठे हैं जिस प्रकार कोई अनभिज्ञ व्यक्ति गहन महारण्य में जाकर मार्गान्ध हो भटकता है। अब हमें उस रहस्यपूर्ण मार्ग को ढूंढ निकालना चाहिए, जो हमारे जीवन के भीतर छिपा हुआ है और जिसके द्वारा आध्यात्मिक चेतना का प्रसारण तथा उस की पूर्णता का अनुभव संसार के प्रत्येक कार्य में हो सकता है।

अस्तुः- इससे पहले हमें कुछ और भी बातें समझ लेनी चाहियें; जिन पर हमारा मन अटका हुआ है। जिनकी विचित्रता से हमारा मन आगे न बढ़ कर वहीं अटका हुआ है, यह वास्तविक में क्या है? यदि हम सचमुच उन मनोन्मादक सांसारिक पदार्थों को क्षणभर के लिए सोच विचार कर देखते हैं, तो वे सब तेज गति से बहने वाली नदी की धार के समान, अत्यन्त चंचल एवं चपल गति से प्रतिक्षण परिवर्तन-शील मालूम होते हैं।

तात्पर्य यह है कि जैसे नदी की जलधारा तेज गति से बहती जाती है, पर मनुष्य की दृष्टि में वही जल और धारा का प्रत्यक्ष आकार बना रहता है, उसी प्रकार से, संसारके भौतिक व नश्वर पदार्थों में क्षण मात्रके लिए रमणीयता हो वह सदैव रहने वाला शाश्वत सुख-तुल्य मालूम पड़ता है।

सत्य बात तो यह है कि संपूर्ण दृश्य वर्गों का जो भौतिक स्वरूप है वह

प्रतिक्षण बदलता जाता है। इस के उलट-पुलट, उथल पुथल में विश्व प्रकृति क्षुभित हो उठती है। जिसके क्षोभ से समाज, व्यक्ति तथा राष्ट्र पर दूषित वातावरण छा जाते हैं। इस तरह के क्षोभपूर्ण वातावरण से स्वयं प्रकृतिदेवी बिगड़ जाती है। जिस के परिणाम स्वरूप आकाश, वायु अग्नि, जल पृथ्वी में बुरा प्रभाव पड़ता है। उक्त महाभूतों की विषमता से, यत्र-तत्र, अकाल, अतिवृष्टि, अनावृष्टि आतंक, महामारी आदि संक्रामक वातावरण फैल जाते हैं। पर अध्यात्म तत्त्व पर इस का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता, न उस में किसी प्रकार का परिवर्तन अथवा विकार ही उत्पन्न हो सकता हैं वह सदा-सर्वदा सनातन सच्चिदानन्द घन स्वरूप है, और हम सब मनुष्यों में रहने वाला अन्तरात्मा है।

कहने का तात्पर्य यह है कि हम सब मानव, खरबूजे की तरह भले ही ऊपर से भिन्न-भिन्न रंग-आकार के दीख पड़ते हों पर भीतर से एक रंग रूप वाले, आत्मा के समान हैं अर्थात् हम सब का अध्यात्म स्तर एक है हम उसे भूल कर, भौतिक व आपातरमणीय विषय सुखों में कदापि एकत्व स्थापन नहीं कर सकते। एकता के विना सुखशान्ति संघटन सर्वथा के लिए असम्भव है अतएव व्यक्ति समाज तथा देश में एकात्म निष्ठा बनाये रखने के लिए केवल लौकिकज्ञान की सीमा से आगे चल कर लोकोत्तर अतीन्द्रिय ज्ञान प्राप्ति के लिए यत्न करना चाहिये। इस प्रकार का अद्भुत ज्ञान हमें उपनिषद् के भीतर ही मिल सकता है, जिसे विमल हृदय से निरन्तर मनन करके मनुष्य प्राप्त कर सकता है।

जैसे मनुष्य देह पोषक साधनों का संचय करना परमावश्यक समझता है और तत्पूर्ति के लिए प्रयत्न करता है, वैसा ही आत्म-पोषण के लिए साधनों को अपनाना और तत्पूर्ति के लिए प्रयत्न करना परमावश्यक है। पर मनुष्य की यह बहुत बड़ी भूल है, जो स्वयं जानता हुआ भी आत्मा का श्रेय नहीं कर पाता। शरीर पोषण का संकल्प होते ही हमारी इच्छायें नित्य प्रति बढ़ती जाती हैं। ज्यों-ज्यों हम इच्छाओं के गगन में घूमते जाते हैं त्यों-त्यों हमारा जीवन संसार के अनेक कार्यों में उलझता जाता है। गगनचुम्बी प्रासाद में असंख्य मणि माणिक्यादि रत्न तथा सुन्दर सुकुमारी स्त्री के उपभोग में भी वह सन्तुष्ट नहीं होता। ब्रिटेन, अमेरिका, फ्रांस की बातें तो रहने दो, इन्द्र, चन्द्र, वरुण, कुबेर के लोक में पहुंच कर वहाँ के वैभव में सदा मोदित रहना चाहता है। पर वहाँ पहुँच कर भी उसे शाश्वत सुख शान्ति नहीं मिल पाती।

यदि इस पर यह कहा जाय कि मनुष्य की कामनायें कहाँ पर जाकर पूर्ण हो सकती हैं और वह आप्तकाम पूर्णकाम एवं सत्य-संकल्प-रूप कैसे बन सकता है, तो इसके लिए उपनिषद् में कहा है कि :—

तद्यथेह कर्मचितो लोकः क्षीयत एवमेवामुत्र पुण्यजितो लोकः क्षीयते, अथ य इहात्मानमनुविद्य व्रजन्त्येतांश्च सत्यान्कामांस्तेषां सर्वेषु लोकेषु कामाचार भवति (छा० ८।१।३ ।।)

जो मनुष्य संसार के भोगैश्वर्य में अथवा स्वर्गादि लोक में आमोद प्रमोद कर लेने का संकल्प करते और उसकी सफलता का स्वप्न देखते हैं वे सर्वथा भ्रान्त हैं। क्यों कि जब तक आत्मा का ज्ञान नहीं होता तब तक उनके मनोरथ अपूर्ण रहते हैं अस्थिर संकल्प के कारण मनुष्य के मन में जैसी खलबली मचती रहती है और वह भग्न मनोरथ होकर भवाटवी में जिस प्रकार भटकता है वह तो देखते ही बनता है, कहने की बात नहीं।

उपनिषद् से हमें यही प्रेरणा मिलती है कि जब तक हम अपने आत्मा का ज्ञान नहीं कर पाते तब तक हमारा सब कर्त्तव्य अपूर्ण और दृष्टि विनष्ट अत्यन्त लौल्य तथा उपाय चक्र में घूमते रहते हैं। जहाँतक अध्यात्म प्रेरणा का सम्बन्ध है वहाँ तक मनुष्य के प्रत्येक आचरण में चेतना का प्रसारण रहता है और इसीं से स्फुरित हो मनुष्य प्रत्येक कार्य पूर्ण करता है।

सारांश यह है कि, प्रत्येक मनुष्य का जीवन पूर्णकाम-सत्यकाम बन सकता है और वह अपने सत्य संकल्प के प्रभाव से देवलोक-ब्रह्मलोक में पहुँच सकता है। पर कब ? जब कि उसे पहले अपने शरीर में आत्मा का ज्ञान हो। पर यह भी सहज में समझ में आना कठिन मालूम पडता है। कारण कि मन में अनेकानेक तर्क वितर्क सदा उठा करते हैं। जिसके कारण मनुष्य की बुद्धि व्यवसित नहीं हो पाती। महर्षि व्यास प्रणीत वेदान्तदर्शन, ऐसे तर्क-कुतर्क के उलझन में फँसी बुद्धि को उद्धरण करने के लिए है। जैसे आकाश में उमड़े बादल तेज हवा के कारण उड़ जाते हैं, इसी प्रकार दार्शनिक युक्ति से मन का तर्कजाल टूटता है बादलों के हटजाने पर जिस प्रकार सूर्य का प्रकाश फैल जाता है उसी प्रकार तर्क रहित निर्मल हृदय में आत्मा का प्रकाश फैल जाता है।

प्रश्न—पर उक्त प्रकार का तात्विकज्ञान हमें कहां से मिल सकता है ?

उत्तर—दहर विद्या से, जैसा कि वेदान्तदर्शन में कहा है:—

दहर उत्तरेभ्यः (ब्र सू· १· ३· १४)

वेदान्तदर्शन का अभिप्राय मनुष्य मात्र के मन को एक धारणा में आसीन कराना है, जिस का मौलीकार्थ 'सत्यं·शिवं-सुन्दरं' हो। यह स्थान जिसे दहर

विद्या के नाम से पुकारा गया है, मनुष्य मात्र के हृदय प्रदेश में निहित है। जैसा कि उपनिषद् में कहा गया है—

अथ यदिदमस्मिन् ब्रह्मपुरे दहरं तद्वाव विजिज्ञासितव्यम्
(छा० ८ १. १.)

जहाँ पर देह के भीतर आत्मा का निवास स्थान है उसे दहर आकाश कहा गया है। उक्त अंगुष्ठमात्र दहराकाश जिसके अन्दर है, उसे ब्रह्मपुर कहते हैं। इस पर श्री आद्य शंकराचार्य कहते हैं:—

तदधिगमाय हृदयपुण्डरीकदेश उपदेष्टव्य:
(शं. भा.)

उक्त ब्रह्मपुर में, अर्थात् देह में स्थित जो जीवात्मा का निवास स्थान हृदय है, उसमें परमात्मा का ज्ञान सम्पादन करने के लिए ही दहर पुण्डरीक नामक देश विशेष का उपदेश किया गया है।

प्र:—ब्रह्मपुर (पुण्डरीक) में स्थित दहराकाश का क्या स्वरूप है ?

उः—जैसा कि बाहर का महाकाश।

प्र:—उसे जान लेने पर क्या होता है ?

उः—संपूर्ण विश्व के स्थूल-सूक्ष्म पदार्थों का परिज्ञान (तथा अन्तरिक्ष के सूर्यचन्द्र-वायु आदि लोक में यथेच्छा पूर्वक संचार)।

प्र:—यदि मनुष्य के अन्तरात्मा में सब कुछ ज्ञान-विज्ञान भरा पड़ा है तो उसके मरने पर वह सब नष्ट हो जाने चाहियें ?

उः—आत्मा अजर अमर है। देह के नाश हो जाने पर उसका कुछ भी नहीं बिगड़ता अतएव जहाँ से देह का भौतिक निर्माण होता है, और जहाँ जाकर समाप्त होता है, उसके मूल में खोज करना चाहिये।

कारण कि, मनुष्य के अन्तर हृदयाकाश में ही सूर्य-चन्द्र-अग्नि-विद्युत् तथा इतर-सूक्ष्म पदार्थों को जानने का विज्ञान भरा पड़ा है। यदि उक्त दहर-विद्या का आश्रय लेकर आत्मसाक्षात् कर लिया तो उसे स्वेच्छा-पूर्वक उक्त ग्रह, नक्षत्र, अन्तरिक्ष के लोक में भ्रमण करने का सुअवसर मिल सकता है। जैसा कि उपनिषद् में कहा है।

तेषां सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति ॥ (छा० ८. १. ६)

इसी प्रसंग को लेकर आगे के मंत्र में भगवान् शंकराचार्य कहते हैं:—

य आत्मनं यथोक्तलक्षणं हृदि साक्षात् कृतवान्। वक्ष्यमाणब्रह्मचर्य्यादि-साधनसम्पन्नः संस्तत्स्थांश्च सत्यान् कामान्··· (छा० उ० २। १)

जो व्यक्ति उपनिषदों में बतलाये गए नियमों द्वारा ब्रह्मचर्य आदि व्रतों का पालन कर चुका हो और तथोक्त दहराकाश के अभ्यन्तर में आत्मा का साक्षात् अनु-

भव कर चुका हो, उसके लिए संकल्प मात्र से ही से पूर्ण लोक-लोकान्तर में पहुंचने की शक्ति उत्पन्न हो जाती है।

जैसे योगी प्राणायामादि-योग-शक्ति के बल पर सूक्ष्म शरीरसे, संपूर्ण ब्रह्माण्ड के भीतर और बाहर स्वेच्छा पूर्वक घूम सकता है वैसे ही उक्त दहर-विद्या का अनुभव करने वाला ज्ञानी पुरुष अपने संकल्प के बल से सूर्य, चन्द्रमस् आदि अन्तरिक्ष लोक में प्रतिष्ठित हो सकता है। जैसा कि श्रुति कहती है:—

यं यमन्तमभिकामो भवति यं कामं कामयते ।
सोऽस्य संकल्पादेव समुपतिष्ठन्ति तेन स महीयते ॥

(छा ८. २. ११)

अब हमें इसी प्रसंग को लेकर आगे चलना है और उस स्थान की खोज करना हैं जहां हमारे संकल्पों को सशक्त बना देने वाली शक्ति रहती है। वह शक्ति किसी बाह्य साधनों से परिवर्धित नहीं अपितु अन्तरात्मा के साथ उसका अभिन्न सम्बन्ध है। जैसा कि उपनिषदों में वर्णन मिलता है।

अथ य एष सम्प्रसादोऽस्माच्छरीरात्समुत्थाय परंज्योतिः सम्पद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्य एष आत्मेति·········(छा. ८. ३. ४)

अनन्त संकल्पों को सत्यकाम–पूर्णकाम बनाने वाला हमारा अन्तरात्मा है। देह में उक्त आत्मा को देखने के लिए, देह की प्रत्येक अवस्थाओं पर ध्यान देना परमावश्यक है। मनुष्य मात्र के भौतिक शरीर संपूर्ण सांसारिक कार्यों में जिसके प्रभाव से चलता फिरता है, वह इस देह की अवस्था मानी जाती है। आत्मा और देह के मध्य में रह कर इन तीनों अवस्था (जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्ति) का प्रचार करने वाली तीन वृत्ति जो प्रिय मोद प्रमोद के नाम से हैं। आत्मा की इन तीनों वृत्तियों में से पहला प्रिय है जिसके द्वारा आत्मा देह इन्द्रियों मन के सम्पर्क से संसार के समूचे पदार्थों (वस्तुओं) में अनुकूल-प्रतिकूलता का अनुभव करता है। दूसरी 'मोद' नामकी वृत्ति है। इस वृत्ति के प्रभाव से आत्मा, देह इन्द्रियों से संपर्क रखे विना केवल मन द्वारा ही बाह्य पदार्थों को भोगता है। अर्थात्, प्रमाण और प्रमेय द्वारा संसार के प्रत्येक वस्तुओं में जो अनुकूल-प्रतिकूल का सम्बन्ध है इनके विना केवल मन (प्रमाता) ही आत्मा के सम्बन्ध से जैसा संकल्प करता है, तदनुरूप पदार्थों का भोक्ता बनता हैं।

तीसरी प्रमोद वृत्ति है, जिसके द्वारा संपूर्ण स्थूल-सूक्ष्म पदार्थों से उपरत हो वृति अपने में महान् आनन्द का अनुभव करती है। उक्त तीनों वृतियों को क्रमशः जाग्रत् स्वप्न और सुषुप्ति के नाम से पुकारा जाता है।

अस्तु, उक्त तीनों अवस्था एवं वृत्ति जहाँ से उत्पन्न होती हैं और जहाँ

जाकर समाप्त हो जाती हैं उस मौलीक प्रदेश में आत्मा रहता है। इस पर गौडपाद आचार्य अपनी कारिका में कहते हैं कि—

ज्ञाने च त्रिविधे ज्ञेये क्रमेण विदिते स्वयं। सर्वज्ञता हि सर्वत्र भवतीह महाधियः

भावार्थ यह है कि उक्त तीनों अवस्थाओं को जान कर और इनक जो ज्ञेय है उसे भी जान लेने पर मनुष्य महान् बुद्धिमान् सर्वज्ञ कहलाता है। आत्मा ज्ञेयस्वरूप है और तीनों अवस्था और वृत्ति उसका ज्ञान है। अन्त:चेतना का एक (बाह्य) भाग सत्व-रज-तम गुण-धर्म के साथ मिश्रित हो लौकिक ज्ञान पर्यन्त फैला हुआ है और दूसरा इन सब ज्ञान जनित अवस्था व वृत्ति से परे सूक्ष्मतम ज्ञेय स्वरूप है। जिस अवस्था में ज्ञाता ज्ञान की ओर आकर्षित न होकर ज्ञेय स्वरूप अपने को पहचान लेता है तो उसे सर्वसर्वज्ञता मिलती है।

हमारे शास्त्रप्रणेता महर्षि उसे महान् बुद्धिमान् कहते हैं, जो इस प्रकार के ज्ञान ज्ञाता और ज्ञेय स्वरूप की पहचान कर लेता है। इतना ही नहीं अपितु वह महान् मनीषि बनकर ज्ञान और विज्ञान को सम्पादन करने की योग्यता पा लेता है। जब मनुष्य का मन संपूर्ण दृश्य पदार्थों से विमुख होकर आत्मा की ओर अग्रसर होने लगता है, तब उसकी इच्छा शक्ति महान् बनती हैं! सच कहा जाय तो उपनिषद् की उपासना मनुष्य मन को संघटित एवं सशक्त बनाने के लिए प्रेरित करती है।

आज से कुछ हजार वर्ष पूर्व के इतिहास में हम सुनते आये हैं कि हमारे पूर्वज महर्षि ऐसे थे जो कि स्वेच्छा पूर्वक सूर्य-चन्द्र मंगल-शुक्र लोक में जाते आते थे। मनुष्य शरीर के भीतर में स्थित हृदय पुण्डरीक से चक्षु आदि इन्द्रियों द्वारा प्राण को आक्रमण करके सूर्य आदि लोक-लोकान्तर में प्रवेश कराने की अद्भुत प्रणाली जिस प्रकार उपनिषदों में मिलती है वैसी अन्य शास्त्रों में नहीं। आज के जमाने में यह विद्या दुर्लभ सी हो चली है। कुछ तार्किक तो इस पर टीका टिप्पणी भी करने लग जाते हैं।

कुछ भी हो यह कहना सर्वांश में सत्य है, कि हमारे पूर्वज महर्षि, उक्त विद्या के प्रभाव से ही सर्वत्र भ्रमण किया करते थे। वे अध्यात्म से अधिभूत पर विजय पाकर अधिदैव से अधिष्ठित सूर्यादिलोक में जिस तरह पहुँचते थे उसकी मार्ग प्रदर्शक 'दहर विद्या' है। यही इस लेख का सारांश है कि मनुष्य का मन भौतिक आकर्षण में जिस तरह फँसा हुआ है उसे किस तरह ऊपर उठाकर सशक्त बनायें वह सब साधन पद्धति उपनिषदों के अध्ययन से ही मिल सकती है। इसलिए आज के युग में उपनिषदों का अध्ययन मनन करना तथा तत्सम्बन्धि साधनाओं की खोज करना परमावश्यक है।

गीतात्म दर्शन—

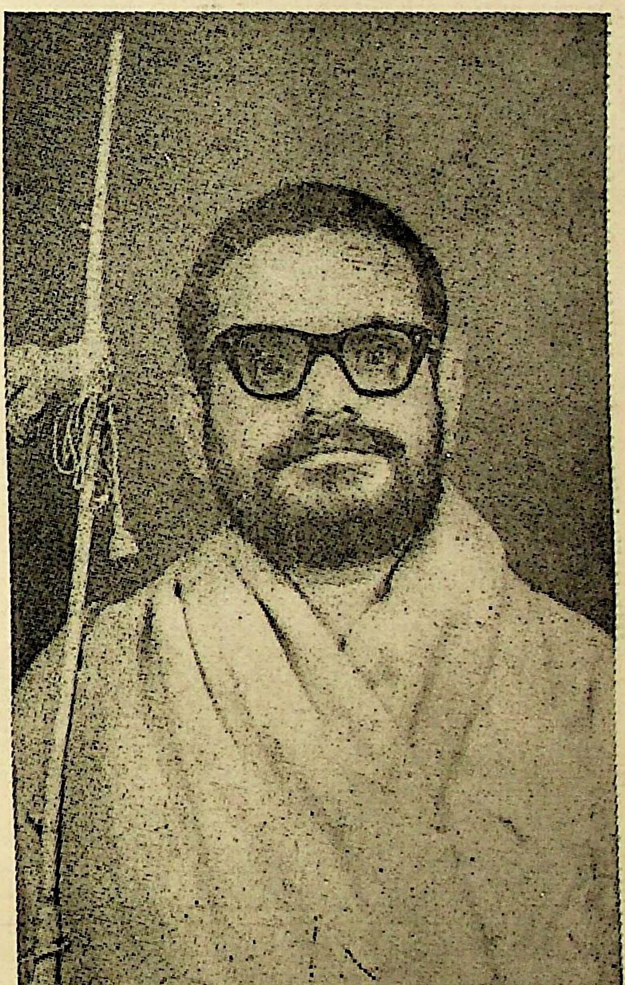

वेदान्तदेशिक

वीतराग श्री १००८ नारायणाश्रम स्वामी

अमरकंटक जि० शहडोल (म० प्र०)

अभिनन्दन ग्रन्थ के सम्पादक

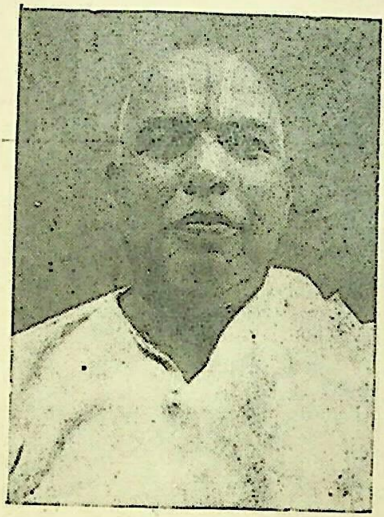

शास्त्रार्थ महारथी पं० माधवाचार्य शास्त्री

कतिपय सम्मान्य लेखक

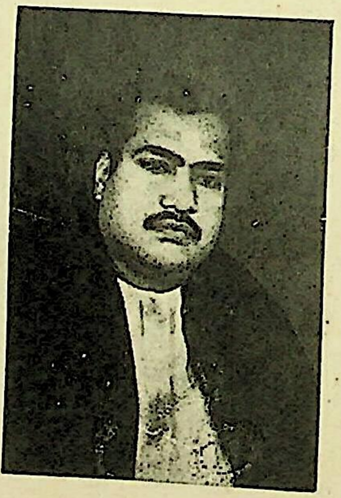

श्री पं० वेणीराम जी गौड़
वेदाचार्य

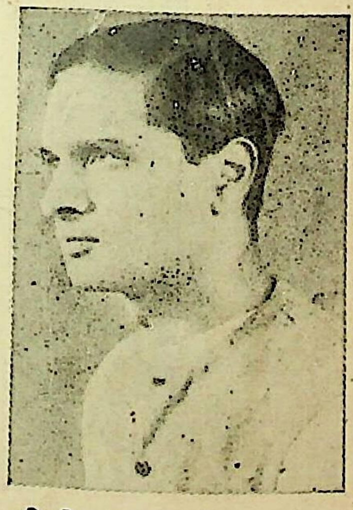

श्री शिवकुमार गोयल पत्रकार
लेख—२५६ पृष्ठ पर देखें।

यज्ञ और अग्नि

—याज्ञिकसम्राट् पं० श्री वेणीराम शर्मा गौड़, वेदाचार्य

'देवतोद्देशेन अग्नौ हविर्द्रव्यत्यागो यागः' के अनुसार देवता के उद्देश्य से अग्नि में हविर्द्रव्य का जो त्याग किया जाता है, उसे 'यज्ञ' कहते हैं।

गीता (३।११) में भगवान् ने 'देवान्भावयतानेन' के द्वारा मनुष्य और देवता के लिए आदान-प्रदानात्मक रूप परस्पर-भावन पर विशेष जोर देते हुए कहा हैं—जो मनुष्य यज्ञ के द्वारा देवताओं को सन्तुष्ट करते हैं, उनकी देवगण उन्नति करते हैं। अतः यज्ञ के द्वारा मनुष्यों और देवताओं की जो आदान-प्रदानात्मक परस्पर भावना उद्भूत होती है, वह बड़ी ही सुदृढ़ और कल्याणकारिणी होती है।

जिस प्रकार श्राद्ध में ब्राह्मणों को भोजन कराने से पितर तृप्त और सन्तुष्ट होते हैं उसी प्रकार यज्ञ की अग्नि में हवनीय द्रव्य द्वारा हवन करने से देवता तृप्त और सन्तुष्ट होते हैं।

किसी मनुष्य को भोजन कराया जाय तो वह मनुष्य के समक्ष प्रत्यक्ष रूप में अपने मुख से ही करता है, किन्तु यह बात देवताओं के लिए लागू नहीं है। देवगण अदृश्य होने कारण मनुष्य के द्वारा प्रदत्त हविर्द्रव्य को प्रत्यक्ष रूप में नहीं खाते, किन्तु वे अप्रत्यक्ष रूप में अग्निदेव के द्वारा ही खाते हैं। प्रदत्त हविर्द्रव्य को अग्नि के द्वारा भोजन करने के कारण अग्नि को 'देवताओं का मुख' कहा गया है—

अग्निर्हि देवानां मुखम्। (शतपथ ब्रा० ३·७.४।१०)
अग्निर्वै देवतानां मुखम्। (शतपथ ब्रा० ३।६।१।६)
अग्निमुखं प्रथमो देवतानाम्। (ऐतरेय ब्रा० १।१।२)
अग्निर्मुखं प्रथमो देवतानाम्। (काठकसंहिता ४।११४)
मुखं देवानामग्निः। (कपिष्ठल कठसंहिता ३१।२०)
देवानां मुखमग्निः। (ब्रह्मपुराण ८।१६)
अग्निमुखा वै देवाः। (आश्वालायन गृ० सू० ३।६।१६)
अग्निमुखा वै देवाः। (ताण्डय महा ब्रा० २५।१५।४)

अग्निमुखा एव देवताः। (तैत्तिरीय ब्रा० ३।७।१।८)

अग्नि के द्वारा भोजन करने वाले देवताओं के सम्बन्ध में कहा है कि—

देवा अग्निमुखा अन्नमदन्ति, यस्मै कस्मै च देवतायै च जुह्वति, अग्नावेव जुह्वति, अग्निमुखा हि तद्देवा अन्नमकुर्वत।
(शतपथ ७।२।२।४)

स यदग्नौ जुहोति तद्देवेषु जुहोति।
(शतपथ ब्रा० २।३।१।१६)

यदन्नं होमान् जुहोति, देवानेव तत् प्रीणाति।
(शतपथ ब्रा० १३।२।१।१)

अग्नौ हि सर्वाभ्यो देवताभ्यो जुह्वति।
(शतपथ ब्रा० ३।१।३।१)

ऋग्वेद[1] और अथर्ववेद[2] में लिखा है कि यज्ञ की अग्नि में डाला हुआ पदार्थ देवताओं को प्राप्त होता है।

उपर्युक्त प्रमाणों द्वारा स्पष्ट है कि देवताओं के उद्देश्य से अग्नि में जो हवन किया जाता है, वह देवताओं के मुख में ही जाता है और उससे देवता तृप्त एवं प्रसन्न होते हैं।

देवताओं के पास यज्ञ का हविर्द्रव्य पहुँचाने का काम अग्नि का है, इसी लिए अग्नि को 'देवदूत' और 'होता' कहा गया है—

अग्निर्हि देवानां होता दूतश्च। (शतपथ ब्रा० १।४।५।४)

अग्निरेव देवानां दूतः। (शतपथ ब्रा० १।४।१।३४)

अग्निर्वै देवानां होता। (ऐतरेय ब्रा० १२।३)

अग्निर्वै देवानां होता। (तैत्तिरीय सं० ३।५। ६)

अग्निर्होता। (शतपथ ब्रा० १। ५। १। ५)

अग्निर्हि देवानां होता तस्मादाहाग्निर्देवो दैव्यो होता।
(शतपथब्रा० १। ५। १। ५)

अग्निं दूतं पुरो दधे हव्यवाहमुपब्रुवे। देवां आसादयादिह॥
(शुक्लयजुर्वेद २२। १७)

---

[1] ऋग्वेद १।१। ४, ऋ० ७।११।५ [2] अथर्ववेद ५।१२।२

[3] अग्नि ही देवताओं को बुलाने वाला है, इसी लिये अग्नि को देवताओं का हितैषी कहा जाता है।

त्वमग्ने यज्ञानां होता विश्वेषां हितः। देवेभिर्मानुषेजने ॥[1]

(सामवेद १। १। २)

अग्नि को देवताओं के पास यज्ञीय हविर्द्रव्य पहुंचाने की सर्वदा चिन्ता बनी रहती है, किन्तु जब उसे देवताओं के लिए हवनीय द्रव्य नहीं मिलता, तो वह कुपित होकर प्रकृति के विरुद्ध कार्य करने लगता है। जिसका कुपरिणाम यह होता कि जगह-जगह भीषण अग्निकाण्ड होने लगते हैं, जिससे देश और समाज को बहुत भयङ्कर क्षति उठानी पड़ती है। अतः अग्निदेव की प्रसन्नता के लिये यज्ञ करना आवश्यक है।

यज्ञ में देवताओं के उद्देश्य से अग्नि में जो हवनीय पदार्थ डाला जाता है, उसे उन्हें समर्पण करने के लिये अग्निदेव यज्ञमण्डप में कुछ देवताओं को बुला लेते हैं, और कुछ के पास वे स्वयं जाते हैं। यज्ञमण्डप में सर्व प्रथम अपने मित्र वायुदेव को बुलाते हैं। वायुदेव के उपस्थित होने पर उन की विद्युत्, पर्जन्य आदि विविध शक्तियां भी उपस्थित हो जाती हैं। अग्निदेव की आज्ञा से वायुदेव और वायुदेव की दिव्य शक्तियाँ अग्निदेवके द्वारा जलाये हुए हविर्द्रव्य की भस्म को तथा भस्म के सूक्ष्म अणुओ को समस्त ब्रह्माण्डमें फैला देती हैं, जिससे समस्त संसार का कल्याण होता है।

जिस प्रकार समस्त आश्रमों का आधार 'गृहस्थ आश्रम' है, उसी प्रकार समस्त यज्ञों का आधार 'अग्नि' है। अग्नि केवल यज्ञों का ही आधार नही है, किन्तु वह समस्त धार्मिक अनुष्ठानों का आधार है। अग्नि के बिना कोई भी धार्मिक कार्य पूर्ण नहीं हो सकता। अग्नि के आधार से ही गर्भाधानादि षोड़श संस्कार, शतचण्डी, सहस्रचण्डी, गायत्री पुरश्चरण, विष्णुयज्ञ रुद्रयज्ञादि एवं वापी, कूप, तड़ाग, देवमन्दिर आदि की प्रतिष्ठा आदि धार्मिक कृत्य सुसम्पन्न होते हैं। अग्नि के द्वारा केवल धार्मिक अनुष्ठान ही सुसम्पन्न नहीं होते, किन्तु सांसारिक सभी प्रकार के कार्य सुसम्पन्न होते हैं। जैसे—अग्नि के द्वारा भाप तैयार करना, सुवर्णादि धातुओं की शुद्धि करना, जंगल की जड़ी बूटियों से काढ़ा एवं अर्क तैयार करना, रेलगाड़ी चलाना, बड़ी—बड़ी मशीन और इंजन चलाना आदि। इतना ही नहीं अग्नि के द्वारा ही मनुष्य के भक्ष्य-पदार्थ (भोजन) का भी निर्माण होता है। अतः निश्चित है कि अग्नि जड़ चेतन सभी का आधार है। अग्नि के बिना संसार के सभी कार्य

---

[1] हे अग्ने ! तुम मेरे यज्ञों के सम्पादन करने वाले हो। तुम मानव-समाज में उत्तम गुणों के द्वारा सब का हित करने वाले हो।

विफल हो जाते हैं। अतः धार्मिक और लौकिक सभी दृष्टियों से अग्नि का विशेष महत्त्व है।

मनुष्य-जीवन के लिये अग्नि बहुत ही उपारक है और महत्त्वपूर्ण वस्तु है।

'अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः' (गीता १५। १४)

के अनुसार वैश्वानर भगवान् जाठराग्नि के रूप से प्राणिमात्र के शरीर में निवास करते हैं। वैश्वानर भगवान् की तृप्ति और प्रसन्नता के लिये प्रत्येक प्राणी अपने मुखरूपी कुण्ड में भोजनरूपी आहुति प्रतिदिन डालता है। प्राणिमात्र का यह भोजन रूपी यज्ञ प्रतिदिन चलता रहता है। इस यज्ञ के बिना प्राणी कथमपि जीवित नहीं रह सकता।

प्राणिमात्र में रहने वाला वैश्वानर अग्नि ही प्राणिमात्र का संचालन और संरक्षण करता है और वही प्राणिमात्र को चेतनता, तेजस्विता, स्वस्थता और जीवनशक्ति प्रदान करता है। इसलिये मनुष्य को वैश्वानर-स्वरूप अग्निदेव की उपासना जीवन पर्यन्त अवश्य ही करनी चाहिये।

मनुष्य का जीवन ही अग्निमय है। जीव जब अपनी माता के उदर में नव मास तक रहता है, तब उसका सर्वप्रथम 'जाठराग्नि' से सम्बन्ध स्थापित होता है। पश्चात् जब वह माता के उदर से बाहर आता है—तब उसका सम्बन्ध जीवन पर्यन्त के लिये 'लौकिक अग्नि' से स्थिर हो जाता है और जब वह मरणावस्था को प्राप्त होता है तब उसका सम्बन्ध "[1]क्रव्याद अग्नि' (चिताग्नि) से हो जाता है, जिस के द्वारा उसका शरीर जल कर भस्म हो जाता है—'भस्मान्तं शरीरम्' (शु० य० ४०। १५)। विशेष आश्चर्य्य की बात तो यह है कि जिस अग्नि का प्राकृतिक धर्म जलाना है वह मनुष्य के उदर में सर्वदा रहते हुए भी उसे नहीं जलाता। इसका कारण यह है कि मनुष्य अपने उदर में रहने वाले 'जाठराग्नि' के लिए भोजन रूपी आहुति प्रतिदिन उचित मात्रा में डालता रहता है जिससे 'जाठराग्नि' शान्त रहती है और मनुष्य को किसी प्रकार कष्ट नहीं देती, यदि किस दिन मनुष्य अपने उदर में भोजन रूपी आहुति डालने में गड़बड़ी कर देता है, तो उसकी 'जाठाराग्नि' प्रत्यक्ष रूप धारण कर मनुष्य को बेचैन कर डालती है, जिससे मनुष्य बार-बार जल पीकर अथवा अन्य कोई औषधि विशेष खाकर अग्नि को

---

[1] 'क्रव्यादमग्निं प्रहिणोमि; (शु० य० ३५। १६)

शान्त करता है । अतः उदर स्थित अग्नि को शान्त रखने के लिए भोजन रूप आहुति पर विशेष ध्यान चाहिए । अन्यथा मनुष्य मन्दाग्नि अथवा अन्य प्रकार के उदर रोगों से पीड़ित होकर शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त हो जायगा ।

हमारे हिन्दू-धर्मशास्त्रों में द्विज के लिए जीवन पर्यन्त अग्नि की उपासना करने के लिए कहा गया है । द्विज 'यज्ञोपतावीत-संस्कार के बाद जब ब्रह्मचर्याश्रम में प्रवेश करता है, तभी से उसे जीवन पर्यन्त के लिए अग्नि की उपासना का व्रत ग्रहण करना पड़ता है और वह जीवन पर्यन्त पञ्च-महायज्ञादि के द्वारा अग्नि की उपासना करता रहता है । शास्त्रों में द्विजाति के लिए अग्नि को प्रत्यक्ष 'देवता' और गुरु कहा जाता है—

अग्निर्देवो द्विजातीनाम् । (लौगाक्षिस्मृति)
अग्निर्देवो द्विजातीनाम् । (चाणक्यनीति ४।१९)
गुरुरग्निर्द्विजातीनाम् । (चाणक्यनीति ५। १)
गुरुरग्निर्द्विजातीनाम् । (पद्मपुराण, स्वर्ग० ५२। ५१)

जो अग्नि द्विजाति के लिये प्रत्यक्ष देवता और गुरु है, उसकी उपासना द्विजाति को जीवन पर्यन्त करना चाहिये ।

[1]शतपथ ब्राह्मण (१।४। २। २) में ब्राह्मण को अग्नि, [2]तैत्तिरीय ब्राह्मण (२। ७। ३१) में ब्राह्मण को आग्नेयं और [3]भविष्य पुराण (ब्राह्मपर्व १३। ३६) में ब्राह्मण को अग्निदेव कहा है ।

ब्राह्मण के लिये कहा गया है कि उसे अग्नि के गुणों से विभूषित होना चाहिये । अग्नि के गुणों से विभूषित होने के लिये ब्राह्मण को अग्नि की उपासना आवश्यक है । अग्नि की उपासना से ब्राह्मण अग्नि के गुणों से विभूषित हो जाता है । जो ब्राह्मण अग्नि के गुणों से विभूषित हो जाता है, वही यथार्थ रूप में 'ब्राह्मण' कहलाने का अधिकारी है ।

मनुष्य की उत्पत्ति अग्नि से ही कही गई है । अतः प्रत्येक मनुष्य का सम्बन्ध अग्नि से जीवन पर्यन्त बना रहता है । मनुष्य की जब मृत्यु होती है, तो उसको अग्नि से जला दिया जाता है । मनुष्य का अग्नि के साथ विशेष सम्बन्ध होने का प्रधान कारण यह है कि उसकी शिखा (चोटी) के मूल-भाग में अग्नि का निवास होता है । अतः शिखावाले व्यक्ति को 'आग्नेय' कहा जाता है । शिखा को अग्नि का विशेष चिह्न कहा गया है—'अग्निचिह्नं शिखाकर्म ।'

---

[1] ब्रह्म ह्यग्निः । [2] आग्नेयो वै ब्राह्मणः । [3] ब्राह्मणा ह्यग्निदेवास्तु ।

संन्यासाश्रम में प्रविष्ट होने के बाद संन्यासी को अग्नि चिह्न स्वरूप शिखाका परित्याग करना पड़ता है। अग्नि का संन्यासी को भी परित्याग करना पड़ता है। अग्नि के परित्याग करने के कारण संन्यासी 'आग्नेय' नहीं रह जाता । इसीलिये संन्यासी की जब मृत्यु होती, तो उसको अग्नि से जलाया नहीं जाता, किन्तु उसका गंगा आदि नदी में प्रवाह किया जाता है। अथवा भूमि में गाड़ दिया जाता है।

हमारे शास्त्रों में प्रत्येक यज्ञ, प्रत्येक संस्कार और प्रत्येक कर्म की अग्नि के अलग नाम निर्दिष्ट हैं। अतः जिस कर्म को करना हो, उसी कर्म की निर्दिष्ट अग्नि का उपयोग करना चाहिये ।

जो लोग शास्त्रों में विश्वास न रख कर अथवा शास्त्रों को न मान कर जिस किसी अग्निका उपयोग करते हैं, वे याज्ञदि के यथार्थ फल से वञ्चित ही रहते हैं। अत: यज्ञादि शुभ कार्यों की सफलता के लिये शास्त्र विहित अग्नि का ही व्यवहार करना चाहिये। शास्त्रोक्त विधि के अनुकूल अग्नि के व्यवहार करने से ही किया हुआ कर्म फलप्रद होता है—[ऋग्वेद ८ । ६ । ४७)।

वेदों में अग्निका सबसे अधिक महत्त्व पाया जाता है। वेदों में अग्नि को 'सर्वा देवता' कहा गया है—'अग्निर्वै सर्वा देवता:, (शतपथ ब्राह्मण ५। २। ४। ६)। इन्द्र मित्र, वरुण, यम, मातरिश्वा, सोम, रुद्र आदि समस्त देवता अग्नि के ही स्वरूप हैं। एक ही अग्नि की उपासना से समस्त देवताओं की उपासना हो जाती है। अग्नि की उपासना के बिना अन्य देवता की उपासना सर्वथा असंभव है। अत: वैदिक-धर्मके ज्ञाताओं ने अग्निको सर्वदा से अपनाया है और वे अग्नि के द्वारा ही समस्त देवताओं को सन्तुष्ट करते हैं।

वेदों में अग्नि के महत्त्व के बारे में इस प्रकार लिखा है—

अग्निर्वै देवानामवमः। (ऐतरेय ब्रा० १।१।१)
अग्निर्वै देवानां प्रथमः। (ऐतरेय ब्रा० २०।१।१)
अग्निः सर्वा देवता:। (तैत्तिरीय ब्रा० १।४। ५।२७)
अग्निः सर्वा देवता:। (निरुक्त १४।३२)
अग्निः सर्वा देवता:। (शतपथ ब्रा० १।६।३'७)
अग्निर्वै सर्वा देवता:। (ऐतरेय ब्रा० ३।१।३।१)
अग्निर्वै सर्वा देवता:। (षड्विंश ब्रा० ३।७)
अग्निर्वै सर्वा देवता:। (शतपथ ब्रा० ५।२।४।६)

अग्निर्वै सर्वा देवताः।(तैत्तिरीय ब्रा० १।४।५।२९)
अग्निर्वै देवता। (ऐतरेय ब्रा० २०।१)
अग्निर्वै देवानां व्रतपतिः। (शतपथ ब्रा० १।१।१।२।)
अग्निर्वै देवानां सेनानी। (ऐतरेय ब्रा०)
अग्निर्वै देवानां यष्टा। (तैत्तिरीय ब्रा० ३।३।७।४३)
अग्निर्वै देवानां अन्नादः। (तैत्तिरीय ब्रा० ३।१।४।२७)
अग्निर्वै देवानां नेदिष्ठम्। (शतपथ ब्रा० १।६।२।११)
अग्निर्वै देवानां गोपाः। (ऐतरेय ब्रा० ५।२)
अग्निर्वै सर्वे यज्ञाः। (शतपथ ब्रा ४। ५। २। १३)
अग्निरुं देवानां प्राणः। (शतपथ ब्रा १०। १। ४। १८)
अग्निर्हि देवानां जठरम्। (तैत्तिरीय ब्रा० २। ७। १२)
अग्निर्यज्ञस्य हव्यवाट्। (तैत्तिरीय ब्रा २। ३। ४। १)
अग्नौ ह देवाः। (शेतपथ ब्रा २। ३। ४। १)
अग्नौ हि सवनि् यज्ञाँस्तन्वते। (शतपथ ब्रा० ४। ५। २। १३)

अग्नि को यज्ञ का देवता कहा गया है। यज्ञादि में 'अग्निमीडे पुरोहितम्' (ऋग्वेद १।१।१) इस मन्त्र के द्वारा जिस अग्नि देवता की स्तुति की जाती है और 'अग्नि आयाहि वीतये' (ऋग्वेद ६।१६।१०) इस मन्त्र के द्वारा जिस अग्नि देवता को यज्ञार्थ आवाहित किया जाता है, वह अग्नि अथर्वा ऋषि के द्वारा प्राणापानरूपी दो अरणियों के घर्षण (मन्थन) करने पर प्रकट होने वाली परम पवित्र अग्नि है, जिसको महर्षि अथर्वा के पुत्र 'दध्यङ् ऋषि' ने प्रज्वलित किया था वेद में कहा है—

'अथर्वा त्वा प्रथमो निरमन्थदग्ने।' (कृष्ण यजुर्वेद ४।१।३)
'तमुत्वा दध्यङ् ऋषिः पुत्र ईधे अथर्वण।' (कृष्ण यजुर्वेद ४।१।३)
'त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत।' (शुक्ल यजुर्वेद १५।२२)

वेदों में जिस अग्नि की विशेष प्रशंशा और महत्ता का उल्लेख है, वह अथर्वा ऋषि के द्वारा प्रकट की गई अग्नि है, जिसे 'अधिदैवाग्नि' कहा गया है। उस परम पवित्र अधिदैवाग्नि की स्तुति महर्षि भरद्वाज ने इस प्रकार की है—

अपत्यं वृजिनं रिपुस्तेनमग्ने दुराध्यम्। दविष्ठमस्य सत्पते कृधी सुगम्॥
(ऋग्वेद ६।५१।१३)

'हे सत्पते ! सज्जनों के रक्षक अग्निदेव ! तुम पापी तथा चोर-तस्कर शत्रु को हमसे दूर करो अथवा उसे सन्मार्ग पर आरूढ़ करो, जिससे वह हमसे सर्वदा दूर रहें ।'

अथर्वा ऋषि के द्वारा प्रकटित अधिदैवाग्नि के अन्दर ही 'जातवेदा' नामक अग्नि रहता है, जो कि देवताओं के निमित्त समर्पित किए हुए हविर्द्रव्य को ग्रहण कर देवताओं के पास पहुँचाता है । उस 'जातवेदा' अग्नि के सम्बन्ध में वेद कहता है-

क्रव्यादमग्निं प्रहिणोमि दूरं यमराज्ये गच्छतु रिप्रवाहः ।
इहैवायमितरो जातवेदाः देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन् ॥
(शुक्ल यजुर्वेद ३५।१९)

'मैं क्रव्याद (शवको भक्षण करने वाला) अग्नि को नहीं चाहता । क्रव्याद अग्नि के भीतर रहने वाले जातवेदा अग्नि को चाहता हूँ, जो कि देवताओं के निमित्त हविर्द्रव्य ग्रहण करता है, मैं उस अधिष्ठातृ देव को चाहता हूँ ।

प्राचीन काल में प्रत्येक गृहस्थ अग्नि तत्त्व से पूर्ण परिचित रहा करते थे । वे लोग अग्नि के यथार्थ महत्त्व और रहस्य को भली भाँति जानते थे । इसीलिए वे अपने-अपने घर में अखण्ड अग्नि अथवा अखण्ड ज्योति (अखण्ड दीपक) रखने की सर्वदा व्यवस्था रखते थे । इस तरह वे सारी रात्रि में तेल का दीपक जला कर अपने घरों को प्रकाशमय रखते थे । उस समय प्रत्येक गृहस्थ धन-धान्य से सर्वदा समृद्ध रहता था । किन्तु जब से हमने अपने घरों में अखण्ड अग्नि अथवा अखण्ड ज्योति का रखना बन्द कर दिया और रात्रि में दीपक जलाना बन्द कर दिया, तभी से हमारे घर अन्धकार से परि-पूर्ण हो गये और हम लक्ष्मी-विहीन हो गए । अतः समस्त प्रकार की सुख-सम्पत्ति की कामना वालों को सर्वदा अपने घरों में अखण्ड अग्नि अथवा ज्योति की व्यवस्था करनी चाहिए ।

अखण्ड दीपक का सम्बन्ध मनुष्य के जीवन और मरण से भी है । गृहस्थों के यहाँ जब 'बालक' पैदा होता है, तो वे 'प्रसूतिगृह' के द्वार पर दस दिनों तक 'अखण्ड अग्नि' रखते हैं । इससे जच्चा और बच्चा दोनों की सब प्रकार से रक्षा होती है । उन्हें भूत, प्रेत एवं बालग्रह आदि की ऊपरी बाधाओं का भय नहीं रहता ।

इसी प्रकार अग्नि के और भी अनेक लाभ हैं । शहरों, ग्रामों के जिन मकानों में अथवा जिन गलियों में भूत, प्रेत का भय सुना जाता था, आज वहाँ बिजली की रोशनी लग जाने से भूत, प्रेत आदिका भय सर्वदा के लिये दूर हो गया

और पता नहीं भूत, प्रेत आदि कहाँ चले गये। जिन मकानों में बिजली की रोशनी नहीं है अथवा बिजली की रोशनी लगने का कोई साधन नहीं है, उन मकानों में संयोगवश यदि भूत-प्रेत का भय प्रतीत हो तो उन मकानों में विधि पूर्वक हवन करने से सर्वदा के लिये वहाँ से भूत, प्रेत अन्यत्र चले जाते है। 'अग्निर्हि रक्षसामपहन्ता' (शतपथ ब्रा १।२।१।६) इसी प्रकार जब मनुष्य की मृत्यु होती है, तब भी उस के मृत्यु के स्थान में और उस के गृह के द्वार पर दश दिन दीपक जलाया जाता है। इस से मृतक के शोक-मोह आदि मानसिक वेदनाओं की निवृत्ति तथा मृतक के स्थान की शुद्धि हो जाती है। दीपक जलाये बिना मृतक का स्थान शुद्ध नहीं होता और भूत, प्रेत आदि बाधाओं का भय बना रहता है।

इसी प्रकार मनुष्य के यहाँ श्राद्ध में, देव पूजनमें, दीपावली आदि त्यौहारों में दीपक जलाया जाता है। अतः स्पष्ट है कि प्रत्येक कार्य में दीपक जलाना अनिवार्य है। दीपक जलाने से ही प्रत्येक कार्य की पूर्णता कही गई है। जिस कार्य में दीपक नहीं जलाया जाता, वह कार्य पूर्ण नहीं होता। कहा भी है—

'विना दीपेन सकला कार्यसिद्धिर्न जायते।'

अतः प्रत्येक गृहस्थ को अपने-अपने घर में अखण्ड दीपक जलाने की व्यवस्था करनी चाहिए। जो अपने घर में अखण्ड दीपक जलाने की व्यवस्था करेगा उसका घर देव-मन्दिर की तरह पवित्र और महत्त्वशाली बन जायगा।

यज्ञ और अग्नि का पारस्परिक सम्बन्ध बहुत प्राचीन काल से चला आ रहा है। विराट् पुरुष ने जब प्राणाग्नि में अपना हवन करके जगत् का कल्याण किया था, तभी से यज्ञ और अग्नि का अटूट सम्बन्ध चला आ रहा है। अतः यज्ञ और अग्नि दोनों ही मनुष्य के लिए शाश्वत सनातन धर्म हैं। जो यज्ञ और अग्नि मनुष्य के लिए शाश्वत सनातन धर्म हैं, उन भगवान् यज्ञ नारायण और भगवान् अग्नि नारायण की प्रसन्नता यज्ञ और भगवान अग्नि की उपासना आवश्यक है। जिस घर में यज्ञ और अग्नि की उपासना होती है, वह घर देव-मन्दिर के सदृश पवित्र बन जाता है और जिस घर में यज्ञ और अग्नि की उपासना नहीं होती, वह घर श्मशान के सदृश अपवित्र बन जाता है।

स्वाहा-स्वधा-स्वस्तिविवर्जितानि ।
श्मशानतुल्यानि गृहानि तानि ॥

आज के नागरिकता पूर्ण जमाने में वे लोग विशेष धन्य-वादार्ह हैं, जो यज्ञ करते-कराते हैं और जो यज्ञ में सर्व देवमय अग्निदेव-के द्वारा देवताओं को हविर्द्रव्य

प्रदान कर यज्ञ-परम्परा को अद्यावधि किसी न किसी रूपमें प्रचलित एवं जीवित रखे हुए हैं।

अनादिकाल से प्रचलित यज्ञ-परम्परा को जीवित और रक्षित रखना ही मानव-धर्म हैं। जो मनुष्य यज्ञ-परम्परा को जारी नहीं रखते, अथवा उसकी रक्षा नहीं करते, वे मनुष्य केवल इन्द्रियों के सुखको भोगने वाले और पापपूर्ण आयु को गँवाने-वाले होते हैं। अतः स्पष्ट हैं कि यज्ञ-विहीन मनुष्य का जीवन व्यर्थ ही होता है। गीता (३। १६) में भी इसकी पुष्टि की गई है—

एव प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्त्तयतीह यः।
अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति ॥

यज्ञ और अग्नि के यथार्थ रहस्य एवं महत्त्व से परिचित होने के लिये वेदों का अनुशीलन आवश्यक है।

अन्तमें हम अग्नि महत्त्व सूचक एक वेद-मन्त्र को उद्धृत कर अपने लेखको समाप्त करते है—

त्वमग्ने व्रतपाऽ असि देवऽआमर्त्येष्वा। त्वं यज्ञेष्वीड्यः। (शु० य० ४। १६)

—०:—

गोमती-तट

रचयिता—स्व० श्री "निश्चल" जी।

जहाँ अश्मेध आदि अगणित यज्ञ भये
जिनकी कछुक चिह्न आजहू प्रगट है।
जहाँ जप योग ध्यान तप सविधान बहु,
भए कल कीर्तिमान लागी राम रट है।
जहाँ पुण्य स्नान, दान नित्य होत रहे,
ज्ञान की कथान को प्रमान व्यास वट है।
"निश्चल" निखिल अवनी में अभिवन्दनीय,
सुर वृन्द वन्दनीय गोमती को तट है॥

पूर्व-मीमांसा में धर्म

लेखक—वीतराग श्री नारायणाश्रम स्वामी

इतिहास की परम्परा में वेदों को सबसे प्राचीन तथा संपूर्ण शास्त्रों का मौलिक स्रोत माना गया है। जिस वस्तु का परिचय प्रत्यक्ष तथा अनुमान से भी अगम्य हो, ऐसे सूक्ष्मार्थ का ज्ञान वेद के द्वारा हो जाता है। अतएव वेद की स्वसवेदना किसी अन्य शास्त्रों के प्रमाण द्वारा सिद्ध नहीं हो सकती।

वेद का स्वरूप :—

प्र० :—वेद किसे कहते हैं ?

उ० :– इष्ट प्राप्ति तथा अनिष्ट परिहार के लोकोत्तर उपाय जो बतला सके। जैसा कि वेद-भाष्य-भूमिका में सायण ने कहा है :—

इष्टप्राप्त्यनिष्टपरिहारयोरलौकिकमुपायं यो ग्रन्थो वेदयति स वेदः।

(वे. भा. भू.)

यद्यपि वेद की रचना अपौरुषेय है अर्थात् इसकी कल्पना किसी व्यक्ति विशेष की रचना अथवा, मस्तिष्क के उद्गार नहीं, तथापि धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष विषयक पुरुषार्थ-चतुष्टय का प्रकाशक 'वेद' माना गया है। वेद के मतानुसार वेदाध्ययन द्वारा, संपूर्ण वेदार्थ का ज्ञान संचय कर लेने पर उक्त पुरुषार्थ-चतुष्टय पुरुष के सिद्धहस्त हो जाते हैं।

हमारे पूर्वज महर्षियों ने असंख्य गहनार्थ से समवेत वेद रूप महासमुद्र में अवगाहन कर उसके भीतर में से तीन प्रकार के अर्थ ढूंढ निकाले। जिसका प्रथम नाम 'कर्म' और दूसरा-तीसरा नाम क्रमशः उपासना व ज्ञान से ख्यात हुआ। उक्त कर्म, उपासना एवं ज्ञान के अर्थ में संपूर्ण वेदार्थ को विभाजन कर क्रमशः ब्राह्मण, मन्त्र एवं आरण्यक के नाम से तीन काण्ड (खण्ड) रखे गये। जिसमे मनुष्य की बुद्धि निपुणतापूर्वक वेद के भीतर प्रवेश कर सके। और वह क्रमशः कर्म और उपासना द्वारा शरीर एवं मन को निर्मल बनाकर ज्ञान द्वारा आत्मा का साक्षात् कर सके।

तत्वतः मंत्र, ब्राह्मण तथा आरण्यक वेद के ही स्वरूप हैं। आज के ज़माने में अर्थात् प्रकाशन शैली द्वारा, मन्त्र, संहिता के आकार में

ब्राह्मण, महर्षियों के नाम पर, तथा अरण्य, उपनिषद् के नाम से विख्यात हैं और पूर्वोक्त धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इनके अधीन हैं।

उक्त पुरुषार्थ-चतुष्टय में से धर्म का स्थान सबसे प्रथम होने से अधिक महत्व पूर्ण है। कारण कि क्रमशः उत्तर तीन पुरुषार्थ भी एक धर्म के सम्पादन से हो स्वतः सम्पादित हो जाते हैं। साथ ही धर्म प्राणीमात्र का आश्रय एवं पालक भी है। अतएव मनुष्य मात्र के लिए इसकी जिज्ञासा परमावश्यक समझ कर, महर्षि जैमिनी ने गहन वेदार्थ का मंथन कर, उसका प्रमेय ढूंढ निकाला और कहा :—

अथातो धर्मजिज्ञासा।

धर्म की जिज्ञासा और ब्रह्म की जिज्ञासा में अन्तर इतना है कि ब्रह्म जिज्ञासा मनुष्य को लौकिक संसार ज्ञान से परे पहुँचा कर, लोकोत्तर अतीन्द्रिय आनन्द में अवगाहन के लिए प्रेरणा देती है धर्म की जिज्ञासा इस संसार में रहकर यावत् जीवन निष्काम कर्मानुष्ठान करते हुए, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, पुरुषार्थ-चतुष्टय में निष्णात होने की प्रेरणा देती है। अतएव मनुष्य मात्रके लिए सुसंस्कृत होकर वेदाध्ययन करना और धर्म की जिज्ञासा अपने में उदित करनी चाहिये।

प्रश्न—धर्म के क्या लक्षण हैं ?

उत्तर—महर्षि जैमिनी द्वारा प्रणीत मीमांसा-दर्शन में धर्म को बारह लक्षणों में विभाजित किया गया है। उक्त बारह लक्षणका परिचय पूर्णतः पा लेने पर ही सम्पूर्ण वेदार्थ का ज्ञान हृदय में स्फुरित हो सकता है।

प्रश्न—मीमांसा दर्शन में बतलाये गये धर्म के लक्षण कैसे मालूम पड़ सकते हैं।

उत्तर—पांच अङ्गों को जान लेने पर। मीमांसा के मतानुसार धर्म के पांच अङ्ग इस प्रकार हैं :— (१) विषय (२) सन्देह (३) संगति (४) पूर्वपक्ष (५) सिद्धान्त, जिसका संक्षेप में विवरण इस प्रकार है।

(१) **विषयः**—मीमांसा प्रोक्त धर्म द्वादश लक्षणों में विभक्त है। जिसे समझने लिए महर्षि जैमिनी प्राणीत दर्शन बारह अध्याय में विभाजित किया है। जिसमें प्रथम अध्याय में ४ पाद, द्वितीय-अध्याय में

चार पाद, तृतीय में चार पाद, चौथे और पांचवे में चार-चार पाद, छठे में ८ पाद, सातवे, आठवें तथा नवम में चार-चार पाद, दशम में आठ, ग्यारहवें में चार पाद, तथा बारहवें अध्याय में चार-पाद हैं। जिनके नाम (१) प्रमाण (२) भेद (३) शेषत्व (४) क्रत्वर्थ-प्रयुक्ति (५) क्रम (६) अधिकार (७) सामान्य अतिदेश (८) विशेष अतिदेश (९) ऊह (१०) बाध (११) तन्त्र (१) प्रसङ्ग हैं। ये सब मीमांसा दर्शन के विषय माने गये हैं।

संदेह :—पिछले प्रसंग में हम कह चुके हैं कि वेद, असंख्य गहनार्थ से समवेत है जिस में बहुत से मन्त्र कभी-कभी, एकार्थ का प्रतिपादन करते हुए मालूम पड़ते हैं और दूसरे कुछ मन्त्र एक ही अनेक स्थान पर नैकविध अर्थ में उपयुक्त होते हैं। अतएव यथास्थान, उचित एवं तथोक्त भाष्य-संगति से उपयुक्त 'अर्थ' ग्रहण करने के लिए, यह ऐसा है अथवा नहीं—इस तरह शास्त्र में संदेह की आवश्यकता पड़ती है।

(३) संगति :—दर्शन शास्त्र में अवगाहन करने से पूर्व उस की संगति का ज्ञान होना परमावश्यक है।

"अहित्वा संगतीस्तिस्त्रस्तथाऽवान्तरसंगतिम् ।"

श्री विद्यारण्य स्वामी प्रणीत न्याय-माला के इस कथन से शास्त्र अध्याय तथा पाद की पृथक्-पृथक् संगति है उदाहरणार्थ— प्रथम अध्याय के द्वितीय पाद के दूसरे अधिकरण में धर्म का लक्षण तथा प्रमाण से रहित बतलाकर पूर्व-पक्ष को दिखलाया गया है। धर्म सम्बन्धि विचार वेदार्थ से समवेत होने का कारण तथा वेद-प्रमाण और धर्म-विचार दोनोंका एकार्थ में अभिप्रेत होने से धर्म-लक्षण तथा प्रमाण से युक्त है—इस प्रकार के धर्म-विचार-विषयक मथितार्थ को मीमांसा-शास्त्र की संगति कहते हैं, यह संगति भी आक्षेप दृष्टान्त, उदाहरण, उपोद्घात तथा अपवाद के नाम से कई प्रकार की है।जिनका उपयोग दर्शन-शास्त्र में प्रवेश करने के लिए परमावश्यक है।

(४) पूर्वपक्ष:—किसी निर्णायिक अर्थ को मन में रखकर उस पर आक्षेप करना पूर्व-पक्ष कहलाता है। कारण कि इसके विना न्याययुक्त निर्विवाद सिद्धांत का निर्णय नहीं हो सकता।

(५) सिद्धान्तः—प्रथम शास्त्र प्रोक्त धर्म को, परपक्ष-निराकरण पूर्वक, मीमांसा की युक्ति उदाहरण तथा प्रमाण द्वारा निर्णय करने का नाम है।

धर्म के लक्षणः—

प्रश्न—धर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—चोदना, लक्षण तथा अर्थ से जो समवेत हो। जैसा कि महर्षि जैमिनी कहते हैं —चोदनालक्षणोऽर्थो धर्म्मः

प्रश्न—वेद प्रतिपादित धर्म 'अलौकिक' है अर्थात् जैसे वेद को अपौरुषेय माना है वैसे ही तत् प्रतिपाद्य धर्म को भी। अतएव जो कल्पना से परे का विषय हो उसका कोई भी लक्षण न होना चाहिए।

उत्तर—धर्म का स्वरूप वेद की प्रेरणा से अर्थात् वेद मन्त्र प्रमाण से सिद्ध होता है। कारण कि वेद में इस लोक की समृद्धि व ऐश्वर्य प्राप्ति के समान स्वर्ग-लोक के फल साधन स्वरूप, यज्ञ यागादि अनुष्ठान बतलाये गए हैं जिसके विषय में मीमांसा-दर्शन के भाष्य प्रणेता शवर स्वामी कहते हैं किः—

> चोदना हि भूतं भवन्तं भविष्यन्तं सूक्ष्मं व्यवहितं विप्रकृष्टमित्येवं जातीयमर्थं शक्नोति अवगमयितुमिति (शवर भाष्य १.२)

भावार्थ यह है कि, जिसके द्वारा भूत भविष्य और वर्तमान के सूक्ष्मार्थ प्रत्यक्ष हो सकें उसे चोदना कहते है। साथ ही कल्पना से अतीत विजातीय अर्थतन्त्र को भी चोदना के द्वारा प्रत्यक्ष करके, सजातीय स्वभावानुकूल बनाया जा सकता है।

वेद में विधि और अर्थवाद दोनों के स्थान अधिक महत्व पूर्ण रूप से वर्णन किये हैं। पर सूक्ष्मता से विचार करने पर ऐसा मालूम पड़ता है कि वेद-प्रतिपाद्य विधि-वाद ही मीमांसा शास्त्र द्वारा वर्णित चोदना, है और उसकी स्तुति के लिए अपवाद का विधान किया गया है। जैसा कि सायणाचार्य कहता है :—

> **विधिना त्वेकवाक्यत्वाद् स्तुत्यर्थेन विधीनां स्युः ॥**
>
> (सायण भाष्य १.२.७)

भाष्यकार के इस अभिप्राय से यह स्पष्ट मालूम पड़ता है कि वेद

बिधेयक अर्थवाद 'गुड-जिह्वा' न्याय से पुरुष को विधिवाद को ओर आकृष्ट कराने के लिए है। जिससे मनुष्य स्वर्गादि लोक तथा दैवी ऐश्वर्य के प्रलम्भ में आकर वेद प्रतिपादित विधेय वाक्य का उपयोग करें। उदाहरणार्थ :--'वायुर्वै क्षेपिष्ठा' यह अर्थवाद है और 'वायव्यं श्वेतमालभेत' (तै०स० २।१। १) यह विधिवाद है.

प्रथम वेद विषयक विधि और अर्थवाद के विषय में महर्षियों में बहुत बड़ा मतभेद था। पर जमिनीकृत मीमांसा दर्शन ने, महान् प्रयत्न के द्वारा विधि और अर्थवाद समन्वय जिस पद्धति से किया है, उसकी आचार्य सायण भी बड़े खुले हृदय के साथ अपने भाष्य में बड़ी प्रशंसा करते हैं—

'अर्थवादभागस्य प्रामाण्यं महता प्रयत्नेन जैमिनिः सम्पादयामास" सारांश यह है कि मीमांसा-दर्शन के मतानुसार अर्थवाद को विधि का ही स्वरूप मानकर 'चोदना और अर्थवाद, ये दोनों एक साथ मिलाने पर धर्म का स्वरूप बनता है।

सारांश यह है कि चोदना और अर्थ दोनों धर्म के ही स्वरूप हैं। और ये दोनों लक्षण के द्वारा ही लक्ष्य युक्त हो सकते हैं। मीमांसा शास्त्र का लक्ष्य धर्म है। जिसका स्वरूप चोदना और अर्थ है। अतएव मीमांसा शास्त्र द्वारा प्रतिपादित लक्षणा से ही चोदना और अर्थ का पूर्णतया पता लग सकता है अन्य उपायों से नहीं।

उक्त लक्षण के बारह स्वरूप है जिनका नाम पिछले प्रसंग में बतला चुके हैं। मीमांसा-शास्त्र में उक्त बारह लक्षण धर्म के ही अंग माने गये है।

प्रमाण से लेकर प्रसंग पर्यन्त के सब शब्दों को लक्षण के साथ जोड़ देना चाहिये। उक्त सब लक्षणों को पूर्वोक्त पांच अवयव(१) विषय (२) संदेह (३) संगति (४) पूर्वपक्ष और (५) सिद्धान्त से निर्णय कर लेना चाहिये। जिससे धर्म का पूरा स्वरूप समझ में आ सकता है।

अब इस प्रसंग को अधिक आगे न बढ़ाकर केवल इतना ही कह देना चाहते हैं कि, अर्थ, काम और मोक्ष ये सब धर्म के ही अधीन है। सम्पूर्ण विश्व विज्ञान तथा उसका उपयोग भी धर्म के द्वारा ही सम्भावित है अतएव मीमांसा-दर्शन द्वारा कथित चोदना लक्षण, अर्थ से समवेत धर्म की जिज्ञासा सबको करनी चाहिये।

श्रद्धेय जगदाचार्य श्री स्वामी नारदानन्द जी

श्री जगत् नारायण लाल भू० पू० मन्त्री बिहार राज्य

भारत के वर्तमान सन्त महात्माओं में जगदाचार्य श्री स्वामि नारदानन्द जी महाराज का ऊंचा स्थान है। अपने गुरुदेव स्वर्गीय श्री स्वामी एकरसानन्द के जो उच्च कोटि के सिद्ध सन्त थे दो प्रमुख शिष्यों में से एक आप हैं। दूसरे थे श्री स्वामी शुकदेवानन्द जो महाराज जो गत वर्ष ब्रह्मलीन हुए। दोनों गुरुभाइयों ने जन कल्याण जनमात्र की आध्यात्मिक उन्नति एवं देश में व्यापकरूप से ज्ञान भक्ति और योग का प्रचार करने और तदर्थ विविध संस्थाओं को स्थापित करने का अपनी साधना के बाद निरन्तर प्रयत्न किया और जगदाचार्य जी तो सैकड़ों सहस्रों शिष्यों और भक्तों के साथ इस पवित्र कार्य में अब भी लगे हुए हैं।

देश के अनेक प्रमुख संतों के दर्शन और समागम का सौभाग्य मुझे समय समय पर प्राप्त होता रहा। परन्तु पूज्य स्वामी जी का दर्शन मुझे पहले पहल कई वर्ष पूर्व अर्धकुम्भी के अवसर पर प्रयागराज में एक पुराने मित्र के द्वारा हुआ ये थे श्री जनकपूजन जी जो पहले सीतामढी के वकील श्री रामचरित सिंह थे। और पीछे श्री स्वामी जी के परम भक्त और शिष्य होकर श्री जनकपूजन के नाम से प्रसिद्ध हुए। उनसे मेरा पहले का परिचय था। उनसे जब मैं त्रिवेणी की रेतियों पर अर्धकुम्भी के अवसर पर लगे हुए साधु, संतों और महामंडलेश्वर के मण्डपों की ओर से होता हुआ जा रहा था अकस्मात् भेंट हो गयी। इन्होंने मुझ से अपने गुरुदेव क अत्यंत श्रद्धा और भक्ति के साथ चर्चा की और मेरे यह कहने पर कि उनके दर्शन तो मुझे अभीतक कभी नहीं हुए हैं, अपने साथ ले गये और वहां उनसे परिचय दे मिला दिया। पूज्य स्वामी जी उस समय अपने सभा मण्डप में मञ्च के ऊपर गुरुदेव के आसन पर आसीन थे। उनके निकट ही मुझे बिठाया गया। सभा समाप्त होने पर मैं उनके साथ उनके डेरे में गया और वहां उनसे बात करके तथा यह देख कर कि उनके शिष्यों में से कितने ही अवकाश प्राप्त भिन्न भिन्न विभागों के उच्च अधिकारी भी हैं, मेरी जिज्ञासा अधिक बढ़ी और उनकी कृतियों को जानने के लिये उत्सुक हुआ। उनके द्वारा संचालित भारत भक्त समाज और अनेकानेक ब्रह्मचर्य विद्यालयों एवं गृहस्थ से वानप्रस्थ, संन्यास आदि आश्रम में क्रमशः साधना द्वारा प्रविष्ट कराये जाने वाले शिष्यों की प्रणाली के कार्यक्रम की प्रथम जानकारी हुई यह

जानकर और भी हर्ष हुआ कि प्राचीनकाल से विख्यात ऋषि महर्षियों की इस परम प्रसिद्ध तपस्थली पर जहां अट्ठासी हजार महर्षियों ने एकत्र होकर पुराणों का श्रवण किया था यही उनकी वर्तमान तपोभूमि, साधना और धर्मप्रचार तथा धर्मोपदेश के हेतु संस्थापित आध्यात्म विद्यापीठ और तदधीन संचलित अनेकानेक संस्थाओं का मुख्य केन्द्र है। उनके ब्रह्मचर्य विद्यार्थियों की स्थापना के कार्यक्रम की ओर मैं विशेषरुप से आकृष्ट हुआ। और उसके बाद जब वे प्रथम बार बिहार की संक्षिप्त यात्रा में पटना आये तो मैंने उन्हें अपने ही निवास स्थान पर ठहराया। यहां वे प्राय: दो दिन ही ठहरे। उनकी सरलता और कोमल स्वभाव तथा स्नेह से मैं बहुत प्रभावित हुआ। उनकी इस यात्रा में बिहार में भारत भक्त समाज की स्थापना हुई और विधान सभा के भूतपूर्व अध्यक्ष श्री बिन्देश्वरी प्रसाद वर्मा मेरे आग्रह से ही उसके सभापति बनाये गये तथा स्वामी जी के विशेष जोर देने पर मैंने कार्यकारी अध्यक्ष इस शर्त के साथ बनना स्वीकार किया कि इस संस्था के प्रचार के लिये अपने शिष्यों में कम से कम एक और क्रमश: अधिक ब्रह्मचारी या सन्यासी इसके प्रचारार्थ, जो हम लोगों से सहयोग ले कर इस संस्था को अग्रसर करें भेजें। खेद है इस संस्था के अनेक शाखायें तथा प्राय: पचहत्तर अस्सी ब्रह्मचर्य विद्यालय भी मुख्यत: उत्तर प्रदेश में उनके शिष्यगण स्थापित करके संचालित कर रहे हैं पर यह कार्य उन लोगों के इधर न आने के कारण अभी तक न बढ़ सका। पूज्य स्वामी जी के प्रेमादेश का पालन करते हुए नेमिषारण्य एक बार जा कर वहां उत्सवों में सम्मिलित हुआ और वहां के आश्रमों तथा ब्रह्मचर्य विद्यालय एवं साधन की विविध कुटियाओं तथा पूज्य स्वामी जी की कुटि को देखा और उनसे बहुत प्रभावित हो कर वापिस आया। आजकल हरिद्वार ऋषिकेश बृन्दावन प्रभृति सभी स्थानों में जहां अच्छे अच्छे साधू संतों के आश्रम आदि हैं. परिपाटि अधिकतर पक्के मकानों की चल पड़ी और वह इस लिए कि वे झलासफूस या खपड़े से बने आश्रमों और मकानों की तरह शीघ्र बेकाम न हो जायें बल्कि अधिक टिकाउ हो सकें परन्तु आश्रमों के लिये पुराने समय के झलास फूस आदि की बनी कुटियां ही अधिक आकषक और अनुकूल प्रतीत होती हैं। गांधी जी ने वर्धा आश्रम में वैसी ही कुटियों में स्वयं रह कर और देश के सैंकड़ों अच्छे से अच्छे देश सेवकों को रख कर उनसे साधना करायी और वे जन सेवा के लिए अधिक शक्तिशाली हो कर निकले। गोमती नदी के तट पर स्वामी जी की अपनी कुटिया और उनके अनेक शिष्यों और साधकों के लिए अनेक छोटी छोटी कुटियां भी फूस से छाई हुई बहुत सुन्दर आकर्षक

और प्राचीन आदर्शों का स्मरण कराने वाली मुझे प्रतीत हुई । स्वामी जी के नैमिष अध्यात्म विद्यापीठ में ब्रह्मचर्य विद्यालय का भवन और कुछ भवन व मन्दिर पक्के बने हुए हैं । आश्रम के विस्तीर्ण क्षेत्र के ये कुटिया और ये कुछ पक्के भवन तथा मन्दिर प्राचीन नवीन दोनों के संमिश्रण के साथ काफी आकर्षक प्रतीत होते हैं ।

पूज्य स्वामी जी के सत्संग में विचार विनिमय के सिलसिले में उनके इस बात के लिये जोर देने पर कि मैं उनके भारत भक्त समाज आदि के कामों में काफी योगदान दूं, मैंने उनसे महामना मालवीय जी के आदर्शों पर, बहुत समय पूर्व स्थापित अपने हिन्दुस्तान सेवा संघ और उसके कार्यक्रम की चर्चा की और बताया कि मैं पूज्य बापू और महामना मालवीय जी से ही लोकसेवा के कार्य में अधिकतम प्रभावित हुआ और महामना की ओर धीरे धीरे खिचता खिचता उनसे निकटतम हो गया और उन्हीं के आदर्शों पर हम व हमारे कई साथियों ने इस संघ की स्थापना, अध्यात्म प्रचार तथा राष्ट्र व समाज की सेवा के लिये की । स्वामी जी ने सरल भाव से बताया कि महामना जी ने अपने जीवन के संध्याकाल में एक बार हम से भी यह कहा था कि मै अपने अति प्रिय और अभीष्ट कार्यक्रमों को पूरा नहीं कर सका । यह सुन मैंने उनसे कहा कि महाराज आपके इन अभीष्ट कार्यक्रमों को पूरा करने का हमलोग प्रयत्न करेंगे आप चिंता न करें । यह कर स्वामी जी ने कहा कि अब हम, आप इस कार्य में दो साथी हुए, दोनों ही मिलकर इसे पूरा कर यह बात उनकी केवल सरलता व नम्रता की द्योतक थी क्योंकि स्वामी जी ने अपने त्याग और अपनी तपस्या के द्वारा सहस्त्रों शिष्यों व आश्रम तय्यार किये हैं । मैं तो राजनीति व समाज की जीवन भर सेवा करते करते इस ओर गृहस्थ के रूप में केवल कुछ मित्रों के साथ लग सका हूं । मैंने कहा आप संत और सन्यासी हैं । आप के त्याग और तपस्या से प्रेरणा पाकर सहस्त्र शिष्य व भक्त हुए और होंगे । मैं तो एक गृहस्थ हूं जिसका जीवन देश, समाज तथा किंचित् धर्म में लगा है । मेरे इस जीवन से शायद कुछ गृहस्थों को प्रेरणा मिले या न मिले, फिर भी मुझसे जितना सहयोग हो सका संघ के निर्धारित कामों को तथा देश समाज की सेवा करते हुए प्रदान करूंगा ।

सहयोग तो अब तक नाम मात्र का ही दे सका हूँ, परन्तु स्वामी जी का प्रेम मेरे प्रति और मेरा स्नेह तथा मेरी श्रद्धा उनके लिए बराबर बनी हुई है और यात्रार्थ आते जाते उनके दर्शन जब तब हो जाते हैं । उनके उत्सवों में कभी-कभी जहां तहां शामिल हो लेता हूँ और उनके द्वारा संस्थापित कानपुर के आश्रम को जब वब देख लेता हूं ।

श्री गणेशाय नमः

नैमिष व्यास पीठ निरूपणम्

नैमिषारण्य भारत का अन्यतम प्रधान तीर्थ है। चारों दिशाओं के शाङ्करपीठ स्वामी आद्य शङ्कराचार्य महाराज द्वारा स्थापित हैं। श्री वैष्णवों के अष्ट-दिग्गज पीठ स्वामी रामानुजाचार्य महाराज द्वारा स्थापित हैं। इसी प्रकार अन्यान्य सम्प्रदायों के आचार्य पीठ तत्तत् सम्प्रदायाचार्यों द्वारा संस्थापित हैं, परन्तु सर्व सम्प्रदायों का समन्वित आदिम पीठ नैमिष-व्यास-पीठ है। अन्यान्य पीठों के नियमोपनियम 'पीठाम्नाय आदि निबन्धों में है उपलब्ध होते हैं परन्तु नैमिष-व्यास-पीठ का विवरण पुराणों और महा-भारत आदि ग्रन्थों में विस्तारपूर्वक लिखा है। हम विज्ञजनों के प्रमोदार्थ उसे यहाँ लिखते हैं।

प्रयागे मुनिवर्य्यैश्च यथा पृष्टः स्वयं प्रभुः।
पृष्टेन चानुशिष्टास्ते मुनयो धर्मकांक्षिणः ॥५॥
देशं पुण्यमभीप्सन्तो विभुना च हितैषिणा।
सुनाभं दिव्यरूपञ्च सत्यगं शुभविक्रमम् ॥६॥
अनौपम्यमिदं चक्रं वर्तमानमतन्द्रिताः।
पृष्ठतो यात नियमात् पदं प्राप्स्यथ यद्धितम् ॥७॥
गच्छतो धर्मचक्रस्य यत्र नेमिर्विशीर्य्यते।
पुण्यः स देशो मन्तव्य इत्युवाच स्वयं प्रभुः ॥८॥
उक्त्वा चैवं ऋषीन् सर्वानदृश्यत्वमगात्पुनः।
गङ्गावर्तसमाहारो नेमिर्यत्र व्यशीर्य्यत ॥९॥
ईजिरे दीर्घसत्रेण ऋषयो नैमिषे तदा।

(पद्मपुराण सृष्टि खण्डे १।५-१० तथा वायु० उपोद्घात १।१८१)

एक बार प्रयागराज तीर्थस्थ धर्म्माभिलाषी मुनिवरों ने श्रीमन्नारायण भगवान् से पूछा कि भूमण्डल में सर्वाधिक पवित्र क्षेत्र कौन है ? तो भक्तहित-चिन्तक प्रभु विष्णु ने उत्तर दिया कि मेरा जो यह अनु-

पम दिव्य सुदर्शन-चक्र है आप लोग सावधान होकर नियम पूर्वक इसका अनुगमन करो, इसके द्वारा तुम अपने अभीष्ट क्षेत्र को प्राप्त हो सकोगे।

चलते २ इस धर्मचक्र की नेमि (वर्तुलाकार परिधि) जिस स्थान में विशीर्ण हो जाए तुम समझ लेना कि बस वही स्थान सर्वाधिक पवित्र क्षेत्र है। श्री भगवान् ऋषियों को यह बात कह कर अन्तर्धान हो गए।

सो तदनुसार उक्त चक्र की नेमि जिस स्थान में गङ्गा के आवर्त की भान्ति विशीर्ण हुई थी ऋषियों ने चक्र-तीर्थोपलक्षित उसी नैमिष नामक स्थान में बहुकाल व्यापी महायज्ञ का अनुष्ठान किया।

नैमिष में सहस्रवर्षीय देवसत्र

सिसृक्षमाणा विश्वं हि यत्र विश्वसृजः पुरा।
सत्रं हि ईजीरे पुण्यं सहस्रपरिवत्सरम् ॥
तपो गृहपतिर्यत्र ब्रह्म ब्रह्माऽभवत्स्वयम्।
इलाया यत्र पत्नीत्वं शामित्रं यत्र बुद्धिमान् ॥
मृत्युश्चक्रे महातेजास्तस्मिन्सत्रे महात्मनाम्।
विबुधा ईजिरे तत्र सहस्रं प्रतिवत्सरान् ॥
भ्रमतो धर्मचक्रस्य यत्र नेमिर्विशीर्य्यत।
कर्म्मणा तेन विख्यातं नैमिषं मुनिपूजितम् ॥
यत्र सा गोमती पुण्या सिद्धचारणसेविता।
रोहिणी सुषुवे तत्र ततः सौम्योऽभवत्सुतः।
शक्तिज्येष्ठा समभवन् वशिष्ठस्य महात्मनः ॥
अरुन्धत्याः सुता यत्र शतमुत्तमतेजसः।
अदृश्यंत्यां समभवन् मुनि यत्र पराशरः ॥

द्वादश वर्षीय ऋषि-सत्र

तत्र त ईजिरे सत्रं नैमिषे ब्रह्मवादिनः ॥
न च यज्ञहनो दैत्या न च यज्ञमुषोऽसुराः ॥

प्रायश्चित्तं दुरिष्टं वा न तत्र समजायत।।
एवं वितेनिरे सत्रं द्वादशाब्दं मनीषिणः।।

(वायुपुराण प्रक्रिया २।५-३५)

नैमिष वह तीर्थ है जहाँ कि पूर्वकल्प में विश्व की रचना में प्रवृत्त विश्व रचयिताओं ने एक सहस्र वर्ष पर्यन्त पवित्र यज्ञ का अनुष्ठान किया था। जिस यज्ञ में साक्षात् तप ही गृहपति थे। स्वयं श्री ब्रह्मा ही ब्रह्मा बने थे, इला यजमान पत्नी थी, महात्माओं के इस महायज्ञ में बुद्धिमान् तथा तेजस्वी साक्षात् मृत्युदेव ही शामित्र के अधिकारी थे। इस प्रकार एक सहस्र वर्ष पर्यन्त यह देवयज्ञ प्रचलित रहा। क्योंकि घूमते हुये विष्णुचक्र की नेमि इस स्थान में विशीर्ण हुई थी, इसी कारण मुनियों द्वारा पूजित इस क्षेत्र का, 'नैमिष' यह नाम विख्यात हुआ। सिद्ध और चारणों से सेवित पवित्र गोमती नदी जहाँ बहती है, रोहिणी ने इसी स्थान में सौम्य (बुध) नामक पुत्र को उत्पन्न किया था। इसी स्थान में महर्षि वशिष्ठ के अरुन्धती द्वारा शक्ति आदि परम तेजस्वी सौ पुत्र उत्पन्न हुये थे। इसी स्थान में शक्ति द्वारा अदृश्यन्ती भार्य्या में पराशर मुनि का जन्म हुआ था। उन ब्रह्मवादी ऋषियों ने उस नैमिष क्षेत्र में यज्ञ आरम्भ किया जहाँ कि न यज्ञ हनन करने वाले दैत्यों का भय था और नाँ ही यज्ञ भाग को चुराने वाले असुरों का त्रास था। इसलिये इस निरातङ्क स्थान में पूरे बारह वर्ष पर्य्यन्त यज्ञ चालू रहा, जिससे न किसी प्रायश्चित्त की आवश्यकता हुई और न कभी अन्य कुछ विघ्न उपस्थित हुआ।

नैमिष माहात्म्य

ततश्च नैमिषं गच्छेत्पुण्यं द्विजनिषेवितम्।
तत्र नित्यं निवसति ब्रह्मा देवगणैः सह ।।
नैमिषं प्रार्थमानस्य पापस्यार्धं प्रणश्यति।
प्रविष्टमात्रस्तु नरः सर्वपापात् प्रमुच्यते ।।
तत्र मासं वसेद्धीरो नैमिषे तीर्थ-तत्परः।
पृथिव्यां यानि तीर्थानि नैमिषे तानि भारत ।।

इसके अनन्तर तीर्थयात्री को द्विजों से सेवित पवित्र नैमिष तीर्थ में जाना चाहिए जहाँ कि देवगण सहित साक्षात् ब्रह्मा नित्य बसते हैं। जब यात्री नैमिष जाने की इच्छा करता है तो इसके आधे पाप नष्ट हो जाते हैं। जब इस क्षेत्र में प्रवेशमात्र करता है तो सब पाप दूर हो जाते हैं। धीर पुरुष को चाहिए कि वह तत्परता पूर्वक एक मास पर्य्यन्त नैमिष तीर्थ में निवास करे। हे भारत ! समस्त भूमण्डल में जितने तीर्थ हैं वे सब नैमिष में विद्यमान हैं।

स्कन्द पुराणोक्त गोमती माहात्म्य

नदी न गोमतीतुल्या कृष्णतुल्या न देवता ।।
गोमतीस्नानं कर्त्तव्यं प्रातःकाले सदा बुधैः ।।
तच्छ्रुत्वा भगवान् विष्णुर्माया-मानुषरूपधृक् ।
गोमत्याराधनं चक्रे गोमती सा समागता ।।
स्नानदानादिकं सर्वमत्रैव समुपासथ ।
गोमतीस्नानजात्पुण्यात् वासुदेवसमागमात् ।।
मनोरथफलप्राप्तिर्जायते नाऽत्र संशयः ।
तथा चैत्रसिते पक्षे यावच्चैकादशी भवेत् ।।
तद्दिने च नरः स्नात्वा गोमत्यां च विशेषतः ।
गोसहस्रफलं तेषां प्राप्यते नात्र संशयः ।।
(स्कन्द पुराण ७३ ८-३८)

गोमती के बराबर अन्य कोई नदी नहीं और श्रीकृष्ण भगवान् के समान अन्य कोई देवता नहीं। इसलिये बुध जनों को सदैव प्रातःकाल गोमती में स्नान करना चाहिये। माया मनुष्य रूपधारी भगवान् ने गोमती का माहात्म्य सुनकर उसकी आराधना कीं। पवित्र नदी गोमती वहां प्रकट हो गई इसलिये स्नान दान आदि सब क्रियाएँ यहाँ सम्पन्न हों। गोमती स्नान के पुण्य से और भगवान् कृष्ण के समागम से समस्त मनोरथों की प्राप्ति होती है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं। चैत्र शुक्ल में एकादशी पर्य्यन्त विशेषतया स्नान करने पर सहस्र गोदान का फल प्राप्त होता है।

पद्मपुराणोक्त गोमती माहात्म्य

अभिषेकं तत्र कृत्वा नियतो नियताशनः
राजसूयस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः ।।
पुनात्यासप्तमञ्चैव कुलं भरतसत्तम ।
यस्त्यजेन्नैमिषे प्राणानुपवासपरायणः ।।
स मोदेत्स्वर्गलोकस्थ एवमाहुर्मनीषिणः ।
नित्यं मेध्यश्च पुण्यञ्च नैमिषं नृपसत्तम ।
गोमती-गङ्गयोश्चैव सङ्गमे लोकविश्रुते ।
अग्निष्टोममवाप्नोति कुलञ्चैव समुद्धरेत् ।।

(पद्मपुराण स्वर्गखण्ड ३२।२४;४४)

नियमपूर्वक खान-पान करता हुआ यात्री गोमती नदी में स्नान करने पर राजसूय यज्ञ के फल को प्राप्त होता है। और वह अपनी सात पीढ़ियों को पवित्र करता है। क्रान्तदर्शी मनीषियों का कथन है कि जो प्राणी उपवास करते करते नैमिष क्षेत्र में अपने प्राणों का परित्याग करता है, वह स्वर्ग को प्राप्त होकर आनन्दविभोर हो जाता है। राजन्! नैमिष तीर्थ सदैव पवित्र और पुण्यप्रद है। लोक विश्रुत जो गोमती और गङ्गा का संगम स्थान है, वहाँ स्नान करने पर अग्निष्टोम यज्ञ का फल प्राप्त होता है तथा स्नान कर्ता के कुल का उद्धार हो जाता है।

व्यासों की अनादि परम्परा

द्वापरे द्वापरे विष्णुर्व्यासरूपेण सर्वदा ।
वेदमेकं स बहुधा कुरुते हितकाम्यया ।।
अल्पायुषोऽल्पबुद्धींश्च विप्रान् ज्ञात्वा कलाविह ।
पुराणसंहितां पुण्यां कुरुतेऽसौ युगे युगे ।।
द्वापरे प्रथमे व्यस्ताः स्वयं वेदाः स्वयम्भुवा ।।

(देवीभागवत १।३।१८-२०)

प्रत्येक द्वापर युगमें विष्णु भगवान् व्यास रूप में अवतरित होकर मनुष्य की हित कामना से एकत्व संख्यावच्छिन्न वेद राशिको अनेक भागों में विभक्त करते हैं तथाच कलि काल के प्रभाव से ब्राह्मणों को अल्पायु और अल्प-बुद्धि जानकर युग-युग में पुराण संहिता का भी संकलन करते हैं इस कल्प के प्रथम द्वापर युग में स्वयं ब्रह्मा महाराज ने ही वेद-पुराणों का संकलन किया था।

द्वितीय व्यास, सम्राट् स्वायम्भुव मनु

कस्य कायमभूद् द्वेधा यत्कायमभिचक्षते।
ताभ्यां रूपविभागाभ्यां मिथुनं समपद्यत॥
यस्तुतश्च पुमान् सोऽभून्मनुः स्वायम्भुवः स्वराट्।
स्त्रीय ।ऽऽसीत् शतरूपाख्या महिष्यस्य महात्मनः॥
(श्रीमद्भागवत ३।१२।५२-५३)

अन्तिम अवस्था में नैमिषवास

विरक्तः कामभोगेषु शतरूपापतिः प्रभुः।
विसृज्य राज्यं तपसे सभार्य्यो वनमाविशत्॥
(श्रीमद्भागवत ८।१।७)

यः पृष्टो मुनिभिः प्राह धर्मान् नानाविधान् शुभान्।
नृणां वर्णाश्रमाणाञ्च सर्वभूतहिते रतः॥
(श्रीमद्भागवत ३।२२।३४-४८)

प्रजापतिर्द्वितीये तु द्वापरे व्यास-कार्यकृत्।
(देवीभागवत १।३।२१)

'कः' (ब्रह्मा) ने अपने देहको दो भागों में विभक्त किया इसी हेतु से शरीर का अपर नाम 'काय' प्रसिद्ध हुआ। वे दोनों भाग पति पत्नी रूपमें परिणत हुये। दक्षिण भाग स्वायम्भू मनु नामक पुरुष हुआ और वामभाग शतरूपा नामक स्त्री हुआ जो मनुकी राजमहिषी हुई। समय पाकर राजा कामोपभोग से विरत हुआ और राज्य छोड़कर अपनी भार्य्या सहित तप

करने के लिये नैमिषारण्य में पहुँचा। दूसरे द्वापर में उक्त प्राजापति मन व्यास रूप में प्रतिष्ठित हुये। जो सदैव प्राणिमात्र का हित चिन्तन करते हुये जो मुनियों द्वारा पूछे जाने पर मनुष्यों के कल्याणकारी नानाविध धर्म्मों का और वर्णाश्रम धर्म्मों का प्रतिपादन करते थे।

विभिन्न व्यासों की नामावली

तृतीये चोशनाव्यासश्चतुर्थे तु बृहस्पतिः।
पञ्चमे सविता व्यासः षष्टे मृत्युस्तदापरे॥
मघवा सप्तमे प्राप्ते वशिष्ठस्त्वष्टमस्मृतः।
सारस्वतस्तु नवमे त्रिदामा दशमे तथा॥
एकादशेऽथ त्रिवृषो भारद्वाजस्ततः परम्।
त्रयोदशे चान्तरिक्षो धर्मश्चापि चतुर्दशे।
त्रैय्यारुणिः पञ्चदशे षोडशे तु धनञ्जयः॥
मेधातिथिः सप्तदशे व्रती ह्यष्टादशे तथा।
अत्रिरेकोनविंशे च गौत्तमस्तु ततः परम्॥
उत्तमश्चैकविंशेऽथ हृय्यत्मा परिकीर्तितः।
वेनो वाजश्रवाश्चैव सोमोऽमुष्यायणस्तथा॥
तृणविन्दुस्तथा व्यासो भार्गवस्तु ततः परम्।
ततः शक्तिर्जातुकर्ण्यः कृष्णद्वैपायनस्ततः॥
अष्टाविंशति संख्येयं कथिता या मया श्रुता।
एकोनत्रिंशत्संप्राप्ते द्रौणिर्व्यासो भविष्यति॥
(देवीभागवत १।३।२२-२३)

तीसरे व्यास उशना हुये, चौथे बृहस्पति, पांचवे सविता, छठे मृत्यु, सातवें इन्द्र, आठवें वशिष्ठ, नवमे सारस्वत, दशवें त्रिदामा, ग्यारहवें त्रिवृष, बारहवें भारद्वाज, तेरहवें अन्तरिक्ष, चौदहवें धर्म, पन्द्रहवें त्रैय्यारुणि, सोलहवें धनञ्जय, सत्रहवें मेधातिथि, अट्ठारहवें व्रती, उन्नीसवें अत्रि, बीसवें गौत्तम इक्कीसवें उत्तम,' हृय्यत्मा, बाइसवें वेन वाजश्रवा, तेईसवें सोम अमुष्यायण चौबीसवें तृणविन्दु, पच्चीसवें भार्गव, छब्बीसवें शक्ति सत्ताइसवें जातुकर्ण्य

और अट्ठाइसवें कृष्ण द्वैपायन व्यास हुयें। आगामी उनत्तीसवें द्वापर में द्रोणपुत्र अश्वत्थामा व्यास होंगे।

व्यास माता सत्यवती का दिव्य पूर्वेतिहास

अग्निष्वात्ता इति ख्याताः सर्वे एवामितौजसः ।
एतेषां मानसी कन्या अच्छोदा नाम निम्नगा ॥
तया न दृष्टपूर्वास्ते पितरस्तु कदाचन ।
अप्यमूर्तानथ पितॄन् सा ददर्श शुचिस्मिता ॥
सम्भूता मनसा तेषां पितॄन् स्वान् नाभिजानती ।
व्रीड़िता तेन दुःखेन बभूव वरवर्णिनी ॥
सा दृट्ष्वा पितरं वव्रे वसुं नामान्तरिक्षगम् ।
अमावसुरिति ख्यातं मायोः पुत्रं यशस्विनम् ॥
अद्रिकाऽप्सरसा युक्तं विमानेऽधिष्ठितं दिवि ।
सानेनाह्यपचारेण मनसः कामरूपिणी ॥
पितरं प्रार्थयित्वाऽन्यं योगभ्रष्टा पपात ह ।
त्रिण्यपश्यद् विमानानि पतमाना दिवश्च्युता ॥
त्रसरेण-प्रमाणानि, साऽपश्यत्तेषु तान् पितॄन् ।
सुसूक्ष्मानपरिव्यक्तानग्नीनग्निष्विवाहितान् ॥
त्रायध्वमित्युवाचार्ता पतन्ती तानवाक्शिरा ।
तैरुक्ता सा तु माभैषीरिति व्योम्नि व्यवस्थिता ॥
ततः प्रसादयामास तान् पितॄन् दीनया गिरा ।
उचुस्ते पितरः कन्यां भ्रष्टैश्वर्य्यां व्यतिक्रमात् ॥
भ्रष्टैश्वर्य्या स्वदोषैण पतसि त्वं शुचिस्मिते ।
यैः क्रियन्ते हि कर्म्माणि शरीरैर्दिवि दैवतैः ॥
तैरेव तत्कर्म्मफलं प्राप्नुवन्तीह देवताः ।
सद्यः फलन्ति कर्म्माणि दैवत्वे प्रेत्य मानुषे ॥
तस्मात्त्वं तपसः पुत्रि प्रेत्येदं प्राप्स्यसे फलम् ।

इत्युक्ता पितृभिः सा तु पितॄन् प्रासादयत् स्वकान् ॥
ध्यात्वा प्रसादं ते चक्रुस्तस्या सर्वेऽनुकम्पया ।
अवश्यं भाविनं ज्ञात्वा तेऽर्थमुचुस्ततस्तु ताम् ॥
अस्य राज्ञो वसोः कन्या त्वमपत्यं भविष्यसि ।
उत्पन्नस्य पृथिव्यां तु मानुषेषु महात्मनः ॥
कन्या च भूत्वा लोकान् स्वान् पुनः प्राप्स्यसि दुर्लभान् ।
पराशरस्य दायादं त्वं पुत्रं जनयिष्यसि ॥
स वेदमेकं ब्रह्मर्षिश्चतुर्धा विभजिष्यति ।
महार्षभस्य पुत्रौ द्वौ शन्तनोः कीर्तिवर्द्धनौ ॥
विचित्रवीर्य्यं धर्मज्ञं तथा चित्राङ्गदं शुभम् ।
एतानुत्पाद्य पुत्रांस्त्वं पुनर्लोकानवाप्स्यसि ॥
व्यतिक्रमात् पितॄणां च जन्म प्राप्स्यसि कुत्सितम् ।
अस्यैव राज्ञः कन्या त्वमद्रिकायां भविष्यसि ॥
अष्टाविंशे भवित्री त्वं द्वापरे मत्स्ययोनिजा ।
एवमुक्ता तु दाशेयी जाता सत्यवती तदा ॥
मत्स्ययोनौ समुत्पन्ना राज्ञस्तस्य वसोः सुता ।

(महाभारत–हरिवंश १८।२६–४५)

परम तेजस्वी अग्निष्वात्ता नामक दिव्य पितरों की 'अच्छोदा' नाम की एक पवित्र नदी रूपा मानसी कन्या थी। संयोग वश उक्त कन्या नें कभी अपने पितृगणों के दर्शन नहीं किये थे । एक बार उस कन्या नें कुछ अमूर्त पितृगणों को देखा तो उसने लज्जित सी होकर उनमें से अन्तरिक्षगामी आयु के पुत्र अमावसु नामक यशस्वी वसु को अपना पिता वरण किया । अमावसु उस समय अद्रिका नामक अप्सरा सहित विमान में बैठे आकाश मार्ग में भ्रमण कर रहे थे। अन्य पिता का वरण करने के अपचार से यह कन्या योगभ्रष्ट होकर गिरने लगी। तब उसने आकाश में मंडराते त्रसरेणु प्रमाण अतिसूक्ष्म विमानों को देखा और उनमें स्थित अग्निष्वात्ता आदि अपने निजी पितृगणों को

देखा। मानो अग्नि के पुंज में अग्नि ही विराजमान है वे ऐसे प्रतीत होते थे। द्युलोक से गिरती हुई उस कन्या ने उन्हें पुकार कर कहा कि—'आप मेरी रक्षा करें। पितृगणों ने कहा—रो मत! तब वह गिरते-गिरते रुक गई और दीनवाणी से उनको प्रसन्न करने लगी। पितृगणों ने कहा कि तुम अपने ही अपराध से ऐश्वर्य्य भ्रष्ट हो गई हो। स्वर्गस्थ देवता जिस शरीर से जो कर्म्म करते हैं वे उसी शरीर में उन कर्मों के फल को भोगते हैं। क्योंकि देव योनि में किये गए कर्म्मों का फल तत्काल मिलता है और मनुष्य योनि में मृत्यु के पश्चात् प्राप्त होता है। इसलिये तुम्हें मृत्यु के अनन्तर अपने कर्म का फल भोगना होगा। तब अच्छोदा ने अपने पितृगणों को पुनः प्रसन्न किया। इन्होंने भी सब कुछ रहस्य जानकर भवितव्यता कह सुनाई, कहा कि—तुम राजा वसु द्वारा अद्रिका अप्सरा में कन्या रूप में उत्पन्न होकर पुनः देवत्व प्राप्त कर सकोगी। तुम्हारे महाराजा शन्तनु द्वारा विचित्रवीर्य्य और चित्राङ्गद नामक दो महान् यशस्वी पुत्र उत्पन्न होंगे तथा पराशर का वंशधर पुत्र उत्पन्न होगा जो ब्रह्मर्षि एक वेद को चतुर्धा विभक्त करेगा। अट्ठाइसवें द्वापर के अन्त में तुम्हारे मानसिक व्यतिक्रम का उक्त फल होगा। इस प्रकार यह अच्छोदा वसु द्वारा मत्स्ययोनि में उत्पन्न होकर सत्यवती नाम से विख्यात हुई।

कृष्ण द्वैपायन व्यास का अवतार

राजोपरिचरो नाम धर्मनित्यो महीपतिः।
स चेदि-विषयं रम्यं वसुः पौरवनन्दनः॥
इन्द्रोपदेशाज्जग्राह रमणीयं महीपतिः॥
वसोः पत्नी सुगिरिका काम-कालं न्यवेदयत्।
ऋतुकालमनुप्राप्ता स्नाता पुंसवने शुचिः॥
तदहः पितरश्चैनमूचुर्जहि मृगानिति।
स पितॄणां नियोगं तमनतिक्रम्य पार्थिवः॥

चकार मृगयां कामी गिरिकामेव संस्मरन् ।
तस्य रेतः प्रचस्कन्द चरतो गहने वने ।।
स्कन्नमात्रन्तु तद् रेतो वृक्षपत्रेण भूमिपः ।
प्रतिजग्राह मिथ्या मे न पतेद् रेत इत्युत ।।
इदं मिथ्या, परिस्कन्नं रेतो मे भवेदिति ।
ऋतुश्च तस्याः पत्न्या मे न मोघः स्यादिति प्रभुः ।
सूक्ष्मधर्मार्थतत्त्व गत्वा श्येनं ततो ब्रवीत् ।।
गिरिकायाः प्रयच्छाशु तूर्णमुत्पत्य वेगवान् ।
जवं परममास्थाय प्रदुद्राव विहंगमः ।।
तमपश्यदथायान्तं श्येनं श्येनस्तक्षपरः ।
अभ्यद्रवच्च तं सद्यो दृष्ट्वैवामिषशङ्कया ।।
तुण्डयुद्धमथाकाशे तावुभौ सम्प्रचक्तुः ।
युध्यतोरपतद् रेतस्तच्चापि यमुनाम्भसि ।।
तत्राद्रिकेति विख्याता ब्रह्मशापाद् वरास्परा ।
मीनभावमनुप्राप्ता बभूव यमुनाचरी ।।
श्येनपादपरिभ्रष्टं तं वीर्य्यमथ वासवम् ।
जग्राह तरसोपेत्य साद्रिका मत्स्यरूपिणी ।।
कदाचिदपि मत्सीं तां बवन्धु मत्स्यजोविनः ।
उज्जह्रुरुदरात्तस्याः स्त्रीपुमांसं च मानुषम् ।।
आश्चर्य्यभूतं तद् गत्वा राज्ञेऽथ प्रत्यवेदयन् ।
काये मत्स्या इमौ राजन् सम्भूतौ मानुषाविति ।।
तयोः पुमांसं जग्राह राजोपरिचरस्तदा ।
स मत्स्यो नाम राजाऽसीद् धार्म्मिकः सत्यसंगरः ।।
साप्सरा मुक्तशापा च क्षणेन समपद्यत ।
या पुरोक्ता भगवता तिर्य्यग्-योनिगता शुभा ।
मानुषौ जनयित्वा त्वं शापमोक्षमवाप्स्यसि ।।
संत्यज्य मत्स्यरूपं सा जगामाथ वराप्सरा ।

सा कन्या दुहिता तस्या मत्स्या मत्स्यसगन्धिनी ॥
राज्ञा दत्ता च दाशाय कन्येयं ते भविष्यति ।
सा तु सत्यवती नाम कञ्चित्कालं शुचिस्मिता ॥
शुश्रूषार्थं पितुर्नावं वाहयन्तीं जले च ताम् ।
तीर्थयात्रां परिक्रामन् अपश्यद् वै पराशरः ॥
दृष्ट्वैव स च तां धीमान् रम्भोरुं मुनिपुंगवः ।
सङ्गमं मम कल्याणि कुरुष्वेत्यभ्यभाषत ।

सत्यवत्युवाच

त्वत्संयोगाच्च दुष्येत कन्याभावो ममानघ ।
एवमुक्तवतीं तान्तु प्रीतिमानृषिसत्तमः ॥
उवाच मत्प्रियं कृत्वा कन्यैव त्वं भविष्यसि ।
वृणीष्व च वरं भीरु यत्त्वमिच्छसि भामिनि ॥
एवमुक्ता वरं वव्रे गात्रसौगन्ध्यमुत्तमम् ।
जगाम सह संसर्गमृषिणाऽद्भुतकर्मणा ॥
पराशरेण संयुक्ता सद्यो गर्भं सुषाव सा ।
स मातरमनुज्ञाप्य तपस्येव मनो दधे ॥
ततः सत्यवती हृष्टा जगाम स्वनिवेशनम् ।
दाशराजस्तु तद् गन्धमाजिघ्रन् प्रीतिमावहन् ॥

दाश उवाच

अपास्य मत्स्यगन्धत्वं केन दत्ता सुगन्धता ।

सत्यवत्युवाच

शक्तेः पुत्रो महाप्राज्ञः पराशर इति स्मृतः ॥
अपास्य मत्स्यगधत्वं योजनाद् गधन्तां ददौ ।
आयुः शक्ति च मर्त्यानां युगावस्थामवेक्ष्य च ।
विव्यास वेदान् यस्मात्स तस्माद् व्यास इति स्मृतः ॥

(महाभारत आदि० ६३।१—८८)

पूर्वकाल में उपरिचर नाम के एक राजा हुये जो नित्य निरन्तर धर्म में संलग्न रहते थे। इन्द्र के कहने से राजा उपरिचर वसु ने अत्यन्त रमणीय चेदि देश का राज्य स्वीकार किया। राजा की पत्नी का नाम गिरिका था। वह एक बार जब ऋतुस्नाता थी उसने पतिदेव को गर्भाधानकाल का सङ्केत किया परन्तु उसीदिन पितरों ने उसे आदेश दिया कि वह हिंसक पशुओं को मारकर प्रजाजनों की रक्षा करें। पितरों की आज्ञा को शिरोधार्य्य करके राजा मृगया के लिए चला गया परन्तु उसे अपनी ऋतुस्नाता भार्य्या का स्मरण बना रहा। इस से वन में घूमते-घूमते उसका वीर्य्य स्खलित हो गया। राजा ने उसे एक पुटक में संभाल लिया जिससे कि वह व्यर्थ ही नष्ट न होने पाए। मेरी पत्नी ऋतुस्नाता है उसका यह अवसर भी न जाए। इसलिये उस सूक्ष्म-धर्म्मज्ञ राजा ने सुशिक्षित श्येन पक्षी को वह वीर्य पुटक देकर समझा दिया कि वह इसे उसकी पत्नी के पास ले जाए।

यह पक्षी वीर्य-पुटक लेकर ज्यों ही वेग से आकाश में उड़ा कि दूसरे श्येन पक्षी ने यह समझकर कि यह मांस लिए जा रहा है, उस पर आक्रमण कर दिया और दोनों में रपट-झपट होने लगी। इस प्रकार चञ्चु प्रहार करते हुये इस श्येन के मुख से वह वीर्यपुटक नीचे बहती यमुना में जा गिरा। संयोग वश यमुना प्रवाह में एक मछली तैर रही थी जो कि वस्तुतः अद्रिका नाम की अप्सरा थी जो कि ब्रह्मा के शापवश मत्स्य योनि को प्राप्त हुई थी। बाज के पंजे से छूट कर गिरे हुये राजा वसु के उस वीर्य्य को वह मछली निगल गई। अमोघ वीर्य्य होने के कारण मछली के उदर में वह वीर्य्य प्रवृद्ध हो गया। एक बार मल्लाहों ने उसी मछली को अपने जाल में फाँस लिया। चीर-फ़ाड़ करने पर उसके उदर में से एक बालक और एक बालिका निकले। मल्लाहों ने आश्चर्य्य पूर्वक वे दोनों राजा, उपरिचर वसु के सामने उपस्थित किये। राजा

ने पुत्र को स्वयं ग्रहण किया जो आगे चलकर मत्स्य नाम का धार्म्मिक राजा विख्यात हुआ ।

शापग्रस्त अद्रिका मत्स्य-योनि से छूट कर स्व-स्वरूप को प्राप्त हो गई । क्योंकि ब्रह्मा जी ने उसे यही शाप दिया था कि तू दो मनुष्यों को जन्म देने के बाद पुनः स्वस्वरूप को प्राप्त होगी। वह मत्स्य के उदर से प्राप्त हुई कन्या राजा ने उस मल्लाह को ही प्रदान की और कहा कि यह तुम्हारी ही कन्या हो । उस कन्या के शरीर में से मछली जैसी दुर्गन्ध आती थी । उसी का नाम सत्यवती प्रसिद्ध हुआ । समय पाकर कन्या बड़ी हुई और वह अपने दाश पिता की नाव खेकर सेवा करने लगी । एक-बार तीर्थ यात्रा के प्रसङ्ग से घूमते फिरते महर्षि पराशर वहाँ आ निकले और उसके रूप लावण्य पर मुग्ध होकर अपनी इच्छा व्यक्त की। सत्यवती ने कहा कि पुरुष संयोग से मेरा कन्यात्व दूषित हो जाएगा। ऋषि बोले नहीं—मेरा प्रिय करने पर तू यथापूर्वक कन्या ही बनी रहेगी। इसके अतिरिक्त और भी जो चाहो सो वर माग सकती हो।

दाश कन्या ने अपने शरीर से उड़ने वाली दुर्गन्ध के दूर हो जाने का वर प्राप्त किया, और वह ज्यों ही महर्षि से सङ्गत हुई कि तत्काल गर्भवती तथा प्रसूता हो गई । समुत्पन्न बालक ने माता सत्यवती की आज्ञा प्राप्त करके तपश्चर्य्या के लिये प्रस्थान किया। सत्यवती अतीव प्रसन्न चित्त हो अपनी झोंपड़ी में आई तो उसके शरीर से उड़ने वाली दिव्य गन्ध सूंघ कर दाशराज बहुत प्रसन्न हुआ। और उसने पूछा कि तेरी मत्स्य गन्ध को हटाकर यह दिव्य गन्ध किसने प्रदान की है ? सत्यवती ने कहा कि महर्षि शक्ति के पुत्र पराशर जी ने मेरी मत्स्य दुर्गन्ध दूर करके यह दूर २ तक फैलने वाली सुगन्ध प्रदान की है।

सत्यवती के इस अयोनिज पुत्र कृष्ण द्वैपायन ने ही मनुष्यों की आयुः और शक्ति के ह्रास को देखकर तथा भावि कलि काल

की करालता को समझ कर वेदों का शाखा प्रशाखा रूप में विवर्द्धन किया है इसी हेतु से वे 'व्यास' इस अन्वर्थनाम से विख्यात हुये।

कृष्ण द्वैपायन व्यास का नैमिष में आगमन

व्यस्य वेदान् महाबुद्धिर्नानाशाखाप्रभेदतः।
अष्टादशपुराणानि सूतादीन्परिपाठ्यच॥
श्रुतिस्मृतिपुराणानां रहस्यं यस्त्वचीकरत्।
महाभारतसंज्ञं च सर्वलोकमनोहरम्॥
सर्वपापप्रशमनं सर्वशान्तिकरं परम्।
यस्य श्रवणमात्रेण ब्रह्महत्या विनश्यति॥
एकदा स मुनिः श्रीमान् पर्य्यटन् पृथिवीतले।
सम्प्राप्तो नैमिषारण्यं यत्र सन्ति मुनीश्वराः॥
अष्टाशीतिसहस्राणि शौनकाद्यास्तपोधनाः।
विलोक्य सन् मुनिर्व्यासस्तान् सर्वान् गिरिशात्मनः॥
उत्क्षिप्य तर्जनीमुच्चैः प्रोवाचेदं वचः पुनः।
परिनिर्मथ्य वाग्जालं सुनिश्चित्याऽसकृद्बहु॥
इदमेकं परिज्ञातं सेव्यः सर्वेश्वरो हरिः।
वेदे रामायणे चैव पुराणेषु च भारते॥
आदिमध्यावसानेषु हरिरेकोऽत्र नाऽपरः।
सत्यं सत्यं पुनः सत्यं त्रिसत्यं न मृषा पुनः॥
न वेदादपरं शास्त्रं न देवोऽच्युतात् परः।

व्यासेश्वर लिङ्ग की स्थापना

लिङ्गं व्यासेश्वरं स्थाप्य--निर्वाणपददायिनः॥
व्यासेश्वरस्य भक्ता ये न तेषां कलिकालतः।
न पापतो भयं क्वापि न च क्षेत्रोपसर्गतः॥

(स्कन्दपुराण का० ख० ९५।२—७३)

सम्राट् जनमेजय द्वारा स्वर्णसिंहासन अर्पण

जनमेजयस्य राजर्षे स महात्मा सदस्तदा ।
विवेश सहितः शिष्यैर्वेदवेदाङ्गपारगैः ॥
काञ्चनं विष्टरं तस्मै सदस्यानुमतः प्रभुः ।
आसनं कल्पयामास यथा शक्रो बृहस्पतेः ॥
तत्रोपविष्टं वरदं देवर्षिगणपूजितम् ।
पूजयामास राजेन्द्रः शास्त्रदृष्टेन कर्म्मणा ॥
पाद्यमाचमनीयञ्च अर्घ्यं गां च विधानतः ।
पितामहाय व्यासाय तदर्हाय न्यवेदयन् ॥
(महाभारत आदिपर्व ६०। ७—१३)

महाबुद्धि वेदव्यास जी ने नाना शाखा और प्रशाखारूप में वेदों का व्यास करके तथा अष्टादश पुराणों को सूत आदि मुनियों को पढ़ाकर श्रुति स्मृति और पुराणों के रहस्य से परिपूर्ण महाभारत नामक ग्रन्थ का निर्माण किया । महाभारत वह ग्रन्थ है जिसके श्रवणमात्र से ब्रह्महत्या जैसे उग्र पाप विनष्ट हो जाते हैं, जो सब पापों को दूर करके सुख और शान्ति प्रदान करता है ।

एक वार मुनिवर वेदव्यास जी भूमण्डल में इतस्ततः भ्रमण करते हुये नैमिषारण्य में आ पहुँचे जहाँ कि शौनक आदि अट्ठासी हजार तपोधन मुनिजन निवास करते थे । उन ईश भक्त समस्त मुनिजनों को देखकर महर्षि व्यास ने अपनी तर्जनी अंगुली ऊंची करके घोषणा की कि समस्त वाङ्मय का भली प्रकार मन्थन करके और बारबार वहुत विचार करने पर केवल इतना तत्त्व प्राप्त हुआ है कि—एकमात्र सर्वेश्वर श्रीमन्नारायण ही सेव्य हैं ।

वेद में रामायण में पुराणों में और महाभारत में आदि में और अन्त में एकमात्र श्री हरि ही सर्वोपरिरूपेण वर्णित है—अन्य कोई नहीं । यह सत्य है, सत्य है और सत्य है, (तीन काल तीन लोक में व्याप्त) तथा त्रिसत्य है

इसमें लेशमात्र भी मिथ्या नहीं है कि वेद से अधिक अन्य कोई शास्त्र नहीं और अच्युत भगवान् से अतिरिक्त अन्य कोई महान् देव नहीं।

निर्वाणप्रद व्यासेश्वर नामक लिङ्ग की स्थापना करके घोषणा की कि जो व्यासेश्वर भगवान् के भक्त होंगे उनको कलिकाल से भय न होगा तथा पाप से या क्षेत्रोपसर्ग से भी कुछ भय नहीं होगा।

महात्मा वेदव्यास जी वेद वेदांग पारग अपने शिष्यों सहित राजर्षि जनमेजय की सभा में प्रविष्ट हुवे, राजा ने उनको समस्त सदस्यों की अनुमति से सुवर्ण निर्मित सिंहासन प्रदान किया, जैसा कि इन्द्र अपने गुरु बृहस्पति को प्रदान किया करता है। जब वे सिंहासन पर विराजमान हुए महाराज ने शास्त्रदृष्टविधि के अनुसार, देवर्षिगण पूजित उस वरद महात्मा का पूजन किया। पाद्य, आचमन, अर्ध्य, और गाय, ये ,सब वस्तुयें विधिविधान पूर्वक अपने पूज्यपितामह व्यास को प्रदान कीं।

यज्ञकुण्ड से लोमहर्षण सूत का प्रादुर्भाव

तत्र सूत्यां समुत्पन्नः सूतो नामेह जायते ॥३१॥
ऐन्द्रे सत्रे प्रवृत्ते तु ग्रहयुक्ते बृहस्पतौ।
तमेवेन्द्रं बार्हस्पत्ये तत्र सूतो व्यजायत ॥ ३२ ॥
शिष्यहस्तेन यत्पृक्तमभिभूतं गुरोर्हविः।
अधरोत्तरचारेण जज्ञे तद् वर्णसङ्करम् ॥ ३३ ।
पुराणेष्वधिकारो मे विहितो ब्राह्मणैरिह।
दृष्ट्वाधर्ममहं पृष्टो भवद्भिर्ब्रह्मवादिभिः ॥३४॥
पितृणां मानसी कन्या वासवं समपद्यत।
अपध्याता च पितृभिर्मत्स्यगर्भे बभूव सा ॥३५।
अरणीव हुताशस्य निमित्तं पुण्यजन्मनः।
तस्यां बभूव पूतात्मा महर्षिस्तु पराशरात् ॥३६॥
जातमात्रन्तु यं वेद उपतस्थे ससंग्रहः।
कृष्णद्वैपायनव्यासं विद्धि नारायणं प्रभुम् ॥४३॥
तस्मादहमुपाश्रौषं पुराणं ब्रह्मवादिनः।
पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम् ॥४५॥

अनन्तरञ्च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः ।
कालेनाऽग्रहणं दृष्ट्वा पुराणस्य तदा विभुः ।।५०।।
व्यासरूपस्तदा ब्रह्मा संग्रहार्थं युगे युगे ।
चतुर्लक्षप्रमाणेन द्वापरे द्वापरे जगौ ।।५२।।
तदाष्टादशधा कृत्वा भूर्लोकेऽस्मिन् प्रकाशितम् ।
अद्यापि देवलोकेषु शतकोटिप्रविस्तरम् ।।५३।।

(पद्म-पुराण सृष्टि० १।३१-५३)

यज्ञ में सोमाभिषव के समय उत्पन्न होने के कारण, अन्वर्थनामा 'सूत' विख्यात हुआ। इन्द्र सम्बन्धी यज्ञ में जब कि बृहस्पति का ग्रह, सम्पन्न होना चाहिये था उस समय उत्पन्न हुये तब शिष्य के हस्त से गुरु की हविः संपन्न हो जाने पर इस अधरोत्तर आचरण से दो दिव्य वर्णों का साङ्कर्य्य हो गया ऐसी स्थिति में मेरा पुराण पठन का ही अधिकार ब्राह्मणों ने नियत किया है। आप ब्रह्मवादी मुनि हैं तादृश धर्म देखकर आप लोगों ने मुझ से पूछा है। शापवश पितरों की मानसी कन्या वसु की पत्नी बनी। पितरों द्वारा अभिशप्त वह कन्या मत्स्य के गर्भ से उत्पन्न हुई। जैसे अरणी अग्नि प्रकट करने का साधन है इसी प्रकार वह सत्यवती भी पवित्र वेदव्यास जी के जन्म का हेतु बनी। उसी के द्वारा महर्षि पराशर से कृष्ण-द्वैपायन के उत्पन्न होते ही साङ्गोपाङ्ग वेद राशि ने उन का उपस्थान किया वे साक्षात् नारायण प्रभु ही हैं ऐसा समझना चाहिये। उसी ब्रह्मवेत्ता महर्षि से मैंने पुराण का श्रवण किया है। सर्व शास्त्रों में पुराण ही ब्रह्माजी ने सर्व प्रथम स्मरण किये हैं तदनन्तर ही उनके मुख से वेदों का प्रादुर्भाव हुआ है। कालचक्र की वक्र गति से अपार पुराण राशि का धारण कर सकना असम्भव जान कर व्यासरूप ब्रह्मा ने उनको संक्षिप्त कर केवल चार लक्ष मात्र संख्या में समस्त किया। उसको अठारह भागों में मिला करके इस भूलोक में प्रकाशित किया। देवलोक में अब भी शतकोटि विस्तृत पुराण साहित्य विद्यमान है।

विष्णु के अंशावतार : सूत

सत्रान्ते सूतमनघं नैमिषेया महर्षयः ।
पुराणसंहितां पुण्यां पप्रच्छु रोमहर्षणम् ॥
त्वया सूत ! महाबुद्धे ! भगवान् ब्रह्मवित्तमः ।
इतिहासपुराणार्थं व्यासः सम्यगुपासितः ॥
तस्य ते सर्वरोमाणि वचसा हृषितानि यत् ।
द्वैपायनस्य तु भवांस्ततो वै रोमहर्षणः ॥
भवन्तमेव भगवान् व्याजहार स्वयं प्रभुः ।
मुनीनां संहितां वक्तुं व्यासः पौराणिकीं पुरा ॥
त्वं हि स्वायम्भुवे यज्ञे सूत्याहे वितते सति ।
सम्भूतः संहितां वक्तुं स्वांशेन पुरुषोत्तमः ॥

(कूर्म-पुराण १।२-६)

पृथु द्वारा सूत जी को अनूपदेश भेंट

एतस्मिन्नेव काले च यज्ञे पैतामहे शुभे ।
सूतः सुत्यां समुत्पन्नः सौत्येहनि महामतिः ॥
ऐन्द्रेण हविषा चापि हविः पृक्तं बृहस्पतेः ।
जुहावेन्द्राय दैवेन ततः सूतो व्यजायत ॥
प्रमादस्तत्र सजंज्ञे प्रायश्चित्तश्च कर्म्मसु ।
शिष्यहव्येन यत्पृक्तमभिभूतं गुरोर्हविः ॥
अधरोत्तरचारेण जज्ञे तद् वर्णवैकृतम् ।
पृथोः स्तवार्थं नौ तत्र समाहूतौ सुरर्षिभिः ॥
ततः स्तवान्ते सुप्रीतः पृथुः प्रादात् प्रजेश्वरः ।
अनूपदेशं सूताय मगधान् मागधाय च ॥

(महाभारत हरिवंश ५। ३३-४२)

(वायु-पुराण उपोद्घात ६२। १३६-१५१)

यज्ञ के अन्त में नैमिष निवासी महर्षियों ने पापरहित श्री रोमहर्षण सूत जी महाराज से पवित्र पुराण संहिता पूछी । हे महाबुद्धे सूत ! आपने ब्रह्म-

वेत्ता भगवान् वेदव्यास की इतिहास और पुराणशास्त्रों के परिज्ञानार्थ भली प्रकार उपासना की है। कृष्ण-द्वैपायन व्यास के वचन श्रवण करके हर्षोद्रेक के कारण तुम्हारे शरीर की समस्त रोमराशि उद्गत हो उठी थी इसी कारण से तुम्हारा अन्वर्थ नाम (रोमहर्षण) विख्यात हुआ। पूर्व काल में व्यास भगवान् ने आपको ही मुनिजनों को पुराण-संहिता सुनाने की स्वयं आज्ञा प्रदान की थी। आप स्वयम्भू मनु के यज्ञ में जब कि सोमरस का अभिषव हो रहा था पुराण-संहिता सुनाने के लिए ही पुरुषोत्तम भगवान् के अंशावतार रूप में अवतरित हुए हो।

उसी समय पितामह के शुभ यज्ञ में सोमाभिषव के समय सुति मुहूर्त में महामुनि सूत जी उत्पन्न हुए। ऐन्द्र हव्य से बृहस्पति की हविः संपन्न हो गई थी, दैव वशात् वह इन्द्र के लिये ही हुत हो गयी, इस प्रकार विधि में प्रमाद हो जाने के कारण प्रायश्चित्तीयता आ गई। सो शिष्य के हव्य से संस्पृष्ट हुई गुरु की हविः अभिभूत हो जाने के कारण इस अपचार से वर्ण विकृति उत्पन्न हो गई। महर्षियों ने सूत और मागध दोनों को पृथु की स्तुति सुनाने के लिए बुलाया। स्तुति सुन कर प्रसन्न हुए राजा ने सूत को अनूप (जलप्रायः) देश और मागध को मगध देश पुरस्कार में प्रदान किए।

उग्रश्रवा सूतः कथाव्यास

सूतमेकान्तमासीनं व्यासशिष्यो महामतिः।
लोमहर्षणनामा वा उग्रश्रवसमाह तत् ।।२।
ऋषीणामाश्रमांस्तात ! गत्वा धर्मान् समासतः।
पृच्छतां विस्तराद् ब्रूहि यन्मत्तः श्रुतवानसि ।।३।
वेदव्यासान् मया पुत्र ! पुराणान्यखिलानि च।
तवाख्यातानि प्राप्तानि मुनिभ्यो वद विस्तरात् ।।४।।
उग्रश्रवास्ततो गत्वा ज्ञानविन्मुनिपुंगवान्।
अभिगम्योपसंगृह्य नमस्कृत्वा कृताञ्जलिः ।।११।।
तोषयामास मेधावी प्रणिपातेन तानृषीन्।
ते चापि सत्रिणः प्रीताः ससदस्या महात्मने ।।१२।।

तस्मै समेत्य पूजाञ्च यथावत् प्रतिपेदिरे ॥१३॥

ऋषय उचुः

कुतस्त्वमागतः सूत! कस्माद् देशादिहागतः ।
कारणं चागमे ब्रूहि वृन्दारकसमद्युते ! ॥१४॥

सूत उवाच

पित्राऽहन्तु समादिष्टो व्यासशिष्येन धीमता ।
शुश्रूषय मुनीन् गत्वा यत्ते पृच्छन्ति तद्वद ॥१५॥
वदन्तु भगवन्तो मां कथयामि कथान्तु याम् ।
पुराणञ्चेतिहासं वा धर्म्मानथ पृथग्विधान् ॥१६॥
तां गिरां मधुरां तस्य सुश्रुत्य ऋषिसत्तमाः ।
अथ तेषां पुराणस्य शुश्रूषा समपद्यत ॥१७॥
दृष्ट्वा तमतिविश्वस्तं विद्वांसं लौमहर्षणिम् ।
तस्मिन् सत्रे कुलपतिः सर्वशास्त्रविशारदः ॥१८॥
शौनको नाम मेधावी विज्ञानारण्यके गुरुः ।
इत्थं तद्भावमालम्ब्य धर्म्मशुश्रूषुराह तम् ॥१९॥
त्वया सूत महाबुद्धे ! भगवान् ब्रह्मवित्तमः ।
इतिहासपुराणार्थं व्यासः सम्यगुपासितः ॥२०॥
दुदोहिथ मति तस्य त्वं पुराणाश्रयां शुभाम् ।
अमीषां विप्रमुख्याणां पुराणम्प्रति साम्प्रतम् ॥२१॥
शुश्रूषास्ते महाबुद्धे ! तच्छ्रावयितुमर्हसि ।
स्वान् स्वान् श्रुतान् पुराणोक्तान् शृण्वन्तु ब्रह्मवादिनः ॥२२॥
एवं पृष्ठस्ततस्तांस्तु प्रत्युवाच शुभां गिरम् ।
प्रीतोऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि भवद्भिरिह चोदनात् ॥२३॥
यथाश्रुतं सुविख्यातं तत्सर्वं कथयामि वः ।
धर्मं एव तु सूतस्य सद्भिर्दृष्टः स सत्तमः ॥२४॥
देवतानामृषीणाञ्च राज्ञां चामिततेजसाम् ।
वंशाना धारणं कार्य्यं स्तुतीनाञ्च महात्मनाम् ॥२५॥

वैन्यस्य हि पृथोर्यज्ञे वर्तमाने महात्मनः ।
मागधश्चैव सूतश्च तमस्तौतां नरेश्वरम् ॥२६॥
तुष्टेनाथ तयोर्दत्तो वरो राज्ञा महात्मना ।
(पद्मपुराणे सृष्टिखण्डे १।२—३१)

वेदव्यास जी के शिष्य महामति लोमहर्षण सूत ने एकांत स्थान में बैठे हुए उग्रश्रवा नामक अपने शिष्य से कहा कि हे तात ! मुझसे तुमने जो कुछ धर्म-तत्त्व संक्षेप से सुना है वह सब तुम ऋषियों के आश्रमों में जाकर उनके पूछने पर विस्तार पूर्वक कहो । हे पुत्र ! मैंने भी वेदव्यास महाराज से समस्त पुराण तथा आख्यान जो कुछ भी प्राप्त किये थे उन सब को तुम मुनियों को विस्तार पूर्वक सुनाओ । तब ज्ञानवेत्ता मेधावी उग्रश्रवा ने मुनि जनों के निकट जाकर अँजलि बांध कर विनम्रता पूर्वक प्रणाम किया और अपने इस सौहार्द पूर्ण व्यवहार से उनको सन्तुष्ट किया । यज्ञ परायण उन मुनिजनों ने भी प्रसन्न होकर महात्मा उग्रश्रवा की यथावत् पूजा की । सभी सदस्यों ने एकचित्त होकर उनका उचित स्वागत-सत्कार किया । और पूछा कि हे देवताओं के समान कान्ति वाले सूत जी ! आप किस देश से और किस हेतु से यहाँ पधारें हैं ? सूत जी ने कहा वेदव्यास जी के शिष्य मेरे पिता लोमहर्षण जी ने मुझे आदेश दिया है कि तुम जाकर मुनिजनों की सेवा करो और वे जो कुछ पूछें उनको सो बताओ । अब आप कृपा पूर्वक बोलो कि मैं आप लोगों को कौन कथा सुनाऊँ । पुराण या इतिहास अथवा विभिन्न धर्म क्या कुछ कहूं ।

जब ऋषि जनों ने उग्रश्रवा की यह मधुर वाणी सुनी उनके मन में पुराण सुनने की इच्छा उत्पन्न हुई । लोमहर्षण के पुत्र सूत को अतिविश्वस्त और विद्वान् समझ कर उस महायज्ञ के कुलपति, विज्ञानारण्य के गुरु अति मेधावी श्री शौनक जी ने कहा कि हे महाबुद्धे सूत ! आपने ब्रह्मवेत्ता भगवान् वेदव्यास की इतिहास पुराणों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए भली प्रकार सेवा की है और पुराण विषयक उनकी मति का मन्थन किया है । इस समय इन मुनि-जनों की पुराण श्रवण की इच्छा है सो आप सुनाइये ।

हे ब्रह्मवादी मुनिजनो ! अब आप लोग अपने २ प्रष्टव्य पुराणों को इनसे श्रवण कीजिये।

उग्रश्रवा बोले—मैं बहुत बहुत प्रसन्न हूँ आप लोगों ने प्रेरित करके मुझे अनुगृहीत किया है। जैसा मैंने सुना है वैसा मैं आप सबको सुनाता हूँ क्योंकि सूत का यह शास्त्र दृष्ट धर्म्म है कि वह देवताओं, ऋषियों और तेजस्वी राजाओं की वंश परम्परा को धारण करे तथा महात्माओं की स्तुतियों का संग्रह करे। वेनपुत्र महाराजा पृथुके यज्ञ में मागध और सूत ने राजा की स्तुति की थी तब महात्मा राजा ने प्रसन्न होकर उन दोनों को वर दिया था।

भगवान् राम का अश्वमेधयज्ञ—नैमिष में

यज्ञवाटश्च सुमहान् गोमत्या नैमिषे वने ॥१५॥
आज्ञाप्ययतां महाबाहो ! तद्धि पुण्यमनुत्तमम् ॥
शान्तयश्च महाबाहो ! प्रवर्त्तन्तां समन्ततः ॥१६॥
शतशश्चापि धर्म्मज्ञा-क्रतुमुख्यमनुत्तमम् ॥
अनुभूय महायज्ञं नैमिषे रघुनन्दन ! ॥१७॥
एवं सुविहितो यज्ञो ह्यश्वमेधो प्रवर्तत ॥
लक्ष्मणेन प्रगुप्ता साध्वरचर्य्या ह्यवर्तत ॥१८॥
ईदृशो राजसिंहस्य यज्ञः सर्वगुणान्वितः ॥
संवत्सरमथोसाग्रं वर्तते न च हीयते ॥१९॥

(वाल्मीकीय रामायण उत्तर काण्ड सर्ग ९१-९२)

अर्थात्—हे लक्ष्मण ! गोमती नदी के किनारे नैमिषारण्य में यज्ञ भूमि का निर्माण किया जाए। वह बड़ा पुण्य स्थान है। वहाँ के ऋषियों को निमन्त्रित करो कि वे शान्ति पाठ करें। उन महात्माओं ने नैमिषारण्य में सैंकड़ों यज्ञ किये हैं। इसलिये वे इस यज्ञ की विधिको सम्यक् जानते हैं। इस प्रकार विधि पूर्वक अश्वमेध यज्ञ आरम्भ हुआ। लक्ष्मण जी

यज्ञाश्व की परिचर्य्या एवं रक्षा में नियुक्त थे। इस प्रकार राजसिंह भगवान् राम का सर्व-गुण-सम्पन्न यज्ञ अन्यून एक वर्ष से अधिक समय तक चालू रहा। जिसमें कभी भी कोई त्रुटि उपस्थित नहीं हुई।

बकोदाल्भ्य ऋषि नैमिष यज्ञ के उद्गाता

तेन तं ह बकोदाल्भ्यो विदांचकार ।
स ह नैमिषीयाणामुद्गाता बभूव ॥
(छान्दोग्य प्रपाठक १ खं० २ श्रुति १३)

अर्थात्—दल्भऋषि का पुत्र बक नामक ऋषि यज्ञ विधान का विशेषज्ञ था। अतः वह नैमिषीय यज्ञ का उद्गाता हुआ।

—:०:—

नैमिष-शोभा

तपोभूमि भारत की आरत हरन हार,
दारित दुःसह दुःख-दोषन को गन है
अखिल पुराणकार पूर्व पुरुषावतार,
व्यास भगवान् ने खपायो जहाँ तन है।
मनु सतरूपा की सुसाधना फैली है जहां,
पायो सुत 'निश्चल" सलोनो श्याम घन है।
अस्थिदान जैसे बलिदानन की पुण्यथली,
नैमिष की रज को पुनीत कन कन है ॥१॥
चक्रधर को है जहाँ चारु चक्रकुण्ड बन्यो,
ललितेश्वरी को धाम मंगल भवन है।
तीरथ समस्त एक तीरथ किए से होत,
साधक समाज काज सिद्धि को सदन है।
लोकहित वर्तमान नारद निवास जहाँ,
धेनुमती कूल कलि शूल को समन है।
प्रार्थना प्रचार योजना की जन्म भूमि मंजु,
नैमिष की रज को पुनीत कन कन है ॥२॥

भारत की महान् विभूति : स्वामी नारदानन्द जी महाराज

[लेखक —भक्त रामशरणदास पिलखुवा]

भारत की सुप्रसिद्ध- महान्‌विभूति पूज्यपाद जगदाचार्य अनन्तश्री विभूषित श्री नारदानन्दसरस्वती जी महाराज को कोन ऐसा भारतीय हिन्दू है कि जो न जानता हो और न मानता हो और श्रद्धा भक्ति की दृष्टि से न देखता हो, आपका शुभ नाम अटक से लेकर कटक तक और हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक विख्यात है। आप एक उच्चकोटि के परमविख्यात और निरभिमानी संत है। आप हमारे सनातनधर्म के प्राण हैं आपके द्वारा भारत के कोने कोने में बड़े-बड़े महायज्ञों के द्वारा और कथा कीर्तन के द्वारा सत्संग और सदुपदेशों के द्वारा और पत्र पत्रिकाओं और पुस्तकों के द्वारा खूब सत्य सनातनधर्म का बड़े जोर-शोर से प्रचार हुआ है और बराबर होता रहता है जो कि देखते ही बनता है।

आपने अपने यज्ञों में जगद्‌गुरु शंकराचार्य, जगदगुरु निम्बार्काचार्य, जगद्‌गुरु रामानुजाचार्य आदि भारत के सभी बड़े बड़े धर्माचार्यों को बुला-बुला कर और पूज्यपाद सनातन-धर्म केसरी शास्त्रार्थमहारथी पं० माधवाचार्य शास्त्री जी महाराज, शास्त्रार्थ पञ्चानन पूज्य पं० श्री प्रेमाचार्य जी महाराज आदि बड़े-बड़े महान् धुरंधर विद्वानों को बुला-बुला कर सत्य सनातन-धर्म का खूब डंका बजाया है और कथा-कीर्तन सत्संग के द्वारा खूब भगवद्‌भक्ति का प्रचार किया है जिसे भारत का बच्चा बच्चा भली-भांति जनता है।

सतयुगो अद्‌भुत दृश्य उपस्थित कर दिया

आपने भारत के कोने कोने में संस्कृत के विद्यालय खुलवाए हैं जिनके द्वारा जहां अपनी भारत की देववाणी संस्कृत हिन्दी भाषा का खूब प्रचार हुआ है वहाँ आपके खोले गए विद्यालयों में से जिस समय ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यों के बालक विद्यार्थी सिरों पर लम्बी-लम्बी चोटी लटकाए, गले में यज्ञोपवीत धारण किए

लंगोटी लगाए और मस्तक पर तिलक लगाए, गले में माला धारण किए, हाथ में दण्ड लिए पैरों में खड़ाऊँ पहने और पीला वस्त्र धारण किए निकलते हैं तो बरबस बड़े बड़े घोर नास्तिकों के सर भी इनके चरणों में झुक जाते हैं प्राचीन ऋषियों का सा सतयुगी अद्भुत दृश्य उपस्थित हो जाता है और हृदय गद्-गद हो जाता है मनके अन्दर परम सात्विकता के भाव उत्पन्न हो जाते हैं और उस समय जो अद्भुत आनन्द आता है वह वर्णनातीत है। एक ओर समस्त भारत में अंग्रेजी के स्कूल कालेज यूनिवर्सिटियां खोल-खोल कर मेरे धर्मप्राण भारत के हिन्दू लड़कों को उनमें अंग्रेजी पढ़ा-पढ़ा कर चुटिया कट और खड़ा-खड़ा मूतने वाला और सबकी जूठी चाय चुड़ैल की प्यालियां चाटने वाला और सिनेमाओं की खाक छानने वाला, और माँ, बाप, मास्टर सबको डैमफूल बताने वाला, गिटपिट करने वाला और धर्म-कर्म, ईश्वर, वेदशास्त्र, गो ब्राह्मण देवमन्दिर आदि सबसे घृणा करने वाला होटलपंथी बोतलपंथी कालिज की लड़कियों के पीछे साईकिलें दौड़ाने वाला गुण्डा, लोफर बना-बना कर निकाले जा रहे हैं, जो धर्मप्राण भारत को कलंकित कर रहे हैं और भारत की शान में बट्टा लगा रहे हैं और अपना लोक परलोक बिगाड़ रहे हैं। दूसरी ओर हमारे पूज्य श्री स्वामी नारदानन्द सरस्वती जी महाराज हैं कि जो पथ-भ्रष्ट हिन्दू बालकों को अंग्रेजी के विष से बचा कर संस्कृत-भाषा का अमृत पान करा कर उन्हें ऋषि जैसा बना कर और भारतीय सभ्यता संस्कृति का परम पुजारी बना कर और उन्हें सत्य सनातनधर्म की शरण में लाकर और भगवद्भक्ति की ओर लगा कर व्यसनों से बचाकर भारत माता का महान् गौरव बढ़ा रहे हैं और उनका लोक परलोक बना रहे हैं और कुपथ से बचा कर सन्मार्ग पर लगा रहे हैं। पूज्य स्वामी जी महाराज के इन शुभकामों को क्या कभी भुलाया जा सकता है।

वानप्रस्थियों की अद्भुत जमात

आपको यदि कुछ प्राचीनता की झलक देखनी हो तो आप सीधे भारत के सुप्रसिद्ध महान् तीर्थ श्री नैमिषारण्य में पहुँच जाइये और पूज्य श्री स्वामी नारदानन्द सरस्वती जी महाराज के आश्रम का दर्शन करिये जहाँ पर आपको प्राचीन भारत की झलक देखने को मिलेगी, जिसे देख कर आप गद्गद हो जायेंगे। वहाँ पर आप को बड़े बड़े अंग्रेजी पढ़े लिखे बी. ए., एम. ए. डिप्टीकलक्टर जज

मजिस्ट्रेट, करोड़पति सेठ, व्यापारी विद्वान् आदि सभी प्रकार के बड़े-बड़े प्रतिष्ठित व्यक्ति मिलेंगे कि जो अपने घर-बार मालमता बालबच्चों आदि सब का मोह त्याग कर और सब पर लात मार कर और सब पर थूक कर इस परमपवित्र भूमि में आये हुये हैं और पूज्य स्वामी जी महाराज के सत्संग के प्रभाव से प्रभावित होकर कोट बूट नक्टाई, बीड़ी, सिगार, सिगरेट, चाय काफी आदि को तिलाञ्जलि देकर वानप्रस्थाश्रम में प्रवेश कर ऋषियों जैसा पवित्र जीवन बिता रहे हैं और बड़प्पन की बू और अभिमान नाम को भी नहीं है और बड़ा ही त्याग तपस्यामय जीवन व्यतीत कर कहे हैं ।

पूज्य स्वामी जी महाराज ने अनेकों पाठशालायें अनेकों धर्मशालायें देवमन्दिर, आश्रम आदि खोल खोलकर खूब धार्मिक जागृति पैदा की है और अपने अद्भुत सत्संग से लाखों मनुष्यों को सनातनधर्म की शरण में लाकर और मत, मज़हब, पंथ, रिलीजन की दल-दल से बचा कर सनातनधर्मी बना कर दुर्व्यसनों से बचा कर उन्हें परमार्थ पथ का पथिक बनाया है जिसे भारत का बच्चा बच्चा भलीभांति जानता है और मानता है और स्वीकार करता है ।

हम आपको आज से नहीं लगभग २० वर्ष से भलिभाँति जानते हैं और आप की हमारे ऊपर बड़ी विशेष कृपा दृष्टि रही है । आप कृपा कर पिलखुवा हमारे स्थान पर भी अपने परमकृपा पात्र शिष्य ब्रह्मचारी श्री विवेकानन्द जी महाराज के साथ व अपने अन्य शिष्यों के साथ पधार चुके हैं और जनता में अपने सदुपदेश देने की कृपा कर चुके हैं ।

उदारता की पराकाष्टा

पूज्यपाद श्री स्वामी जी महाराज से हमारा कई बातों में मतभेद है और यह बात स्वामी जी महाराज को भी भली-भांति विदित है कि हमारे विचार जहां एक कट्टर सनातन धर्मी विचार हैं और हम गांधी, जवाहर, विनोवा, जयप्रकाश, इन्द्रा, दयानन्द आदि सभी के घोर विरोधी हैं और इन्हें सनातनधर्म का कट्टर शत्रु मानते हैं और कांग्रेसी लीडरों से बातें करना और उनका स्वागत करना बड़ा घोर पाप मानते हैं वहाँ आप के सम्मेलनों में बड़े बड़े कांग्रेसी लीडर, मिनिस्टर, नेता, मंत्री बराबर बुलाए जाते हैं और उनके स्वागत किए जाते हैं और हम इन बातों को अच्छा नहीं मानते, पर यह हमारी बात पूज्य स्वामी जी महाराज को मालूम होने पर भी आपकी यह उदारता की पराकाष्ठा है कि आप हमारे कांग्रेसी लीडरों का घोर विरोधी होने पर भी हमसे बड़ा प्रेम करते हैं और हमारी बातों को बड़े ध्यान से सुनते हैं

अप्रसन्न नहीं होते। अभी पिछले दिनों जब आप कृपा कर पिलखुआ हमारे स्थान पर पधारे थे तो हमने जिस समय नेहरू, गांधी, बिनोवाभावे की आपके सामने काली करतूतों का आद्योगन्त सप्रमाण वर्णन किया और आपको समाचार पत्रों के वह कटिंग और चित्र दिखाए कि जिनमें प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू परस्त्रियों के साथ हाथ में हाथ डाले ठुमक-ठुमक कर नाच रहे हैं और ठुमका बाजी कर रहे है और देश को व्यभिचार की भट्टी में झोंक रहे हैं, तो आप उन्हें बड़े ध्यान से देखा और आश्चर्यचकित रह गए और आपने इन सब प्रमाणों के संग्रह करने की बड़ी प्रशंसा की।

प्रार्थना की धूम मचा दी

ऐसे महान् घोर अंधकार नास्तिकता के युग में जब कि आज ईश्वर को न तो निराकार माना जा रहा है और न साकार माना जा रहा है बल्कि ईश्वर को बेकार बनाया जा रहा है फिर भला ईश्वर की उपासना, आराधना, भजन पूजन की तो बात ही क्या है ? ऐसे घोर भयंकर समय में लाखों स्त्री पुरुषों को नित्य प्रति ईश्वर प्रार्थना की ओर प्रवृत करना और उनके द्वारा नित्य प्रार्थना कराना यह आपका ही एक मात्र अद्भुत कार्य है। आज लाखों ऐसे स्त्री पुरुष, बालक बूढ़े हैं कि जो आपकी आज्ञानुसार नित्य प्रति प्रातःकाल और संध्या को अपना सब काम छोड़ कर प्रार्थना किया करते हैं। आपके इस प्रार्थना करने के प्रचार करने के कारण आज लाखों मनुष्य ईश्वर प्रार्थना करते हैं और बड़े बड़े घोर नास्तिक तक परम आस्तिक बनते देखे गए और आस्तिकता का संचार होता देखा गया है। ईश्वर प्रार्थना में बड़ा अद्भुत विलक्षण चमत्कार है और ईश्वर प्रार्थना में बड़ा अद्भुत सामर्थ्य है। इस लिए जहाँ प्रार्थना द्वारा जीव का परम कल्याण होता है और आध्यात्मिक शक्ति बढ़ती है वहाँ प्रार्थना द्वारा देश का, जाति का भी परम कल्याण होता है। कौन ऐसा कार्य है कि वह प्रार्थना द्वारा न हो जाय। आपने इस प्रार्थना का प्रचार करके जो महत्वपूर्ण कार्य किया है वह वर्णनातीत है।

पूज्य स्वामी जी के द्वारा धर्म की रक्षा का, देश जाति संस्कृत हिन्दी का, यज्ञों का, कथा कीर्तन का, सत्संग का, सदाचार का जो प्रचार हुआ है वह आगामी इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखा जायगा।

बोलो सनातन धर्म की जय

—:o:—

मैंने आर्य्य-समाज छोड़ दिया

—श्री विद्याविवेक पूजन—

बात है १९४३ की, जिन दिनों सीतापुर, जिलाबोर्ड के इन्जीनियर शारदादीन बाजपेयी थे, यकायक उन्होंने आकर कहा रघुवंशकुमार आज चलोगे नहीं नैमिषारण्य के पुनीत संत पधारे हैं। उनके कहने से मैं तुरन्त तैयार हो कर चला, उनका पुनीत उपदेश सीतापुर के सनातनधर्म मंदिर में हो रहा था, चुपचाप प्रणाम करके बैठ गया विषय चल रहा था "ध्यायतो विषयान्पुंसः" इसका निरूपण भले प्रकार किया, अंत में सब से पूछा—कौन २ क्रोध छोड़ने का प्रयास करेगा मैंने हाथ उठा दिया। वहाँ के दर्शक चिल्ला उठे, महाराज ! इनको नहीं, यह तो आर्य समाजी हैं। पूज्यचरण ने कहा इस से हमें क्या, हमारा माल जो भी लेगा हम उसे देंगें। पास बुलाया परिचय पूछा, उन दिनों मैं भी मैं जिलाबोर्ड में ओवरसियर था। आशीर्वाद दिया और क्रोध का मूल कारण इच्छा में विघात बतला कर उस पर मनन करने का आदेश दे कर चले गये। उसी समय से मैं गीता पढ़ने लगा।

मेरा क्षेत्र नैमिषारण्य निरीक्षण करने को था, वहाँ मैं डाक बंगले में ठहरा, पुनः पू०च० के दर्शन हुए। तांगेमें जा रहा था मैंने उनसे निवेदन किया बैठने को, वह बैठ गए, वार्ता का प्रवाह चलता रहा। उसी में मैंने पूछा महाराज ! जिला बोर्ड में चाहे जितनी ईमानदारी से काम करो मगर कोई लाभ नहीं - सफलता नहीं मिलती। पू. च. ने तुरन्त कहा तुम ब्राह्मण हो ब्राह्मणोचित कार्य ही में तुम्हें हमारे आशीर्वाद से सफलता मिलेगी। नौकरी में नहीं। अतः त्यागपत्र देकर तुम हमारा आश्रम का कार्य संभालो। भला ऐसी बात मेरे लिये कैसे सम्भव थी ? मगर संत का सत्संकल्प कभी असत् नहीं होता।

जब कभी दर्शन होता कहते—कब आ रहे हो ? मैंने कहा महाराज ! कन्या, पुत्र का भार है, यह आप ले लें तो मैं आ जाऊँ। पू० च० ने अपने कर कमलों द्वारा मेरा हाथ पकड़ कर कहा—लो लेलिया मैंने तुम्हारा भार। बस ! यह बात स्टेशन पर हुई। घर ज्योंही पहुंचा तार मिला, कन्या का सम्बन्ध पक्का हो गया

तुरन्त आओ। और २ सप्ताह के अन्दर विवाह भी हो गया। यह बड़ा भारी चमत्कार और संकट से छुटकारा प्रत्यक्ष मिला, श्रीचरणों में श्रद्धा बढ़ती रही उनकी कृपा जो कि अहैतुकी है इसका अनवरत वर्षण होता रहा जिसके फल स्वरूप १९४९ की दीपमालिका के पश्चात् की भैया दोज को पू. च. की शरणागति प्राप्त की, अर्थात् दीक्षा लेली और सन् १९५१ में पुत्र के विवाह से भी निवृत्त हो गया।

मैं सनातन परिवार का व्यक्ति होते हुए भी मूर्तिपूजा के अनुकूल नहीं था, अतः आर्यसमाज में सामाजिक सेवा किया करता था उसमें मुझे बड़ा अच्छा लगता था। उपर्युक्त पुत्र-कन्या के कार्यसे तो निवृति पाई मगर पूर्ण आस्था सनातन-धर्म पर न हो जाए तब तक पूर्ण समर्पण कर के वानप्रस्थ में आ जाने के लिये मुझे सोचना पड़ा, इस विचार को प्रकट भी कर दिया। एक बार मुझे बुलाया और कहा देखो हम तुम्हें भागवत सुनाते है। कपिल जी अपनी माता देवहूति से कहते हैं:—**जो आठो याम मूर्तिपूजा तो करता है मगर दीन दुखियों की सेवा नहीं करता उसका यह कार्य राख में हवन करने के समान है।**

यह सुनना था कि सनातनधर्म के ग्रंथ में यह भी लिखा है—मुझे श्रद्धा हुई और मैंने आर्यसमाज छोड़ दिया। श्राद्ध में भी शंका थी वह भी समाधान हुई, मुझे अपने पिता स्वप्न में दीखते और कहते तुम्हारे कारण दुखी हूँ, तुम सब से बडे पुत्र हो तुम मेरे लिये कुछ नहीं करते। यह स्वप्न देखकर मैं डर गया, रात्रि में चिल्लाया भी, उठा—प्रातः पू. च. के श्री चरणों में निवेदन किया! 'हाँ अवश्य श्राद्ध करो। जिस में तुम्हारी श्रद्धा हो उन्हीं को आश्रम से ले जाओ।' मैं ऋषि जी शिवानन्द जी गया वाले बाबा इत्यादि महात्माओं को ले गया और विधि विधान से श्राद्ध किया, रात्रि को फिर स्वप्न हुआ पिताजी के दर्शन हुए वह कहते थे मैं प्रसन्न हूँ और फुलवारी सींच रहे थे। इस से मेरी श्रद्धा और भी बढ़ी और आर्यसमाज की ओर से पूरा घूमगया।

४ अगस्त सन् १९५६ को नौकरी से त्याग पत्र देकर पू. च. की पूर्ण शरणागत में चला आया और उनके आशीर्वाद से जहाँ २ वह आज्ञा देते हैं जाता हूँ। उनसे वचनामृत को जन-जन को सुनाने की कोशिश करता हूँ जिसे लोग सुन कर प्रत्येक व्यक्ति उनके दर्शनों के लिये उत्कंठित हो उठता है। मेरे मानसिक रोगों की बहुत कमी हो गई और शांति का अनुभव करता हूँ।

एक बार गोंडा में पू०च० पधारे उनका स्वागत हुआ। लौटते समय मोटर फेल

हो गयी । रिक्शा तांगे में बैठते नहीं । अब क्या हो ? एक मोटर खड़ी थी उन्होंने कहा जाओ इसको देखो । पता चला वह मोटर एक मुसलमान की है मगर साहस करके गया । 'भैया! हमारे गुरूजी आए हैं क्या मोटर दे दोगे ?' उसने कहा ड्राइवर तो है नहीं मेरे रोजे चल रहे हैं । तत्क्षण मेरे मुखसे निकला—'रोजेका जिन्दा सबाब होगा तुम्हें' वह चौंका कहने लगा हाँ । तुरन्त उठकर मोटर ले चला । पू० च० कुछ ही दूर गए थे । मोटर आ गई, गाड़ी आने में ५-७ मिनट थे स्टेशन पहुंचे सुना गाड़ी ५ घन्टे लेट । वह पू० च० की विचार धारा से बड़ा प्रभावित हुआ जो कि उन्होंने तीनों गुणों के आधार पर बतलाई। पू० च० के दिए इस प्रसाद से उसने अपना रोजा अख्त्यार किया । १० तक साथ रहा । उस भक्त का नाम "अब्दुल शमी" है जो कि गोंडा में जनरल मर्चेन्ट है । और मुझ से गीता पढ़ता है धन्य हो गुरुदेव !

उनका उपदेश ही ऐसा है कि सुनकर कोई भी घर में रह नहीं सकता । जो मैं आपकी सेवा कर रहा हूँ यह अपनी मेरी उम्र नहीं । पू० च० ने अपने आशीर्वाद से वर्ष बढ़ाए हैं । आज कलियुग में भी यह अद्भुत चमत्कार हो रहे हैं । जनता को इससे लाभ उठाना चाहिए ।

भारतीय संस्कृति को यदि मूर्तिमान-देखना हो तो उनके जीवन में देखो और उसका प्रतिविंब है आश्रम—जिसके द्वारा कि वर्णाश्रम योजना का सदगुरु देव जी ने जीर्णोद्धार किया है । उससे मानव के, समाज के, और राष्ट्र के जीवनमें एकनव चेतना का संचार हो रहा है । लोग अपनी संस्कृति को भूल गए थे अब पहचान रहे हैं, अपनी भारतीय-संस्कृति-माता की गोद में मोद करने के लिए प्रत्येक प्राणी लालायित हो रहा है और वह दिन दूर नहीं हैं जिस दिन सारा विश्व एक स्वर से पू० च० के चरणों में आकर अपना पूर्ण समर्पण कर शाश्वत शांति का अनुभव कर अपने मानव जीवन को धन्य करेगा ।

अविस्मरणीय संस्मरण

लेखक—आशुकवि श्री पं० विमलेश शास्त्री भागवताचार्य

पाणिनीय व्याकरण का अध्ययन करते समय मेरे हृदय में यह भावना थी कि मैं अध्यापक बनूंगा ; मुझे अभी से ही अधिक श्रम करके सारा विषय हृदयङ्गम कर लेना है, समस्त फक्किकायें समझ कर तैयार करना है। अध्ययन समाप्त हुआ और पूज्य श्रीगुरुदेव भगवान् मुझे अनायास ही कानपुर जिले के देरापुर नामक एक विशिष्ट नगर में मिले। आपने मेरी एक कविता सुनकर अपने एकान्त शिविर में मुझे बुलाया और कहा—"तुम्हें देख कर मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि एक पीपल का वृक्ष गमले में लगा है।' मैंने कहा—भगवन् ! इसमें पीपल वृक्षका क्या अपराध ? जिसने इसे गमले में लगाया है, वही विस्तृत-क्षेत्र में भी उपस्थित कर सकता है। गुरुदेव ने कहा कि अब वह समय आगया है, जब यह पीपल विशाल-क्षेत्र में स्थापित होगा। जब तक मैं कुछ और कहने का साहस करूं तब तक आपका आदेश हो गया कि कल अमुक गाड़ी से मुझे कानपुर जाना है, तुम भी रूरा स्टेशन पर आ जाओ।

महापुरुषोंके संकल्प में बड़ी शक्ति होती है, मैं अनेक प्रकार की उधेड़-बुन करते हुवे भी ठीक समय पर स्टेशन पहुंचा और श्री चरणों के साथ हो लिया। आपने मिलते ही कहा—'योगक्षेमं वहाम्यहम्' अब क्या था सामूहिक-प्रार्थना का प्रचारक बनाकर मैं उन्नाव भेजा गया, फिर अन्यान्य स्थानों पर इसके पश्चात् १९ वर्ष पूर्व वाली प्रयाग की अर्ध-कुम्भी में। गुरुदेव मेरे प्रचार-क्रम से सन्तुष्ट हैं। इसका स्वाभिमान होते हुये भी अध्यापक बनने की कामना मेरे अन्तराल में छिपी रही। इधर गुरुदेव भगवान् की प्रेरणा में श्रीमद्भागवत के अध्ययन में लग कर कथा-वाचक बना। मेरी कथा-शैली अन्य कथावाचकों से भिन्न थी, क्योंकि मैं कथावाचक होते हुवे भी अपने को प्रचारक ही मानता था एवम् स्वरचित साहित्य की तथा गुरुदेव के साधनात्मक उपदेशों की पुट बीच २ में अवश्य देता था। थोड़े समय में ही मैं गुरुदेव के प्रचार-क्षेत्र में एक प्रसिद्ध-व्यास बन गया।

उन्हीं दिनों कानपुर जिले में मुझे ग्राम के ही जूनियर हाई-स्कूल में संस्कृताध्यापक के रूप में पढ़ाने के लिये स्थान मिल रहा था। कई एक मित्रों ने संस्कृत-विद्यालयों में अध्यापक बन कर अपना प्रदेश न छोड़ने की सलाह दी। मैं श्री गुरुदेव भगवान् से आदेश लेने के विचार से नैमिषारण्य आया। अपने समस्त

विचार गुरुदेव भगवान् के समक्ष व्यक्त किये, तो हँसकर उन्होंने मुझसे पूछा विमलेश ! तुमने कभी कवड्डी का खेल देखा है ? मैंने कहा—हां ! गुरुदेवने फिर पूछा–कवड्डी का खेल कैसे खेला जाता है ? मैंने कहा उसमें दो पार्टियाँ बनाई जाती हैं ; फिर एक लड़का वड्डी वड्डी कहते हुवे अपनी विरोधी पार्टी में घुसता है यदि वड्डी वड्डी वड्डी कहते हुवे उसने किन्हीं बालकों को छू लिया और सकुशल वापस आ गया तो वे सब आउट हो जाते हैं। गुरुदेव ने फिर पूछा—यदि वड्डी वड्डी करना बंद हो गया तथा दूसरे बालकों ने उसको छू लिया, या पकड़ लिया तब ? मैंने कहा—तब वह आउट हो जायेगा।

गुरुदेव भगवान् ने कहा—विमलेश ! उसी प्रकार संसारभी एक कबड्डी का खेल है, इसमें दो पार्टियां हैं। एक योगियों की और दूसरी भोगियों की। तुम मेरी पार्टी में थे मैंने तुम को उपदेश दिया था और कहा था कि घर जाओ परन्तु वड्डी वड्डी न भूलना, ऐसी स्थिति में यदि तुम सकुशल वापस आ गये तो तुम सफल माने जाओगे। परन्तु यदि तुम वड्डी वड्डी (मेरा उपदेश) भूल गये तथा उन लोगों ने तुमको पकड़ लिया तो तुम आउट हो जाओगे। देहाती शब्दों में, मर जाओगे। तो मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि तुम आउट हो गये। गुरुदेव भगवान् ने यह भी समझाया कि जिस समय तुम व्यासासन पर बैठते हो तो बड़े-बड़े आफीसर भी तुमको प्रणाम करते हैं, परन्तु जिस समय तुम अध्यापक बन जाओगे तो एक वर्णाधम आफीसर के सामने भी तुमको नत-मस्तक होना पड़ेगा। नौकरी ब्राह्मण के लिये कुत्ते की जीविका है। 'न श्ववृत्त्या कदाचन' के अनुसार कभी भूल कर भी अपने मन में इसका विचार न लाना।

तब से अनेक वार मुझे उससे भी अधिक प्रलोभन मिले परन्तु कबड्डी के खेल का दृष्टान्त इतना मन में दृढ़ हो गया कि मैं उचक नहीं पाया और गुरुदेव के चरणों में सदा सदा के लिये आबद्ध हो गया।

वह साकार स्वप्न

जब अ० भा० श्री हिन्दू-प्रार्थना समिति का प्रचारक बना कर मुझे श्री चाचा विज्ञान पूजन जी के साथ उन्नाव भेजा जा रहा था; तो गुरुदेव के वियोग से संतप्त होकर मैं एकान्त-स्थान में रो रहा था; क्योंकि पिताजी के मरने के पश्चात् मुझे इतना निश्छल और वात्सल्य-प्रेम कहीं प्राप्त नहीं हुआ था। अपने आपको विवेकसे बहुत कुछ समझाते हुए भी आँसू बन्द नहीं हो रहे थे; उसी समय गुरुदेव भगवान् उस एकान्त स्थान में न जाने कैसे अकेले ही आ गये और मुझे अपने हृदय में चपका लिया तथा

अपना दाहिना-हाथ मेरे सिर पर इस प्रकार फिराया मानों सहस्र माता पिता का सम्मिलित वात्सल्य प्रेम एक साथ उड़ेल दिया हो। मुझे फुसला कर कहा—तुम को शीघ्र ही बुला लेंगे।

मैं उन्नाव गया और प्रार्थना-प्रचार में जुट गया। उस समय नगर में राष्ट्रीय स्वयं सेवक-संघ की ६ शाखायें चल रही थी। मैंने भी ६ शाखायें स्थापित कीं दिन भर लोगों से मिलता तथा सामूहिक प्रार्थना का महत्त्व समझाते हुए उनसे स्वयं प्रार्थना में सम्मिलित होने का आग्रह करता-शेष समय में गीता-रामायण का स्वाध्याय तथा भगवान् की पूजा आरती करना, मेरा नित्य का काम था। मैं अपनी दिनचर्य्या में इतना व्यस्त था कि दूसरी ओर ध्यान भी नहीं जाता था। छः मास बाद एकदिन रात्रि में सोते समय गुरुदेव भगवान् का मुझे अत्यधिक स्मरण आया। कानपुर से चलते समय उन्होंने जिसप्रकार प्रेम से समझाया था उस की झाँकी साकार हो उठी और मैं सो गया।

प्रातः ३ बजे मैंने स्वप्न में देखा कि गुरुदेव भगवान् पुराने कानपुर के रानी घाट में सत्संग कर रहे हैं, और भगवानदास से कह रहे हैं कि विमलेश को बुला लाओ। बस मेरी निद्रा-भंग हो गई, मैं उसी समय उठ कर शौचादि से निवृत्त हुआ और कानपुर जाने की तैयारी करने लगा। बाबू हरमोहन दयाल जी वकील की धर्म-पत्नी मेरे भोजनादि का प्रबन्ध करती थी उनसे आज्ञा लेने गया; वे ऊँचा सुनती हैं अतएव एक पर्चे में लिख कर ले गया कि आज गुरुदेव भगवान् ने मुझे कानपुर बुलाया है, मुझे मार्गव्यय दे दीजिए। उन्होंने कहा कि मेरे पास कोई सूचना नहीं आई ? मैंने जब स्वप्न की सारी बातें लिख कर उन्हें बताई तो वह बहुत हँसी कहा कि अच्छा जाओ। लेकिन लौट कर मुझे भी बताना कि तुम्हारा स्वप्न सत्य था या झूठ।

मैं उसी समय स्टेशन पहुंचा, गाड़ी तैयार मिली, शीघ्र ही कानपुर पहुंच गया, तथा स्टेशन से सीधे पुराने कानपुर के लिये रिक्सा किया। मुझे वह स्वप्न बिलकुल सत्य और साकार प्रतीत हो रहा था। मैंने रिक्शे वाले से नयागंज होते हुए चलने के लिये कहा। जिस समय नयागंज आया तो चौराहे पर ही गुरुदेव भगवान् के परम-भक्त श्री निश्चल जी का साक्षात्कार हुआ। मैंने उन से पूछा कि क्या गुरुदेव भगवान् आये हैं ? उन्होंने कहा—हाँ आये हैं और पुराने कानपुर में रानीघाट पर सत्संग चल रहा है। मैं भी वहीं जाने के लिये रिक्शा की तलाश में था। मैंने अपने ही रिक्शे पर उनको भी बिठला लिया। मार्ग में जब उनसे अपने स्वप्न की बात बताई और उन्हें यह ज्ञात हुआ कि यह स्वप्न में ही पुराने कानपुर में गुरुदेव भगवान के सत्संग

की चर्चा सुनकर चल आरहा हूँ तो उनके दोनों के नेत्रोंमें आँसू आगये । गुरुदेव भगवान् के प्रेम-प्रभाव की चर्चा करते हुये प्रातः ८ बजे के लगभग हम लोग यथा स्थान पहुंच गये । मुझे देखते ही कई भक्तों ने एक साथ कहा—गुरुदेव भगवान् तो आज तीन बजे से तुम्हारी ही चर्चा कर रहे थे; और तुमको बुलाने के लिये भगवान दास जी को आदेश भी दिया जा चुका है ।

गुरुदेव भगवान् के पास पहुंचा तो उन्होंने भी यही कहा कि आज प्रातः ३ बजे ही तुम्हारा स्मरण आया था, और तुमको बुलाने के लिये भगवान दास जी भेजे जा रहे थे, तुम्हें कैसे सूचना मिली ? मैंने अपने ३ बजे वाले स्वप्न का वर्णन करना प्रारंभ कर दिया जिस प्रकार मैं वहाँ से आया तथा स्टेशन से पुराने कानपुर के लिये रिक्शा किया, सारी घटना कह सुनाई । भक्तवृन्द विभोर हो गया कुछ लोग कहने लगे कि गुरुदेव भगवान् ने बेतार का तार भेज दिया । मुझे अपने जीवन में प्रथम बार यह ज्ञात हुआ कि सन्तों के संकल्प में कितनी बड़ी शक्ति होती है ।

वैद्य जी कौन थे ?

गुरुदेव भगवान् की पहिली बद्रीनाथ-यात्रा में मैं उनके साथ साथ ही रहता था । अल्पवयस्क होने के कारण गुरुदेव मुझे अकेले या आगे पीछे नहीं होने देते थे । मैं भी महाराज जी के साथ साथ विश्राम स्थल पर अन्य-यात्रियों से पहिले ही पहुंच जाता था । वहाँ पहुंच कर गुरुदेव भगवान् का तथा उनके साथ ८–१० और सन्तों का भोजन बनाना, सबके भोजन करने के बाद अति शीघ्र भोजन करके श्रीमद्भागवत (एकादशस्कंध) की कथा सुनाना, फिर गुरुदेव भगवान् द्वारा उसका विशिष्ट-भाव समझना. सामूहिक-प्रार्थना कराना यही मेरा प्रतिदिन का कार्यक्रम था । कभी कभी श्री चरणों के साथ साथ शिलाखण्डों पर बैठकर उनके अमूल्य उपदेश मिल जाते थे जो मार्ग का सारा श्रम दूर करते थे ।

एक दिन जब केदारनाथ की खड़ी चढ़ाई हम लोगों को चढ़ना था गुरुदेव भगवान् बड़े तीव्र-वेग से आगे चलने लगे । साथी लोग बहुत पीछे छूट गये, तो मैंने महाराज जी से आग्रह किया कि आप थोड़ा सा रुक जाइये तो मैं श्री शिवपूजन जी वानप्रस्थी से कुछ पैसे ले लूं, क्योंकि बद्रीनाथ यात्रा नामक पुस्तक में लिखा है कि इस मार्ग में स्थान स्थान पर चाय, दूध पीते हुये चलना चाहिये, क्योंकि मार्ग में बर्फ मिलती है ठंडक विशेष है । गुरुदेव भगवान् ने कड़क कर मुझसे कहा—'तुम्हें ईश्वर पर विश्वास नहीं है ।' अब मैं स्तब्ध हो गया । मैंने सोचा कि गेहूँ के साथ में घुन भी पिसा । महाराज जी ने मुझे किं कर्तव्य-विमूढ देख कर फिर पूछा–सोचते क्या हो ? यदि

भगवान् पर विश्वास न हो तो लौट जाओ, चाय दूध पीते हुये आना। मैं महाराज जी का मुँहलगा बन गया था, मैंने बड़ी धृष्टता से कहा—गुरुदेव ! यदि कानपुर लखनऊ आदि किसी नगर में आप यह बात कहते तो मुझे ईश्वर पर शीघ्र विश्वास हो जाता, क्योंकि आपके हजारों शिष्यों में से कोई न कोई मिल ही जाता। परन्तु यहाँ पहाड़ों पर भगवान् में विश्वास कैसे हो, यहाँ तो आपके किसी शिष्य के मिलने की सम्भावना है नहीं। गुरुदेव भगवान् ने कुछ रूखे मन से कहा—तो फिर लौट जाओ और चाल बढ़ा दी।

मुझे फिर भी अपने पीछे-पीछे आते देखकर महाराज जी फिर पीछे मुड़े, और पूछा—लौटे नहीं ? मैंने कहा—महाराज ! अब आज इस यात्रा में मैं भी भगवान् पर विश्वास करूँगा तथा देखूँगा वे हम लोगों के योगक्षेम का भार कैसे लेंगे। महाराज जी ने पूछा—जेब में कुछ पैसे खनक रहे हैं, कितने हैं? मैंने कहा—६ आने। तो मुसकाते हुए बोले—देखो विमलेश ! अभी तुमको इन पैसों का भरोसा है। जबतक रामभरोसे नहीं बन जाओगे, तब तक भगवान् की कृपा के अधिकारी नहीं बन सकते। फिर क्या था, अगली ही दूकान पर दूध लेकर महाराज जी को पिलाया, प्रसाद के रूप में स्वयं भी पिया। अब वास्तव में मन बड़ा हल्का हो गया था। मार्ग में कहीं दूध, चाय के लिए रुकना है-यह सारी आशायें समाप्त थीं, अब तो केवल गुरुदेव भगवान् के उपदेश सुनते हुए चलना है, यही धारणा पुष्ट हो गयी थी। गुरुदेव भगवान् ने उस दिन यही बतलाया कि सुख-दुःख का अनुभव केवल मन को होता है, अतएव अपने मन को सत्संग में लगा दो। उस दिन का उपदेश इतना सुन्दर लग रहा था कि मैं अमृत कणों की भाँति पीता जा रहा था, मन को इधर उधर जाने का अवकाश न था।

गुरुदेव भगवान् एक स्थान पर खड़े हो गए। कहा—देखो मंदाकिनी के उस पार जो पर्वत-माला है, उसमें उस काले-काले से पर्वत पर से एक बहता हुआ झरना पतली श्वेत रेखा के रूप में दीख रहा है उस पर कविता सुनाओ। मैं अपने जेब से कागज कलम निकालने लगा ! गुरुदेव भगवान् ने कहा—इसकी कोई आवश्यकता नहीं, आज से तुम आशुकवि बन गए। यह कहते हुए मेरे शिर पर दाहिना हाथ रख दिया। अब क्या था उस पर्वत पर, और उससे निकलने वाले उस झरने पर, वह काव्य-धारा बही जो जीवन भर भूल नहीं सकेगी। समस्त यात्रियों के चलने वाले संकल्प शान्त हो गये, सभी उस अजस्र काव्य धारा में बहने लगे।

कई बार बर्फ की चट्टाने मिलीं, उनको पार करते करते हम लोग सम-तल स्थान पर आ गये। लोगों ने बतलाया, यहाँ से केदारनाथ जी केवल १॥ मील और

है रास्ता भी समतल है। मुझे बड़ा आश्चर्य लग रहा था कि ७ मील की खड़ी चढ़ाई कैसे पार हो गई अब केवल एक ही चट्टी मार्ग में और पड़ेगी फिर वहां से केदारनाथ जी थोड़ी ही दूर रह जायेंगे। गुरुदेव ने सत्संग क्रम बन्द ही किया था, कि सामने चट्टी पर कुछ लोगों को दूध, चाय पीते देख कर मेरे मनीराम जी भी ठंडक के कारण मचल पड़े। इतने में एक अधेड़ अवस्था का सम्भ्रान्त-पुरुष, काली-टोपी लगाये हुए, महाराजजी के चरणों पर लोट गया और बोला—महाराज! मैं तीन बजे से ही आपके दर्शनों के लिये छट पटा रहा था, आपके गौरीकुंड तक आ जाने की सूचना प्राप्त करके मैंने यही प्रतिज्ञा कर ली थी कि आपके साथ ही केदारनाथ जी का दर्शन करूंगा। उसने महाराज जी के लिये सुन्दर आसन बिछाया। मैं भी चटाई पर बैठ गया। उसने दूकान से दूध लिया और गुरुदेव भगवान् को गिलास में भर कर ज्यों ही मुझे गिलास दिया कि त्यों ही मुझे अपने उन शब्दोंका स्मरण हो आया कि "महाराज यदि कानपुर, लखनऊ होता तो भगवान् पर विश्वास हो जाता यहां भगवान् में विश्वास कैसे हो ? यहां आपके कौन शिष्य मिलेंगे ? अपनी मूर्खता पर मुझे इतना दुःख हुआ कि गिलास रखकर मैं रोने लगा। महाराज जी मुसका रहे थे, उस व्यक्ति ने अपने अंगोछे से मेरे आंसू पोंछ कर पूछा—ब्रह्मचारी ! क्यों रोते हो। बहुत देर रो चुकने पर जब कुछ हवास हुई तो मैंने अपने मूर्खतापूर्ण शब्द उनके समक्ष रक्खे तो उन्होंने यह दोहा मुझे बतलाया।

गाँठी बन्धन ना करें, माँगन में सकुचायँ ।।
उनके पीछे हरि फिरें, कहुं भूखे ना रहि जायँ ।।

उन्होंने कहा बेटा—! सच्चे सन्त केवल भगवान् में ही अपने मन को लगाते हैं। उन्हें अपने भोजनादि की कोई चिन्ता नहीं रहती ; यह कह कर उन्होंने मुझे २० रुपये और एक झोला दिया। झोला में च्यवनप्राश, मिश्री, काजू, अखरोट किशमिश आदि पदार्थ प्रचुर-मात्रा में थे। उनका पता मैंने अपनी डायरी में लिख लिया। मैंने कहा—चला जाय। वैद्यजी ने कहा-अवश्य। आगे गुरुदेव भगवान् थे, उनके पीछे मैं और सबसे पीछे वैद्य जी। दो चार ही कदम चल कर मैंने पीछे मुड़ कर देखा तो वैद्य जी नहीं थे। अब मुझे बड़ी उत्सुकता बढ़ी। महाराज जी से पूछा कि आप इनको जानते थे। उत्तर मिला-मुझे इन बनवारी लाल वैद्य का बिलकुल स्मरण नहीं आता। फिर मैं उस चट्टी पर लौट गया वे वहां भी न थे। केदारनाथ मन्दिर पर मैं ३ घण्टे केवल उन्हीं की तलाश में डटा रहा, कुछ साधकों को लेकर प्रति पंडाके यहां पता लगाया परन्तु वह न मिले। शाहजहांपुर का जो पता उन्होंने दिया था मैंने वहां भी ढूंढा पर बनवारी लाल जी न मिले।

आज भी कभी कभी विनोद में गुरुदेव भगवान् जी हम से पूछ लिया करते हैं विमलेश, केदारनाथ यात्रा में मिलने वाले वैद्य जी कौन थे ? ●

समाज के कर्णधार कर्मयोगी संन्यासी

—श्री पुण्डरीकाक्षाचार्य सांख्ययोगाचार्य वेदान्त-शास्त्री—

श्रीजगदाचार्य अनन्तश्रीविभूषित स्वामी नारदानन्द जी सरस्वती महाराज सचमुच धर्म, देश, जाति और समाज के कर्णधार के रूप में एक महान् कर्म-योगी सन्यासी हैं।

आपकी जीवनचर्या से ही नहीं अपितु उपदेशामृत और विविध आश्रमचर्या से आज समाज के अन्दर जिस प्रगति से ज्ञान, भक्ति एवं कर्म प्रचार की त्रिवेणी धारा का प्रवाह अबाध गति से बह रहा है, इस से आशा तो यही है कि ऐसे भयंकर समय में भी श्री स्वामी जी के व्यक्तित्व में ही यथार्थतः भगवान् की कला का ही आविर्भाव है। चूंकि भगवान् ने स्वयं ही अपने श्री मुख से—"यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत। अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्याहम्" से इस बात को स्पष्ट कर दिया है।

अवतार का प्रयोजन ही साधु परित्राण दुष्कृतविनाश तथा धर्म की स्थापना है। इसके लिये सशक्त आत्म-बल की आवश्यकता होती है। यह जितनी अन्तःकरण की शुद्धि की अपेक्षा रखता है उतनी ही इस के लिए त्याग तपस्या एवं लोक सेवा की भावना भी अपेक्षित है—स्वामी जी में इन सब का ही समावेश है।

अतः मेरी हार्दिक कामना है कि श्री स्वामीजी महाराज का यह जीवन देश, जाति एवं धर्म के अभ्युत्थान के लिए "जीवेम शरदः शतम्" के वैदिक सिद्धान्त के अनुरूप दीर्घायु होवे।

—:०:—

श्री स्वामी नारदानन्द जी महाराज : महान् संत

—सिद्धपीठ दूधेश्वरनाथ के महन्त श्री गौरीगिरि जी महाराज—

हमें पिलखुवा के भक्त रामशरणदास से यह मालूम हुआ कि श्रीनैमिषारण्य

के महान् संत पूज्यपाद श्री स्वामी नारदानन्द सरस्वती जी महाराज को अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट किया जा रहा है—सो यह जान कर हमें बडा हर्ष हुआ। यह एक बहुत ही शुभ कार्य है। हम आज से नहीं अपितु बहुत दिनों से ही पूज्य श्री स्वामीनारदानन्द सरस्वती जी महाराज को भली भाँति जानते हैं। उनका हमारा बड़ा प्रेम है और बड़ा स्नेह है। स्वामी नारदानन्द सरस्वतीजी महाराज जब भी कभी गाज़ियाबाद में पधारते हैं तो वह हमारे स्थान श्रीदूधेश्वरनाथ महादेव मन्दिर पर ही आकर ठहरा करते हैं और यदि किसी कारण वश किसी दूसरी जगह ठहरना होता है तो फिर भी वह यहाँ पर आकर भगवान् श्रीदूधेश्वरनाथ महादेव का दर्शन करने और हम से मिलने अवश्य पधारा करते हैं।

पूज्य श्री स्वामी नारदानन्द सरस्वती जी महाराज की यह एक विशेषता है कि वह जहाँ भी चले जाते हैं, झट से एक दम जंगल में मङ्गल होने लगता है और आपके दर्शनों के लिये स्त्री पुरुष. बच्चे वूढ़े, गरीब अमीर सभी का तांता लग जाता है, और सभी में आपके आगमन के समाचार से प्रसन्नता की लहर दौड़ जाती है और कथा कीर्तन, सत्संग की धूम मच जाती है और धार्मिक जाग्रति फैल जाती है।

पूज्य स्वामी जी महाराज ने अपने प्रवचनों द्वारा जनता को सन्मार्ग पर लगाया है और यही कारण है कि आज आप के लाखों शिष्य भारत के कोने २ में फैले हुये हैं और बड़े २ दुराचारी अनाचारी दुर्व्यसनी भी आपके सत्संग के कारण बड़े सदाचारी ईश्वरभक्त बन गये हैं। जो कभी शराब पीते थे और अण्डे मुर्गे मांस मछली आदि सब पर हाथ साफ करते थे, वे भी आपकी कृपा से आज इन चीज़ों को खाना पीना तो दूर रहा, इनको हाथ लगाने में भी पाप मानने लगे हैं और इनसे बड़ी घृणा करते हैं। यह है आपके सत्संग का अद्भुत प्रभाव जो सब को विदित है।

गाजियाबाद में आपके अनेकों शिष्य हैं और प्रतिवर्ष आपके भक्तों द्वारा यहाँ पर बड़े २ यज्ञ हुआ करते हैं और बड़े २ जगद्गुरु शंकराचार्य जी महाराज, शास्त्रार्थमहारथी पं० श्री माधवाचार्य शास्त्री जी आदि बड़े २ विद्वान् पधारा करते हैं और खूब सनातनधर्म का और प्रभु-भक्ति का प्रचार हुआ करता है कि जो बस देखने ही योग्य होता है। आजकल ऐसे प्रभावशाली और धर्मप्रचारक महात्मा कहां देखने में आते हैं जैसे कि आप हैं ? आप अपनी शान के एक ही महात्मा हैं आप की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है।

बोलो भगवान् श्री दूधेश्वरनाथ महादेव की जय

जगदाचार्य अभिनन्दनीय हैं

—श्री सिद्धनाथ मिश्र साहित्यरत्न—

संसार जानता है कि विश्व में भारतवर्ष एक धर्म प्रधान देश है। भारतवर्ष के धर्मप्रधान देश होने के नाते यहां साधकों, सन्तों, मुनियों एवं गुरुजनों की विशेष प्रतिष्ठा रही है। परन्तु इसका मतलव यह बिल्कुल नहीं है कि भारत की धर्मप्राण जनता अज्ञानता और अन्धविश्वास से प्रेरित होकर अपने आराध्य की उपासना करती है, उन्हें पूजती है। वस्तुतः यहां की जनता के सनातन संस्कार बड़े ही तेज हैं। वैदिक देन बड़ी ही प्रबल है और वही भगवान् के प्रति श्रद्धा, भक्ति व विनय-भावना ज्ञापित करने की प्रेरणा उन्हें क्षण-क्षण देती ही रहती है।

अध्यात्म-विद्यापीठ नैमिषारण्य वैदिक संस्कार का एक बहुत पुराना संस्थान होने के साथ साथ ऐतिहासिक स्थल भी है। अपनी अलौकिक प्रतिभा दिव्य शक्ति और साधना के बल पर श्रीगुरुदेव भगवान् ने न केवल अपने अनुयायियों के हृदय और मस्तिष्क को ही बदला है परन्तु आपने उन सभी को प्रभावित किया है जो अपने धर्म और कर्म से पाश्चात्य सभ्यता के गुलाम बनते जा रहे थे। इसका कारण स्पष्ट है कि अध्यात्म-विद्यापीठ में प्रायः दैनिक आयोजित नैतिक, आध्यात्मिक क्रान्ति की जो सृष्टि हुई है और हो रही है उससे ही जनता जनार्दन को अधर्म, अनाचार, दुराचार, भ्रष्टाचार और अनास्था से विमुख होने की सहज प्रेरणा मिलती है। वहां की हर साधना और वहां का हर कार्य इस युग को एक अनूठी देन है।

यों तो सन्तों, मनीषियों और गुरुजनों का हृदय 'नवनीत' के समान होता ही है। यहां पर लोगों को सरल चित्त होकर नित्यप्रति वेद, शास्त्र और पुराणों की चर्चाएँ सुनने को मिलती हैं वहां भारतीय परम्पराओं के अनुसार—

सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्॥

सभी सुखी हों, सभी निरोग हों, सबका कल्याण हो और कोई भी दु.खी न रहे। आज यही आशीर्वाद श्री गुरुदेव भगवान् का सभी जनता को है।

लोक-मंगल के कार्यों में संलग्न श्री गुरुदेव की महिमा बड़ी प्रबल है। आपने मानव जाति के कल्याण के लिए अपनी जो साधना की है उसका यथेष्ट मूल्य आपके अनुयायी सहज ही पा रहे हैं।

श्री गोस्वामी तुलसीदास जैसे महान् सन्तों ने समय २ पर अपनी जो पंक्तियाँ लिखीं थीं वस्तुतः आज उनका मूल्यांकन और सहज दर्शन हमें श्री गुरुदेव भगवान् के साक्षात् होने पर होता है। श्री गोस्वामीजी ने एक जगह लिखा है—

विधि हरिहर कवि कोविद बानी,
कहत साधु महिमा सकुचानी।
सो मोसन कहि जात न कैसे,
साक बनिक मनि गुन-गन जैसे॥

सन्त और गुरुजन लोक-मँगल और लोक कल्याण की भावनाओं से स्वभावतः किस तरह प्रभावित होकर मानव का कल्याण करते हैं श्री गुरुदेव भगवान् अपने आध्यात्मिक, धार्मिक प्रवचनों, उपदेशों के जरिये इस भौतिकवादी अवस्था वाले युग में मानव समाज को युगधर्म का बोध दे रहे हैं।

समस्त संसार का कल्याण हो, मनुष्य सर्वत्र सुखी हो। यही गुरुदेव की कामना है। आपका सतत प्रयास चल रहा है कि मानव-जाति में सुन्दर चरित्र, नैतिकता, सेवाभावना और निष्ठा पैदा हो। आज बहुत बड़ी आवश्यकता है कि जर्जरित विश्व को वास्तविक प्रेम का सन्देश मिले और सच्चे प्रेम बिना भगवान् की कृपा दुर्लभ है इसीलिये अध्यात्म-विद्यापीठ-संस्थान ने जो बीड़ा उठाया है गुरुदेव की महिमा और उनके सतत कार्यरत जीवन से हम सबको अटूट सफलता मिलेगी।

आप विश्वास करे या न करें परन्तु गुरुदेव ने जो वातावरण बनाया है वह शान्ति और समता के बिल्कुल अनुकूल है। आपकी मान्यता है कि धर्म के लिए पूँजी अनर्थ की जड़ है। पूँजी से व्यक्ति की नास्तिकता को प्रश्रय मिलता है। आज पूँजी वाले यदि धर्म के मार्ग का हृदय से आश्रय ले लें तो पूँजी का महत्व गौण हो सकता है। और जो जन-जन में हाय-हाय मच रही है वह किसी हद तक सीमित हो सकती है। लालसा मिट तो नहीं सकती परन्तु सिमिट सकती है। पूँजी जीवन नहीं है। जीने का मात्र एक साधन है। विश्व का कोई भी धर्म पूँजी और उसके अधिकार के दुरुपयोग की अनुमति नहीं देता। पूँजी और उसके समुचित उपयोग तथा उसकी आकांक्षा को अध्यात्म के लिए लगाना अदि आज कोई देखना चाहता है तो गुरुदेव के अध्यात्मिक विद्यापीठ का नाम मैं बड़े ही गर्व के साथ लेता हूँ, वहां साकार रूप में पूँजी और अध्यात्मिकता की तुलना में अध्यात्म पक्ष बलवान् देखा जा सकता है।

धर्म और विद्या बड़े ही भाग्य से मिलती हैं। महाभारत में एक जगह धर्म के लक्षणों को इस प्रकार से लिखा गया है—

अहिंसा, सत्यमस्त्येयं, त्यागोऽमैथुनमार्जवम् ।
पञ्चष्वेतेषु धर्मेषु, सर्वे धर्माः प्रतिष्ठिताः ॥

आज अध्यात्म-विद्यापीठ महाभारत के इन्हीं आदेशों पर चल रहा है सबको चलने की शिक्षा दे रहा है। श्री गुरुदेव भगवान् द्वारा जिन आदेशों का प्रतिपादन आज हम वहां देखते हैं—पढ़ते हैं, उससे लगता है कि अभी भारत की धर्मों में निः-सन्देह निष्ठा है, लोगों की श्रद्धा है और सहज ही उन्हें अपना सकते हैं। यों तो ससार के सभी धर्म अहिंसा प्रधान है, हिंसा की अनुमति का सभी धर्मों में निषेध है। जिन व्यक्तियों का आचरण धर्मानुकल नहीं होता उनका तो हिंसकीवृत्ति वाला होना स्वाभाविक है ही।

आज आवश्यकता है—आध्यात्मिकता और धर्मों को पूर्वजों की पोथियों और मन्दिरों की दीवारों के भीतर ही बन्द करके न रखा जाए। तदनुसार कुछ आचरण भी किया जाए जिस से मानव-जीवन सार्थक बने। आज गुरुदेव यही तो चाहते हैं, आप सतत इसी चेष्टा में ही तो लगे हैं। आपका कहना है कि धर्म और विश्वास के साथ-साथ जब व्यक्ति में समन्वय की भावना पैदा हो जायेगी तभी भौतिकता और आध्यात्मिकता से अनुशासित समाज बनेगा और समुचित जन-कल्याण होगा।

वर्तमान युग में श्री जगदाचार्य महाराज को महान् दैवीशक्ति का रूप मानता हूं, उनकी बार बार वन्दना करता हूँ। वे निःसन्देह अभिनन्दनीय और प्रातः स्मरणीय योगिराज हैं।

—०:—

शब्द सुमनाञ्जलि

—आशुकवि श्री पं० विमलेश शास्त्री 'व्यास'

वैदिक पथ के परमाराधक ! नैमिष वन के परम तपस्वी
शाश्वत शान्ति सुधा के दायक ! मनन शान्ति ! मुनिश्रेष्ठ मनस्वी ॥
कोटि-कोटि हृदयों के वासी ! कलि-कलमष को भगा रहे हो ।
चिर प्रसुप्त भारत भक्तों को तुम ही गुरुवर ! जगा रहे हो ॥१॥

भारत भक्त समाज बनाकर, भक्तों को संगठित किया है।
विघटन-विघ्न दूर करने को, एक प्रार्थना मंच दिया है॥
वर्णाश्रम की परम्परा को, तुमसे जीवन-दान मिला है।
वानप्रस्थ-मंडल को लखकर, कलि का कलुषित हृदय हिला है॥२॥

शतशः ऋषि आश्रम भारत में, धर्मध्वजा को फहराते हैं।
धार्मिक-विद्यालय नगरों के, शिक्षा में सुधार लाते हैं॥
नित्य नये यज्ञों के द्वारा, सतयुग का सा दृश्य दिखाते।
हे युगपुरुष! जहां तुम जाते, उसी स्थान को तीर्थ बनाते॥३॥

विविध मतों को निज विवेक से एक-मंच पर लाने वाले।
आप समन्वय-वाद नीति से, प्रेम-सुधा बरसाने वाले॥
नैमिष-वन की तपस्थली में, कितने कुंज बना डाले हैं।
कितनी मंजु गुफायें रचकर, बहु संख्यक ऋषि मुनि पाले हैं॥४॥

ब्रह्मचर्य-आश्रम साँचों में, कपिल कणाद ढालते रहते।
निज संस्कृति के शुष्क-वृक्ष में, अविरल-सुधा डालते रहते॥
सरल-सूक्तिमय शब्दों द्वारा, ज्ञान दान में दक्ष विशारद।
मृदु वाणी रूपी वीणा ले, बने आप नैमिष के नारद॥५॥

प्रातः तीन बजे ही उठकर, साधक-वृन्द जगा देते हैं।
कर्म-ज्ञान या भक्ति योग के, साधन मध्य लगा देते हैं॥
जहाँ जहाँ जाते जीवन में, नूतन-ज्योति जगा देते हैं।
अपने साधन-मय प्रवचन से, भव-भय भ्रान्ति भगा देते हैं॥६॥

उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापन का यह पावन कार्य धन्य है।
अभिनन्दन का ग्रन्थ-समर्पक, प्राज्ञ माधवाचार्य धन्य है॥
गुरुवर श्री नारदानन्द जी सरस्वती पद-वन्दन करता।
शब्द प्रसूनों की माला ले, कोटि कोटि अभिनन्दन करता॥७॥

—:०:—

सांस्कृतिक परम्पराओं के जागरुक प्रहरी

—रामचन्द्र पाण्डेय एम० ए०

नैमिष-व्यास-पीठाधीश्वर जगदाचार्य श्री स्वामी नारदानन्द सरस्वतीजी महाराज के बहुमुखी व्यक्तित्व की गहनतम दृष्टि की पृष्ठभूमि में मुख्यतः उन धाराओं के अद्भुत समन्वय का प्रवाह विद्यमान है जिनसे जगत् सामान्यतया दो विरोधी तत्वों के नाम से परिचित है, एक ओर जहाँ आप शाश्वत सत्य के पुजारी हैं दूसरी ओर आपका सनातन सामाजिक परम्पराओं से अनन्य प्रेम है। इनमें कौन प्रमुख और कौन गौण यह सामान्यतया स्पष्ट नहीं कहा जा सकता। वस्तुतः आपने उन परम्पराओं की पृष्ठ भूमि में निहित सत्त्य के दर्शन किये हैं। जिन्हें आपके सत्सान्निध्य का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, उन्हें आपकी निष्ठा के साथ आपके परम्पराओं के प्रति प्रेम से अवश्य परिचित होना चाहिये

बात गत होलिकोत्सव के पूर्व नैमिष क्षेत्र की होने वाली परिक्रमा के अवसर की है। परिक्रमा करने वाले भक्तों की भीड़ ने मेले का स्वरूप धारण कर लिया था। परिक्रमा का मार्ग मिश्रित तीर्थ स्थित ऋषि-आश्रम से होकर जाता है। वायु के झोंकों से धूल उड़ रही थी और आप आश्रम के खुले मैदान में व्यास गद्दी पर विराजमान थे। मैंने कहा—गुरुदेव ! धूल बहुत उड़ रही है, आप कुटियाके अन्दर चलें। गुरुदेव ने हमारे भाव को समझ कर तुरन्त उत्तर दिया—तुम कागज निकालो लिखो, में बोलता हूँ। फिर क्या था आप बोलने लगे और मैं लिखने लगा। संगठन के सूत्र, तीर्थ महत्व और परिक्रमा से लाभ आदि कई विषयों की विवेचना आपने बड़े ही सुन्दर ढंग से की, जैसे ही आपने बोलना बन्द किया, मैंने भी लेखनी रोकी और आँख उठा कर देखा तो सामने एक विशाल जनसमुदाय शान्त चित्त होकर बैठा आपके दिव्य उपदेशामृत का पान कर रहा था।

फिर हम लोग कुटिया के अन्दर गये । वहाँ आपने बतलाया कि यह केवल मेला ही नहीं है। कोई व्यक्ति-विशेष अथवा समिति इसे आयोजित नहीं करती कोई प्रवन्ध करे या न करे, यहां तो प्रतिवर्ष परिक्रमा होगी ही, भक्त आयेंगे और मेला लगेगा ही। इसे कोई रोक नहीं सकता। यह हमारे ऋषियों के दिये संगठन के सूत्र हैं, यह वह स्थान है जहाँ महर्षि दधीचि ने जगत् हित में अपनी हड्डियाँ तक दे दी थीं। कौन करेगा इससे बड़ा बलिदान ? प्रतिवर्ष यहाँ एकत्रित होने, प्ररिक्रमा करने, महर्षि दधीच कुण्ड में स्नान व मार्जन करने की जो परम्परायें ऋषियों ने डाली हैं,

वे कोई व्यर्थ के मेले मात्र नहीं, इनके पीछे त्याग, बलिदान और सत्य के दृढ़ स्तम्भ हैं जिन्हें मिटाया नहीं जा सकता और जिन्हें भुलाना हमारी कृतघ्नता होगी यह मेला नहीं, हिन्दू जाति का स्थानीय वार्षिक सम्मेलन है ।

इसकी उपयोगिता पर प्रकाश डालते हुये आपने बताया कि जिस प्रकार भवन निर्माण के लिये ईंट, बालू और सीमेण्ट की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार समाज निर्माण में भी तीन प्रकार के मनुष्यों की आवश्यकता पड़ती है। मनुष्यों में प्रथम, द्वितीय और तृतीय तीन श्रेणियां होती हैं। इस प्रकार की भीड़ों में तृतीय श्रेणी के लोग अधिक होते हैं और द्वितीय के कम। द्वितीय श्रेणी के लोग बालू की भांति हैं। वे आते हैं और रुकते नहीं, खिसक जाते हैं किंतु प्रथम श्रेणी के लोगों के आ जाने से वे भी रुक जाते हैं। प्रथम श्रेणी के लोग सीमेण्ट का काम करते हैं। इन तीनों के मिलने से सुन्दर, सुखद और सुदृढ़ समाज की रचना की जा सकती है। इस मेले में हमें समाज रचना की पूरी सामग्री मिलती है। यह है इन परम्पराओं के पीछे छिपा हुआ रहस्य। जो इसे नहीं जानता वह समाज को क्या पहचानेगा और कैसे करेगा समाज रचना।

इसी प्रकार का दृष्टिकोण आप सभी सनातन परम्पराओं के पीछे रखते हैं। प्रति वर्ष नूतन वर्ष के प्रथम दिवस पर धर्म ध्वजा-रोहण के उत्सव को उत्साह के साथ मनाते हैं। आपका कहना है कि नये संवत्सर के प्रथम दिवस पर घर-घर में ध्वजा-रोहण परमावश्यक है। यह दिन हिन्दू जाति और राष्ट्र के लिये बड़े महत्व का है। इन दिनों वृक्षों में पुराने पत्ते गिरकर नये आ जाते हैं। तरु पल्लवों से सजधज कर प्रकृति भी आज नये वर्ष का अभिनन्दन करती है ध्वजारोपण के उत्सव के माध्यम से भी हमारा सम्पूर्ण राष्ट्र एकता के सूत्र में बंधा है। यह ध्वजा हिन्दू जाति की आन, बान और शान की प्रतीक है। राष्ट्रीय ध्वजा यदि माननीय है तो यह और भी पूजनीय है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आपको इन सामाजिक परम्पराओं से बहुत ही प्रेम है क्योंकि आपने इनके पीछे वैज्ञानिक सत्य को खोज निकाला है। आज का वैज्ञानिक युग यदि इसका परिणाम देखना चाहता है तो आपके जीवन को देखे। आज आपके संकेत पर लाखों व्यक्ति किसी भी कार्य को करने में जुट जाते हैं। सहस्रों व्यक्ति तो नित्य आपकी पूजा ही करते हैं। जगदाचार्य का अभिषेक तो विद्वानों ने बाद में किया जन-जन के भगवान् तो आप पहले से ही हैं। व्यक्तित्व सफलता की यह पराकाष्ठा सत्य की पूजा का सहज परिमाण है।

आपके इस बहुमुखी व्यक्तित्व के साथ जब हम सत्य के प्रयोगों पर आधारित रचनात्मक पक्ष पर विचार करते हैं तो सर्वप्रथम हमारा ध्यान आपके वर्णाश्रम-व्यवस्था विकास कार्यों की ओर जाता है। अध्यात्म-विद्यापीठ नैमिषारण्य में चारों ओर आश्रमों की आदर्श व्यवस्था को देखते ही हमारे सामने हमारे गौरव-पूर्ण अतीत की झांकी प्रस्तुत हो जाती है। आर्त, अर्थार्थी, जिज्ञासु और मुमुक्षु चारों प्रकार के भक्त आपकी छत्र-छाया में साधना व समाज-सेवा में निरत हैं। आत्म-शुद्धि के इन सौपानों के साथ आपकी प्रेरणा, कृपा आशीर्वाद प्राप्त कर जीवन को सफल बना रहे हैं। आपका पुनीत उद्घोष है :

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्॥

× × ×

श्री गुरुदेव

—श्री अंगिरा पूजन जी

रामायण गीता के प्रेमी, दृढ़ नैतिक बल के सूत्रदार।
हे त्यागमूर्ति, हे ज्ञानपञ्ज, तुम सद्गुण के ही शुभागार॥

हे भारत माँ के सपूत, तुम, हिते रतः हे सर्व भूत।
नैमिष तीरथ के राजदूत, वेदान्त प्रचारक तपः पूत॥

कुछ दया करो करुणावतार, हो नई चेतना का प्रचार।
फैले हम में शुभ सदाचार, श्रद्धा अनुशासन सद्विचार॥

मिट जाय दम्भ छल अहंकार, दुर्भाव स्वार्थ कुत्सित विचार।
भारत का भक्त समाज बढ़े, सेवा का निर्मल पाठ पढ़े॥

यंल्लब्ध्वा नैमिषस्तीर्थो मूर्तिमानिव भासते

—श्री पं॰ ओंहरिमिश्रः शास्त्री

तरल-तरङ्गिन्याः पतितपावन्या भगवत्या धेनुमत्या उत्तारे कूले धारादविदूर एवावलोक्यमानः सघन-श्यामल-पर्कटीगर्भो वटः, धमद्धमद्दोधूयमानकाषायध्वजकरेण विषयावतप्तजनमानसेभ्य ≍ पीयूषमिव दिदित्सुराकारयति शान्तिदानाय लोकलोकम् । विविधशिंशिपा-धात्री-पेरुकखर्जूर-पुस्त-श्रीफलाश्वत्थ-पलाश-पलाशितलवेदिकोपशोभिततपो-वनादागम्यमानो मार्गो बलादाकर्षयतीव चेतांसि साधकानाम् । अनतिदूरे शौनक-कुटी एव संस्थितोऽसौ वटतरुः पुरातनभारतीयसंस्कृतेस्समुपासकानां कृते कर्म-कौशलप्रेरणास्थल-मतिविस्तीर्णशाखाबाहुभिराश्लिलिक्षुरिव प्रतीक्षते ।

इहैव अस्थिरत्वदक्षशापमप्यपहाय स्वनामधन्या अपरदेवर्षय इव स्वान्तेवासिनाङ्कृते अनन्तश्रीनारदानन्द-जगदाचार्यपादाः चतुर्वर्ण-चतुराश्रमभाजां समभ्येत्य समाजसञ्चालनं शिक्षयन्ति । नेदीयस्येवास्थिते ब्रह्मचर्याश्रमे दरी-दृश्यमानपीताम्बर-पटु-वटु-कुलं दर्शं दर्शं मोमुद्यते चेतोऽवलोचकलोकस्य । यत्र चानेक-प्रसृतशाखबाहु-वितानित-पर्कटीवृक्ष-वेदिकास्वास्थिताः, स्तम्भितशिखाकलापाः सकलविषयोपभोग-निवृत्त्यर्थमुपपादितेन त्रिसत्येनेव ललाटपट्टकेषु भस्मत्रिपुण्ड्रकेणालङ्कृताः, अभिनव-विस-सूत्रनिर्मितैरिव वामांसावलिम्बत-यज्ञसूत्रैरुद्भास्यमानाः, वेद-भवने सस्वरवेदोद्घोषका, आचार्योपासनतत्पराः स्वग्रन्थाध्ययनेनाकुण्ठतधिषणा विलसन्ति । क्वचिच्छ्रीखण्ड-तरु-तल-वेदिकोपस्थितकुशासनाश्रिता अपि सुशानाश्रिताः, गृहीताषाढदण्ड-सव्येतरपाणयः, सन्ध्यामुपासन्ते वर्णिलिङ्गिनः । केचनानवरताज्याहुतिप्रीताखण्डचित्रभानौ मखशालायां स्वाहाकारोद्घोषेण रोदसीं परिपूरयन्तो बलाद् एव श्रोतृणाम् मनांस्याकर्षयन्त आहिताग्नयः, अपरे च सहकार-शाखि-शाखावलम्बितपिञ्जरस्थशुकसमूहाववोधनबद्धमनस्काः, इतरे दृढ़बीज-पनस-रसालालवालपूरणपरा अन्ये च 'स्थितः स्थितामुच्चलितः प्रयातामनुकुर्वाणाः कामधेन्वनुकारिणी-होमधेनु–समाराधन-सन्नद्धा; परे च निपतच्छेफालिका-चन्द्रिका-पद्मचारिणी-कोविदार–करबीर-बन्धुजीव-वकुल-कुल कुसुम-चयनतत्पराः वटवोऽपि पुष्पितकामिनीसुमनोभिलाषिणः समुल्लसन्ति ।

पवित्र पयःपूर-पूरित-सरस्वतीसरोवगाहगाहमानानां तेषामाननमण्डलानामाभौतिकचाकचिक्यचकितावलोचकलोचननिचयं प्रसह्य संगृह्य सद्भावमुत्पादयती मर्यादापुरुषोत्तमपरस्परराघवधुरीणानाम् रामचन्द्राणां राज्यशासनकाले त्रेतायुगे वल्मीकजन्मनआश्रमस्थकुशलवयोः स्मृतिन्नूतनयंति । सर्वं एषः प्रतापस्त्रभवतां गुरुदेवभगवत्पदवाच्यानां प्रातःस्मरणीयानां यतिकुलचक्र-चूडामणीनाम् यमनियमासन-प्राणायामप्रत्याहारधारणा-ध्यान-समाध्यष्टाङ्गयोगनिष्णातानाम् नैमिषव्यासपीठाधीश्वराणमेव ।

येषामनुकम्पयैव ब्रह्मचर्याश्रमोऽयम् सर्वदानन्द-विवेकानन्दप्रभृति-बालब्रह्मचारिणः अजय-प्रतापसिंहप्रभृतिशासनपटूराजन्यकुमारान् समाजोद्धरणायादर्शरूपेणाददात्। येषाञ्च मनोमुग्धकारिणी दृष्टिमूर्त्तेनेव सौभाग्येन अनेकशास्त्रशास्त्रार्थाचार्याणामुपकुलपतीनामाद्याचरणपाण्डेयानां तथा नामानुवर्तिनां पाण्डेयोपाह्वसार्थगुणानां परमहंसाचार्याणां सम्मेलनमुपाददत्। अथ च परश्शताश्रममार्गदर्शकस्याध्यात्मविद्या विद्यानामिति सक्रियस्य क्रोशार्धपरिमितस्याध्यात्मविद्यापीठस्य संस्थापकाध्यक्ष-संचालककुलपति-महाभागानामभिनन्दामहे।

—:०:—

अभिनन्दन है ! अभिनन्दन है !! पद वन्दन है !!!

—श्री राम मित्र 'राम'—

(१)

जय हे जगदाचाय जगत् जन जीवन स्वामी ।
जगदीश्वर जगवन्द्य जनार्दन जगत् नमामी ॥
जगदाधार जगद्व्यापक जगदीश जगत्मय ।
जगहित जनहित जन्म जन्य जय जय ज्योतिर्मय ॥

(२)

धन्य धन्य धर्मावतार —धर्मध्वज — धारी ।
धर्मेश्वर धृत - धैर्य्य धारणा ध्येय तुम्हारी ॥
धरा धाम पर धाय धरयो तन सन्त सुखारी ।
शक्ति शान्त स्वरूप सुखद जिमि इन्दु तमारी ॥

(३)

सत्येश्वर सुखधाम सुधामय संतत संगति ।
शुद्ध सनातन सत्य सर्वमय सुखदा सद्गति ॥
सिद्ध संन्तगण सेवित सुरहित सुखाकार हे ।
सर्वोदय सर्वज्ञ सगुण साकार सार हे ॥

(४)

विभु व्यापक ब्रह्मण्य विश्व वर के वरदानी ।
धिविबु वन्द्य विबुधेश विश्व विश्वेश्वर वानी ॥

विविध विधान वेद विधि हे विश्वास विधायक ।
विपुल वेष विख्यात विशिष्टाद्वैत विनायक ॥

(५)

अभिनन्दन है अखिल सृष्टि के नव निर्माता ।
अभिनन्दन है अगजगमय हे भाग्य – विधाता ॥
हे अनन्त जगदीश अशेष अक्षय अविनाशी ।
अजर अमर अज अवालम्ब अभेद्य अघनाशी ॥

(६)

अन्तर उर अनमोल अनूपम अद्भुत दर्शन ।
अनुभवगम्य अनामय अति आनंद स्पर्शन ।
हे अगाध अब अपने अतिप्रिय को अपनाओ ।
अनावृष्टि अकाल अघ को अब आप भगाओ ।

(७)

हे नारद ! नैमिष के नन्दन वन विच वासी ।
नैमिषीय योजना सिद्ध सफला सुख राशी ॥
नव नखमणि तव चन्द्रकान्ति सो शोभा देतीं ।
युगल चरण में नमत भाव पुनीत कर देतीं ॥

(८)

हे नारद ! आनन्दमय रत अनवरत निरन्तर ।
नीति विधान निपुण निखिलेश्वर हो अभ्यन्तर ॥
नाथ निपट हम, आप एक अज्ञान विनाशक ।
हे हे नरसिंहावतार नारद हो शासक ॥

(९)

निर्धन के धनवान् एक निर्जन के जन हो ।
बल विहीन के हे बलेश बलवान स्वजन हो ॥
कलियुग में सतयुग का सम स्वरूप दिखलाते ।
शुद्ध सनातन का साधन सबको सिखलाते ॥

(१०)

करुणेश्वर कृपालु करुणामय कीर्ति तुम्हारी ।
कलित कलेवर कर धारण कितनी उपकारी ॥
कर दो कृपाकोर करुणाकर कर्म करूँ मैं ।
हृदयाराध्य हृदयमें हरदम ध्यान धरूँ मैं ॥

(११)

हे उपास्य हे इष्टदेव हरिजन हितकारो ।
परमारथ के पथिक प्रेम के पूज्य पुजारी ॥
जय हे परमाराध्य प्राणधन पर उपकारी ।
प्रेम प्राप्य परमेश प्रकाशक पाप प्रहारी ॥

(१२)

गोमातट सुर—वन्दित नारद नन्दित तपवन ।
नूतन ललित निकुञ्ज हरित तृण पूर्ण लताघन ॥
मन्दमन्द मारुत मतवाली महक मन हरण ।
ता बिच राजत श्वेत केशयुत तापस ऋषिगण ॥

(१३)

चतुरवर्ण संस्थापक चतुराश्रम निर्माता ।
सर्वभूत के हित में रत जय हे जगत्राता ॥
वानप्रस्थ गृहस्थ ब्रह्मचारी सन्यासी ।
सभो आपके सेवक स्नेही नैमिष — वासी ॥

(१४)

हे गुरु ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय गौरव गुण राशी ।
गैरिक वस्त्राभूषित जगदाचार्य विकाशी ॥
तपोनिष्ठ तपपूत ज्ञान के सूर्य्य प्रकाशी ।
हे शंकर स्वरूप शिव भोले घट — घट वासी ॥

—:०:—

सदाचार का महत्त्व

—श्री शिवकुमार शास्त्री व्याकरणाचार्य—

तैत्तिरीय-उपनिषद् के ग्यारहवें अनुवाक में जा आचार शिक्षा दी गई है वह प्रत्येक मानव के लिये बहुत उपयोगी है। आचार्य वेद पढ़ाकर ब्रह्मचारी विद्यार्थी से अनुशासन करता है—'सत्य बोलो, धर्म का आचारण करो, स्वाध्याय में प्रमाद मत करो, आचार्य को सन्तुष्ट कर उनकी आज्ञा लेकर गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट होओ, सन्तान परम्परा मत तोड़ो, सत्य धर्म शुभ कर्मों से कभी न हटो, उन्नति के साधन में प्रमादी न हो, वेदों के पढ़ने-पढ़ाने में कभी प्रमाद न करो, देवकार्य पितृकार्य से न चूको, माता-पिता, अतिथि में, आचार्य में, देव बुद्धि रक्खो, जो हमारे निर्दोष कर्म हैं उनको ही अपनाओ, दोषयुक्त कर्मों को नहीं, जो हमारे अच्छे आचरण हैं उनका अनुकरण करो अन्य का नहीं।

वेदमनूच्याचार्योऽन्तेवासिनमनुशास्ति, सत्यं वद, धर्मं चर, स्वाध्यायान्मा प्रमद; मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्यदेवो भव, यान्यस्माकं सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि।

ये वेद पुराण वाक्य हमें सदाचारी बन कर अपने हित साधन में प्रवृत्त होने की आज्ञा देते हैं। भारतीय संस्कृति का प्राण सदाचार है, सदाचार को छोड़ कर सद्विचार का कोई मूल्य नहीं। क्या दुराचारियों के कृत्रिम सद्विचारों को वस्तुतः सद्विचार कहा जा सकता है? श्रुति जोर दे कर कहती है—

नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहितः,
नाशान्तमानसो वा प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात्। (कठ १-२-४)

अर्थात्—जो बुरे आचरणों से निवृत्त नहीं हुआ, जो अशान्त है, जो समाहित जितेन्द्रिय नहीं है, जिसका मन शान्त नहीं—चंचल है, ऐसा मनुष्य सूक्ष्मबुद्धि के द्वारा भी इस परमात्मा को प्राप्त नहीं कर सकता।

आचार का ही यह प्रभाव था कि शान्त तपस्वी ऋषियों के आश्रमों में सहज वैरी मृग-सिंह, गौ-व्याघ्र सर्प-नकुल आदि साथ-साथ भी खेलते थे। तपोवन में महाराज युधिष्ठिर के पास आरहे वेदव्यास के आगमन का वर्णन करते हुए महाकवि भारवि कहते हैं।

मधुरैरवशानि लम्भयन्नपि तिर्यञ्चि शमं निरीक्षितैः

भारतीय संस्कृति की आधार भित्ति सदाचार है और उसके उपदेशक हैं त्रिकालदर्शी निःस्पृह व्यास कणाद आदि महर्षि। आज बाह्य स्वार्थ-परायण धन विषय-भोग के लिये स्वधर्म, भगवान् तथा आत्म की भी बलि देने वाला उच्छृङ्खल स्वेच्छाचारी मानव भले ही इसका महत्त्व न समझे, भले ही भरत के भ्रातृ-स्नेहवश राज्य-त्याग को मूर्खतापूर्ण कह ले, शास्त्रीय-आचार परम्परा, स्नान, पूजन, नित्यकर्म, खानपान की शुद्धि का वह भले ही उपहास करले किन्तु सत्पुरुष उसकी ऐसी बातों को कोई महत्त्व नहीं देते। जो केवल शरीर को ही आत्मा मान कर चलने वाला है, जिसका ध्यान यावत् जीवन शरीर की सजावट पर ही बीत रहा है, वह उसी से सम्बन्ध रखने वाली अन्य बातों की उपेक्षा कैसे कर सकता है। अपने आचरणों पर सन्तोष करने वाला दूसरों के आचरणों को ढोंगी कैसे कह सकता है। बुद्धि की इतनी संकीर्णता पर चलने वाला भी यदि वह अपनी स्वेच्छाचारिताके समर्थन के लिये शास्त्रीय आचार परम्पराओं को कोसता है तो यह भारतीय संस्कृति की देन नहीं है। आज भले ही शास्त्रीय-आचारों से कोई अपने को स्वतन्त्र करले किन्तु जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि आदि से स्वतन्त्र नहीं हो सकता। कुछ दिनों वा कुछ मनुष्यों की बाह्य सुख सुविधा का विचार कर शास्त्रों का प्रणयन नहीं हुआ। नाही वे स्वार्थ-परायण अनाप्त पुरुषों द्वारा रचे गये हैं। उनका मूलस्रोत वेद हैं, रचयिता हैं विश्वहितैषी वीतराग महर्षि। यदि हम चाहते हैं कि सचमुच भारतीय संस्कृति का उद्धार व प्रचार हो, तो उसकी शैली से ही हमें उसपर ध्यान देना होगा। अपने स्वतन्त्र विचारों से संस्कृति सभ्यता की रट लगाकर उसे दूषित करने की प्रणाली बन्द होनी चाहिये। आज की चकाचौंध से सावधान हो कर उस प्रकाश के पीछे चलना होगा—जिसे चारों ओर से ढक दिया गया है। हमारे दर्शनों की रचना प्राणी की आत्यन्तिक दुःख निवृत्ति का लक्ष्य लेकर ही हुई है, यद्यपि कांचन, कामिनी, उत्तम-औषध, मणि मन्त्र आदि से दुःखनिवृत्ति हो सकती है पर वह आत्यन्तिक नहीं! इन सब वस्तुओं के होते हुए भी मनुष्य अशान्त, रोगी, व्याकुल रहता ही है, अतः शास्त्रों ने उसे अपने को समझने के लिये विशेष बल दिया जिसे पाने के लिये आचार को प्रथम साधन माना गया है। राम रावण का, कौरव पाण्डवों का युद्ध इस आचार के उद्देश्य को ले कर ही हुआ था। आज का मानव विचारविमूढ़ हो, नाना कल्पितवादों में फंस रहा है, भ्रान्त-बुद्धि के कारण उसे दिग्भ्रम हो रहा है, आवश्यकता है शास्त्रों के उन दिव्य उपदेशों के प्रचार के आचरण में लाने की, जिनसे अर्जुन का व्यामोह दूर हुआ था, पर उन

उपदेशों की पात्रता क लिये हमें सदाचार को प्रथम अपनाना होगा। आचार्य शब्द का भी यही अर्थ है, शास्त्रों के अर्थों का चयन आचार-शिक्षण एवं स्वयन् आचरण। जिस रामराज्य की स्थापना पर आज जोर दिया जा रहा है वह केवल सदाचार पर ही प्रतिष्ठित था यह हम सभी अच्छी तरह जानते हैं। यदि रामराज्य मान्य है तो भगवान् श्रीराम तथा उनके आदर्श, आदर्श-विचार-आचार भी मान्य होने चाहियें पर उन आचारों के पीछे केवल आज के तथाकथित शिक्षतम्मन्य ही नहीं—किन्तु हमारी सरकार भी हाथ धो कर पड़ी है। भारतीयता इससे लज्जित होती है। भारत सरकार को इस विषय में समझदारी से अगला कदम उठाना चाहिये ! यह ध्यान रहे सदाचार की रक्षा का दायित्व सर्वप्रथम सरकार पर है।

राजा कालस्य कारणम्।

वेद के इन शब्दों से श्रीभगवान् से ही यही प्रार्थना है—

'असतो मा सद् गमय' 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' 'मृत्योर्माऽमृतं गमय'

अर्थात्—हमें असत् से सत् की ओर, अन्धकार से प्रकाश की ओर, एवं मृत्यु से अमृत की ओर ले चलो।

●

मन: एक विवेकचन

—श्री हरिकृष्णदास अग्रवाल, बम्बई—

मनुष्य अपने मन को ऐसे ही दोष देता है। असल में तो मन का कोई दोष नहीं है। क्योंकि मन को हम जिधर लगायें उधर ही लगेगा। मन को काबू में लाने की यह युक्ति है—कि मन मनाया जाय, न कि 'मन को मना किया जाय।' मन को रोकने से मन उपद्रव खड़ा करता है। द्रष्टा भाव से जब हम उसे देखने लगते हैं तो वह अपने आप उछलना-कूदना बन्द कर शांत हो जाता है।

एक राजा ने एक साथ कई अरबी घोड़ खरीदे, उन्हें खूब अच्छी तरह से खिला-पिला कर प्रबल बनाकर इस बात की घोषणा कर दी कि जो कोई घुड़सवार इन घोड़ों पर सवार होकर तीस मील घेरे में चक्कर काटकर राजधानी में पहले वापस आयेगा उसे सिपहसालार बना दिया जायेगा। इसे सुनकर बहुत से घुड़सवार इस आशा में आगे तो आये, लेकिन किसी की इतनी हिम्मत न होती थी कि उन

घोड़ों पर सवारी करें—क्योंकि वे घोड़े इतने उद्दण्ड और सहजोर थे कि वे किसी के भी काबू में नहीं आते थे। इधर राजा ने एक दिन मुकर्रर किया और सात सवार घोड़े पर सवार होकर निकले। कई एड़ीं लगाते घोड़े को भगाते गिरते-चढ़ते, लहूलुहान हो थक कर चूर हुए आये। आते ही गिर पड़े। उनमें उस समय बात करने की भी शक्ति नहीं रही। पर एक घुड़वार घोड़े के ऊपर सवार न होकर घोड़े के साथ-साथ चलता रहा। जहाँ घोड़ा रुकता था—वहीं रुक भी जाता था और जहाँ वह सवार घोड़े का रुख शाँत देखता चढ़ भी जाता था। समय पर घोड़े को हरी-हरी घास भी खिलाता था। धीरे-धीरे उस सवार के साथ घोड़े का गहन परिचय हो गया। घोड़े को निश्चय हो गया कि यह सवार मेरा प्रहरी है। मेरा मित्र है, इस कारण घोड़ा स्वयं सवार के अधीन हो गया। सवार भी उसे प्रेम से खिलाता-पिलाता घोड़े के पीछे-पीछे चलता था। जब सात दिन पूरे होने को आये तो घुड़सवार घोड़े पर बैठा। वह हँसता-खेलता गाता समय पर संध्या होने से पहिले राजधानी पहुंच गया। राजा को यह देख कर बड़ा आश्चर्य हुआ कि जब बाकी के सभी सवार लहू-लुहान होकर वेहोश पड़े हुए हैं यह कसे हँसता-गाता घोड़े पर सवार होकर सानन्द आ गया। देखते-देखते राजा ने समझ लिया कि घोड़े को काबू करने की युक्ति यह जानता है। मन भी एक प्रकार का घोड़ा ही है। शास्त्रों ने मन को भी घोड़े की उपमा दी है। अगर हम उसका निरीक्षण करें, उसकी देख-भाल करें तो कोई वजह नहीं कि वह हमारे वश में न हो जाये। पर जब हम उसके साथ जबर्दस्ती करते हैं तो वह और भी उद्दण्ड हो जाता है। हमारा कहना नहीं मानता। हमारी अवज्ञा करता है।

पर मन के साथ प्रेम करने से मन भी अपना परम प्रेमी हो जाता है। मन को देखने से मन में ही लय हो जाता है। इस कारण समझदार सवार की तरह निरीक्षण करने पर तो मन अधीन हो जाता है और नहीं तो मनुष्य प्रतिक्षण मन के आधीन रह जाता है। मन को अधीन नहीं कर पाता। मन मने के ही हाथ आता है। मन जब शाँत हो तो मन से ही मन को भगवान् के चरणों में लगा देना चाहिये। इस प्रकार धीरे-धीरे मन शांत और भगवान् के चरणों में अपने आप लगता जाता है।

——:o:——

श्री स्वामी जी की विश्व को देन

—श्री पारस जैन बुल्लारम (आन्ध्र)

मैंने प्रथम बार ही श्री स्वामी जी के दर्शन ऋषिकेश मोक्षाश्रम में किये थे। उनके साधनामय सरल जीवन एवं उनकी चलने वाली आध्यात्मिक प्रवृत्तियों से बहुत प्रभावित हुवा। आज के भौतिक वादी युग में संगठन तो अनेकों खड़े किये जा सकते हैं, किन्तु विशुद्ध अध्यात्म वाद के आधार पर जो सङ्गठन खड़ा किया है, यह उनकी अपनी विशेषता है।

सैंकड़ों की संख्या में अवकाश प्राप्त व्यक्तियों को उनके मानस के अनुसार भारतीय संस्कृति के पुनरुत्थान के पवित्र कार्या में लगाना यह उनकी विश्व को एक देन है। अवकाश प्राप्त व्यक्ति के सामने जब कोई लक्ष्य नहीं रहता है तो उसका मस्तिष्क भ्रमित होता है। भ्रमित व्यक्ति मानव के लिये अनर्थकारी सिद्ध होता है। वर्तमान में समाज उनका मूल्यांकन न कर पाये किन्तु भावी पीढ़ी श्री स्वामी जी के प्रति कृतज्ञ रहेगी। उन्होंने समाज के उपेक्षित अवकाश प्राप्त व्यक्तियों को मानवता के सृजन में जोड़ दिया है।

मैं श्री स्वामी जी के प्रति अपनी श्रद्धांजली समर्पित करता हूं और उनके चिरंजीवी यशस्वी जीवन की कामना करता हूं।

भारत को पुनः जगद्गुरु पद पर आरूढ़ देखने को सक्रिय

—श्री शिवकुमार गोयल (पत्रकार)

भटके हुए और अस्थिर मन को स्थिरता व शान्ति प्रदान करके सन्मार्ग पर लगाना 'सद्गुरु' का सब से प्रमुख कार्य है। ऐसे विरले ही सद्गुरु और सन्यासी मिलते हैं जिन्होंने अपने शिष्यों को वास्तविक रूप से सन्मार्ग पर आरूढ़ किया हो और उन विरले महापुरुषों में श्री स्वामी नारदानंद जी सरस्वती महाराज प्रमुख हैं।

जगदाचार्य श्री स्वामी नारदानन्द जी महाराज ने अपने जीवन में हजारों भटके हुये मानवों को सन्मार्ग दिखाकर उनकी आंखों में ज्ञान व भक्ति का अंजन डाल कर उनके काम, क्रोध, लोभ और मोह के भ्रम को दूर किया तथा उन्हें लोक और परलोक दोनों को ही बनाने की प्रेरणा दी। नैमिषारण्य में कई सौ साधक श्री स्वामी जी के मार्ग-दर्शन में साधना करके आदर्श जीवन व्यतीत करते देखे जा सकते हैं।

मैंने जब भी उनके दर्शन किये यही देखा कि उनके व्यक्तित्व में एक ऐसा आकर्षण है कि जो बड़े से बड़े नास्तिक की नास्तिकता को चकनाचूर कर डालता है तथा उसे ईश्वर में विश्वास करने की प्रेरणा देता है।

पूज्य स्वामी जी ठोस व रचनात्मक कार्य-क्रम में विश्वास रखते हैं। आध्यात्मिक विद्यापीठ की स्थापना करके उन्होंने एक ऐसे कारखाने की नींव डाली है कि जिसमें ढल कर जो भी निकलेगा फिर उसे भौतिकवाद की चकाचौंध अपनी ओर आकर्षित कदापि न कर सकेगी।

स्वामी जी जनता में आध्यात्मिकता के प्रचार व प्रसार के लिये तथा नैतिकता की स्थापना के लिये समय-समय पर, स्थान-स्थान पर आध्यात्मिक सम्मेलनों के आयोजन करते रहे हैं। यज्ञ-कीर्तन आदि के आयोजनों द्वारा उन्होंने समस्त देश में धार्मिकता व नैतिकता का आन्दोलन चलाया है, साहित्य व धार्मिक पत्र का प्रबन्ध करके जनता को मानसिक भोजन पहुँचाने का उन्होंने प्रबन्ध कराया है। वे इन सब साधनों से भारत को पुनः धर्मप्राण भारत के रूप में जगद्गुरु के पद पर आरूढ़ देखने की कल्पना को अपने हृदय संजोये हुये अपने कार्य में रत हैं।

नैतिकता की पुनःस्थापना एवं सनातन हिन्दू-धर्म की रक्षा के लिये उनका प्रयास भारत के इतिहास में अमर रहेगा।

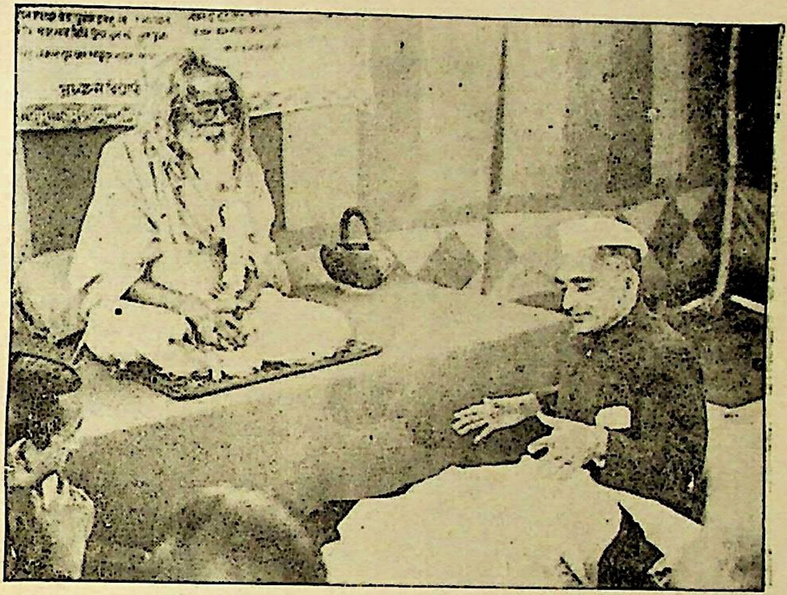

श्री राज्यपाल को गायत्री मुद्राओं का प्रशिक्षण

देवस्थान निर्माण में स्वयं ईंटें उठाकर श्रमसेवारत

भारतीय संस्कृति और श्री जगदाचार्य श्री स्वामी नारदानंद जी सरस्वती

(डा० चन्द्रशेखर एम०ए०, पी-एच० डी०)

"संस्कृति उन गुणों का समुदाय है, जिन्हें मनुष्य अनेक प्रकार की शिक्षा द्वारा अपने प्रयत्न से प्राप्त करता है। संस्कृति का सम्बन्ध मुख्यतः मनुष्य की बुद्धि, स्वभाव, मनोवृत्तियों (एटीट्यूड्स) से है। संक्षेप में सांस्कृतिक विशेषताएं मनुष्य की बुद्धि एवं स्वभाव की विशेषताएं होती हैं, इन विशेषताओं का अनिवार्य सम्बन्ध जीवनके मूल्यों से होता हैं। ये विशेषताएं या तो स्वयं में मूल्यवान् (और इस प्रकार व्यक्तित्व को सुन्दर अथवा उच्च बनाने वाली) होती हैं अथवा मूल्यों के उत्पादन का साधन। प्रायः व्यक्तित्व में विशेषताएं साध्य एवं साधन दोनों ही रूपों में अर्थपूर्ण समझी जाती है।[1]" संस्कृति के अन्तर्गत मुख्यतः उस बोध, उन संवेदनाओं एवं नैतिक मनोवैज्ञानिक प्रेरणाओं का समावेश होता है, जो व्यक्तित्व के गुणात्मक स्तर और उसकी क्रियाओं का निर्धारण करती है। मानव-जाति के ज्ञान विज्ञान की प्रगति के साथ उसके जगत्-बोध और आत्मबोध एवं नीतिबोध भी बदलते चलते हैं। इन्हीं कारणों से जाति विशेष की संस्कृति में परिवर्तन व संशोधन होते हैं। किन्तु इन परिवर्तनों के बीच वे स्वभाव एवं चरित्रगत विशेषताएं, जो एक या दूसरी जाति को प्रगतिशील बनाती हैं, बहुत कुछ वही रहती हैं।[2]

भारत एक धर्मप्राण देश है। सभ्यता के आदिकाल से ही भारतीय समाज में धर्म का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। यहां विभिन्न धर्म और धार्मिक समय-समय पर फूले और फले हैं। अतः भारतीय संस्कृति का धर्म से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। भारतीय संस्कृति को धर्म से भिन्न करके देखना अत्यन्त कठिन है। धर्म भारतीय संस्कृति का एक अभिन्न अंग है। भारतीय संस्कृति में दार्शनिक जिज्ञासा तथा चिन्तन का विशेष स्थान रहा है। दार्शनिक आस्थाएं संस्कृति की नींव का निर्माण करती हैं। और दार्शनिक विचार उसकी श्रीवृद्धि करते हैं।

भारत की सांस्कृतिक आत्मा आध्यात्मिक उपलब्धि के लिये आकुल

---

[1] भा० सं०—डा० देवराज पृ० २१, [2] वही पृ० १६२

रही है। भारतीय संस्कृति मूलतः एक आध्यात्मिक संस्कृति है, जिसका चरम आदर्श अमृतत्व या मोक्ष की प्राप्ति है।[1]" "इस संस्कृति में धर्म और दर्शन इतने घनिष्ठ रूप में मिले हुए हैं कि उन्हें एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता है।[2]" धर्म अथवा अध्यात्म प्रधान होना भारतीय सँस्कृति की प्रमुख विशेषता है। धर्म अध्यात्म अथवा दर्शन का प्रारम्भिक स्वरूप है। धर्म अध्यात्म का कर्म स्वरूप है। भारतीय संस्कृति में जीवन की प्रत्येक छोटी-बड़ी बात को धार्मिक भावना से भर दिया गया है। संस्कार दो प्रकार के होते हैं—व्यक्तिगत और जातिगत। जातिगत संस्कारों को संस्कृति कहते हैं। संस्कार से तात्पर्य है—संस्कृत अथवा परिष्कृत करना. धर्म और संस्कृति का अटूट सम्बन्ध है क्योंकि दोनों में संस्कारों की व्यवस्था है। धार्मिक संस्कार शास्त्रों पर आधारित होते हैं और संस्कृति के संस्कारों का निर्धारण परम्पराओं द्वारा होता है। इस संदर्भ में संस्कृति लोकधर्म के अधिक निकट रहती है।

पूज्य गुरुदेव स्वामी नारदानन्द जी सरस्वती का समग्र जीवन, उनका विशाल एवं गम्भीर व्यक्तित्व भारतीय संस्कृति का मूर्तिमान उदाहरण है। जन सेवा ही आपकी तपस्या तथा ईश्वर-भक्ति है। उनके अनुसार समाज-सेवा में न लगने वाले तपोनिष्ठ की तपस्या ऐसे ही नष्ट हो जाती है, जैसे कच्चे घड़े में भरा हुआ जल। स्वामी जी के द्वारा संस्थापित एवं संचालित अनेक संस्थाओं द्वारा समाज के विविध क्षेत्रों में कार्य हो रहा है। भारत-भक्त-समाज, शिक्षा-सुधार-समिति और हिन्दू-प्रार्थना-समिति आदि संस्थायें उनके संरक्षण में क्रियाशील हैं। अध्यात्म विद्यालय, नैमिषारण्य में भारत की प्राचीन शिक्षा-पद्धति के अनुसार विद्यार्थियों को शिक्षा प्रदान की जाती है। वर्तमान विद्यार्थी-सुधार-योजना के अन्तर्गत कानपुर ऋषि आश्रम में आधुनिक विद्यालयों में शिक्षा प्राप्त करने वाले कतिपय छात्रों को स्वामी जी के छात्रावास में रक्खा जा रहा है, जहां उन्हें भारतीय संस्कृति के अनुकूल वातावरण प्राप्त होता है। वे भोगों, विषयों तथा फैशन की चकाचौंध से चमत्कृत होने वाले विद्यार्थी यहां आकर भारतीय आध्यात्मिक जीवन की दिव्यता का अनुभव करते हुए अपने विकास-पथ पर अग्र-

---

[1] अ० सं०-डा० देवराज पृ० २०३,

[2] भा० सं० के आधार-श्री अर्थवृन्द पृ० ८५

सर हो रहे हैं। इनके अतिरिक्त गुरुदेव की पावन प्रेरणा हमारे जैसे विद्यालयों और विश्वविद्यालयों के उन विद्यार्थियों को भी सुलभ है, जो उनके पार्थिव सम्पर्क में अधिक नहीं रह पाते। मुझ जैसे अनेक छात्र उनके उपदेशों से धुलकर तथा स्नेह से पोषित होकर, अपने कर्तव्य पर डटे हुए निज आनि कानि मर्यादा की रक्षा में निरत हैं।

वर्तमान-शिक्षा-पद्धति के सुधार तथा आधुनिक पाठ्यक्रम में आध्यात्मिक नैतिकता के समावेश के लिये स्वामी जी सतत प्रयत्नशील हैं। आज के समाज की पतनोन्मुखी धारा का बहुत बड़ा उत्तरदायित्व शिक्षित समाज पर है और उसके जीवन मूल्यों का निर्धारण होता है उस विषय-ज्ञान के द्वारा जो इसे अपने अध्ययन-काल में प्राप्त होता है। अतः आज के शिक्षित समुदाय के भोगी, विलासी फैशन-परस्त और स्वार्थी कारणों को परिवर्तित करके उसे त्यागी, सरल, उदार एवं सदाचारी बनाने के लिये उसके पाठ्यक्रम में आध्यात्मिक नैतिकता का समावेश आवश्यक है। किसी भी विषय का प्रमाण-पत्र विना परीक्षा लिये नहीं दिया जाता हैं और दिया भी नहीं जाना चाहिये किन्तु चरित्र विषयक प्रमाण पत्र के लिये क्या कोई न्यूनातिन्यून परीक्षा भी ली जाती है ? क्या चरित्र विषयक कोई पाठ्यक्रम विद्यार्थियों के लिये रक्खा गया है ? यदि नहीं तो क्या मानव-व्यक्तित्व का यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण पक्ष इतना नगण्य है ? और तब फिर हम वर्तमान विद्यार्थी से अनुशासित, नैतिक तथा कर्तव्यनिष्ठ रहने की आशा कर कैसे सकते हैं ? अस्तु, वर्तमान शिक्षा-पद्धति की इस बहुत बड़ी कमी को दूर करने के लिये स्वामी जी ने 'शिक्षा-सुधार-समिति' की स्थापना की है। व्यावहारिक दृष्टि से गुरुदेव ने कानपुर में अनेक विद्यालयों मे नैतिक शिक्षा का प्रवेश करवाया है, जहां इसका सफल प्रयोग किया जा रहा है और उन विद्यालयों के प्रधानाचार्यों के अनुसार विद्यार्थियों का आशातीत नैतिक सुधार हुआ है।

नैमिष मंडल की सामाजिक व्यवस्था भारतीय समाज रचना के अनुरूप है। वर्तमान युग में प्राचीन पद्धति का यह एक सफल प्रयोग है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र एवं ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा सन्यास इन चारों वर्णाश्रमों की सचारु व्यवस्था नैमिष-ऋषि-आश्रम में द्रष्टव्य है। वानप्रस्थ आश्रम प्रायः लुप्त हो गया था, उसको पुनर्जीवित करने का श्रेयः

स्वामी जी को है। वर्तमान अवकाश प्राप्त (रिटायर्ड) वृद्धों के द्वारा इस आश्रम की रचना और व्यवस्था एक महत्वपूर्ण कार्य है। इसके द्वारा वानप्रस्थ आश्रम के उद्धार के साथ ही आधुनिक समाज-व्यवस्था की एकांगिता भी दूर हुई है। वे भाग्यवान् वृद्धजन स्वयं गृहचिन्ताओं से मुक्त होकर साधना-मय जीवन व्यतीत करते हुए अपने परिवार के सदस्यों को अपनी 'स्व' की चिन्ता से भी मुक्त करते हैं। इस प्रकार उनके त्याग की उपयोगिता दुहरी हो जाती है। नैमिष-मण्डल में ऐसे वानप्रस्थियों की संख्या पर्याप्त है, जिनका वहां की व्यवस्था में महत्वपूर्ण योगदान है।

वर्तमान हिन्दू-समाज के साम्प्रदायिक स्वरूप का परिमार्जन एवं संवर्धन भी स्वामी जी के द्वारा हुआ है। जगद्गुरु शंकराचार्य की परम्परा को पोषित करने वाले गुरुदेव 'जगदाचार्य' की उपाधि से विभूषित हुये हैं। यह समादरण उनकी साम्प्रदायिक एवं सामाजिक सेवाओं का प्रतीक है। गुरुदेव से प्रेरणा प्राप्त करके इस सुप्त समाज में एक नव स्फूर्ति भर गई है, जिसके स्पन्दन सुस्पष्ट हैं। अनेक समाज-सुधारक उनसे प्रेरित होकर राष्ट्र की सुरचना की भव्य योजना बनाने और कार्यान्वित करने में संलग्न हैं। उनके संपर्क में आने वालों के दो स्पष्ट रूप होते हैं– एक साम्प्रदायिक और दूसरा संस्थात्मक। सांप्रदायिक लोगों की विशेष वेष-भूषा होती है। और संस्थात्मक लोग इन बन्धनों से मुक्तप्राय होते हैं। यहां बन्धन शब्द का व्यवहार दार्शनिक शब्दावली में न होकर साहित्यिक संदर्भ में हुआ है। साम्प्रदायिक स्वरूपधारी समाज के प्रमुख स्वामी विवेकानन्द जी हैं, जो गुरुदेव के ज्येष्ठ शिष्य हैं। इसी परम्परा में श्री ध्रुवचैतन्य ब्रह्मचारी और श्री निर्मल कुमार जैसे जागरूक साधक भी हैं, जो गुरुदेव के उत्तरदायित्व का वहन करने के लिए सनद्ध हैं। श्री शौनक जैसे नवयुवक संस्था के भविष्य का निर्माण कर रहे हैं। इसी वर्ग में अनेक योग्य पण्डित, मधुर कथावाचक, मोहक सङ्गीतज्ञ और तपोनिष्ठ वानप्रस्थी और ब्रह्मचारी आते हैं, जो प्राचीन भारतीय संस्कृति का पुनर्जागरण एवं नवनिर्माण करने में कटिबद्ध है।

संस्थात्मक समुदाय में समाज के विभिन्न वर्गों के लोग समाविष्ट हैं। इस रूप में ऐसे राजनैतिक कर्णधार हैं जिनसे हमें पूर्ण सहयोग मिला है, मिल रहा है और भविष्य में भी मिलते रहने की पूर्ण आशा है। भामाशाह जैसे उदारचेता अनेक धनिकजन संस्था को आर्थिक सहयोग प्रदान करते

हैं। अध्यापक, वकील तथा विद्यार्थी आदि के संगठन से बना संस्था का बौद्धिक वर्ग अपनी सुविधाओं को समाज में कार्यान्वित करते हुए वर्तमान जीवन में अतीत के सांस्कृतिक मूल्यों का अवतरण कर रहा है। इस वर्ग की उपलब्धि स्वामी जी के द्वारा आयोजित यज्ञों द्वारा सामाजिक मंथन से होती है। बड़े बड़े नगरों में आयोजित इन यज्ञों के माध्यम से, वैचारिक गोष्ठियों के द्वारा सामाजिक नवनीत निकालने का सफल प्रयास किया जाता है और दूसरी ओर इन महत्त्वपूर्ण गोष्ठियों के द्वारा वर्तमान समाज के भावी नव निर्माण की योजनाओं का निश्चय भी किया जाता है। नगर का बुद्धि वर्ग बैठ कर विचार करता है कि हम अपने आदर्शों को व्यवहार में कैसे उतार सकते हैं? नगरों के साथ साथ ग्राम-सुधार भी स्वामी जी की सुधार-योजना का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। इसके लिये सामूहिक कार्य करने के अतिरिक्त कुछ विशेष ग्रामों को लेकर भारतीय रीति-नीति को व्यावहारिक धरातल पर उतारने का सफल प्रयास किया गया है।

इस प्रकार पूज्य गुरुदेव स्वामी नारदानन्द जी सरस्वती का व्यक्तित्व और कृतित्व भारतीय संस्कृति के मूलाधारों के द्वारा ही निर्मित है। महान् सांस्कृतिक उपलब्धियों के लिये यह आवश्यक है कि जीवन संसार की सामान्य आवश्यकताओं की उलझनों से मुक्त हो। महत्वपूर्ण अभिव्यक्तियों के लिये अवकाश अत्यन्तावश्यक है। स्वामी जी का विरक्त जीवन इस सुविधा से सर्वथा पूर्ण है। उनका विरागी जीवन इन नगण्य बातों में न पड़कर सब से स्वाधीन रहते हुए अपनी स्वतंत्र स्थापनाओं के लिए पूर्ण मुक्त है। आध्यात्मिकता का अर्थ है कि विवेकी व्यक्ति इस लोक के मूल्यों का उपभोग करते हुए भी उनमें ऐसी आसक्ति का अनुभव न करे कि उन के अभाव में व्याकुल हो जायँ। अध्यात्मिकता का तात्पर्य जीवन मूल्यों के सर्जन एवं उपभोग के प्रति उपेक्षा की भावना नहीं है, इसके विपरीत उसका अभिप्राय ऐसी अनासक्ति है, जो हमें चरम संतुलन और निराकुल प्रयत्नशीलता की क्षमता देती है।[1] "महापुरुष वे नहीं हैं, जो सन्यास लेकर दुनिया के बड़े प्रयत्नों से छुट्टी ले लेते हैं, बल्कि वे हैं, जो दुनिया में रहते हुए भी अनासक्ति के साथ बड़े-बड़े लोक संग्रह के कार्य करते हैं।[2]"

—o—

---

[1]. भा० सं डा० देवराज पृ० २०५, [2]. वही पृ० २०६

समाज निर्माण में अध्यात्म विद्या अत्यावश्यक

—शौनक ब्रह्मचारी, बी०ए०, प्रधान मंत्री, हिन्दू प्रार्थना समिति

मेरे अध्ययन से पूर्व जन्म के कर्म सहायक धार्मिक परिवार में जन्म होना, यह सिद्ध करता है कि जो दैवी शक्ति किसी को जन्म देती है, वह जीवात्मा का बनाया हुआ कार्यक्रम नहीं होता है। मृत्यु और जन्म यह जीव का प्रोग्राम नहीं, यह ईश्वरीय व्यवस्था है। मैं बाल्यकाल में अज्ञानावस्था से परिवार की भाषा, परिवार के कर्म का स्वाभाविक अनुकरण करता रहा, सनातन धर्मके नियमोंका पालन, कथा श्रवण, देवाराधन आदि। उन्हीं संस्कारों ने विद्यार्थी जीवन में ईश्वर धर्म और अध्यात्म विद्या जानने की जिज्ञासा उत्पन्न कर दी। अध्ययन काल में जहाँ कहीं धर्मोपदेश होता था, अनेक कार्यों को छोड़ कर मैं ध्यान से सुनता था, धार्मिक पुस्तकों को, सत्संग न मिलने पर विचार पूर्वक पढ़ता था, कई पण्डितों और महात्माओं के उपदेश को मैं आचरण में लाने का प्रयास करता था।

मैं यह सुना करता था कि जिस विषय का ज्ञान नहीं है, उस विषय को जानने के लिये शंका करना मेरा कर्तव्य है। अनभिज्ञ होने के कारण से मैं अध्ययन के विषय की समालोचना नहीं करता था। न सन्त और शास्त्र में दोष निकालने और सिद्ध करने में प्रयास करता था। गुणों के समझने और धारण करने का पूरा प्रयास करता था। मैं इस खोज में रहता था कि धर्म-विद्यालय और परीक्षा केन्द्र हो तो उसका मैं फार्म भर दूं। मैंने दर्शन और भारतीय दर्शन को प्रमुख विषय बना रक्खा था। भौतिक विज्ञान को गौण बना रक्खा था। मुख्य विषय में चित्त का स्वाभाविक लग जाना उचित ही था। मेरा यह दृढ़ विश्वास था कि ईश्वर मेरी अभिलाषा को जानता है, उसने जैसे जन्म देनेकी व्यवस्था की है वैसे अध्ययन की भी व्यवस्था करेगा।

उस वक्त मैं लखीमपुर में पढ़ता था। ईश्वर की कृपा से अध्यात्म विद्या के आचार्य जी का प्रवचन सुना। एकान्त में मिलने की तीव्र जिज्ञासा हुई। रात्रि में आठ बजे दर्शन हुये—स्वामी जी ने कृपा करके मुझ से पूछा कि तुम किस अभिप्राय से मेरे पास आए हो। मैंने कहा—

श्री जगदाचार्य महाराज के प्रिय शिष्य

श्री ब्रह्मचारी शौनक जी महाराज (बी०ए०)

श्री जगदाचार्य महाराज के : स्निग्ध शिष्य

श्री स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज

“भगवन्. भारतीय दर्शन पढ़ने की उत्कट जिज्ञासा है यदि आपके द्वारा उस की व्यवस्था हो जाए तो मैं अपना परम सौभाग्य समझूंगा। मैं इस विषय में पूर्ण ज्ञाता बनना चाहता हूं। आचार्य चरण ने आश्वासन दिया और कहा “परिपूर्ण ज्ञान देने की मैं प्रतिज्ञा तो नहीं करता हूं किन्तु जितना जानता हूं, उसके लिये समझाने हेतु पूर्ण प्रयास करूंगा। भले ही मैं शङ्कराचार्य और विवेकानन्द न बना सकूं। मैंने एक प्रार्थना की कि कालेज के विद्यार्थी होने के नाते उन साम्प्रदायिक रुढ़ियों को जो समाजमें अशान्ति फैलाती हैं, जो अनुभव और बुद्धिगम्य होने से रहित हैं, मेरा बहुत कम विश्वास है। स्वामी जी ने कहा— सनातन धर्म के ग्रन्थों का अध्ययन है वह विश्वहितकारी, सर्वदेशीय, सार्वभौमिः, सबकाल के लिये कल्याणप्रद है। धर्म व्यावहारिक समाज निर्माणमें, परम मानवता के निर्माणमें सफल सिद्ध हो चुका है। जिस का अध्ययन ऋषियों की पद्धति के अनुकूल ही सफल होगा। कर्म शुद्ध करने के लिये भाव संशुद्धि आवश्यक है। भाव संशुद्धि के लिये भारतीय संस्कृति के अनुकूल वस्तु—व्यक्ति क्रिया संस्कार उपसंस्कार से संस्कृत होना शास्त्रीय विधानके अनुकूल है। स्वामीजी ने कहा—हमारे यहां अध्यात्म विद्यापीठ है—यदि तुम चाहोगे तो उसमें प्रवेश करा दिया जायेगा। मैंने कहा— नियमों को समझकर मैं फार्म भरने का इच्छुक हूं। इसमें आपकी व्यवस्था में कोई खास बात है, तो उसको भी समझाने की कृपा की जाय। स्वामी ने कहा कि सनातन पद्धति में नूतन स्थान में प्रवेश करने से पहले सांस्कृतिक संस्कार होना आवश्यक होता है। जैसे मकान, कूप, बगीचे और खेत इसके फल ग्रहण करने से पहले उप संस्कार करने की पद्धति है। संस्कार से भाव शुद्ध होता है। गुरु शिष्य के भाव बिना अध्यात्म विद्या नहीं आती।

मैंने कहा कि कान फूंकने का साम्प्रदायिक ढोंग तो आपके यहाँ नहीं होता है ? स्वामी जी ने कहा—ढोंग उसे कहते हैं जो शुभ कर्म समाज को ठगने के लिये किया जाता है। जिस शुभ कर्म का उद्देश्य पवित्र होता वह शास्त्र विधि से किया हुआ कर्म व्यक्ति और समाजके लिये कल्याणप्रद होता है। मैंने कहा कि तो क्या मन्त्र दीक्षा लेना क्या कोई संस्कार है? स्वामी जी ने कहा हां ! मैंने कहा कि मैं इस प्रणाली को स्वीकार कर सकता हूं, किन्तु यदि इसका उद्देश्य व्यक्ति और समाज के लिये अहितकर सिद्ध हुआ तो मैं जीवन भर विरोध करूंगा। मैं आप पर विश्वास करता हूं कि यदि

दीक्षा से मेरा कल्याण हो सकता है तो मैं इसी समय से स्वीकार करता हूं। संक्षेप में मेरा दीक्षा संस्कार भी उस समय हो गया। मैंने स्वामी जी का पता ठिकाना नोट कर लिया। जून की छुट्टियों में मिलूंगा, वचन दे दिया। कानपुर के शुक्लागन्ज में समय पाकर उपस्थित हो गया।

स्वामी जी शिक्षित समाज के मध्य में आश्रम पर उपदेश दे रहे थे। स्वामी जी की समझाने की शैली से उत्तरोत्तर मेरी श्रद्धा बढ़ती जा रही थी। असमीप व्यवहार को देख कर न समझने के कारण कभी कभी बड़ी शंकाएं उत्पन्न हो जातीं थीं। गुरुदेव ने प्रेम भरे शब्दों में कहा कि समझाने के लिये शंकाओं को मेरे समक्ष रखना तुम्हारा कर्तव्य एवं अधिकार है। यहां से मेरे साथ अमुक तारीख को ऋषिकेश चलो वहां बहुत से विद्यार्थी शिक्षा के लिये ठहरते हैं, उन्हीं के साथ तुम्हारी शिक्षा भी हो जाएगी। वहां एक दो पुस्तकें पढ़ने को दी गयीं। पढ़ाई की विचित्र पद्धति और व्यवहार को देख कर एक दो बड़ी २ शंकायें उत्पन्न हो गयीं जो अंग्रेजी शिक्षा पद्धति से बिल्कुल उल्टी थीं। जैसे माटी सेवा, विद्यार्थियों से मजदूरों जैसा कार्य कराना। प्रसाद का आचार्य के समक्ष केन्द्रित हो जाना। बांटने के समय अधिक विषमता को देखकर शंका ही नहीं बल्कि एक बड़ा भारी क्षोभ हुआ—जिससे खिन्न चित्त हो एकान्त में निवेदन किया कि गुरुदेव, आपके व्यवहार से जितनी ही उत्कट श्रद्धा बढ़ती है, उतनी असमीप लोगों की उपेक्षा से नित्य स्वाहा होती रहती है।

गुरुदेव ने उत्तर दिया—यह तुम्हारी दोष दृष्टि, घृणित भावना को बढ़ाने वाली तुम्हारे उद्देश्य को पूरा नहीं होने देगी। तुम आश्रमीय व्यवस्था से गलत धारणा लेकर घर जाओगे—जिसका परिणाम तुम्हारे और आश्रम के लिये हानिकर होगा।

ठीक है गुरुदेव, यदि इसमें आप मेरा ही दोष समझते हैं तो कठिन से कठिन साधन कराइये, दोष रहित निर्मल दृष्टि बनाइये। आपने तो बिगड़े हुए लोगों को बनाने का व्रत ले रक्खा है। मेरी अध्ययन करने की उत्कट अभिलाषा है—मैं आपकी कठिन से कठिन आज्ञा पालन का करूंगा। मैं कष्ट सहने से घबड़ाता नहीं। किन्तु कृपा करके समझाते जाइये। इस समय मैं क्या करूं।

स्वामी जी ने कहा—तुम प्रायश्चित्त करो। बड़े लोगों को बुरी

भावना से देखना, सनातन धर्म की दृष्टि में पाप समझा जाता है। मैंने कहा कि प्रायश्चित्त क्या होता है? गुरुदेव ने कहा—मनुस्मृति पुस्तकालय से लाओ, उसके सहारे तुम्हें समझा दूंगा। 'भगवन् ऋषि प्रणाली में मुझे अटूट श्रद्धा है—यदि शास्त्र में न लिखा होगा तो मुझे विश्वास न होगा।

मैं मनुस्मृति पुस्तकालय से ले आया। उसमें प्रायश्चित्त लिखा देखा और उसे करने को तत्पर होगया। 'गुरुदेव ने कहा—कि शास्त्र विरुद्ध मैं जीवन पर्यन्त कभी आज्ञा नहीं दूंगा। धर्म नीति के अनुसार ही धर्म शिक्षा सफल हो सकती है। विद्यार्थी के लिये मनु ने कहा है कि भिक्षा आदि में जो कुछ भी वस्तु लाये वह आचार्य के समक्ष प्रस्तुत कर दे—जितनी मात्रा में वें जिसको प्रसाद रूप से दे देवें उसमें सन्तुष्ट रहे—यदि कभी कभी सहन शक्ति बढ़ाने के लिये तीन दिन तक भोजन भी न दें तो तितिक्षा बढ़ाने के लिए यह घटना की गई है—इसमे निर्दयता कारण नहीं है ऐसा सोचे। ऋषि पद्धति से ऐतिहासिक बहुत सी घटनायें हुई है। प्रत्येक पदार्थ और क्रिया का प्रयोग और सदुपयोग हो सकता है—दुष्ट दुरुपयोग और सज्जन सदुपयोग करते हैं। यह स्वाभाविक बात है। मेरी दोनों शंकायें दूर हो गईं। मैंने व्रत लिया कि आज की प्रतिज्ञा जीवन पर्यन्त निभाऊंगा। प्रसाद के न मिलने पर विवाद नहीं करूंगा। और आज आपने उपवास करने का प्रायश्चित्त बतलाया है, मैं आश्रम की सेवा करते हुए २४ घण्टे का उपवास करूंगा।

दूसरे दिन प्रातःकाल ४ बजे गुरुदेव भगवान् छत पर मिले और पूछा कि प्रायश्चित्त का प्रभाव तुम्हारे हृदय पर क्या पड़ा? मैंने कहा भगवन्, बहुत लाभ हुआ। आश्रमीय लोगों से जो घृणा की भावना थी वह स्नेह के रूप में परिवर्तित हो गई। दोष दृष्टि गुण के रूप में हो गई। मैंने कहा—भगवन्! मेरे सुधार के लिए जीवन में जब जब आवश्यकता हो तो प्रायश्चित्त कराते रहियेगा। मेरी श्रद्धा कभी कम नहीं होगी। मैं तो उसे आपकी महती कृपा ही समझूंगा। उस दिन से छुट्टियों भर कोई खिन्नता नहीं आई—परन्तु अन्य खिन्न चित्त विद्यार्थियों की शङ्का समाधान करता था और समझाने का कुछ प्रभाव भी पड़ता था। मैं वहां से सानन्द कानपुर के शुक्लागन्ज आश्रम पर वापस आ गया। गुरुदेव ने डी॰ए॰वी॰ कालेज

कानपुर में भरती हो जाने की आज्ञा दे दो। आपने कहा शुक्लागन्ज में धर्म की स्थापना हो रही है। तुम उसके विद्यार्थी हो जाओ और भौतिक आध्यात्मिक दोनों विद्याओं में उत्तीर्ण होने का प्रयास करो।

यह मेरे जीवन की एक झांकी है। मैं डी०ए०वी० कालेज कानपुर से बी०ए० उत्तीर्ण होकर अब दर्शन शास्त्र का गहराई से अध्ययन कर रहा हूं। स्वामी जी की छत्र छाया में मेरे जीवन का नित्य प्रति विकास हो रहा है। सनातन धर्म का मौलिक रूप स्वामी जी की कृपा से समझने का प्रयास कर रहा हूं। जैसे जैसे हृदय शुद्ध होता जाता है, वैसे वैसे सनातन धर्म की विशेषताएं हृदयंगम होती जाती हैं। श्री जगदाचार्य जी ने मेरा शतशः शंकाओं का समाधान करके मेरे जीवन को उपयोगी बना दिया।

इस समय में स्वामी जी के साथ छाया की भांति रहता हुआ सनातन धर्म का तात्विक अध्ययन करता हूं तथा इन्हीं की प्रेरणा से हिन्दू प्रार्थना समिति, गौरव प्रकाशन समिति तथा नैतिक शिक्षा परिषद् का मंत्रित्व का भार भी सहन कर रहा हूं। मेरे लिये पद का कोई मूल्य नहीं, मूल्य है साधना का। यदि मैंने जीवन की सफलता मोक्ष (परम सुख) प्राप्त कर लिया तो सब कुछ प्राप्त कर लिया। भौतिक वस्तु धन सम्पत्ति, पुत्र लाभ, पद सम्मान से शान्ति नहीं मिलती—शान्ति मिलती है निर्वासनिक होने से श्री जगदाचार्य जी के दो विशेष सूत्रों ने मेरे जीवन को आमूल परिवर्तित कर दिया।

(१) जब लगि आशा अर्थ की, तब लगि सबको दास।
तबै दास सब होत है, जब चित्त होई निराश।।

(२) जिस बुद्धि में प्रतिक्रिया होती है, वह छोटी बुद्धि है।

मेरी दृष्टि से श्री जगदाचार्य जी युगद्रष्टा हैं, सच्चे सन्त हैं, तथा अध्यात्म विद्या के प्रकाण्ड पंडित हैं। मैं यह भी कह सकता हूं कि स्वामी जी ने सनातन-धर्म के वास्तविक स्वरूप को समझा है। सनातन धर्म समाज की सुखद पद्धति है, यह उनके जीवन में चरितार्थ है।

•••०O०•••

श्री नैमिष व्यास-पीठ

गुरु शिष्य परम्परा,
प्रबन्धाधिकारी,
मठाम्नाय (आचार
संहिता) महानुशासन
संविधान और
विरुदावलि

आध्यात्मिक उपलब्धियों के संस्थानों और पट्ट शिष्यों की परम्परा

भारत वर्ष में अनादिकाल से आध्यात्मिक संगठनों के दृढ़ीकरण और प्रचार-प्रसार के लिये पट्ट शिष्यों की परम्परा का विस्तार होता रहा है--यह तथ्य पुराणेतिहास ग्रन्थों से और आम्नाय प्रबन्धों से सुप्रसिद्ध है । श्री जगदाचार्य महाराज ने भी इसी स्वस्थ परम्परा के अनुसार अपने संस्थानों का दायित्व अपने अनेक पट्ट शिष्यों पर आरोपित किया है ।

वैदिक संहिताओं के रक्षक चार पट्टशिष्य

श्रीकृष्ण द्वैपायन व्यास ने वेदों की रक्षा के लिये चार पट्ट शिष्यों का आवाहन किया था, यह रहस्य भी श्रीमद् भागवत (१२।६।४७-५३) में विस्तार पूर्वक लिखा है, यथा—

तासां स चतुरः शिष्यानुपाहूय महामतिः ।
एकैकां संहितां ब्रह्मन्नैकैकस्मै ददौ विभुः ।
पैलाय संहितामाद्यां बाह्वृचाख्यां ददौ विभुः ।
वैशंपायन-संज्ञाय निगदाख्यं यजुर्गणम् ।
साम्नां जैमिनये प्राह तथा छन्दोगसंहिताम् ।
अथर्वाङ्गिरसीं नाम स्वशिष्याय सुमन्तये ।।

अर्थात्—व्यास जी ने अपने चार चतुर शिष्यों को बुलाकर एक-एक को वेद संहिता प्रदान की । पैल को ऋग्, वैशंपायन को यजुः, जैमिनि को साम और सुमन्तु को अथर्व ।

इन प्रधान शिष्यों के अतिरिक्त उक्त चार संहिताओं को भी शाखा प्रशाखाओं के रूप में अपने विभिन्न ग्यारह सौ इकत्तीस शिष्यों और प्रशिष्यों में विभक्त किया जिससे कि विस्तृत वेद राशि के अमुक भाग का एक एक शिष्य भली प्रकार संरक्षण कर सके ।

पुराणसंहिता के रक्षक छः पट्ट शिष्य

इतिहासपुराणानां पिता मे रोमहर्षणः ।
त्रैय्यारुणिः कश्यपश्च सावर्णिरकृतव्रणः ॥
वैशंपायनहारीतौ षट वै पौराणिका इमे ।

अर्थात्—व्यास जी ने (नैमिष व्यासपीठ की परम्परा में) पुराण संहिता की रक्षा के लिये रोमहर्षण सूत को अपना पट्ट शिष्य नियत किया और रोम हर्षण जी ने त्रैय्यारुणि, कश्यप, सावर्णि, अकृतव्रण, वैशंपायन और हारीत नामक छः पट्ट शिष्यों को पुराण संरक्षा का भार समर्पित किया ।

आद्य शङ्कराचार्य के चार पट्ट शिष्य

यह सर्व विदित है कि आद्य शंकराचार्य महाराज ने अपने संस्थापित प्रधान चार धर्मपीठों पर अपने विभिन्न चार पट्ट शिष्यों को अभिषिक्त किया था जिनके नाम (१)सुरेश्वराचार्य (२) पद्म पादाचार्य (३) हस्तामलकाचार्य और (४) तोटकाचार्य थे । आज भी उक्त चारों पट्ट शिष्यों की परम्परा ही पूर्व में (१) गोबर्द्धन मठ, दक्षिण में (२) शृंगरी मठ, पश्चिम में (३) शारदा मठ, और उत्तर में (४) ज्योतिर्मठ के रूप में प्रतिष्ठित है ।

पश्चात् इन चार पीठों के अतिरिक्त काशी, रामेश्वर, भानुपुरा और नैमिष आदि स्थानों में धर्म प्रचार सौकर्य्य के लिये उपपीठों की स्थापना हुई ।

श्रीरामानुज सम्प्रदाय के आठ पट्ट शिष्य हैं जो अष्टदिग्गज नाम्ना जगद्गुरु पद पर प्रतिष्ठित हैं । इसी भांति अन्यान्य सम्प्रदायों के भी आचार्यों ने अपने अनेक पट्ट शिष्यों पर अपना कार्य भार आरोपित किया था ।

उक्त अनादि परम्परानुसार व्यासपीठाधीश्वर श्री जगदाचार्य महाराज ने भी अपने मनोनीत पट्ट शिष्यों को अपने द्वारा सञ्चालित ऋषिआश्रमों के सञ्चालन का भार सौंपा है । चल और अचल सम्पत्तियों का संरक्षण सार्वजनिक निधि के रूप में तत्तत्समितियें करेंगी और समितियों के सहयोग से तत्तत् संस्थानों का संरक्षण संचालन और अभिवर्द्धन पट्ट शिष्य करेंगे ।

सम्प्रति अध्यात्म विद्यापीठ नैमिष का प्रबन्ध श्री स्वामी विवेकानन्द सर-

स्वती पर आरोपित है और अखिल भारतीय हिन्दू प्रार्थना समिति का भार श्री शौनक जी ब्रह्मचारी बी० ए० को सौंपा गया है। इसी प्रकार लखनऊ, कानपुर, आदि स्थानों के ब्रह्मचर्य्याश्रमों के संचालन का कार्य तथा गौरव प्रार्थना आदि पत्र पत्रिकाओं के संचालन का दायित्व श्री विज्ञानपूजन (चाचा जी) आदि महानुभाव संभाले हुये हैं। श्री जगदाचार्य महाराज ने अपनी भावना के अनुसार अपने समस्त प्रतिष्ठानों की ऐसी सुव्यवस्था की है कि जिससे इस सार्वजनिक सम्पत्ति का सर्वजन-हिताय ही सदैव प्रयोग होता रहे।

मठाम्नाय

आद्य शंकराचार्य महाराज ने मठों की स्थापना व्यवस्था तथा मठाधीशों के कर्तव्य आदि का निरूपण अपने 'मठाम्नाय सेतु' नामक ग्रन्थ में विस्तार पूर्वक किया है। यद्यपि यह पूर्ण ग्रन्थ अभी उपलब्ध नहीं है तथापि उज्जयिनी के श्री दाजी नागेश धर्माधिकारी ने 'निर्णय सागर प्रेस' बम्बई से सं० १९४८ विक्रमी में जो 'मठाम्नाय' प्रकाशित किया है वह आचार्य्य का 'महानुशासन' मानो मठाधीशों के लिये 'आचार संहिता' ही है। उसमें लिखा है कि 'सर्वाभ्युदय का मूल धर्म है और वह आचार्य पर अवलम्बित रहता है इसलिए श्रेष्ठ आचार्य का शासन सब शासनों से बढ़कर है।

स्वराष्ट्रस्य प्रतिष्ठायै संचारः सुविधीयताम्।
मठे तु नियतो वास आचार्य्यस्य न युज्यते।
यतो विनष्टिर्महती धर्मस्यात्र प्रजायते।
मान्द्यं सन्त्याज्यमेवात्र दाक्ष्यमेव समाश्रयेत्।

शुचिर्जितेन्द्रियो वेद-वेदाङ्गादिविशारदः।
योगज्ञः सर्वशास्त्राणां स मदास्थानमाप्नुयात्।

अस्मत्पीठसमारूढ़ः परिब्राडुक्तलक्षणः।
अहमेवेति विज्ञेयो यस्य देव इतिश्रुतेः।

केवलं धर्ममुद्दिश्य विभवो बाह्यचेतसाम्।
विहितश्चोपकाराय पद्मपत्रनयं व्रजेत्॥

उक्तलक्षणसम्पन्नः स्याचेन्मत्पीठभाग्भवेत्
अन्यथारूढपीठोपि निग्रहार्हो मनीषिणाम् ।।

अर्थात्—धर्म पीठाधीश को उचित है कि वह अपने धर्म राष्ट्र की उन्नति के लिये निरन्तर परिभ्रमण करता रहे। धर्माचार्यों को चातुर्मास्य के अतिरिक्त मठ में निरन्तर बैठे रहना उचित नहीं है। क्योंकि धर्माचार्यों के आलस्य के कारण संसार में धर्म की बहुत बड़ी हानि होती है इसलिये धर्माचार्यों को आलस्य छोड़कर दक्षता का आश्रय लेना चाहिये। पवित्र आचरण, जितेन्द्रिय, वेद वेदाङ्ग आदि शास्त्रों में निष्णात और समस्त शास्त्रों का समन्वयात्मक तत्ववेत्ता जो व्यक्ति हो वही मेरे पीठ का अधिकारी होना चाहिये। उक्त लक्षण सम्पन्न जो सन्यासी मेरे पीठ पर आरूढ़ हो उसे मेरा ही प्रतिरूप समझना चाहिये क्योंकि 'यस्य देवे पराभक्ति' आदि श्रुति ने ऐसा आदेश दिया है। केवल धर्म के उद्देश्य से ही (छत्रचामारादि) वैभव सर्व साधारण के परिज्ञानार्थ कल्पित हैं परन्तु धर्माचार्य को उससे पद्म पत्र की भाँति सर्वथा अलिप्त ही रहना चाहिये। यदि पूर्वोक्त लक्षणों से युक्त महात्मा हो तो वही मेरे पीठ का अधिकारी हो सकता है, यदि वह तादृश गुण युक्त न हो तो बुद्धिमानों को अधिकार है कि वे पीठारूढ़ अयोग्य व्यक्ति का निग्रह करें।

आद्यशंकराचार्य का यह अनुशासन आज राजाश्रय के विना शिथिल पड़ गया है, तभी तो धर्मपीठों पर अयोग्य व्यक्ति भी उसे अपनी पैत्रिक सम्पत्ति समझ कर हथियाने लगे हैं। वस्तुत: धर्म पीठ विशुद्ध जनतान्त्रिक प्रतिष्ठान है। उसपर योग्य व्यक्ति ही आरूढ होना चाहिये। श्री जगदाचार्य महाराज ने उपर्युक्त अनुशासन को ही शिरोधार्य किया है। आप व्यवहार में जहां 'कुसुमादपि मृदु' हैं वहां अनुशासन के पालन में 'वज्रादपि कठोर' हैं। आपकी इस धर्म दृढता के कारण ही कई शिष्य अनुशासित हुये हैं। अनुशासन हीनता की उपेक्षा आपका सहज स्वभाव है।

(१) यूं तो पुराण महाभारत आदि ग्रन्थों के प्रमाणानुसार नैमिष व्यास-पीठ समस्त धर्म-पीठों से पुरातन है परन्तु विगत प्रयाग कुम्भ पर्व के अवसर पर महात्मा गणों ने इसका पुनरुद्धार करके इसे 'नैमिष व्यास पीठ' नाम से ही संज्ञित किया है।

(२) उक्त पीठ के अधीश्वर की उपाधि 'जगदाचार्य' नियत की गई है।

(३) शांकर सम्प्रदाय का विश्वासी कोई भी पञ्चोपासक कुलीन सदाचारी विद्वान् विरक्त ब्राह्मण उक्त पीठ का धर्माचार्य हो सकता है। संप्रति यह पद श्री स्वामी नारदानन्द सरस्वती महाराज को प्रदत्त है।

(४) भविष्य में एतदर्थ जनमत विद्वत्परिषत् और गुरु शिष्य परम्परा तीनों का समन्वय अभीष्ट होगा।

(५) पीठ के प्रधान देवता चक्रतीर्थस्थ श्री व्यासेश्वर भगवान् होंगे।

(६) पीठ की अधिष्ठात्री देवी क्षेत्रस्थ श्री ललिताम्बा महामाया होंगीं।

(७) सिंहासन, छत्र, छड़ी, चांवर आदि उपकरण पीठाधीश्वर के लौकिक बाह्य चिह्न रहेंगे परन्तु अभ्यन्तरत: सन्यासाश्रम के समस्त नियमोपनियम अनिवार्य्य होंगे।

विरुदावलि

श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य्या: यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार धारणा ध्यान समाधि अष्टाङ्गयोग-युक्ता: श्रुति-स्मृति-पुराणेतिहास-प्रतिपादित-धर्मनिष्ठा:, वर्णाश्रमधर्म-संरक्षण-विचक्षणा:, धर्मप्रसारार्थ-संस्थापितानेकर्ष्याश्रमा:, गोमती-तीरवासिन: श्रीचक्रतीर्थस्थ-व्यासेश्वरपूजका: श्री ललिताम्बार्चा-परायणा: श्री नैमिष-व्यास-पीठाधीश्वरा: श्रीमज्जगदाचार्या विजयन्ते तराम्।

द्वितीय खण्ड

(रोचक उपयोगी कथा उपाख्यान)

विषय-सूची

क्रमाङ्क लेखक पृष्ठ

संस्कृत कवितामय कथा कहानी

१. सुनीति चरितम् । १

२. राम भक्त हनुमान् ८

३. राम हनुमान् युद्ध १६

४. जीते जीत भगत अपने की । २२

५. भक्त विदुरानी २६

६. दानवीर कर्ण । २९

७. धन्ना जाट । ३३

८. काल करे सो आज कर । ४१

९. अपनी भूल ठीक करो । ४६

१०. जन्म जात चतुर और मूर्ख । ४९

११. असली और नकली भक्त ५७

१२. प्रभु के अनन्त उपकार । ६२

१३. भवसागर तरणार्थी । ६५

१४. दूध पीने वाले मजनू । ७०

१५. भक्त रविदास । ७३

१६. मीरा बाई । ८५

१७. अतिथिदेवो भव । ९१

१८. हरि अनाथ के नाथ (१) । १०१

१९. भक्त कबीर । १०७

२०. विश्वास का फल । ११२

२१. नौ करोड़ मूल्य का स्वांस । ११७

२२. युक्ति पूर्ण शिक्षा । १२१

२३. मन जीते जग जीत । १२७

२४. यज्ञ ही जीवन है । १३०

२५. फणीन्द्र चरितम् । १३४

२६. हरि अनाथ के नाथ (२) । १३९

२७. मूर्ख कौन है ? १४२

२८. कुल तारिणी बहूरानी । १५०

२९. गुरुकृपा । १५७

३० सत्य का बोलबाला झूठे का मुंह काला । १६३

३१. अन्धे के अनुरागी अन्धे । १७०

३२. प्रसङ्ग से ही तात्पर्य समझ में आ सकता है । १७३

३३. शरणागत जन माया को तर जाते हैं । १७७

३४. रामानुज स्वामी की जन कल्याण भावना । १८०

३५. बलि का पूर्वजन्म । १८३

३६. गुप्त रहस्य गुरु द्वारा ही प्राप्य । १८६

३७. मैं कौन हूं ? १९२

३८. पते की बात से मन बदल जाता है । १९७

३९. मां का दिल । १९९

४०. गुरु अर्जुन देव की जल समाधि । २०१

४१. गुरु तेग बहादुर का सिर कटवाना । २०३

४२. भगवान् केवल भाव के भूखे हैं । २०६

४३. विधाता की भूल की खोज २०९

४४. समर्थ स्वामी रामदास २१२

४५. शिवाजी ने औरंगजेब को छकाया । २१४

४६. शिवाजी की लोकोत्तर मानवता २१५

४७ पुरोहित का आत्म बलिदान । २१७
४८. राणा प्रताप और शक्तिसिंह का पुनर्मिलन । २१९
४९. वन बिलाव घास की रोटी ले भगा । २२१
५०. जाति बहिष्कृत देश द्रोही । २२४
५१. झालावाड़ नरेश का आत्म बलिदान । २२६
५२. चारण का स्वाभिमान । २२८
५३. गंगा से विवाह । २२९
५४. डायर से बदला । २३०
५५. महाराजा रणजीत सिंह की उदारता । २३४
५६. क्षणिक कुसंगति का फल । २३६
५७. भ्रम से अनर्थ । २३६
५८. धर्म से सुख । २३८

प्रकीर्ण

सुनीति-चरितम्

(भक्त ध्रुव की तपस्विनी माता)

श्रीव्यासदेवः सुयशःप्रशस्तिं जगौ पुराणेषु मुदा यदीयाम् ।
अखण्डभूमंण्डलकीर्त्यकीर्तिरुत्तानपादः स बभूव सम्राट् ॥१॥

अर्थ—भगवान् व्यास ने पुराणों में जिसकी कीर्ति का गान किया है ऐसा समस्त भू-मण्डल पर शासन करने वाला उत्तानपाद नाम का राजा हुआ।

सती सुशीलास्य नृपस्य पत्नी सुनीतिनाम्नी जगति प्रसिद्धा ।
जनश्रुतिख्यापितभावगम्यं प्रस्तूयते तच्चरितं सुरम्यम् ॥२॥

अर्थ—उस राजा की सुनीति नाम की सर्वगुण सम्पन्न पत्नी थी। उन्हीं दोनों का जगत्प्रसिद्ध चरित्र हम प्रस्तुत करते हैं।

शचीन्द्रतुल्यौ वरदम्पती तावन्योन्यसंसक्तविशुद्धचित्तौ ।
समृद्धसाम्राज्यसुखोपभोगैः कान्तं वयः सस्मरतुर्न यान्तम् ॥३॥

अर्थ—इन्द्र और इन्द्राणी की तरह सुखी उस राजा और रानी ने समृद्ध साम्राज्य का उपभोग जी भर कर किया। इस तरह राजसी सुखोपभोगों में उनका यौवन कब बीत गया यह भी वे न जान पाए।

अथैकदा प्राह नृपं सुनीतिः स्वामिन् ! व्यतीतं सुवयो मदीयम् ।
जातो न ते वंशधरः सुतो मे तस्माद्विधेयो ह्यपरो विवाहः ॥४॥

अर्थ—एक बार सुनीति ने राजा से कहा—प्राणनाथ ! मेरी युवावस्था बीतती जा रही है किन्तु आपके वंश के दीपक को मैं उत्पन्न न कर सकी, अतः वंश वृद्धि के लिए आप दूसरा विवाह कर लें।

सा वार्यमाणापि नृपेण राज्ञी स्वयं प्रयत्नादवृणोत्सपत्नीम् ।
राजा तदीयां सुरुचिं विदित्वा तेनैव नाम्ना ह्यभणन्नवोढाम् ॥५॥

अर्थ—राजा के बार-बार मना करने पर भी सुनीति ने हठात् राजा का विवाह निश्चित कर दिया। राजा ने भी इस विषय में सुनीति की सुन्दर रुचि को देख कर भावि पत्नी का सुरुचि ही नाम निश्चित कर लिया।

वधूप्रवेशोत्सवमंगलानि सर्वाणि सम्पाद्य सुनीतिदेवी ।
आदाय हस्ते जलपूर्णकुम्भं जगाम नेतुं सुरुचिं प्रहृष्टा ।।६।।

अर्थ—नव-वधू के गृह-प्रवेश के समय होने वाले सम्पूर्ण मंगल कृत्यों का सम्पादन करके महारानी सुनीति जल-पूर्ण कलश लेकर सुरुचि की अगवानी करने गई।

द्वाःस्था नवोढा शिविकाधिरूढा सखीमुखेनैतदुवाच भूपम् ।
मुखं दिदृक्षामि न दुर्भगायाः निःसार्यतां राजगृहात्सपत्नी ।।७।।

अर्थ—महल के दरवाजे पर ही खड़ी पालकी में बैठी सुरुचि ने सखी के द्वारा राजा से कहा—मैं इस अभागिन सुनीति का मुंह भी नहीं देखना चाहती। इसे राज-महल से तुरन्त निकलवा दो।

राजा सुरुच्या वचनेन भग्नः आदर्शकर्तव्यविवादमग्नः ।
हा हा कृतं पौरजनैः सखेदम् जानाति को भाविविधानभेदम् ।।८।।

अर्थ—राजा को सुरुचि की यह उक्ति सुनकर अत्यन्त विषाद हुआ, वह किं-कर्त्तव्य-विमूढ़ हो गया। समस्त जनता भी सुरुचि को धिक्कारने लगी। परन्तु विधि के भावि-विधान को कौन जान सकता है।

परं सुनीतिर्हिमवच्छिलाभा दृढा सुधीरा स्वपतिं प्रणम्य ।
आश्वास्य चैनां मनसा नवोढां दूरस्थमेकान्तगृहं जगाम ।।९।।

अर्थ—इतना सब कुछ हो जाने पर भी सुनीति हिम-शिला की तरह दृढ़ रही। उसने धैर्यपूर्वक अपने पति को प्रणाम किया और सुरुचि को अन्तःकरण से आशीर्वाद देकर नगर से बाहर एकान्त भवन में चली गई।

तपस्विनी तत्र हरिं भजन्ती यथा तथा स्वं नयति स्म कालम् ।
रुचिर्महत्पातकदुष्प्रभावात् न प्राप सन्तानसुखं तथापि ।।१०।।

अर्थ—बेचारी सुनीति उस एकान्त भवन में ही भगवान् का भजन करती हुई अपना समय बिताने लगी। उधर इस महान् पाप के परिणामस्वरूप सुरुचि भी सन्तान का मुंह न देख सकी।

गतेऽथ कालेऽकथयन्नरेन्द्रं सा चण्डिका क्रोधपरिप्लुताङ्गी।
यावत्पुरे तिष्टति दुर्भगा सा तावत्क्व सौख्यं क्व धनं क्व पुत्रम् ॥११॥

अर्थ—इसी प्रकार कुछ समय बीत जाने पर एक बार सुरुचि ने गुस्से से लाल-पीली होते हुए राजा से कहा—जब तक यह अभागिन सुनीति इस नगर में रहेगी तब तक मुझे सुख, चैन, धन-दौलत एवं सन्तान सुख कैसे हो सकता है।

सन्तानयत्नं कथितं ममाग्रे कापालिकैः सिद्धमहेन्द्रजालैः।
कान्तारमाविश्य वसेत्सपत्नी रसान् त्यजेच्छुष्कयवान्नभोक्त्री ॥१२॥

अर्थ—मुझे इन्द्रजाल ज्ञाता कापालिक योगियों ने सन्तान प्राप्ति का उपाय बतलाया है कि तुम्हारी सौत रस रहित शुष्क यवान्न के सहारे जीवन बिताती हुई गहन जंगल में जाकर रहे।

अपावृतं गोदधिपूर्णभाण्डं धृत्वा पुरस्ताद्विजने वने सा।
यावद्दिनं रिक्तकरेण तूष्णीम् सदैव काकोड्डयने रता स्यात् ॥१३॥

अर्थ—और उस निर्जन वन में अपने सामने गाय के दधि से भरा पात्र रख कर चुपचाप बैठी हुई खाली हाथों से कौओं को उड़ाती हुई दधि की रक्षा करे।

इत्थं चतुर्दश समा ननु दुर्भगा सा
रक्षेद्दधि प्रतिदिनं सततं पुनीतम्।
स्नायां चतुष्पथपदे यदि तेन दध्ना
नूनं सुतो मम भवेदिति निश्चिनोमि ॥१४॥

अर्थ—इस प्रकार चौदह वर्षों तक निरन्तर यदि वह अभागिन दही की रक्षा करे एवं उसी दही से मैं चौराहे पर स्नान करूँ तो निश्चित ही मुझे पुत्र प्राप्ति होगी ऐसा मेरा विश्वास है।

वशानुगोऽसौ प्रबलाबलाया: श्रुत्वापि सर्वं न जगाद किञ्चित् ।
आहूय वामापि च कोटपालं आज्ञापयामास तथैव कर्तुम् ॥१५॥

अर्थ—प्रबल रानी के वश में हुआ राजा यह सब कुछ सुनकर भी इसका कुछ प्रतिकार न कर चुप ही रहा। तब सुरुचि ने स्वयं ही कोतवाल को बुलाकर यह सब इसी प्रकार करने की आज्ञा दे दी ।

तथा कृते दूतमुखेन चण्डी सुनीतिदेवीमिदमादिदेश ।
काकाश्च यावद्दधि भक्षयेयुस्तावद्ग्रिगृह्णामि तवैव रक्तम् ॥१६॥

अर्थ—इतना सब कुछ हो जाने पर उस चण्डी ने दूत द्वारा सुनीति देवी को यह आदेश दिया कि खबरदार ! कौवे जितनी दही खा जाएंगे मैं उतना ही तेरे शरीर से रक्त निकाल लूँगी ।

सा पूर्वजन्मार्जितपापमूलं मत्वा ह्यनर्थं प्रजहौ न धैर्यम् ।
शुभाय पत्युर्हरिमर्चयन्ती यथासुखं सर्वमिदं चकार ॥१७॥

अर्थ—सती सुनीति ने इस अनर्थ को अपने किसी प्राक्तन पाप का विपाक मानकर धैर्य न छोड़ा और अपने पति के कल्याण के लिये भगवान् का भजन करती हुई अपनी सौत की आज्ञानुसार यह सब कार्य करती रही ।

इत्थं गतेषु च चतुर्दशहायनेषु
सिंहासनं निखिललोकपतेश्चचाल ।
नारायण: सरसिजासनया सनाथ:
यात: सुनीतिसविधे द्विजरूपधारी ॥१८॥

अर्थ—इसी प्रकार करते २ जब चौदह वर्ष बीत गये तो जगत्पति भगवान् का आसन डोलने लगा । भगवान् नारायण लक्ष्मी को साथ लेकर ब्राह्मण के वेश में सुनीति के पास गये ।

दृष्ट्वातिथिं द्विजवरं ललनासमेतं
भक्त्या प्रणम्य चरणौ तरुपल्लवानाम् ।
दत्त्वासनं यवफरम्भफलोपहारै:
रर्घ्यादिभिश्च विधिवत् ह्यकरोत्सपर्याम् ॥१९॥

अर्थ—सुनीति ने सपत्नीक ब्राह्मण अतिथि को देखा तो प्रणाम किया,

कोमल किसलयों के आसन पर बिठाकर उनकी अर्घ्यादि से विधिवत् पूजा की और जौं के सत्तू एवं वन्य फलों से उनका स्वागत किया।

उवाच तन्वी तपसा कृशांगी जन्माद्य जातं सफलं मदीयम्।
न चातिथिर्वै विजने वनेऽस्मिन् क्व भूसुरः क्वास्ति सतीदृशी वा।२०।

अर्थ—इसके बाद तप से कृश शरीर वाली सुनीति ने कहा—महाराज! आज मेरा जन्म सफल हो गया। इस निर्जन वन में अतिथि के दर्शन कहां हो सकते हैं, फिर आपसे सदाचारी विद्वान् ब्राह्मण और ऐसी पतिव्रता ब्राह्मणी तो कहाँ प्राप्य हैं?

परीक्षतुं स्त्रीहृदयं मुकुन्दः सुनीतिदेवीमिदमाह वाक्यम्।
ज्योतिर्विदां श्रेष्ठतमोऽस्मि भद्रे संपृच्छयतां भूतभविष्यतत्त्वम्॥२१॥

अर्थ—अन्तर्यामी भगवान् ने स्त्री हृदय की परीक्षा करने के लिये सुनीति देवी से कहा—भद्रे! मैं एक प्रसिद्ध ज्योतिषी हूँ तुम अपना भूत भविष्य कुछ पूछना चाहो तो पूछ लो।

संस्मर्यते भूतमभूतपूर्वं प्रत्यक्षमेवास्ति च वर्तमानम्।
वेत्तुं भविष्यं परास्मि सोत्का दधिक्षयापद् हृदयं दुनोति॥२२॥

अर्थ—यह सुनकर सुनीति ने कहा—महाराज! मुझे अपना अभूतपूर्व भूतकाल भली भाँति स्मरण है। और यह वर्तमान मेरे सामने है ही, हाँ मैं अपने भविष्य को जानने की इच्छा अवश्य रखती हूं किन्तु मुझे डर है कि कौवे दही न खा जायँ।

संकेतेन हरेः सरोजनिलया स्थित्वा सुनीत्यासने,
श्रीः काकोड्डयिनी बभूव भगवद्भक्तेर्महत्वं परम्।
देवी साञ्जलि संस्थितं द्विजवरं पप्रच्छ लज्जान्विता,
पुत्रं मे भगिनी कदा नु सुरुचिः संप्राप्स्यते ब्रूहि तत्॥

अर्थ—इतना सुनकर भगवान् ने लक्ष्मीजी को संकेत से सुनीति के आसन पर बैठ जाने को कहा। भगवान् की आज्ञा से लक्ष्मी जी तो कौवे उड़ाने लगी और सुनीति ने अञ्जलि बाँध कर लज्जापूर्वक पूछा—भगवन्! मेरी बहिन सुरुचि को पुत्र प्राप्ति कब होगी?

दैवज्ञदेवोऽङ्गुलिपर्वदेशे साङ्गुष्ठपातैर्गणयन्नुवाच ।
वन्ध्यैव लोके सुरुचिर्म्रियेत जनिष्यते ते तनयो वरिष्ठः ।।२४।।

अर्थ—दैवज्ञश्रेष्ठ भगवान् ने अंगुलियों की पोर पर अपने अंगूठे को बार-बार रखकर गणना का अभिनय करते हुए कहा—सुरुचि तो वन्ध्या ही संसार से चली जाएगी, हाँ तू अवश्य एक तेजस्वी पुत्र को उत्पन्न करेगी ।

भो भो ब्राह्मण ! किं त्वया निगदितं त्यक्तास्मि पत्या चिरात्,
दुर्भाग्येण वने वसामि विजने नैतद्धि संभाव्यते ।
धन्ये ! भूपतिरेकदा नु मृगयासंगेनमार्गाच्च्युतो,
रात्रौ श्रान्त इहैष्यति श्रमयुतो दैवेन संप्रेरितः ।।२५।।

अर्थ—इतना सुनकर अत्यन्त चकित हुई सुनीति ने कहा—हे ब्राह्मण ! यह आप क्या कह रहे हैं मुझे तो अर्सा बीत गया पति ने वन्ध्या होने के कारण छोड़ रखा है । अपने इस दुर्भाग्य के कारण ही मैं निर्जन वन में पति से दूर रह रही हूँ । तब आपका यह कहना किस प्रकार संभव हो सकता है ? इतना सुनकर द्विज-भेष-धारी भगवान् ने कहा—शुभे ! चिन्ता न करो, किसी समय राजा शिकार के पीछे रास्ता भूलकर दैववश रात्री के समय परिश्रम से थका माँदा यहाँ आ निकलेगा ।

बुभुक्षितो ह्यत्स्यति यावकान्नं श्रान्तो निशीथे तु शयिष्यते च ।
सन्दिह्यते चेन्मम पश्य रूपं नाहं द्विजः किन्तु जगन्निवासः ।।२६।।

अर्थ—भूख से पीड़ित राजा यहाँ जौं का सत्तू खाएगा और रात को यहीं विश्राम भी करेगा। मेरे कथन में यदि तुम सन्देह करती हो तो इधर देखो मैं साधारण ब्राह्मण नहीं हूँ अपितु जगन्नियन्ता भगवान् हूं ।

ततः सुनीतिः शतःसूर्यसन्निभं गदारिशंखाब्जयुतं चतुर्भुजम् ।
पीताम्बरं दिव्यमहार्हभूषणं ददर्श विष्णुं कमलालयान्वितम् ।।

अर्थ—इसके बाद सुनीति ने शत सूर्य समान चतुर्भुज भगवान् विष्णु को देखा जिनके चारों हाथों में शंख चक्र गदा पद्म शोभित हो रहे थे। जिन्होंने दिव्य भूषण पहन रखे थे और लक्ष्मी जी वाम भाग में शोभित हो रही थीं ।

प्रीतोऽस्मि भद्रे ! तपसा तवाहं क्रीतश्च लोकोत्तरसंयमेन ।
न त्वत्कृते किंचिददेयमस्ति यदीप्सितं याच वरं त्वमघ्न्ये ! ॥२८॥

अर्थ—भगवान् नारायण ने चकित सुनीति से कहा—भद्रे ! मैं तुम्हारे लोकोत्तर, संयम और तपस्या से अत्यन्त प्रसन्न हूँ। तुम्हारे लिये कुछ भी अदेय नहीं है अपना इच्छित वर माँगो।

त्वद्दर्शनं सर्ववरप्रसूतिः सर्वं मयाऽयाचितमद्यलब्धम् ।
तथापि याचे यदनुग्रहेण दृष्टोऽसि सा स्यात्सुरुचिः सपुत्रा । २९॥

अर्थ—सुनीति ने कहा—भगवन् ! आपका दर्शन मात्र ही सम्पूर्ण वरों का पूरक है इसलिये आपका दर्शन पाकर मैंने बिना मांगे ही सब कुछ पा लिया। फिर भी इतनी याचना है कि जिस सुरुचि की दया से मैंने आपके दर्शन का सौभाग्य प्राप्त किया वह एक पुत्र की माता अवश्य बन जाय।

तथास्तु भद्रे ! ननु दारुसंगात् अयोऽपि लोके तरतीति सिद्धम् ।
भविष्यसि त्वं ध्रुवभक्तमाता तथोत्तमः स्यात्सुरुचेः कुमारः ॥३०॥

अर्थ—भगवान् बोले—भद्रे ! तुम वास्तव में धन्य हो लकड़ी के साथ लोहा भी तैर जाता है यह बात प्रसिद्ध ही है। जैसा तुमने कहा वैसा होगा तुम भक्त ध्रुव की माता बनोगी और सुरुचि के भी उत्तम नामक बालक उत्पन्न होगा।

इत्थं निगद्य नवनीरदनीलगात्रः पद्मायतामललसन्नयनाभिरामः ।
आश्वास्य पाणिकमलेन तदा सुनीतिमन्तर्दधे सरसिजासनया समेतः॥

अर्थ— इस प्रकार मधुर वाणी में सुनीति को समझा कर नवीन मेघ के समान कान्ति वाले कमल-लोचन भगवान् नारायण भगवती लक्ष्मी के साथ अन्तर्धान हो गये।

[समय पाकर भगवान् के कथनानुसार परमतपस्विनी रानी सुनीति के गर्भ से भगवद्भक्त ध्रुव का जन्म हुवा।]

भक्तापमानस्य च नैव निष्कृतिः

(रामभक्त हनुमान्)

अहर्निशं यः किल रामचन्द्र-सेवारतो विस्मृतदेहगेहः ।
अनन्यदासो रघुनन्दनस्य प्रसीदतां स प्रभुराञ्जनेयः ॥१॥

अर्थ—अपने देह एवं गेह को भी भुला कर निरन्तर भगवान् रामचन्द्र की सेवा में संलग्न रहने वाले उनके अनन्य-सेवक भक्तवर हनुमान् जी [हम पर] प्रसन्न हों ।

यमाह रामो हि 'तवोपकाराः जीर्णत्वमायान्तु मदङ्ग एव' ।
शत्रुघ्नतो वा भरतात्तथा वा त्वं लक्ष्मणादप्यधिकः प्रियो मे ॥२॥

अर्थ—जिन भक्तवर हनुमान्जी को भगवान् रामचन्द्रजी ने कहा था कि—[हे कपिवर !] तुम्हारे किये हुए उपकार मेरे अंग में ही जीर्ण हो जाएँ, [अर्थात्—तुम कभी ऐसी विपत्ति में ही न पड़ो कि जब मुझे तुम्हारा प्रत्युपकार करने का अवसर मिले] और तुम मुझे शत्रुघ्न, भरत अथवा लक्ष्मण से भी अधिक प्रिय हो ।

प्रभातकृत्येषु पुरः स्थितः सदा मध्याह्नकार्येषु तथैव तत्परः ।
सायन्तनेष्वप्यतिदत्तमानसः श्रीरामसेवां विदधाति मारुतिः ॥३॥

अर्थ—भगवान् के प्रातःकालीन कृत्यों में हनुमान् सदैव सामने खड़े दीखते थे मध्याह्न कालीन एवं सायंकालीन कामों में भी वे तथैव मनोयोग पूर्वक तत्पर रहते थे । इस प्रकार वे भगवान् श्री रामचन्द्र की निरन्तर सेवा करते थे ।

तदस्य वीरस्य महासपर्यया ह्यलब्धसेवावसराः प्रभोः प्रियाः ॥
सौमित्रिसीताभरतादयो जनाः चक्रुः समेताः खलु गुप्तमन्त्रणाम् ॥

अर्थ—इस प्रकार हनुमान् की इस गाढ़ भक्ति एवं सेवा-परायणता से लक्ष्मण, सीता तथा भरत आदि भगवान् के प्रिय भक्त जब भगवान् की सेवा से वञ्चित रहने लगे तब उन्होंने सम्मिलित होकर गुप्त मन्त्रणा की ।

उवाच सौमित्रिरयं हि मारुतिः
प्रियोऽपि मेऽसह्यतमोऽस्ति साम्प्रतम् ।
यद्धेतुना नित्यमहोऽस्मि वञ्चितः
श्रीरामपादाब्जपवित्रसेवया ॥५॥

अर्थ—सुमित्रा-कुमार शत्रुघ्न जी बोले—हनुमान् जी यद्यपि मेरे अत्यन्त प्रिय हैं किन्तु अब उनका यहाँ रहना मुझे असह्य है इन्हीं के कारण मैं भगवान् राम की चरण-कमल की सेवा से वञ्चित हो रहा हूँ ।

उवाच सीतोपकृतास्म्यनेन स्नेहेन मद्दत्तवरोऽपि नूनम् ।
तथापि भर्तुर्ह्यतिसेवयाऽयं न रोचते संप्रति मे पुरेव ॥६॥

अर्थ—भगवती सीता ने कहा—यद्यपि हनुमान् ने मेरा परम उपकार किया है और मैंने इसे वरदान भी दिया है फिर भी भगवान् की इस अत्यधिक सेवा के कारण हनुमान् मुझे पहले की तरह अब अच्छा नहीं लगता ।

निःश्वस्य दीर्घं भरतोऽब्रवीद्वचो वाच्यो न वै यद्यपि रामसेवकः ।
तथाप्ययं मारुतिरद्य निन्द्यतेऽन्तरायभूतो रघुनाथसेवने ॥७॥

अर्थ—दीर्घ निश्वास लेकर भरत जी बोले—यद्यपि राम के भक्त की निन्दा नहीं करनी चाहिये किन्तु हनुमान् जी हमारे लिये विघ्न-स्वरूप हो गये हैं जो, हमें भगवान् की सेवा से वञ्चित कर रहे हैं ।

ऊचे सरोषं किल लक्ष्मणस्तदा शिक्ष्यो ह्ययं संप्रति जंगलेचरः ।
दैनन्दिनं यत्प्रभुपादसेवनं स्वयं हि सर्वैरपि संविभज्यताम् ॥८॥

अर्थ—[इस प्रकार सबके मनोभावों को सुन कर] रोषपूर्वक लक्ष्मणजी कहने लगे—इस जंगली हनुमान् को अवश्य सबक सिखाना चाहिए । हमें प्रभु की दैनिक चरण-सेवा के कार्य को आपस में बाँट लेना चाहिये ।

आर्या पुनः श्रीरघुनाथभार्या वयं हि सभ्रातर एव सर्वे ।
तथापि सर्वानतिशय्य वन्यः संसेवते देवपदं कथं नु ।।६।।

अर्थ—आर्या विदेहनन्दिनी भगवान् की अर्धाङ्गिनी है, हम सब प्रभु के सहोदर भ्राता हैं ही, फिर भी यह वनचर हम सब को मात करके भगवान् की सेवा कैसे कर सकता है ?

तथाकृते ब्राह्ममुहूर्तकालादारभ्य संवेशमिताश्च सेवा ।
स्वीकृत्य सर्वैर्नियता स्वनाम्ना प्रवञ्चितो मारुतिरीर्ष्ययैकः ।१०।

अर्थ—ऐसा निश्चय हो जाने के बाद सबने ब्राह्म-मुहूर्त से लेकर रात्रि शयन तक के समस्त सेवा-कार्यों को अपने-अपने नामोल्लेखपूर्वक विभाजित कर लिया, अकेले—हनुमान् जी ही ईर्ष्या के कारण भगवान् की सेवा से वञ्चित कर दिये गये ।

अथ प्रभाते हनुमांश्च नित्यवत्,
रामे प्रबुद्धे प्रभुपादके शुभे ।
प्रदातुकामः स्पृशतिस्म तत्क्षणं
निषिध्य तं लक्ष्मण आददे स्वयम् ।।११।।

अर्थ—तदन्तर अगले दिन प्रातःकाल नित्य की तरह ज्योंही हनुमान् जी भगवान् के जाग जाने पर पादुकाएँ देने की इच्छा से उन्हें उठाने को उद्यत हुवे त्योंही हनुमान को ढकेलकर झट से लक्ष्मण जी ने वे पादुकाएँ स्वयं भगवान् के सम्मुख रख दीं ।

गण्डूषकृत्यै जलपूर्णकुम्भं,
यावद् ग्रहीतुं हनुमान्नियेष ।
तावज्जवाद् हस्तगतं तु पात्रं,
आहृत्य शत्रुघ्न उपस्थितो द्राक् ।।१२।।

अर्थ—भगवान् को कुल्ला कराने के लिये हनुमान् जी ज्योंही जलपूर्ण कलश को उठाने लगे, त्योंही आगे बढ़कर शत्रुघ्नजी ने कलश उनके हाथों से छीन लिया और स्वयं उसे लेकर झट भगवान् के सम्मुख उपस्थित हो गये ।

स्नानप्रबन्धे जनकात्मजां स्थिता-
मुपासनायां भरतं कृतोद्यमम् ।
सर्वासु सेवासु कृतप्रयत्नकान्,
संवीक्ष्य संवीक्ष्य सुविस्मितः कपिः ।।१३।।

अर्थ—स्नान का प्रबन्ध सीता जी कर रही थीं। पूजा के समय स्वयं भरतजी विद्यमान थे। इस प्रकार सभी कार्यों में किसी न किसी को तत्पर देख कर हनुमान् जी अत्यन्त चकित हो गये।

तं व्याकुलं वीक्ष्य कृपापरिप्लुता,
सीताऽवदत्पुत्र किमत्र चिन्त्यते ।
रात्रौ सभायां भरतादिभिः स्वयं,
तत्तत्प्रभोः सेवनमात्मसात्कृतम् ।।१४।।

अर्थ—हनुमान् को चिन्तातुर देखकर दयार्द्र हो भगवती सीता ने बतलाया—वत्स ! इसमें चिन्ता की क्या बात है। कल रात सभा करके भरतादिकों ने प्रभु के तत्तत् कार्यों को स्वयं करना निश्चित कर लिया है।

प्रणम्य पप्रच्छ मरुत्सुतो यदा,
का नाम सेवा मम भागतां गता ।
तदा हसन् लक्ष्मण आह सत्वर-
महो ! कपे ! त्वन्तु सुविस्मृतिं गतः ।।१५।।

अर्थ—विनत होकर हनुमान् जी ने जब पूछा—कि मेरे हिस्से में कौन सेवाकार्य आया है तो लक्ष्मण जी ने मुस्कराकर कहा—अरे ! हनुमान्जी ! तुम्हें तो हम सर्वथा भूल ही गए।

ज्ञात्वा रहस्यं हनुमान् शुशोच ह,
मां वञ्चितुं ह्येष कृतो महोद्यमः ।
सा जानकी हा भरतः स लक्ष्मणः
सर्वेऽप्यहो ! किं मम वञ्चने रताः ।१६।

अर्थ—असल रहस्य को समझ जाने के बाद हनुमान् जी ने मन ही मन विचार किया कि यह सब मुझे प्रभु सेवा से वञ्चित करने को ही जाल रचा गया है। दुःख है कि [पूर्व उपकृत] वह माता सीता वह भरत और वह लक्ष्मण ये भी मेरे विरुद्ध षड्यन्त्र में सम्मिलित हैं।

रुदन् सखेदं शिशुवत्स मारुतिः
यावत्प्रभोः संस्मरति स्म मानसे।
तावत्महाकारुणिकेन केनचित्
हृदि स्थितेनैष विबोधितः स्वयम्।१७।

अथ—इतना सुनकर हनुमान् जी बालक की तरह विलख-विलख कर रोने लगे और मन ही मन भगवान् का स्मरण करने लगे। तभी हृदय-स्थित अत्यन्त करुणाशील किसी अज्ञात शक्ति ने उन्हें सब कुछ समझा दिया।

उवाच भूयो हनुमान् अहोऽखिला
भवद्भिरर्चाः खलु ह्यात्मसात्कृता।
परं प्रभोर्जृम्भणकाल आगते
को नाम भक्तस्त्रुटिकां प्रदास्यति।१८।

अर्थ—फिर हनुमान् जी ने सोच विचार कर कहा—अच्छा! आप लोगों ने भगवान् की सभी सेवाएँ अपने आधीन कर ली हैं किन्तु यह तो बताइये कि जब भगवान् जंभाई लिया करेंगे उस समय आप में से चुटकी कौन भक्त बजाएगा?

यदाऽवदन्नैष तु निश्चयः कृतो मुदान्वितः प्राह तदाशु मारुतिः।
इयं नु लघ्वी प्रभुपादवन्दना ह्यद्य प्रभृत्येव मयोररीकृता।१९।

अर्थ—जब सब बोले कि इसका तो निश्चय वास्तव में नहीं किया गया, तो तुरन्त हनुमान् जी प्रसन्न होकर बोल उठे कि अच्छा प्रभु की यह छोटी सी अवशिष्ट सेवा आज से मैं किया करूंगा।

तथाकृते स्नान उपासनेऽशने सभा-प्रवेशे गमनेऽथ विश्रमे।
छायेव रामानुग एव मारुतिः भ्रमन् प्रयातः शयनाजिरं प्रभोः।२०।

अर्थ—ऐसा निश्चय हो जाने के बाद इस विचार से कि न जाने भगवान् कहाँ जंभाई ले बैठें, उस समय चुटकी बजाने के लिये मेरा वहाँ होना आवश्यक है हनुमान् जी स्नान, पूजन, भोजन, सभास्थल, गमन, विश्राम सब जगह छाया की तरह भगवान् का अनुगमन करते हुए आखीर शयन के समय भगवान् के शयनागार में भी जा पहुँचे।

विलोक्य सीता चकिता कपोशं, अचिन्तयन्नायमिहैति पूर्वम्।
पुरा दिवा ह्येष करोति सेवां किं साम्प्रतं स्थास्यति नक्तमत्र।२१।

अर्थ—रात्रि के समय शयनागार में श्री हनुमान् जी को उपस्थित देख कर सीता जी चकित हो गईं। सोचने लगीं पहले तो हनुमान् दिन में ही भगवान् की सेवा किया करता था रात में तो वह कभी शयनागार में नहीं आता था, अब क्या यह रात में भी यहीं रहेगा।

उवाच भोः पुत्रक! गम्यतामितो न स्त्रीनिवासेषु विशन्ति वर्णिनः।
नत्वाब्रवीन्मारुतिरम्ब! साम्प्रतं मदीयसेवावसरः समागतः॥२२॥

अर्थ—सीता जी ने कहा—वत्स! अब तुम यहाँ से जाओ! क्योंकि ब्रह्मचारियों को स्त्रियों के निवास-स्थल में प्रवेश नहीं करना चाहिये। हनुमान् जी ने विनम्र होकर कहा—अम्ब! आप ठीक कह रही हैं किन्तु वास्तव में मेरा सेवा-काल तो अभी आया है।

स्नानादिकानां समयोऽस्ति निश्चितो मदीयसेवावसरः सदातनः।
प्रायेण रात्रौ भवतीह जृम्भणं तस्मान्मया स्थेयमिहैव साम्प्रतम्।

अर्थ—भगवान् के स्नान आदि क्रियाओं का समय तो निश्चितप्राय ही है, किन्तु मेरा सेवा का समय सार्वकालिक है और जंभाई तो अधिकतया रात्रि के समय ही आया करती है अतः अब तो मेरा यहाँ रहना परमावश्यक है।

भीता तु सीता भरतञ्च लक्ष्मणं शत्रुघ्नमाहूय जगाद सत्वरम्।
प्रभोस्तु जृम्भापगमार्थमेष इह, विलोक्यतां मत्सदने स्थितः कपिः।

अर्थ—यह सुनकर सीता जी डरीं और भरत, लक्ष्मण, तथा शत्रुघ्न को बुलाकर कहा—देखो तो जरा, प्रभु की जंभाई के समय चुटकी बजाने के लिये हनुमान् मेरे कमरे में अड्डा जमाए पड़ा है।

चिन्तातुरान्वीक्ष्य तदा प्रभुः स्वयं उवाच प्रेम्णा हनुमन्तमादरात् ।
यावद् वदेन्नैव कपे ! तव त्रुटिः तावन्न जृम्भा मम गच्छ साम्प्रतम् ।

अर्थ—भरतादि सब भक्तों को चिन्तातुर देखकर भगवान् स्वयं आदरपूर्वक हनुमान् जी से कहने लगे—कपिश्रेष्ठ ! सुनो जब तक तुम चुटकी नहीं बजाओगे तब तक मुझे जंभाई आएगी ही नहीं इसलिए अब तुम निश्चिन्त होकर जाओ !

एवं सहर्षं प्रभुणोपदिष्टो निजाश्रमं प्राप कपिः प्रहृष्टः ।
जगौ सतालं प्रभुरामकीर्तिं संवादयन् स्वाँ त्रुटिकाँ करेण ।२६।

अर्थ—इस प्रकार भगवान् की आज्ञा प्राप्त करके प्रसन्न होकर हनुमान् जी अपनी कुटिया में चले गये और वहाँ ताल-पूर्वक अपने दोनों हाथों से चुटकी बजाते हुए ध्यानमग्न होकर भगवान् का कीर्तन करने लगे ।

इतः कपीशः प्रभुकीर्तने रतो यथा यथा वादयति त्रुटिं मुहुः ।
तथा तथा वै कनकाजिरे स्थितो जृम्भाभिभूतो रघुनन्दनोऽभवत् !

अर्थ—प्रभुकीर्तन में तन्मय हनुमान् जी इधर जैसे २ चुटकी बजाते थे वैसे ही उधर अपने काञ्चन-भवन में स्थित भगवान् रामचन्द्र मारे जंभाइयों के परेशान हो गये ।

जृम्भाकुलं वीक्ष्य विदेहनन्दिनी रामानुजाः मातृसुहृज्जनास्तथा ।
चिन्तातुराः प्राहुरहो महामयः श्रीराघवं पीडयति प्रतिक्षणम् ।

अर्थ—भगवान् को इस प्रकार अन्धाधुन्ध जंभाई लेते देख सीता जी, माता कौशल्या, लक्ष्मण आदि तीनों भाई एवं अन्य सुहृज्जन सभी चिन्तातुर होकर विचारने लगे कि न जाने यह कैसा रोग है जो भगवान् राम को पीड़ित कर रहा है ।

कपेस्तु सा कीर्तनतत्परस्य विजृम्भतः श्री रघुनन्दनस्य ।
चिन्तातुराणां भरतादिकानां इत्थं समग्रा रजनी व्यतीता ।२९।

अर्थ—इस प्रकार यह सब की सब रात हनुमान् जी की कीर्तन करते हुए, भगवान् राम की जंभाई लेते हुए, एवं भरत आदि भक्तों की उपचार सेवा में जागरण करते हुए व्यतीत हो गई ।

ब्राह्मे मुहूर्ते प्रजपन् हरेर्यशः साकेतपूराजपथि भ्रमन् मुदा ।
श्रीनारदः काण्डमिदं निशम्य हि गत्वा कपिं प्राह च कीर्तने रतम् ।।

अर्थ—ब्राह्म मुहूर्त के समय भगवान् के यशोगान में तत्पर देवर्षि नारद को अयोध्या की सड़कों पर घूमते हुए उपयुक्त काण्ड का पता लगा तो उन्होंने जाकर हनुमान् जी से कहा ।

भो ! भो ! कपे त्वत्त्रुटिवादनेन जृम्भाकुलो दुःखमवाप रामः ।
सद्यः प्रबुद्धः पवनात्मजस्तु मत्वा स्वदोषं हृदि लज्जितोऽभूत् ।३१।

अर्थ—हे कपिप्रवर ! आपके निरन्तर चुटकी बजाने से जंभाई लेते २ भगवान् का बुरा हाल है । इतना सुनते ही हनुमान् जी को होश आया और अपना दोष समझ कर अत्यन्त लज्जित हुए ।

व्रीड़ाविनम्रो रघुराजमेत्य स श्रीपादयोः संपतितोऽत्यवाङ्मुखः ।
निरामयः श्रीरघुनन्दनस्तदा पस्पर्श भालं निजपाणिना कपेः ।।

अर्थ—लज्जा से विनम्र हनुमान् जी भगवान् के पास जाकर उनके पाँवों में गिर गये । जृम्भा रूप रोग से मुक्त होकर भगवान् स्नेह पूर्वक हनुमान् जी के सिर पर हाथ फिराने लगे ।

उवाच रा,। भरतादिसेवकान् भक्तापमानस्य हि दुष्फलं महत् ।
रुग्णोऽस्मि जातो मम चिन्तया तथा सर्वेऽपि यूयं नितरां प्रपीड़िताः ।।

अर्थ—भरत आदि अपने भक्तों से भगवान् ने कहा कि देखो भक्त के अपमान करने का परिणाम कितना भयंकर होता है । मुझे जंभाई का रोग लग गया और तुम सब भी मेरी चिन्ता से अत्यधिक पीड़ित हुए ।

तस्मान्न वाच्यो हनुमान् कदापि वा ममात्मभूतः किल वायुनन्दनः ।
क्षन्तुं समर्थोऽस्मि निजापकारकं भक्तापमानस्य च नैव निष्कृतिः ।

अर्थ—इसलिये भविष्य में कभी भी हनुमान् की निन्दा नहीं करनी चाहिये वह तो मेरा आत्मभूत अनन्य भक्त है । मैं अपने अपराधी को तो क्षमा कर सकता हूँ पर अपने अनन्य भक्त के अपमान को कभी क्षम्य नहीं समझता ।

रामनामजपतां कुतो भयम्

(राम हनुमान् युद्ध)

'अणोरणीयान् महतो महीयान्' नाशङ्कनीयोऽत्र विरोधदोषः ।
सर्वातिशायी भगवान् जनेभ्यः स्वसेवकेभ्यस्तु स वै लघीयः ।१।

अर्थ—"अणोरणीयान् महतो महीयान्" अर्थात् परमात्मा छोटे से भी छोटा है, और महान् से महान् है' इस श्रुति उक्ति में विरोध की आशंका नहीं करनी चाहिये क्योंकि प्रभु जनसाधारण से महत्तम हैं पर अपने भक्तों के सामने लघुत्तम [अत्यन्त छोटे] बन जाते हैं ।

नाम्नो महत्त्वं खलु नामिनोऽधिकम् राद्धान्त एषः श्रुतिसारगर्भितः ।
श्रीनारदः साधु विचित्रलीलया व्यक्तीचकारेति विदन्तु पाठकाः ।

अर्थ—'नाम की महत्ता व्यक्ति से अधिक है' ये श्रुति सम्मत सारगर्भित सिद्धान्त है । देवर्षि नारद ने एक बड़ी रोचक घटना के द्वारा इस तथ्य का स्पष्टीकरण किया था, पाठकों को यह बात ज्ञात हो जानी चाहिये ।

श्रीरामजन्मर्क्षमहामहोत्सवे निमन्त्रिता ब्रह्मविदो महर्षयः ।
सामन्तराजन्यमुखाः प्रजाजनाः साकेतपुर्य्यां बहवः समागताः ।३।

अर्थ—अयोध्या में श्री रामचन्द्र जी के 'जन्म दिवस के उपलक्ष्य में वर्ष गाँठ का महोत्सव मनाया जा रहा था । उसमें बड़े २ ब्रह्मज्ञानी, महर्षि, राजा, महाराजा, सामन्त तथा प्रजाजनों को निमन्त्रित किया गया था ।

साधारणे सर्वजनाधिवेशने स्थितेषु सर्वेषु यथानुशासनम् ।
समागतो गाधिसुतस्तपोधनो देवर्षिवर्य्यो मुनिनारदस्तथा ।४।

अर्थ—जनसाधारण के लिये भी प्रवेश योग्य एक आम अधिवेशन हो रहा था । सब अपने २ स्थानों पर मर्यादा और अनुशासन से बैठे हुए थे । इसी समय महर्षि विश्वमित्र और देवर्षि नारद सभा भवन में पधारे ।

यथाक्रमं तौ प्रणमत्सु राजसु नृपं महेन्द्रं स तु कौतुकी मुनिः ।
अशिक्षयत् सर्वमुनीन् नमस्कुरु न वन्दनीयः कुशिकात्मजस्त्वया ।५।

अर्थ—सब राजा महाराजा सामन्त आदि उन दोनों को क्रमशः प्रणाम करने लगे । कौतुक भावना के वशीभूत हुए देवर्षि नारद ने महेन्द्र नामक राजा को बहका दिया कि तुम अन्य सब ऋषि मुनियों को प्रणाम करना किन्तु कौशिक विश्वामित्र को नहीं करना ।

न ब्राह्मणोऽयं निज-जन्म-कर्मभिर्महाध्वरे हव्यविपर्ययोद्भवः ।
विशुद्ध-वंशेन भवादृशा कथम् एषोऽभिवाद्यः खलु राजसंसदि ।६।

अर्थ—क्योंकि ये न जन्मना ब्राह्मण हैं और न कर्म से ही किन्तु ये तो महायज्ञ में हवि की अदला-बदली के कारण क्षत्रिय क्षेत्र में उत्पन्न हुए हैं । फिर भला इस भरी राजसभा में आप सदृश शुद्ध क्षत्रिय कुल शिरोमणि के द्वारा ये कैसे प्रणम्य हो सकते हैं।

स वञ्चितो नारदपेशलोक्तिभिर्ववन्द सर्वानतिरिच्य कौशिकम् ।
क्रुद्धो महर्षिः कुशिकात्मजस्तदा जगाद रामं तव हीदृशी सभा ।७।

अर्थ—राजा महेन्द्र नारद की चिकनी-चुपड़ी बातों में आ गया और उसने अन्य सबको तो प्रणाम किया परन्तु एकमात्र केवल कौशिक को छोड़ दिया । महर्षि विश्वामित्र क्रोध से लाल पीले होते हुए—राम से बोले—"तुम्हारी यही सभा है !" ऐसे असभ्य लोग !!

नत्वा मुनिं श्री रघुनन्दनोऽवदत् क्षमस्व दोषं गुरुदेव ! मामकम् ।
निमन्त्रितोऽयं पुनरेतु साम्प्रतं नूनं वधिष्याम्यचिराद् विमूढधीम् ।

भगवान् राम ने श्री विश्वामित्रजी को सादर प्रणाम करते हुए कहा—गुरुदेव ! मेरे इस अपराध को क्षमा करो । इस समय तो यह नरेश निमन्त्रित है अतः इसे वापिस चले जाने दीजिए । परन्तु निश्चित ही मैं इस मूर्ख को अविलम्ब मार डालूंगा ।

सत्यं तवोक्तं यदि रामचन्द्र स्वप्रेयसस्त्वं शपथं कुरुष्व ।
अनन्यप्रेयस्तु ममाञ्जनेयः स वै प्रतिज्ञाप्रतिभूर्मदीयः ।।९।।

विश्वामित्र जी ने कहा—"राम ! यदि तुम सच कहते हो तो अपने

किसी प्रियजन की शपथ करो। राम ने उत्तर दिया कि मैं पवनपुत्र हनुमान् को ही अपना अनन्यप्रिय समझता हूँ। मेरी इस प्रतिज्ञा का वही शपथभूत साक्षी रहा।

त्रस्तो नृपो मृत्युभयेन नारदमुवाच मे कोऽपि न रक्षकोऽधुना ।
रामप्रतिज्ञाऽवितथा भुवस्तले हा हा ! हतोऽहं तव वाक्प्रतारितः ।

मौत को शिर पर मँडराते देख व्याकुल राजा महेन्द्र नारदजी से बोला—'अब मुझे कोई भी नहीं बचा सकता ! राम की प्रतिज्ञा त्रिभुवन में अटल है। हाय ! मैं आपकी बातों में आकर मारा गया।

स्मितो मुनिः प्राह न ते भयं क्वचित् त्वमाञ्जनेयं शरणं व्रजाधुना ।
रामप्रतिज्ञातवधं महातुरम् त्रातुं समर्था भुवि तस्य सेवकाः ।।११।।

नारद ने मुस्कराते हुए कहा—तुम कुछ भी भय मत करो। अभी हनुमान् जी की शरण में जाओ ! राम ने जिसको मार डालने की प्रतिज्ञा की हो उस भयत्रस्त प्राणी की राम के भक्त ही रक्षा कर सकते हैं।

दैवादिदानीं हनुमान् यशस्वी वसत्यभीक्ष्णं जननी कुटीरे ।
कुर्यात्त्रिवारं शपथं यदासौ तदा रहस्यं प्रकटीकुरुष्व ।१२।

—और तुम्हारे सौभाग्य से आजकल हनुमान् समीप ही अपनी माता की कुटिया में रह रहे हैं। जब वे तीन वार शपथ करलें, तब अपना पूरा रहस्य बताना।

तथाऽकरोन्नारदबोधितो नृपो मत्वाञ्जनेयः शरणागतं जनम् ।
अज्ञातवृत्तः शपथं चकार ह रामस्य तद्रक्षणहेतवे कपिः ।।१३।।

राजा महेन्द्र ने नारद की सम्मति के अनुसार ही किया। हनुमान् जी भी शरणागत समझ कर पूरा रहस्य बिना जाने ही उसकी रक्षा के लिए, राम की शपथ उठाकर प्रतिज्ञा कर बैठे।

ततः परेद्युः प्रभु रामचन्द्रः प्राप्तो महेन्द्रस्य पुरीं प्रभाते ।
चापे समाधाय शरं महोग्रम् समुद्यतो दोषकृतो वधाय ।।१४।।

अगले दिन राम ने प्रातःकाल होते ही राजा महेन्द्र की नगरी में पहुँच कर और धनुष पर भयंकर बाण को चढ़ाकर, अपराधी को दण्ड देने की तैयारी की।

संज्ञातकाण्डोऽपि कपिस्तदानीम् सत्यं विधातुं शपथं स्वकीयम् ।
कृत्वा स्वपृष्ठे नृपतिं महेन्द्रम् गदां समुद्यम्य रणाय तस्थौ ।।१५।।

हनुमान् जी यद्यपि तब सारा रहस्य समझ गये तथापि वे अपनी शपथ को सत्यता के साथ पूर्ण करने के लिए—राजा महेन्द्र को अपनी पीठ पर चढ़ाकर गदा घुमाते हुए युद्ध के लिए राम के सामने डट गये ।

जगाद रामो हनुमन् ! किमेतद् दण्डार्हमेनं त्यज शीघ्रमेव ।
बद्धप्रतिज्ञोऽस्य वधाय वीर ! तत्राऽप्यहं ते शपथेन बद्धः ।।१६।।

रामने हनुमान् को देखते ही कहा—हनुमन् ! यह क्या है ? इस दुष्ट को जल्दी छोड़ दो—यह दण्डनीय है । हे महावीर ! मैं तुम्हारी शपथ उठाकर इसको मारने की प्रतिज्ञा कर चुका हूं ।

क्षमस्व हे नाथ ! मयाप्यजानता कृता प्रतिज्ञा परिरक्षणाय ।
दुष्टोऽप्ययं मे शरणागतोऽस्ति तत्राऽप्यहं ते शपथेन बद्धः ।।१७।।

हनुमान् ने प्रार्थना के स्वर में कहा—'प्रभो ! क्षमा कीजिये । मैं अनजान पन में इसके रक्षण की प्रतिज्ञा कर चुका हूँ । यह दुष्ट होता हुआ भी मेरा शरणागत है । फिर मैंने भी तो आपके चरणों की शपथ ली है अतः प्रतिज्ञाबद्ध हूँ ।

दृढ़-प्रतिज्ञावथ तावुभावपि परस्परं सत्शपथेन यन्त्रितौ ।
स्थितौ समालोक्य तदारणाङ्गणे द्रष्टुं समेताः सुरनागकिन्नराः ।।

परस्पर एक-दूसरे की शपथ उठाकर की गई प्रतिज्ञा में आबद्ध होने के कारण हनुमान् और भगवान् राम युद्ध के लिये डट गए । इस अद्भुत घटन को देखने के लिये यक्ष, किन्नर, सुर-असुर आदि आकाश में आ विराजे ।

स्कन्धे समारोप्य नृपं कपीशः श्रीराम-मन्त्रं ह्यजपत् सघोषम् ।
रामेण मुक्ता इषवो विषाक्ताः क्षणेन ते तद्गदया निपीताः ।१९।

राजा महेन्द्र को कन्धे पर बैठाकर कपिराज जोर २ से श्रीराम नाम का कीर्तन करने लगे । राम के द्वारा छोड़े गए जहर में बुझे उन बाणों को हनुमान् की गदा ने पान कर लिया ।

यथा यथा चोद्यतकार्मुकः प्रभुर्वर्षत्यहो पन्नगसन्निभान् शरान् ।
तथा तथोच्चस्वरपूर्वकं कपिर्नृत्यत्यजस्रं हरिनाम कीर्तयन् ॥२०॥

श्रीराम भगवान् जितनी तीव्रता से सर्प के समान भयानक बाणों को बरसाते जाते थे उतने ही ऊँचे स्वर में हनुमान जी रामनाम संकीर्तन करते हुए नाचते थे ।

तद् वै धनुस्त इषवः स रथो हयास्ते
सोऽहं रथी युधि च येन हताः पिशाचाः ।
ते ते विराध-खर-दूषण बालिमुख्याः
व्यर्थीकृताः शरगणा गदयाऽनयाऽद्य ॥२१॥

श्रीराम सोचने लगे—वही धनुष है, वे ही बाण हैं, रथ और अश्व भी वही हैं, जिसने असंख्य-विराध-खर-दूषण बालि आदि शत्रुओं को मार मिटाया था मैं राम भी वही हूँ—पर इस गदा ने उन बाणों की शक्ति ही खींच ली !

इत्थं विचिन्तयति सूर्य्यकुलावतंसे
श्री नारदो नृपमिमं निभृतं जगाद ।
श्रीकौशिकं मुनिवरं प्रणमाशुशीर्ष्णा
सर्वान् क्षमापय निजानपराधकृत्यान् ॥२२॥

रघुवंश शिरोमणि राम के ये सोचने पर श्री नारद ने राजा महेन्द्र को चुपचाप समझाया—अति शीघ्र श्री मुनिवर, महर्षि विश्वामित्र को शिर झुकाकर साष्टाङ्ग प्रणाम करो—और उनसे अपने सम्पूर्ण अपराधों के लिये क्षमायाचना करो ।

तथा कृते कौशिक-नन्दनस्तदा न्यवर्तयत् श्रीरघुनन्दनं वधात् ।
स्वस्थो महेन्द्रो मुनिमाह नारदम् कोऽयं विनोदः परमृत्युकारकः ॥

राजा महेन्द्र की क्षमायाचना के अनन्तर विश्वामित्र जी ने श्रीराम को उसके वध से हटा दिया । स्वस्थ चित्त होने पर महेन्द्र ने नारद जी से कहा—

'दूसरों की जान पर बन आई और आपका मज़ाक रहा,' ये भी कोई बात हुई !

श्री नारदः प्राह जनाः शृणुध्वम् मीमांसितस्त्वद्य विनिर्णयोऽयम् ।
महद्धि रामादपि रामनाम नारायणाद् भागवता महान्तः ॥२४॥

देवर्षि नारद ने कहा—आज की इस घटना से इस बात का पूर्ण निर्णय हो गया है—कि राम का नाम राम से भी बड़ा है और नारायण के भक्त अपने इष्ट देव से भी महान् हैं ।

न मे भक्तः प्रणश्यति

(जीते जीत भगत अपने की हारे हार विचारों)

युद्धे पुरा कौरवपाण्डवानाम् दुर्योधनो भीष्ममुवाच तूष्णीम् ।
सेनापतित्वे मम निश्चितोऽपि युधिष्ठरस्यैव सहायकस्त्वम् ॥१॥

महाभारत का भयङ्कर युद्ध चला हुआ था। दुर्योधन बड़ी गम्भीरता से चुपचाप पितामह भीष्म से कहने लगा "आप मेरे सेनापति होते हुए भी युधिष्ठिर की ही सहायता करते हैं।"

भीष्मोऽवदत् त्वं खलु पापबुद्धिः स्वचक्षुषा पश्यति सर्वलोकम् ।
तथाप्यहं पाण्डुसुतेषु नूनम्, हन्तास्मि युद्धेऽन्यतमं तवारिम् ॥२॥

भीष्म जी ने उत्तर दिया तुम्हारी बुद्धि पर पाप का पर्दा पड़ा हुआ है—इसलिये प्रत्येक को अपने जैसा ही समझते हो। तब भी मैं कल तुम्हारे शत्रु पाण्डुपुत्रों में से किसी एक को अवश्य मारूँगा।

भीष्मप्रतिज्ञां जगति प्रसिद्धाम् निशम्य हृष्टाः खलु धार्तराष्ट्राः ।
पाण्डोः सुता एकतमे हते तु वह्निं प्रवेष्टुं कृतनिश्चयाश्च ॥३॥

विश्वविख्यात भीष्म प्रतिज्ञा को सुनकर सम्पूर्ण कौरव हर्षान्वित हो उठे। क्योंकि पाण्डुपुत्रों ने प्रतिज्ञा की हुई थी यदि हमारे में से कोई भी एक मर जायगा तो सब अग्नि में प्रवेश कर जायेंगे।

ब्राह्मे मुहूर्ते वसुदेवसुनुः प्राबोधयत् साञ्जलि याज्ञसेनीम् ।
ममानुगागच्छ शुभेऽद्य शीघ्रम् त्वं पालयित्री भव पाण्डवानाम् ॥४॥

प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त्त में ही भगवान् श्रीकृष्ण ने नम्रतापूर्वक द्रौपदी को जगाते हुए कहा—"कल्याणि! शीघ्र मेरे पीछे २ आओ, आज पाण्डवों की रक्षा करने वाली तुम्हीं बनो।"

अज्ञाततत्त्वाऽनुजगाम माधवम्,
दासीस्वरूपं सुकृतावगुण्ठनम् ।
कृष्णोऽपि संप्राप्य वितानमण्डपम्,
स्वयं स्थितो द्वारि जगाद तां स्वसाम् ॥५॥

द्रौपदी इस रहस्य को न समझती हुई दासी का वेश बनाये घूंघट से मुंह ढांपे कृष्ण के पीछे २ चल पड़ी । कृष्ण भी पितामह भीष्म के शिविर के निकट द्वार पर ही रुक कर पाञ्चाली से बोले -

अभ्यन्तरं गच्छ हरिं स्मरन्तम् पितामहं साधु नमस्कुरु त्वम् ।
लब्ध्वा च सौभाग्यवरं विपन्नान्, महाभयात्पालय पाण्डुपुत्रान् ॥६॥

अन्दर जाओ ! और भगवतस्मरण करते हुए पितामह को सादर नमस्कार करो । सौभाग्याशीर्वाद को प्राप्त करके आपत्ति में फंसे पाण्डुपुत्रों को इस महासंकट से उबारो ।

तथा कृते ध्यान-परस्तु भीष्मोऽभिवादयन्तीं सुभगां विलोक्य ।
सौभाग्यवृद्धिः सततं तवास्तु ददौ वरं तां सहसा तदानीम् ॥७॥

तब द्रौपदी ने श्रीकृष्ण जी के कथनानुसार पितामह भीष्म को जाकर प्रणाम किया । उन्होंने भी अभिवादन करती हुई सुभगा स्त्री को देखकर— 'तेरा निरन्तर सौभाग्य बढ़े' ऐसा वरदान तत्क्षण दे डाला ।

उवाच कृष्णा प्रणिपत्य भीष्मम् सत्यव्रतस्त्वं भुवि सत्यवादी ।
हन्तासि चेदेकतमं तदाहम् कथं भवेयं सुभगा सुपुत्रा ॥८॥

सौभाग्य वृद्धि का वरदान पाते ही द्रौपदी भीष्मजी को पुनः नम्रता से प्रणमन करती हुई कहने लगी 'आप सत्यव्रत हैं' भूतल में सत्यवादियों के शिरोमणि हैं, पर यदि पाण्डवों में से आप किसी भी एक को मार देंगे तो मैं सौभाग्यवती कैसे रह सकती हूँ —पुत्रवती कैसे बन सकती हूँ" ।

ज्ञात्वा रहस्यं चकितः पितामहः पप्रच्छ ते कुत्र स मार्गदर्शकः ।
यो मायया भ्रामयति चराचरम् तस्यैव चैषा प्रतिभाति कल्पना ।९।

इस रहस्य को जानकर आश्चर्यान्वित होते हुए भीष्म जी ने पूछा—

तुम्हारा वह मार्गदर्शक कहाँ है ? जो सम्पूर्ण विश्व को अपनी माया से नचा रहा है ! ये सारी योजना उसकी ही प्रतीत होती है ।

उत्थाय भीष्मो निजमण्डपाजिरे ददर्श कृष्णं सुकृतावगुण्ठनम् ।
चमत्कृत: प्राह हसन् तथास्थितम् नमो नमस्ते बहुरूपधारिणे ।१०।

भीष्मजी ने उटकर अपने पट मण्डप के आँगन में देखा तो कृष्ण लम्बा घूंघट निकाले दासी के वेष में खड़े थे । चकित होकर उन्होंने मुस्कराते हुए कहा—'हे बहुरूपियों के शिरमोर प्रभुवर ! आपको बारम्बार नमस्कार हो' ।

त्वं स्त्री पुमांस्त्वं च तथा कुमारस्त्वं वै कुमारीति' च वेदवाद: ।
त्वमेव दासोऽस्ति तथा च दासी किन्नामभूयस्त्वमसि प्रभो ! न ।११।

भगवन् ! 'त्वं स्त्री त्वं पुमानसि' इत्यादि श्रुतिवचनों के अनुसार आप ही स्त्री हैं, आप ही पुरुष हैं, तथाच कुमार और कुमारी भी आप ही हैं । परन्तु सम्पूर्ण दास-दासी भी आप ही हैं । प्रभो ! आप हैं क्या नहीं । सब कुछ आप ही तो हैं ।

बालोऽपि चौरो युवकोऽपिचौरस्तथाद्य दृष्ट: स्थविरोऽपि चौर: ।
म्लक्ष्णं हरन् भीष्मक-कन्यकाञ्च हरत्यहो ! सम्प्रति मे मनस्त्वम् ।।

मुरारे ! शैशव में नवनीत की चोरी की तुमने, युवावस्था में भीष्मक-नन्दिनी रुक्मिणी का अपहरण किया और अब प्रौढ़ता आने पर घूंघट में मुँह छुपाए मेरा मन चरा रहे हो । आपकी यह चोरी की आदत अभी तक भी छूट नहीं सकी !

यदापनेतुं यदुजाऽवगुण्ठनम् पीताम्बरं संवृणुते पितामह: ।
कृष्णापदत्रे हरिरक्षिते तदा विलोक्य तस्मिन् चकितोमहाव्रत: ।१३।

(घूंघट में छुपे हुए भगवान् के मुख कमल का दर्शन करने के लिए) भीष्मजी ने जब पीताम्बर खींचा तो उसमें छुपाई हुई द्रौपदी की पादुकाएँ देखकर आश्चर्यचकित रह गये ।

स हृष्टरोमा पुलकोद्गमेन सगद्गदं वाचमुवाच भूयः ।
कृष्णे ! यदीयः खलु रक्षकोऽयम् तस्यास्तु सौभाग्यचयोऽप्रधर्ष्यः ।

रोमाञ्चित हुए भीष्मजी गद्गद् वाणी में द्रौपदी से बोले—'द्रुपदजे ! जिसके. रक्षक स्वयं परब्रह्म प्रभु कृष्ण हैं। उसके अटल सौभाग्य पर क्या आंच आ सकती है ?

यस्याः पदत्रे ह्यपि विष्टरश्रवाः रक्षत्यहो ! कौस्तुभरत्नवद्धरिः ।
तस्याः द्विषः कौरवपक्षसार्थिनः कृतान्तदंष्ट्रापतिता न संशयः ।१५।

आश्चर्य है जिस नारी की पादुकाओं की भी भगवान् कृष्ण कौस्तुभमणि की भान्ति सुरक्षा कर रहे हैं—उसके सभी शत्रु और कौरव पक्ष के सभी महायोद्धा निश्चित ही काल के ग्रास बन चुके हैं इसमें कुछ भी संदेह नहीं !

◆

न वस्तु, भक्तिर्हि हरेर्मुदे भवेत्

(भक्त विदुरानी)

कृष्णो यदा पाण्डवदूतभूतोऽवमानितः कौरवमण्डलेन ।
हित्वा तदर्चां विदुराश्रमं स प्राप्तः पितृव्यं निजमाजुहाव ॥१॥

कृष्ण जब पाण्डवों के सन्धिदूत बनकर हस्तिनापुर में आए और दुर्योधनादि ने उनके पाँच गाँव मात्र देने के प्रस्ताव को भी ठुकरा दिया तो वे उनके स्वागत भोज का परित्याग करके विदुरजी के आश्रम में पहुंचे और चचा विदुर को पुकारने लगे ।

एकाम्बरा सा विदुरस्य पत्नी द्वारं पिधाय स्नपने प्रवृत्ता ।
कृष्णोदितं साध्वनुमीयशब्दं प्रेमाऽऽकुलाऽर्धस्नपितैव साध्वी ॥२॥
कपाटमुद्घाट्य विलोक्य विष्णुं निजोत्तरीयं परिकल्प्य पीठम् ।
न्यवेशयत्तत्र करं गृहीत्वा भक्त्या स्वपादं ह्यभिवादयन्तम् ॥३॥

केवल एक वस्त्र ढाँपे विदुरपत्नी अपना द्वार बन्द करके आँगन में स्नान करने लगी थी । भगवान् की आवाज भली प्रकार पहचानकर उस पतिव्रता ने प्रेम विह्वल होकर आधा स्नान किये हुवे ही किवाड़ खोल डाले, ज्योंही सामने समुपस्थित कृष्ण को देखा तो [उतावलेपन में] अपनी ओढ़नी को ही आसन के स्थान में बिछाकर भक्तिपूर्वक अपने पाँवों को छूकर अभिवादन करते हुवे भगवान् को हाथ पकड़कर उस पर बिठलाया ।

क्वाऽऽस्ते पितृव्यो ? विपिनं गतोऽसौ, कथं नु ? नेतुं ह्यशनं त्वदर्थम् ।
क्षुधाऽऽतुरोऽहं किमपि प्रयच्छ हा हा ! मृतो हन्त ! मृतो मृतोऽम्ब ! ।

[भगवान् ने पूछा]—चचा कहाँ गए ? [विदुरानी बोली—] वे तो वन में गए हैं । क्यों ? 'आपके लिए ही कन्द मूल फल लिवा लेने के लिए !' हाय ! हाय !! मैं तो भूखा मर रहा हूँ, अम्मा ! बस मरा !! ला ! कुछ भी खिला !

नान्यद् गृहे किमपि हन्त ! शलाटुचैतद्,
रम्भाफलं तद पिनीरसमेव तात !
शीघ्रं प्रयच्छ मम देहि मुखे तदेव
ह्यौदम्बरं लघुफलं क्षुधितस्य वानम् ।।

[विदुर जी ने कहा—] दुःख है, तात ! आज घर में अन्य कुछ भी नहीं है, केवल ये कुछ कच्चे केले हैं और वे भी बिल्कुल नीरस हैं [भगवान् बोले—] अरी ! ला ! यहीं ला ! तू ही मेरे मुख में जल्दी दे ! भूखे को तो निश्चित ही गूलर के तुच्छ फल भी मेवा ही बन जाते हैं ।

सा विह्वला तस्य मुखे फलानां, त्वचं ददौ नापि च सारभागम् ।
निमील्य नेत्रे समुदं व्रजेशश्चखाद भक्त्योपहृतं तदेव ।।६।।

स्नेह से विह्वल हुई विदुरानीं कच्चे केलों का छिलका भगवान् के मुख में देने लगी और उनका गूदा नीचे गिराने लगी, व्रजेन्द्रनन्दन भी अपने दोनों नेत्रों को बन्द करके भक्तिपूर्वक प्रदान किये हुवे उन छिलकों को ही आनन्दपूर्वक चबाने लगे ।

इत्थं चिरं स भगवान् किल सा च भक्ता
ह्यस्तामुभावपि च विस्मृतदेहगेहौ ।
प्राप्तोऽपि तत्र विदुरो विदितो नताभ्यां
दृष्ट्वा त्वचं मुखधृतं स तु तामुवाच।

इस प्रकार बहुत देर तक वह भगवान् और वह भक्ता दोनों ही अपने पराए की सुध-बुध भूलकर यह व्यापार करते रहे, विदुर जी भी वहाँ आ पहुँचे परन्तु उन दोनों को कुछ पता न चला। अन्त में जब विदुर जी ने देखा कि भगवान् के मुख में तो केले का छिलका दिया जा रहा है तो वे अपनी गृहणी से बोले ।

मूढ़े ! त्वचं कृष्णमुखे ददासि क्षिपस्यधस्तात् फलसारभागम् ।
सुप्तोत्थिते वाऽऽशु ववन्द पादौ कृष्णस्य पत्युश्च महाभयार्ता ।।८।।

[विदुर बोले—] अरी मूर्खे ! तू केले का छिलका तो कृष्ण भगवान् के मुख में दे रही हो और उसका गूदा नीचे गिरा रही हो ! [यह सुनकर]

विदुरानी मानो सोती-सोती जगी हो होश में आकर भयभीत हुई, कभी भगवान् के और कभी अपने पति के बार २ पाँव छूने लगी।

कृष्णोऽपि वात्सल्यसमाधिजागृतो जगाद भोस्तात ! कृतं सुदुष्कृतम्।
न प्रेमपीयुषरसे हि वस्तुनि तथाविधं स्यादिति मे दुराग्रहः ॥६॥

कृष्ण भगवान् भी वात्सल्य समाधि के टूट जाने पर जागे हुवे से विदुरजी से बोले—चचा ! आपने ग़ज़ब कर डाला, सच्चे प्रेमरूपी अमृतरस से लबालब भरे हुवे पदार्थ में—'वह ऐसा ही हो—' यह मेरा दुराग्रह नहीं है।

भक्ति विना शकटभारमितेष्वपीह तत्तत्पदार्थनिचयेषु न थूत्करोमि।
पत्रं दलं फलमथाऽम्बुकणं तु दत्तमश्नामि भक्तजनभावसमर्पणं हि।

(शेर) भाव बिन थूंकूं नहीं, गाड़ी भरे समान पर।
रीझ जाता है मेरा मन मान के इक पान पर॥

* * *

दानशौण्ड : कर्णः

(दानवीरकर्ण)

अथामृघे कौरवपाण्डवानाम् किरीटिबाणैः क्षपिते तु कर्णे ।
श्रीधर्मराजस्य च सर्वसेना चकार हर्षेण महाट्टहासम् ।।१।।

महाभारत के युद्ध में महावीर के बाणों से क्षत-विक्षत होकर जब कर्ण भूमि पर गिर गया तब धर्मराज युधिष्ठिर की सेना में हर्ष के नगाड़े बजने लगे ।

कृष्णस्तदा शोकपरिप्लुताङ्गो रुरोद दुःखेन निवारितोऽपि ।
धनञ्जयः प्राह सखे ! किमेतदानन्दकालेऽपि महान् विषादः ।।२।।

ऐसे हर्ष के समय भी भगवान् श्रीकृष्ण दुःखित हो रोते हुए एक ओर बैठे थे । अर्जुन ने पछा—मित्र ! ये क्या बात है जो इस आनन्द के अवसर में भी तुम अत्यन्त खिन्न हो रहे हो ।

कृष्णोऽवदत् किं कथयामि वीर ! कर्णे हते हन्त हतं हि दानम् ।
हाहार्थिनामद्य स कल्पवृक्षो दिवं प्रयातः खलु दानशौण्डः ।।३।।

कृष्ण ने रोते-रोते उत्तर दिया—वीर ! क्या बतलाऊँ, कर्ण के जाने पर दान परम्परा ही नष्ट हो जायगी । आज याचकों के लिए कल्पवृक्ष सा कर्ण हाय ! हाय ! स्वर्ग सिधार रहा है !

कृष्णोक्तिमाकर्ण्य तदाह फाल्गुन एतद् महत्केशव ! ते विकत्थनम् ।
शिविर्हरिश्चन्द्रदधीचिराघवा गताः पुरा दानमहो मृतं नहि ।।४।।

कृष्ण की बात सुनकर अर्जुन बोला—आप व्यर्थ में इतनी बढ़ा-चढ़ाकर बात कर रहे हो । शिवि, हरिश्चन्द्र, दधीचि और राघव आदि के मरने पर भी दानविधि नष्ट नहीं हुई जो कि उच्चकोटि के दाता थे ।

कृष्णोऽब्रवीत् केचन दानशौण्डा आसन् पुरा सम्प्रति सन्त्यनेके ।
नूनं भविष्यन्ति तथापि वीर ! न कर्णतुल्यो भविता न भूतः ॥५॥

कृष्ण ने उत्तर दिया—बहुत से दानी पहले समय में हो चुके हैं और इस समय भी विद्यमान हैं तथा भविष्य में भी निश्चित होंगे ही, परन्तु अर्जुन! कर्ण सदृश दानी न हुआ—न होगा ।

यद्यस्ति सन्देह इहापि कश्चित् आगच्छ ! प्रत्यक्षमिदं करोमि ।
सत्यं शपे नातिशयोक्तिरत्र न कर्णतुल्यो भविता न भूतः ॥६॥

यदि तुम्हें इस पर सन्देह हो तो आओ ! [मेरे साथ साथ चलो !] मैं शपथपूर्वक सत्य कहता हूँ कि कर्ण के समान दानी न हुआ न होगा, इसमें लेशमात्र भी अतिशयोक्ति नहीं है ।

कृष्णार्जुनौ ब्राह्मणरूपधारिणौ तत्राऽऽगतौ यत्र स कर्ण आहतः ।
निमीलिताक्षो भुवि धूलिधूसरः शेते चिरायैव हरिं स्मरन् हृदि ।७।

उसी समय कृष्ण और अर्जुन ब्राह्मण का रूप धारण करके वहाँ पहुँचे जहाँ पर क्षत विक्षत धूलिधूसर कर्ण भूमि में लेटा महानिद्रा की प्रतीक्षा में आँखें बन्द किये भगवान् का नाम स्मरण करता हुआ, जीवन की अन्तिम घड़ियाँ गिन रहा था ।

तारस्वरेण समुपेत्य जगाद कृष्णो
नारायणाखिल गुरो ! भगवन् नमस्ते ।
दूरादहो ! कनकदानरतं निशम्य
प्राप्तोऽस्मि कर्ण ! किमु वच्मि महान्नु खेदः ॥८॥

वहाँ पहुँचते ही श्रीकृष्ण ने जोर से "नारायण हरि !" शब्द का जयघोष किया और कहा—हे कर्ण ! हम तो बहुत दूर से तुम्हारी स्वर्णदान की चर्चा सुनकर आये थे अब क्या कहें—बहुत दुःख है ।

उन्मील्य नेत्रे स तु दानशौण्डो दृष्ट्वा पुरस्तादथ ब्राह्मणौ द्वौ ।
महानशक्तो मनसा प्रणम्य ह्यनुगृहीतोऽस्मि जगाद विप्रौ ॥९॥

आँखें खोलकर दानवीर कर्ण ने अपने सामने खड़े दो ब्राह्मणों को देखा। असमर्थ होने पर भी मानसिक प्रणाम के उपरान्त उसने बड़ी नम्रता के साथ कहा—'आपने बड़ी कृपा की, मैं आभारी हूँ।

भो ब्राह्मणौ ! यातमितो न दूरम् संदृश्यते कौरवराजसैन्यम्।
वाच्यो मदुक्त्या कुरुराज वीरो भविष्यति प्रार्थितसिद्धिरत्र ॥१०॥

ब्राह्मण देवताओ ! यहाँ से निकट ही कुरुराज दुर्योधन का शिविर सामने दीख रहा है, आप दोनों वहाँ जाकर मेरी ओर से उससे कहें—जो भी आपकी कामना होगी वह पूर्ण हो जायगी।

कृष्णोऽवदत्सद्गतिरस्तु कर्ण ! न साम्प्रतं वां मनसि स्पृहास्ति।
आसीद् दिदृक्षा खलु सा प्रपूर्णा सेवाप्रदानं किल निष्फलं हि ।११।

कृष्ण ने कहा—तुम्हें सद्गति प्राप्त हो। हमारे हृदय में अब कोई इच्छा नहीं है। तुम्हें देखने की अभिलाषा थी वह पूर्ण हो चुकी। सेवा दान को शास्त्र में निष्फल ही कहा है।

मृत्योः समाचारमिमं सुदुःसहम् निशम्यते नौ मुखतस्तु कौरवाः।
सद्यो विधातुं तव साम्परायिकम् यास्यन्ति कस्तत्र भवेत्सहायः।१२।

हमारे से तुम्हारी मृत्यु का असह्य संवाद सुनते ही कौरव तुम्हारा अन्तिम संस्कार करने में व्यस्त हो जाएंगे, ऐसी स्थिति में वहाँ हमारी सहायता कौन करेगा ?

देयं यदि स्यादिह देहि वीर ! श्रुत्वा शुचं प्राप भृशं तु कर्णः।
अहोऽन्वहं मे ददतः सुवर्णं यातोऽद्य रिक्ताविति मे विषादः ॥१३॥

हे वीर ! यदि देना ही चाहते हो तो यहीं देओ। यह सुनकर कर्ण को बहुत हार्दिक पीड़ा हुई। उसने सोचा—मैं प्रतिदिन स्वर्णदान करता रहा हूँ, पर शोक है जो आज ये दोनों खाली हाथों जाने को हैं।

हंहो ! स्मृतं द्वौ मम मुख्यदन्तौ राज्ञा हि हेम्ना खचितावृतोक्त्या।
तावेव वां संप्रददामि विप्रौ ! देयं नु लोष्टं तद्भञ्जनाय ॥१४॥

ओहो ! याद आया। मेरे आगे के दो दाँत महाराज ने सच बोलने के उपलक्ष्य में सोने से जड़वाये थे। हे ब्राह्मणो ! वही आप को देता हूँ। जरा ये पत्थर उठा देना दाँत तोड़ने के लिये।

कृष्णोऽब्रवीत् लोष्टकभारवाहः पदे पदे विन्दति तत् श्रमार्घम्।
गच्छावहे वीर, विमुञ्च चिन्ताम् स्वस्त्यस्तु ते संचलितुं प्रवृत्तौ ॥१५॥

श्रीकृष्ण बोले—भाई ! पत्थर ढोने वाले तो कदम २ पर अपनी मेहनत का फल पाते ही हैं। वीर ! तुम व्यर्थ की चिन्ता मत करो हम जाते हैं 'तुम्हारा कल्याण हो' यह कह कर वे दोनों चलने को तैयार हो गये।

'मागच्छतं' प्रोच्य महोग्ररंहसा स्वयं तदाऽप्लुत्य गृहीतलोष्ठकः।
विभेद्य दन्तौ प्रहसन् दिनेशजो जगाद विप्रौ प्रतिगृह्यतामिति ॥

"मत जाओ" ये कहकर कर्ण ने बड़े वेग से उछलते हुए पत्थर उठा लिया। और दोनों दाँत तोड़कर हँसते हुए सूर्य पुत्र ब्राह्मणों की ओर बढ़ाते हुए कहा—लीजिये।

कृष्णोऽब्रवीत् स्वस्ति सदास्तु वीर ! स्तुत्यं तु दन्तोद्धरणं तवेदम्।
परन्त्वमेध्यं कथमस्ति ग्राह्यम् जलं बिना शुद्धयति नैव वस्तु ॥१७॥

कृष्ण ने कहा ! वीरवर, कर्ण ! तुम्हारा सदा कल्याण हो। इस दुर्दशा में होते हुए तुम्हारा यह दाँत तोड़ना प्रशंसनीय है। परन्तु रक्त में सनी यह अपवित्र वस्तु कैसे ली जा सकती है। जल में प्रक्षालन किये बिना तो यह शुद्ध नहीं हो सकती।

अथात्यमर्षेण दिनेशनन्दनः
पदैकहस्तेन मुखेन सायकम्
आकृष्य भूमौ न्यखनद् यदा धनुः
पाताल गङ्गा निसृताऽतिनिर्मला

तब कर्ण ने अत्यन्त रोष के साथ [छिन्नाङ्ग होने के कारण] एक पाँव तथा एक हाथ से धनुष पकड़ कर मुख के द्वारा बाण छोड़ा। वह बाण भूमि को चीरता हुआ नीचे धंस गया—तत्काल वहाँ से निर्मल पातालगङ्गा की धारा निकली।

तस्मिस्तु दन्तोद्धृतहेमखण्डम् अमूल्यरत्नैः खचितं महार्घम् ।
प्रक्षाल्य तोये ह्यवदद् द्विजेन्द्रौ! कृतार्थनीयोऽहमिदं गृहीत्वा ॥१९॥

कर्ण ने उस निर्मल जल धारा में दांत से उखाड़े हुए सोने को भली भान्ति धोया । फिर अमूल्य रत्नों से जड़ित वह स्वर्णखण्ड दोनों ब्राह्मणों को देते हुए उसने प्रार्थना की कि उसे स्वीकार करके मुझे कृतार्थ कीजिये ।

ततः परित्यज्य च विप्ररूपम् ससव्यसाची भगवान् मुकुन्दः ।
अङ्के निधायाशु दिनेशसुनुम् रुरोद हर्षोद्गमफुल्लगात्रः ॥२०॥

तत्काल भगवान् कृष्ण अर्जुन सहित ब्राह्मण रूप को छोड़कर अपने वास्तविक रूप में होगये और सूर्यपुत्र कर्ण को तत्काल अपनी गोद में लेकर हर्षातिरेक के कारण रोमाञ्चित होकर रोने लगे ।

तुष्ट हरिः प्राह वरं वृणीष्व यदीप्सितं तत् प्रददामि वीर ।
सन्तोषितोऽहं भवता स्वभक्त्या न त्वत्समोऽन्यो भविता न भूतः ॥

प्रसन्न होकर भगवान् बोले—वीरवर कर्ण! मैं तुम्हारी दान परायणता और भक्ति से प्रसन्न हूं । जो तुम्हारी इच्छा हो वर मांगो । वास्तव में तुम्हारे समान दूसरा न हुआ है और न होगा ।

कर्णोऽवदद् दित्सति चेद् ददस्व त्वं सर्वदस्ते किमदेयमस्ति ।
अदग्धभूमौ नगरे वने वा देहं मदीयं दह वासुदेव ! ॥२२॥

कर्ण ने कहा—आप सब कुछ दे सकते हैं—विश्व की कोई भी वस्तु आपके लिये अदेय नहीं है । मुझे यदि आप कुछ देना चाहते हैं तो मैं यह मांगता हूं कि मेरे इस शरीर का दाह किसी ऐसे नगर में या वन के भू भाग में हो जहां पहले कभी कोई दग्ध न हुवा हो ।

एवं तदङ्के वदतस्तु तस्य निर्मुक्त आत्माऽर्यमणि प्रविष्टः ।
अथार्जुनः प्राह सुसत्यमेतत् न कर्णतुल्यो भविता न भूतः ।
किं चिन्त्यते सम्प्रति वासुदेव, दाह्यस्त्वयं चात्र चितां विधाय ॥

इस प्रकार बोलते २ ही कर्ण ने श्रीकृष्ण की गोद में प्राण त्याग कर दिया । उसके शरीर से दिव्य तेज निकला और सूर्य में लीन हो गया ।

इसके अनन्तर अर्जुन ने कहा—भगवन् ! वह बात वस्तुतः सत्य है कि कर्ण के समान दानी न हुआ न होगा। पर आप अब क्या सोच रहे हैं ? यहीं चिता बना कर इसकी दाह क्रिया करनी चाहिये।

अदग्धभूमिर्नहि दृश्यते क्वचित् इत्येव चिन्ता ननु बाधते भृशम् ।
सुविस्मितः फाल्गुन आह केशव! क्षणेन चान्विष्य वदामि साम्प्रतम् ॥

श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया—जहां अभी तक कोई भी न जला हो ऐसी भूमि कहीं नहीं दीखती, यही मुझे यह सबसे बड़ी चिन्ता है। आश्चर्य चकित होकर अर्जुन ने कहा—मैं अभी क्षण भर में ऐसा स्थान ढूंढकर बतलाता हूँ।

भ्रमन् भ्रमन् पश्यति तादृशं स्थलम् पृष्टास्तु दग्धं प्रवदन्ति तद्विदः
अन्ते महोद्यानगतोऽतिशोभनो नरेशप्रासाद इतीह निश्चितः ॥

अर्जुन ने घूम २ कर जो भी स्थान देखा वही वहां के निवासियों न जला हुआ वताया। अन्त में उसने बड़े विशाल बाग में एक मनोरम प्रासाद देखा—जो किसी राजा का था। उसने वहीं दाह क्रिया का विचार किया।

सुरम्यहर्म्ये मणिमण्डिताङ्गणे यदा तु दाहस्य विनिर्णयः कृतः ।
जगाद जिष्णुं सुरभारती तदा अदग्धपृथ्वीयमहो ! न जिष्णो ! ॥

उस मणि माणिक्य रत्न जटित प्राङ्गण वाले दिव्य महल में दाह क्रिया करने का जब विचार निश्चित हुआ तभी आकाशवाणी ने कहा कि हे अर्जुन ! ये अदग्ध भूमि नहीं है।

अस्मिन् स्थले भीष्मशतं प्रदग्धम् दग्धं तथा द्रोणशतत्रयश्च ।
दुर्योधनानाञ्च सहस्रमत्र न कर्णसंख्याऽङ्कयितुं हि शक्या ॥२७॥

इस भूमि पर सौ भीष्म जल चुके हैं, तीन सौ द्रोण तथा एक हजार दुर्योधनों का दाह संस्कार हो चुका है। कर्ण कितने जल चुके हैं इसकी तो कोई गिनती नहीं की जा सकती !

जातेऽर्जुने तु नितरां वितथप्रयत्नेभक्तप्रियो निजजनार्तिहरो मुकुन्द ।
मत्वा तु दक्षिणकरं बलिदानदग्धम् वामे तदा निजकरेऽर्कसुतं ददाह

जब अर्जुन के सारे प्रयत्न व्यर्थ हो गये तब भक्त-जनार्तिहारी भगवान् कृष्ण ने अपने भी दाएं हाथ को बलि के दान के कारण जला हुआ मान कर सूर्यपुत्र का दाह संस्कार अपने बांये हाथ पर सम्पन्न किया।

धन्य-भक्त-चरितम्

(भक्त धन्ना जाट)

दक्षाऽध्वरध्वंसनधूमकेतुर्जातो जटातः किल वीरभद्रः ।
जट्याश्च जाट्यास्तदपत्यभूता लोके प्रसिद्धा अतिशूरवीराः ॥१॥

शङ्कर भगवान् की जटा से दक्ष प्रजापति के यज्ञ का विध्वंस करने के लिये धूमकेतु के समान वीरभद्र नाम का एक गण उत्पन्न हुवा, जिसकी शूरवीर सन्तान जटिये और जाट संसार में प्रसिद्ध हैं ।

जटाकलापे निजपादयोश्च धृतं शिवेनाऽपि न यज्ञसूत्रम् ।
अतो हि जाट्यैः पदजैश्च लोके यज्ञोपवीतं न च धार्य्यतेऽङ्गे ॥२॥

जटाओं में और पांवों में शिव भगवान् ने यज्ञसूत्र धारण नहीं किया था, इसी लिये जटा समुद्भूत जाट लोग तथा पांवों से समुत्पन्न शूद्र-वर्ण अपने गले में यज्ञोपवीत धारण नहीं करते (किन्तु विराट् के मुख भुजा और ऊरु-स्थल से प्रादुर्भूत ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य ही धारण करते हैं)

आसीत्पुरा पञ्चनदप्रदेशे धन्याऽभिधो जाट्यकुलावतंसः ।
पूजारतं वीक्ष्य स विप्रमेकं प्रणम्य पप्रच्छ रहस्यमेतत् ॥ ३ ॥

पूर्व काल में पंजाब देश में धन्ना नामक एक जाट हुवा, वह एक दिन भगवत्पूजा में तत्पर अपने पुरोहित त्रिलोचन को देख कर प्रणाम पूर्वक यह रहस्य पूछने लगा ।

किं वर्तुलं श्यामल-गोलकाकृति किमर्थमेतत्पयसि प्रवेक्ष्यते ।
प्रणम्य किं याचसि प्रस्तरादहो ! सविस्तरं मां कथयाशु विस्मितम् ॥

यह गोलमटोल काला सा गोला क्या है ? तुम इसे बार २ पानी में

क्यों डुबाते हो ? और झुक-झुक कर हाथ बाँध कर इस पत्थर से क्या मांगते हो ? मैं आश्चर्य चकित हूं, मुझे विस्तार पूर्वक यह सब कुछ समझाओ।

त्रिलोचनः प्राह जगत्पतेः प्रभोः प्रतीकमेतन्मयका सुपूज्यते ।
शं वै सुखं तेन सदाऽलयन्ति ये ग्रामस्तु तेषां श्रुतिशास्त्रकीर्तितः ॥

त्रिलोचन उपाध्याय ने कहा ओ भाई ! यह तो जगत्पति भगवान् का प्रतीक है, जिसकी मैं उपासना कर रहा हूं। 'शं' सुख को कहते हैं –तेन– उसके द्वारा जो अपने भक्तों को 'अलयति' भूषित करते हैं वे देवगण ही 'शाली' शब्द वाच्य हैं, उस तेंत्तीस कोटि देव गण की समष्टि का जो ग्राम है, वही 'शालिग्राम' है यह वेदादि समस्त शास्त्रों में बतलायां गया है।

'तेनाऽर्चत प्रार्चत' वेद आह देवार्चनं श्रेष्ठतमं हि कर्म ।
यः ठक्कुरं पूजयते च नित्यं सिद्धयन्ति कार्य्याण्यखिलानि तेषाम् ।६।

'प्रतिमा के द्वारा भगवान् का पूजन करो' ऐसा वेद कहता है, देव-पूजन अतीव श्रेष्ठ कर्म है, जो ठाकुरजी की नित्य पूजा करता है उसके सब कार्य सिद्ध हो जाते हैं।

उवाच धन्यः प्रणिपत्य पादयोः प्रयच्छ मे ठक्कुरमीदृगेव हि ।
बहूनि कार्य्याणि च सन्ति मे गृहे ह्यपेक्ष्यते चान्यतमः सहायकः ॥७॥

धन्ने ने कहा—पुरोहित जी ! मैं आपके चरणों में प्रणाम करता हूं आप ऐसा ही एक ठाकुर जी मुझे भी अवश्य दे दो। देखो ! मेरे घर में काम काज बहुत हैं मुझे हाथ बटाने वाले सहायक की बहुत आवश्यकता है।

न ठक्कुरं पूजयितुं क्षमस्त्वं कृष्णाक्षरं ते महिषीसमं यत् ।
आस्तां गुरो ! त्वं न पुरोहितो मे ह्यद्य प्रभृत्येव कृता प्रतिज्ञा ॥८॥

त्रिलोचन ने कहा—भला तू 'काला अक्षर भैंस बराबर' ठाकुर की पूजा करना क्या जाने ! धन्ना बोला–अच्छा गुरुजी ! आज से मैंने भी प्रण कर लिया कि न तू मेरा पुरोहित और न मैं तेरा जजमान !

जाट्याग्रहं वै निजवृत्तिहानिं ज्ञात्वा गुरुर्युक्तिमिमां चकार ।
दत्वान्नसन्तोलन-लोष्टमेकं व्यसर्जयद् ज्ञातविधिं स्वशिष्यम् ॥९॥

पण्डित जी ने सोचा इधर जाट का हठ है, उधर अपने यजमान के रूठने से अपनी आजीविका की भी हानि है। सो उसने एक युक्ति रची, घर में अनाज तोलने का जो दश सेर का बट्टा पड़ा था वह उसे दे दिया और ठाकुर के नहलाने खिलाने आदि का सब पूजाविधान भी समझा कर उस बला को अपने सिर से टाल दिया।

केदारमेत्य नवकंबल-पीठमध्ये
संस्थाप्य ठक्कुरधिया गुरु लोष्टखण्डम् ।
संस्नाप्य तं जलभृते ह्यरघट्टखाते
भोगं निधाय पुरतः स्तवनञ्चकार ॥

धन्ना सीधा अपने खेत में पहुंचा, वहां नए कम्बल की गद्दी बिछा कर उसपर भगवद् बुद्धि से उस भारी दश सेर के बट्टे को पधरा दिया, अनन्तर स्वयं स्नान करके और उस ठाकुर जी को भी रहट के जल पूरित चबच्चे में खूब स्नान कराया। फिर अपना रूखा सूखा भोजन उसके सामने रखकर प्रार्थना करने लगा।

हे नाथ ! भक्षय चणान्नमिदं सशाकं
तक्रञ्च संपिब विपक्क-कहित्थगन्धम् ।
भूत्वा प्रवृद्धबल आशु गृहीतयष्टिः
संरक्ष गोकुलमिदं खलु नन्दसूनो !

हे नाथ ! यह चणे की रोटी सरसों के साग के साथ खा लीजिये। और पके हुवे कैंत जैसी सुगन्ध से भरपूर इस मठे को पी लीजिये ! फिर ताजा दम होकर हाथ में लाठी थाम कर हे नन्दगोप के कुमार ! मेरी गायों के इस झुंड की रखवाली कीजिये।

उन्मील्य नेत्रे स ददर्श भोजनं सर्वं यथापूर्वमपि प्रकल्पितम् ।
अचिन्तयत्सुन्दर-भोग-भोजिने न ठक्कुरायाऽन्नमिदं हि रोचते ।१२।

धन्ने ने ज्यों ही आंख खोल कर देखा तो सब का सब भोजन यथापूर्व ज्यों का त्यों रक्खा था। सोचा, ब्राह्मणों के घर स्वादिष्ट भोजन छकने के अभ्यासी इस जीभ के चटोरे ठाकुर को जाटों के घर का पका मोटा अन्न शायद रुचिकर नहीं लगा।

उवाच धन्यस्तव लौल्यमेतद् जाट्याजिरे न प्रचलिष्यतीति ।
त्वमद्य वा श्वस्तन एव वाथ क्षुत्क्षामकण्ठोऽत्स्यसि शाकरोटीम् ।।

धन्ने ने [जरा बिगड़ कर] कहा—अरे भई ठाकुर! जाटों के घर में जीभ के चटोरेपन के तेरे चट्ठे मट्ठे न चल सकेंगे। तू चाहे आज खाले चाहे कल खाले, आखिर भूखा मरता हुआ भी तो फिर यही शाक रोटी खाएगा!

इत्थं जगाम खलु तस्य बुभुक्षितस्य, भक्तस्य विंशति दिनानि सदाग्रहस्य
अन्येद्युरात्तशितखड्ग उवाच देवं प्राणांस्त्यजामि पुरतस्तव निर्दयस्य

इस प्रकार [भगवान् के भोग न लगाने पर स्वयमपि] भूखे मरते हुवे सत्याग्रही भक्त धन्ने को बीस दिन व्यतीत हो गये। तब इक्कीसवें दिन [तंग आ कर] धन्ने ने तीखी तलवार हाथ में थामी और ठाकुर जी से बोला—बस! आज मैं तुझ निर्दय के सामने ही अपने प्राण गंवाता हूं।

उद्यम्य खड्गं निशितं स्वकण्ठे यावत्प्रहर्तुं कुपितः प्रवृत्तः ।
सशङ्खचक्रो भगवान् मुकुन्दस्तावत्करं तस्य दधौ स्वपाणौ ।।१५।।

तीखी तलवार सूंत कर क्रुद्ध धन्ना ज्यों ही अपने गले पर वार करने के लिये उद्यत हुवा त्योंही शंख चक्रादि आयुधों से सुसज्जित चतुर्भुज भगवान् ने धन्ने का हाथ अपने हाथ में थाम लिया।

दृष्ट्वा हरिं धन्यतमोऽथ धन्यो जगाद भुंक्ष्वाऽऽशु चणान्नरोटीम् ।
त्वं दर्शनीयोऽपि महान् नृशंस एकत्र सर्वे न गुणा भवन्ति ।।१६।।

प्रभु के दर्शन करके अतीव धन्य हुवा वह धन्ना भगत भगवान् से बोला--लो ! अब झट-पट चणे की रोटी खालो। अरे भई ! तुम देखने में तो ऊपर से बड़े ही सुन्दर मालूम पड़ते हो ! परन्तु हृदय के बहुत कठोर हो ! ठीक है सभी गुण एक व्यक्ति में इकट्ठे नहीं हो सकते।

धन्यस्य निर्व्याजकदूक्तिसंस्तुतो हसन् हरिर्भोक्तुमुपस्थितो मुदा।
न चैति तुष्टिं रसयन् सुधाद्रवं स्मरन् सुदामश्रमणाशुभार्हणाम् ॥१७॥

धन्ने की अकृत्रिम [अपनेपन से युक्त] नोंक झोंक से संस्तुत भगवान् हंसते हुवे उसका भोजन खाने को आनन्द पूर्वक बैठ गए। अमृत के समान धन्ने के पदार्थों को खाते २ [वे मानों आज] अघाते ही नहीं। मन ही मन सुदामा के कच्चे तण्डुलकणों को, शवरी के बेरों और शुभा की [विदुर की धर्मपत्नी के केलों के छिलकों द्वारा की गई] पहुंनाई को स्मरण करते जा रहे हैं।

दृष्ट्वा नु धन्यो भगवद्विचेष्टितमचिन्तयन्नैति च यः पुरार्थितः।
सोऽत्तुं प्रवृत्तः सतृणं हि साम्प्रतं खल्वाटकण्डूतिफलं क्षतव्यथा ॥

धन्ने ने जब देखा कि भगवान् भोजन पर टूट पड़े हैं, तो वह चिंता में पड़गया, जो सौ-सौ खुशामद करने पर भी नहीं खारहा था वही अब सबका सब भोजन डकार जाने की ताक में है, ठीक ही है 'गंजे की खुजलाहट का परिणाम लहूलुहान ही होता है' [अर्थात्--पहिले रूठ कर न खाने से और अब सब का सब चट कर जाने से मुझे ही भूखा मरना होगा।]

करं गृहीत्वा हरिमाह धन्यस्तृप्तो न चाद्यावधि सर्वभक्ष !
बुभुक्षितोऽहं नखतुल्यघस्रादेकाकिनोऽदन्ति न हन्त ! सन्तः ॥१९॥

धन्ने ने भोजन खाते हुवे भगवान् का हाथ पकड़ कर कहा—ऐ सब कुछ चट कर जाने वाले ! क्या अभी तक तेरा पेट नहीं भरा ? देख ! मैं भी नाखूनों की संख्या जितने (बीस) दिनों से भूखा मर रहा हूं। भले लोग अकेले ही सब कुछ नहीं डकारा करते !

हसन् हरिः प्राह तवाऽशनं सखे ! श्लक्ष्णं व्रजेऽत्तं ह्यतिरिच्य वर्तते।
आस्तां विशिष्टं त्वमु भुंक्ष्व साम्प्रतं बुभुक्षितः किं द्विकरेण भोक्ष्यसे।

हंसते २ लोट पोट हुवे भगवान् ने कहा—क्या कहूं मित्र ! तुम्हारी यह साग रोटी तो ब्रज में खाए हुए मक्खन के स्वाद को भी मात कर रही है। अच्छा ! लो अब बाकी बचा सब भोजन तुम खाओ ! अरे भई ! यदि तुम भूखे हो तो क्या अब दोनों हाथों से खाओगे ?

जगाद जाट्योऽस्मि करोमि भोजनं त्वं मे पशून् चारय मित्र! दण्डधृक्
भुक्ते प्रसादे स्फुटदिव्यलोचनो धन्यस्त्वहो! धन्यतमो बभूव ह ॥

तब धन्ने जाट ने कहा—अच्छा ! मैं भोजन करता हूं और मित्र ! तू हाथ में लाठी लेकर मेरे पशुओं को चरा ! भगवान् का प्रसाद खाते ही धन्ने के तो दिव्य नेत्र खुल गए [पहले तो वह केवल नाम से] धन्ना मात्र ही था अब तो वह अतीव धन्य हो गया।

भुक्तोत्थितं प्राह हरिर्व्रजाम्यहमाकारितो द्राक् पुनरेहि सोऽब्रवीत्
इत्थं तदारभ्य च भक्तियन्त्रितो धन्यस्य कार्य्याणि करोति माधवः ॥

जब धन्ना खा पीकर उठ खड़ा हुआ तो भगवान् ने उससे कहा—लो ! अब मैं जाता हूं। वह बोला [जरा कान खोल कर सुनलो !] अब मैं जब भी तुम्हें बुलाऊं तत्काल आजाना ! इस प्रकार उस दिन से आरम्भ करके भक्ति में जकड़े हुवे भगवान् धन्ने के सब काम करते थे।

स्वल्पैरहोभिर्धनधान्यपूर्णो धन्यस्तु सस्मार गुरुं वरेण्यम्।
पदार्थजातान्युपहृत्य नत्वा प्राह त्वयाऽहन्तु कृतार्थितोऽस्मि ॥२३॥

थोड़े ही दिनों में [भगवान् की सहायता से] धन्ना मालामाल होगया, जब उसे अपने उपकारी पुरोहित का स्मरण आया तो बहुत सा आटा-सीधा भेंट में प्रदान करके वह चरण छूकर गुरु से बोला कि आपने तो मुझे कृतार्थ ही कर दिया।

त्वद्दत्तठक्कुरमहं किमु वर्णयामि
दिव्योऽतिसुन्दरतनुर्ह्यचिरक्रियावान् ।
सक्लेशितो नवनवेन तु तेन पूर्व-
माज्ञां बिभर्ति मम सम्प्रति वाग्विनम्रः ।।

ओहो ! तेरे दिये हुये ठाकुर का क्या वर्णन करूं, वह तो बड़ा ही दिव्य अतीव सुन्दर है और पलक-झमक में सब काम कर डालता है । पहिले तो कुछ दिन नये-नये ने मुझे बहुत तंग किया परन्तु अब तो वह 'जी हां' कहकर मेरी सब आज्ञाओं का पालन करता है ।

धन्योक्तिमाकर्ण्य सुविस्मितो द्विजो मत्वा तमुन्मत्तमुवाच चिन्तयन् ।
क्व ठक्कुरः क्वापि च तस्य दर्शनं क्व ते प्रलापोऽतिशयोक्तिजृम्भितः ।।

धन्ने की बात सुनकर त्रिलोचन उपाध्याय बहुत विस्मित हुआ और समझा कि यह पागल हो गया है । अतः चिंतित होकर बोला--अरे धन्ने ! कहां भला ठाकुर ! कहां उसके दर्शन ! और कहाँ यह तेरा अतिशयोक्ति पूर्ण कथन !!

धन्योऽवदन्मे ह्यरघट्टयन्त्रं सञ्चालयन् क्षेत्रगतोऽधुनाऽऽस्ते ।
चमत्कृतो ब्राह्मण एत्य कूपं तदानुगो नैव ददर्श किञ्चित् ।।२६।।

धन्ने ने कहा—पुरोहित महाराज ! वह ठाकुर तो इस समय मेरे खेत में रहट पेल रहा है । त्रिलोचन चकित होकर धन्ने के पीछे २ कूवें पर पहुंचा परन्तु वहां उसे कुछ भी न दीख पड़ा ।

धन्योऽब्रवीदपि च पश्य पुरस्थमेनं, नेत्रे प्रमृज्य गुरुराह न दृष्टिमेति ।
पृष्टस्तु तेन हरिराह रहस्यहेतुं दुर्दर्शनोऽहमविपक्वकषायजन्तोः ।।

धन्ने ने (सामने बैठे भगवान् की ओर उङ्गली निर्देश करते हुवे) कहा कि गुरुदेव ! आपके सामने ही तो भगवान् उपस्थित हैं इनके दर्शन कीजिये ! त्रिलोचन ने अपनी आंखें मलते हुवे कहा कि मुझे तो कुछ भी नहीं दीख रहा है । जब धन्ने ने भगवान् से इस छुपाव का रहस्य पूछा

तो वे बोले--भक्त ! मैं उस व्यक्ति को कभी नहीं दीख पड़ता जिसका कि अन्तःकरण भक्ति की अग्नि में पककर सोने सा कुन्दन न बन गया हो ।

धन्योऽवदत्प्रिय सखेऽस्ति पुरोहितो मे
त्वं हि पुनस्तदुपदिष्टविधान-लब्धः ।
दत्वा स्वदर्शनमयं सुकृतार्थनीयः
किं हीयते कृपण ! तेऽक्षिपथाऽऽगतस्य ॥

धन्ने ने कहा—हे प्यारे मित्र ! यह तो मेरे पुरोहित हैं और फिर आप भी तो इन्ही के बतलाए हुवे पूजा विधान से मुझे प्राप्त हुवे हो ! सो आप अपने दर्शन दे कर इनको भी कृतार्थ करें ! अरे भई ! तुमने तो कंजूसी की भी हद ही कर डाली ? क्या भक्तों की आंखों में तुम्हारी छवि आजाने से तुम कुछ घट जाओगे ?

ततो जगन्मङ्गलमङ्गलः प्रभुर्गदारिशंखाब्जधरश्चतुर्भुजः ।
सौदामिनी-निंदक-पीतवाससा लसन् पुरोऽदृश्यत मेघसुन्दरः ॥२६॥

तब समस्त जगत् के मङ्गल के भी मङ्गल भगवान् प्रकट हुवे जो नील मेघ के समान दीख पड़ते थे। बिजली को भी मात देवे वाला पीताम्बर उनके अङ्गपर शोभा पारहा था वे चारों भुजाओं में शङ्ख चक्र गदा और पद्म धारण किये हुवे थे ।

हित्वा तु सर्वजनहृद्दहराधिवासं
सच्चित्सुखात्मकमनादिमनन्तदेवम् ॥
योमूढधीर्विगतभाव उदग्रदण्डः
पूजारतोऽपि स तु गोखर एव मर्त्यः ॥

[श्रीभगवान् नेकहा—] जो श्रद्धा हीन उद्दण्ड एवं मूढ़-बुद्धि, प्राणी-मात्र के हृदय रूपी दहराकाश में सदैव बसने वाले, सत् चित् आनन्द स्वरूप अनादि अनन्त प्रभु को छोड़ कर केवल प्रतिमा पूजन मात्र में रत रहता है वह मनुष्य निःसन्देह गोखर पशु के समान ही है ।

गृहीत इव केशेषु......

(कल करे सो आज कर आज करे सो अब)

कञ्चिद् दरिद्रं कृपयाऽथ सिद्धः प्रादान्मणिं 'पारस'-नामधेयम् ।
यत्स्पर्शमात्रेण हि लोहधातुः सुवर्णतां याति मणिप्रभावात् ॥१॥

एक सिद्ध योगी ने किसी दरिद्र पुरुष को उसकी निर्धनता पर तरस खाकर 'पारस' नाम की मणि दी। उस मणि के स्पर्श से लोहा तत्काल सुवर्ण बन जाया करता था।

प्रोवाच सिद्धः शृणु भो ! कुटुम्बिन् !लोहं गृहे ते खलु यावदस्ति ।
सांस्पृश्य सांस्पृश्य तदद्य सर्वं कृत्वा सुवर्णं भव सम्पदाढ्यः ॥२॥

सिद्धनें दरिद्र से कहा – सुन भाई ! तेरे घर में जितना भी लोहा हो उस सब को तू इस पारस मणि से छुआ २ कर सोना बनाले और धनवान् बन जा !

पुनः पुनस्तं प्रणिपत्य सिद्धं संप्रार्थयामास महादरिद्रः ।
अत्यल्पकाले न ममेष्टसिद्धिः कृत्वा कृपां देहि मणिं चिराय ॥३॥

सिद्ध को पुनः पुनः प्रणाम करके उस दरिद्र ने प्रार्थना की कि हे महाराज ! थोड़े से समय में मेरी अभीष्ट सिद्धि न हो सकेगी, अतः आप कृपा करके कुछ अधिक समय के लिये इस मणि को मुझे देने का कष्ट करें।

सिद्धोऽब्रवीद् याम्यधुनैव गङ्गां मासे व्यतीते पुनरागमिष्ये ।
सुनिश्चितेऽस्मिन्समये स्वकार्य्यं विधाय देयो मणिरेष मह्यम् ।४।

सिद्ध ने कहा—मैं अभी गंगा स्नान के लिये जा रहा हूं एक मास

व्यतीत हो जाने पर फिर लौट कर आऊंगा। तब तक तुम अपना इच्छित सुवर्ण एकत्रित कर लेना और मणि मुझे लौटा देना।

भूयश्च भूयः शपथेन सिद्धं विश्वास्य विश्वास्य महादरिद्रः।
गते तु तस्मिन् गृहमेत्य सर्वं संश्रावयामास मुदा स्वपत्नीम् ।।५।।

बार-बार कसम खा-खा कर सिद्ध को विश्वास दिलाकर विदा किया, सिद्ध के चले जाने के बाद वह अपने घर आया और यह सब वृत्तान्त अपनी पत्नी को प्रसन्न हो कर सुनाया।

प्रियेऽद्य लब्धो मणिरेष दुर्लभः स्वपूर्वजन्मार्जितपुण्यकर्मभिः।
लोहं स्पृशन् स्वर्णयति क्षणादयं त्वां भूषयिष्यामि सुवर्णभूषणैः ।।

प्रिये! अपने पूर्व जन्मार्जित पुण्यों के प्रताप से आज मैंने दुर्लभ मणि प्राप्त की है। यह लोहे को छूते ही सोना बना देती है, अब मैं तुझे सोने के गहनों से लाद दूंगा।

सुवर्णपात्राणि सुवर्ण-शय्या सुवर्णपीठासनविष्टराश्च।
स्वर्णेष्टिकानिर्मितभव्यगेहाः सर्वं जगत् हेममयं करिष्ये ।।७।।

हमारे सब बर्तन सोने के होंगे, हमारी शैय्या आसन बिस्तर सब सोने के होंगे। सोने की ईंटो से बने हमारे भव्य भवन होंगे। सारा संसार ही सोने का बना दूंगा।

जगाद पत्नी फलकम् किलैतत् संदंशिनी चञ्चुपुटम् कटाही।
सर्वाणि हैमानि कुरुष्व शीघ्रम् यतः प्रसिद्ध्येद् गृहकार्यजातम् ।।८।।

उसकी पत्नी ने कहा—आप जल्दी से इस तवे चिमटे-संडासी चमचे और कड़ाही इत्यादि को सोने का बना डालिये। जिससे घर का सम्पूर्ण काम अच्छी तरह चल सके।

हे हे प्रिये! ते मनसो दरिद्रता नाद्यापि याता किमु ? वक्त्यसांप्रतम्।
किं मुष्टिमेयैर्गृहकृत्यसाधनैर्न वै समुद्रश्चुलुकैः प्रपूर्यते ।।९।।

अरी प्राणप्रिये ! तेरी मानसिक दरिद्रता क्या अभी तक भी गई नहीं ? जो ऐसी बातें कर रही हो। इन मुट्ठी भर घर के बर्तनों से क्या हो सकता है, चुल्लुभर पानी से भी कहीं समुद्र भर सकता है ?

शुभे मुहूर्ते, बलिनि प्रभाकरे सौम्येषु खेटेषु हि केन्द्रगेषु च ।
हिमाद्रि-दघ्नं खलु लोहसञ्चयम् स्वर्णं करिष्ये निमिषेण तत्क्षणम् ।।

सूर्य के बलवान् होने पर और जब शुभ ग्रह केन्द्र स्थान में होंगे — ऐसे मांगलिक मुहूर्त में हिमालय जितना ऊंचा लोहे का ढेर खरीद कर क्षण भर में सोना बना दूंगा।

न चेद् गृहे सम्प्रति वस्तुजातम् ऋणं गृहीत्वा पच भोजनानि ।
चिन्तामणौ मे कर आगतेऽपि का नाम चिन्ता वद चारुनेत्रे ! ।।

यदि घर में सामान न हो तो उधार लेकर इन दिनों भोजन बनालो। ऐ कमलनयने। चिन्तामणि जब मेरे हाथ में आ चुकी है—तब चिन्ता किस बात की है ?

अद्यास्ति पुत्राप्तिदिनं शुभावहमद्यास्ति कन्यावरणोत्सवो महान्।
अद्यास्ति गेहे ललना रजस्वला न्यायालये चाद्य ममास्ति संस्थितिः।

आज पुत्र जन्मोत्सव है, आज पुत्री का विवाह है, आज स्त्री रजस्वला है और आज मुझे कचहरी जाना है इस चक्कर में ही उसके दिन बीत रहे थे।

सप्ताह आद्यो मणिलाभहर्षे, गतो द्वितीयो गृहकृत्यसिद्धौ ।
लोहक्रयार्थी निजपण्यहट्टे पप्रच्छ को भाव इहास्ति वैश्य! ।।

पहला सप्ताह पारसमणि पाने की प्रसन्नता में ही व्यतीत हो गया। दूसरा सप्ताह घर के झंझटों में चला गया। फिर उसने अपने नगर के बाजार में एक सेठ से लोहे का भाव पूछा।

वैश्योऽवदद् युद्धविशङ्कया च त्रिरूप्यकैः सेटकमात्रमस्ति ।
अरे! न वैश्यस्त्वमु ! किन्तु दस्युर्यो ग्राहकान् लुण्ठति कूटभावैः ।।

वैश्य ने कहा—युद्ध की आशङ्का के कारण लोहे का भाव तीन रूपये

सेर है। इतना सुनते ही यह क्रोध में बोला—अरे ! तू दुकानदार नहीं है, डाकू है, ठग है, जो ग्राहकों को ब्लैक मार्कीट करके लूटता है।

इत्थं विवादे बहुभिः समेतैर्निवारितोऽयं गृहमाजगाम ।
मित्राण्यपृच्छत्सुहृदः स्वबन्धून् किं लोहकाण्डे करणीयमस्ति ॥१५॥

इस प्रकार झगड़ा बढ़ जाने पर बहुत से इकट्ठे हुवे लोगों ने इसे समझा बुझाकर किसी तरह लड़ने से रोका। तब वह अपने मित्रों, सम्बन्धियों और परिवार के व्यक्तियों से पूछने लगा कि लोहे के विषय में मुझे क्या करना चाहिये।

एकोऽवदत्त्वं भण मण्डलाधिपम् दण्ड्यस्त्वसावायसकूटविक्रयी ।
अन्योऽब्रवीत्त्वं परिमित्यवाप्तये गत्वेन्द्रप्रस्थं वद राष्ट्रनायकम् ॥

किसी ने सलाह दी जिलाधीश को कह कर इस चोर बाजारी करने वाले लोहिये को दण्ड दिलाओ। एक ने कहा परमिट लेने के लिये दिल्ली जाकर राष्ट्रपति से प्रार्थना करो।

ततोऽपरः प्राह च तारपत्रम् "टाटा" नगर्यां कुरु शीघ्रमेव ।
श्रुत्वा तु नाना भणितिं जनानाम् बभूव कर्तव्यविमूढचित्तः ॥६७॥

एक ने बताया जल्दी से जमशेदपुर 'टाटा आयरन स्टील कम्पनी' को तार द्वारा आर्डर दो ! इस प्रकार जितने मुख उतनी बात सुनता हुआ वह किं कर्तव्यविमूढ़ होगया।

अद्य श्वो वा प्रातरद्य श्व एव, भूयो भूयः सायमद्य श्व एवम् ।
कारं कारं मास एको व्यतीतो दुर्धर्षोऽयं कालचक्रप्रवाहः ॥१८॥

आज कल, प्रातः सायं परसों, कल, बार २ इसी प्रकार करते २ पलक-झपक में एक मास पूरा हो गया। वस्तुतः कालचक्र की अप्रतिहत गति को कोई भी नहीं रोक सकता।

मासे व्यतीते स तु सिद्धराज उपेत्य तं प्राह समागतोऽहम् ।
प्रयच्छ शीघ्रं हि मणिं मदीयम् भवन्ति सन्तः खलु सत्यवाचः ॥

एक मास पूर्ण होते ही सिद्धराज महात्मा ने आकर उसे कहा, मैं

आचुका हूं, मेरी पारस मणि वापिस दो, महात्मा लोग निश्चित ही सत्यवादी होते हैं।

रुदन् दरिद्रस्तमुवाच दीनो, हा हा ! व्यतीतः किमु मास एकः ?
न रक्तिकामात्रमितं सुवर्णं कृतं मया लोहमहार्घबुद्ध्या ।।२०।।

बेचारा गरीब रोते हुए बोला—हा ! क्या एक महीना बीत गया ! मैंने तो लोहे की मंहगाई के कारण रती भर भी सोना नहीं बनाया।

अहो ! कुबुद्धे ! किमिदं त्वया कृतम् वृथापनीतोऽवसरः सुदुर्लभः ।
हस्ते भवेद्यस्य हि पारसो मणिः स लोहकाण्डे समयं नयेत् कथम् ।।

अरे बेवकूफ ! यह तूने क्या किया ! ऐसा सुन्दर अवसर व्यर्थ में ही खो दिया। जिसकें हाथ में पारसमणि आजाये क्या उसे लोहे का भाव पूछने में ही समय बिताना चाहिये ?

निर्भर्त्स्य भूयो हतबुद्धिमेतमाहुत्य हस्तात्स्वमणिं महार्घम् ।
यथागतं तत्क्षणमाशु सिद्धो जगाम संपश्यत एव तस्य ।।२२।।

उस मूर्ख को और डाट-फटकार करके महात्मा ने अपनी मणि उससे छीन ली और जहां से आये थे उसके देखते २ वहीं चले गये।

यो मूढधी प्राप्य नृदेहमद्भुतम् मणिप्रभं मोक्षसुवर्णकारकम् ।
संसारलोहस्य च मूल्यसाधने वयो जहातीह जनः स आत्महा ।।२३।।

[इस दृष्टान्त के अनुसार उसका दार्ष्टान्ति यह है] जो मूर्ख मनुष्य देह रूपी-पारस मणि को प्राप्त करके भी मोक्षरूप सुवर्ण नहीं बनाता, बल्कि साँसारिक वासनारूप लोहे के भाव-ताव में ही जीवन बिता देता है—वह वस्तुत : आत्महत्यारा है।

सम्मीलनोन्मीलनयोः स्वनेत्रयोर्वयोऽपयातीह जनस्य पश्यतः ।
काल प्रवाहं नहि वेत्ति योऽधमः कालेन सोऽयं निरये निपात्यते ।।

आंख खुलते और बन्द होते २ इस तरह देखते २ पलक-झपक में मनुष्य का जीवन समाप्त हो जाता है। जो मूर्ख काल की गतिको नहीं समझता वह काल के द्वारा नरक में गिराया जाता है।

स्व-भ्रांतिः शोधनीया

(अपनी भूल ठीक कर लेनी चाहिये)

अकब्बरो बीरबलं जगाद महान् कृतज्ञः खलु कोऽस्ति लोके ?
तथाहि कोऽस्तीह महान् कृतघ्नः शीघ्रं सभामानय दर्शनार्थम् ।।

एकबार अकबर ने वीरबल से कहा–संसार में सबसे अधिक कृतज्ञ कौन है ? और सबसे अधिक कृतघ्न कौन है ? ऐसे दो व्यक्तियों को शीघ्र लाओ मैं देखना चाहता हूं ।

स ब्राह्मणः कुक्कुरमेकमन्यम्, जामातरं तत्पुरतो निवेद्य ।
प्रोवाच राजन् ह्यनयोस्तु विद्धि पूर्वं कृतज्ञं ह्यपरं कृतघ्नम् ।।२।।

वीरबल एक कुत्ते को और एक जामाता (जमाई) को बादशाह के सामने लाकर बोला––हजूर ! इन दोनों में सो पहला [अर्थात् कुत्ता] महा कृतज्ञ है और दूसरा [अर्थात्––जामाता साहिब] महा कृतघ्न है ।

न कुक्कुरेणेह समोऽस्ति लोके महान् कृतज्ञो भविता बभूव ।
ग्रासैकमात्रेण दिवानिशं यो दातुर्गृहे वै प्रतिहारिभूतः ।।३।।

कुत्ते के समान कृतज्ञ, संसार में न कोई हुआ न होगा । जो एक ग्रास मात्र देने वाले के घर का रात-दिन पहरेदार रहता है ।

अयं तु जामातृ-वरो मदीयो यस्मै प्रदत्ता सधनं स्वकन्या ।
तथाऽप्ययं तुष्यति नैव राजन् ! महान् कृतघ्नः खलु नापरोऽस्मात् ।

ये मेरे जामाता महोदय हैं जिन्हे मैंने अपनी कन्या बहुत से धन के साथ दी है । पर फिर भी यह सन्तुष्ट नहीं होता । इससे बड़ा अन्य कौन कृतघ्न हो सकता है ।

अकब्बरो वीरबलस्य बुद्धिम् प्रशस्य तं प्राह महाकृतघ्नाः ।
जामातरो येऽपि च सन्ति राज्ये ते शूलमारोप्य विनाशनीयाः ।।

अकबर ने वीरबल की बुद्धि की बहुत प्रशंसा की और आज्ञा दी कि राज्य भर में जितने भी जामाता (जमाई) हैं उनको कृतघ्नता के अपराध में फांसी पर चढ़ादो ।

श्रुत्वा नृपाज्ञामविचारनिःसृतामुवाच देवोक्तिरियं शिरोधृता ।
जामातरः सन्ति परन्त्वनेकशः तद्दण्डकृत्ये समयो ह्यपेक्ष्यते ।।

राजा की इस बिना विचार के ही दी गई आज्ञा को सुनते ही वीरबल बोला—राजन् आपकी आज्ञा शिरोधार्य है परन्तु जामाता तो बहुत हैं उनको फांसी देने के लिये कुछ समय चाहिए ।

शाहोऽवदत् शीघ्रमिदं प्रबन्धम् सम्पाद्य सूच्योऽस्मि यथावकाशम् ।
वध्यप्रदेशं स्वयमेत्य यस्माद् द्रक्ष्यामि पापान् खलु हन्यमानान् ।।

बादशाह ने कहा—जल्दी से प्रबन्ध करके मुझे भी यथासमय सूचना देना । जिससे मैं भी वध्यस्थल में जाकर स्वयं इन पापियों को मरते हुए देख सकूं ।

कृत्वा प्रबन्धं कतिभिश्च वासरैः स वध्यभूमिं नृपतिं ह्यदर्शयत् ।
विभिन्नशूलैर्लघुभिस्तथोन्नतैर्व्याप्तां महासंयमिनीं पुरीमिव ।।८।।

कुछ दिनों में वीरबल ने अच्छी तरह प्रबन्ध करके राजा को वध्य भूमि दिखाई । उसमें कई तरह की सूलियें थी, कोई छोटी कोई बड़ी । चारों ओर, सूलियें ही दिखाई देरही थीं । मानो यह दूसरी यमराज पुरी ही हो ।

ददर्श शाहः पुरतः सहस्रशोऽतिविस्तृता लोहमयीश्च शूलिकाः ।
याः सर्वसाधारणादण्डहेतवे विनिर्मिता मुञ्जगुणैः समन्विताः ।।९।।

बादशाह ने वहां पर हजारों सूलियें लोहे की बनी हुई चारों ओर फैली देखीं । जो सर्वसाधारण जामाताओं को मृत्युदण्ड देने के लिये तैयार की गई थीं और वे मूञ्ज की रस्सी के फन्दे वाली थीं ।

तत्रैकदेशे कतिचिच्च शूलिकाः कार्पासपाशान्वितरौप्यनिर्मिताः ।
एका तु तासां बहुरत्नमण्डिता कौशेयपाशान्वितहेमभूषिता ॥१०॥

वहीं एक स्थान पर कुछ सूलियें चांदी की बनी हुई थीं जिनमें सूत की डोरी लटक रही थी। और एक मणि हीरे जवाहरात से जड़ी हुई सोने की फांसी थी जिसमें रेशम की डोरी बन्धी थी।

तास्ता विलोक्याथ नृपोऽतिविस्मितः
पप्रच्छ तं वीरबलं महामतिम् ।
एताः कथं भो रजतेन संस्कृता
एका तथेयं किमु हेमसम्भवा ॥११॥

इन सब को देखकर बादशाह को बड़ा विस्मय हुआ। बुद्धिमान् वीरबल से उसने पूछा—ये कुछ सूलियें चांदी की और एक यह रत्नजड़ित एवं सोने की क्यों बनी हुई है ?

उवाच विप्रस्तव मन्त्रिमण्डले
जामातरः सन्ति हि मादृशो जनाः ।
तेषां वधार्थं रजतेन निर्मिताः
प्रतिष्ठितानां मरणं प्रतिष्ठितम् ॥१२॥

वीरबल ने उतर दिया—महाराज ! आपके मन्त्रिमण्डल में मेरे जैसे जामाता (जमाई) भी हैं। उनके लिये चांदी की सूली है। क्योंकि बड़े आदमियों का मरना भी शान से ही होना चाहिये।

राजाधिराज़ ! त्वमपीह नापरो
जामातृवर्य्योऽसि महाप्रतिष्ठितः ।
एषा पुनः स्वर्णमयी सुशोभना भवत्-
कृते देव ! मया विनिर्मिता ॥१३॥

महाराज ! आप भी बड़े जामाताओं में एक हैं जो सर्व श्रेष्ठ हैं। आपके लिये यह सुन्दर सोने की सूली बनवाई गई है।

श्रुत्वा तु शाहः पुनराह चिन्तित इयं ममाज्ञा ह्यविचारजृम्भिता ।
सर्वं हि जामातृमयं जगद्ध्रुवम् तदत्र जामातृवधो जगद्वधः ॥

बादशाह ने क्षण भर विचार करके चिन्तित मुद्रा में कहा—मेरी यह आज्ञा बिना विचार किये जल्दी में दी हुई है, सारा संसार ही किसी न किसी का परम्परा सम्बन्ध से जामाता (जमाई) है। इसलिये जामातृ-वध का तात्पर्य है सारे संसार की समाप्ति।

यथाऽत्र जामातृवधाय भूपतेराज्ञा महाऽज्ञानविजृम्भिताऽभवत् ।
तथाहि पुत्र्याः खलु तात-सम्पदि दायस्य चर्चाऽप्यविवेकमूलिका ॥

जिस प्रकार यहां जामातृवध के लिये राजा की आज्ञा अज्ञान वश ही थी इसी प्रकार पुत्री का पिता की सम्पत्ति में भाग दिलाने देने की चर्चा भी विवेकशून्यता का उदाहरण है।

या कन्यका सैव हि भाविनी वधूर्यद् वै तया पितृगृहेऽथ लभ्यते ।
ततोऽधिकं वित्तमहो ननान्दृभिः प्रगृह्यते लाभ इहास्ति कः पुनः ॥

जो लड़की है वही किसी की भावी वधू है। पिता की सम्पत्ति से जो भाग वह ले जायगी तो उससे भी अधिक धन उसकी ननन्द (पति की बहिन) अपनी ससुराल ले जायगी फिर इस विधान में किसे क्या लाभ रहा ?

अकब्बरः प्राङ् निषिषेध तत्क्षणम् ज्ञात्वा निजाज्ञां त्रुटिसंयुतां स्वयम्
परन्तु हा ! भारत-शासका जना हठाद् दुरुक्तं ह्यपि न त्यजन्त्यहो !

अकबर ने अपनी पहली आज्ञा को दोषपूर्ण समझ कर स्वयं उसका तत्क्षण निषेध कर दिया था। किन्तु हाय ! कितने शोक की बात है कि भारत के शासक अपनी हठपूर्ण प्रकृति के कारण अनुचित दाय भाग संबंधी (हिन्दू कोड के) आदेश को वापिस नहीं ले रहे।

जात्यापि केचिद् चतुरास्तथा जडाः

(जन्म जात चतुर और मूर्ख)

अकब्बरो बीरबलं ह्यपृच्छत् जात्या जडः कश्चतुरः पुनः कः ।
उभौ हि मां दर्शय शीघ्रमेव प्रत्यक्षमक्ष्णोः खलु सप्रमाणम् ॥१॥

एकबार अकबर ने बीरबल से कहा – ऐसा कौन सा व्यक्ति है जो अपनी जन्म जात जाति के कारण मूर्ख है ? या कौन बुद्धिमान् है ? मुझे शीघ्र ही दोनों उदाहरण सप्रमाण आंखों के सामने प्रस्तुत करके दिखाओ ।

सदस्युपस्थाप्य स तन्तुवायम् शाहस्य कर्णे निजगाद राजन् ।
जात्या महामूर्ख इति प्रसिद्धः समागतोऽसौ सुपरीक्षणीयः ॥२॥

बीरबल ने उसी समय एक जुलाहे को सभा में उपस्थित करके बादशाह के कानमें कहा–हजूर ! यह जाति से ही मूर्ख है, आप परीक्षा कर देखिये ।

उवाच तं वीरबलः समागतम् भो शेख! ते रम्यतमोऽस्ति कूर्चकः ।
शाहस्त्विमं क्रेतुमभीप्सति स्वयम् चेत्सम्मतस्त्वं कुरु विक्रयं मुदा ॥

शाह की अनुमति से बीरबल उस जुलाहे से बोला—शेख जी ! आपकी दाढ़ी बहुत सुन्दर है । बादशाहे आलम उसे स्वयं खरीदना चाहते हैं यदि तुम सहमत हो तो मोल करो ।

जगाद हृष्टः खलु तन्तुवायः सौभाग्यमुग्रं किमतः परं स्यात् ।
किं मूल्यदानेन नृपः प्रभुर्मे गृह्णातु चैनं यदि रोचतेऽस्मै ॥४॥

हर्षित होकर जुलाहे ने उत्तर दिया—मेरे सौभाग्य से यदि बादशाह को दाढ़ी पसन्द हो तो वैसे ही ले सकते हैं, मूल्य की क्या बात है, ये हमारे तो मालिक हैं ।

'मूल्यं बिना नेच्छति सर्वकारो', 'यद् रोचते तर्हि तदेव देहि' ।
दत्वा तदा रूप्यकमेकमस्मायमुण्डयन्नापित पाणिना द्राक् ॥ ५ ॥

बीरबल के यह कहने पर कि—'सरकार बिना कीमत के नहीं लेंगे' तो जुलाहे ने उत्तर दिया—आप जो उचित समझें दे दीजिये । तब बीरबल ने उसे एक रुपया दे दिया और नाई द्वारा उसकी दाढ़ी मुंडवाली ।

जगाम गेहं स तु कृत्तकूर्चको मार्गेऽहसन् सर्वजना विलोक्य तम् ।
पत्नी तु दृष्टैव हसन्त्युवाच भोः! क्व ते 'खुदानूर'महो! गतं मुखात् ॥

जब जुलाहा दाढ़ी मुंडवाकर घर की ओर जारहा था तो सब लोग

उसकी खिल्ली उड़ा रहे थे। घरवाली ने तो देखते ही हंसते हुए कहा अरे ! आपके चेहरे पर से ये 'खुदा का नूर' कहां गायब हो गया ?

वैश्यं पुनर्वीरबलो नृपाग्रे संस्थाप्य कर्णे निजगाद राजन् ।
जात्या पटुर्बुद्धिमतां वरिष्ठः समागतोऽसौ सुपरीक्षणीयः ॥७॥

अगले दिन बीरबल ने एक वैश्य (बनिये) को बादशाह के सामने खड़ा करके उनके कान में कहा—हजूर ! यह जाति से ही चतुर और बुद्धिमानों में श्रेष्ठ है - इसकी भी परीक्षा कर सकते हैं।

उवाच तं वीरबलः समागतम् भो वैश्य ! ते रम्यतमो हि कूर्चकः ।
शाहस्त्विमं क्रेतुमभीप्सति स्वयम् चेत्सम्मतस्त्वं कुरु विक्रयं मुदा ॥

बीरबल ने बादशाह की अनुमति से वैश्य को कहा—सेठ जी ! आप की दाढ़ी बहुत सुन्दर है। बादशाह उसे खरीदना चाहते हैं। यदि आप सहमत हैं तो भाव ताव कीजिये।

जगाद वैश्यो नृपवर्य्य ! नः सदा व्यापार एव क्रयविक्रयो भुवि ।
कोऽन्यो भवेन्मे खलु कूर्चकोत्तमम् क्रेतुं समर्थो नृपति विना प्रभो ॥

लाला ने उत्तर दिया—हजूरे आलम ! हमारा तो खरीदना और बेचना ही धन्धा है और मेरी इतनी सुन्दर दाढ़ी को आप जैसे शाह के सिवा और कौन खरीद सकता है।

एरण्डभिण्डार्कनलप्रभारैर्न दारुकृत्यं भवति प्रकामम् ।
किं ग्राहकैस्तुच्छतमैरनेकैरेकः क्रयी भूपतिरद्य लब्धः ॥ १० ॥

आक, एरण्ड, भिण्ड और शमि आदि तुच्छ वृक्षों के ढेर से भी इमारती लकड़ी का काम भली प्रकार नहीं चल सकता है ! छोटे मोटे ग्राहकों से क्या लाभ, जबकि आज स्वयं शहँशाह ही एक ऊंचे ग्राहक मिल गये हैं।

शाहोऽवदद् ब्रूहि वणिग् विचार्य कियन्नु मूल्यं तव कूर्चकस्य ।
वैश्यस्त्रिवारं प्रणिपत्य भूमौ जगाद भूपं मधुयुक्तवाचा ॥११॥

बादशाह ने कहा—सेठ जी अपनी दाढ़ी की ठीक २ कीमत जल्दी ही सोचकर बताइए। वैश्य ने वाणी में रस घोलते हुए, तीन बार जमीन पर झुक कर प्रणाम करने के उपरान्त कहा –

सद्ग्राहकाणां पुरतो भवादृशाम् व्यापारिणो मत्सदृशः प्रतिष्ठिताः ।
बिना प्रमाणं न वदन्ति साहसात् तस्मादपेक्ष्या मम लेखसञ्चिकाः ॥

हजूर ! आप जैसे उंचे स्तर के खरीददारों के सामने मेरे जैसा प्रतिष्ठित व्यापारी बिना प्रमाण के कुछ कहने का साहस नहीं कर तकता मुझे अपनी बहियें इस प्रमाण के लिये अपेक्षित हैं ।

यदत्र किञ्चिल्लिखितं तदेव हि ग्राह्यं मया मूल्यमहो! न चाधिकम् ।
प्रेष्याश्चरास्ते मम लेखसञ्चिका गत्वा गृहं शीघ्रमिहानयन्तु ॥१३॥

बही में जो कुछ लिखा होगा मैं वही लूंगा, अधिक मूल्य नहीं । आप किसी सेवक को मेरे घर भेज दीजिये जो जल्दी ही बहियें ला सके ।

नृपाज्ञया तत्र तथाकृते हि तिस्रः शकट्यः किल सञ्चिकानाम् ।
समागतास्ताः प्रविलोक्य सर्वे सुविस्मिताः सभ्यजना नृपश्च ॥१४॥

राजा की आज्ञानुसार ऐसा करने पर तीन बैलगाड़िया बहियों से भरी हुई वहां पर लाई गईं । जिन्हें देख कर सारी प्रजा और बादशाह को बड़ा आश्चर्य हुआ ।

वैश्योऽवदद्देव ! पठन् पठन्नहम्
वदामि मूल्यं लिखतु त्वदाङ्किकाः ।
यदत्र लेखे खलु संशयो भवेत्
प्रष्टव्य एषोऽस्मि तवैव किङ्करः ॥१५॥

वैश्य ने कहा—मैं पढ़-पढ़ कर मूल्य बताता हूँ, आपके मुनीम आदि लिखते रहें । जहाँ पर कुछ सन्देह हो तो मुझ से पूछ सकते हैं । हजूर, मैं तो आपका नौकर हूं ।

उद्घाट्य दीर्घामतिजीर्णसञ्चिका-
मुवाच भो भो ! लिख मे पितामहः ।
मृतो यदा तस्य मृताहभोजने
लक्षं व्ययः कूर्चकरक्षणे कृतः ॥२६॥

एक जीर्ण शीर्ण बहुत मोटी बही को निकाल कर सेठ ने कहा—लिखो, एक लाख रुपया दादा जी के मरने पर ब्रह्मभोज में खर्च किया—इस दाढ़ी के लिये।

स्वसुर्विवाहे खलु लक्षमेकम् पितुर्मृतौ सम्प्रति सार्धलक्षम्।
तत्स्मारके भेषजभव्यगेहे लक्ष्यत्रयं कूर्चकरक्षणाय ॥ १७ ॥

बहिन की शादी में एक लाख रुपया, पिता की मृत्यु पर डेढ़ लाख रुपया और पिता जी की स्मृति में एक विशाल 'औषधालय' बनवाने में तीन लाख रुपया इस दाढ़ी के लिये खर्च किया।

मातुर्मृतौ लक्षमितं गयायाम् विद्यालये देवगृहे द्विलक्षम्।
निर्वाचने चैवमकालकाण्डे लक्षद्वयं कूर्चकरक्षणाय ॥ १८ ॥

माता जी के मरने पर गया श्राद्ध करने में एक लाख रुपया, विद्यालय और मन्दिर बनवाने में दो लाख, चुनाव तथा अकाल (दुर्भिक्ष) कोष में दो लाख रुपया इस सुन्दर दाढ़ी की शान के लिये खर्च किये।

शाहोऽवदद् वीरबलस्य कर्णे न सञ्चिका ह्येकतमा समाप्ता।
पाठ्यास्तु सर्वा यदि नूनमेष हरिष्यति द्राङ् मम सर्वकोशम् ॥१९॥

बादशाह ने बीरबल के कान में कहा–अभी तो एक बही भी समाप्त नहीं हुई। यदि ये सारी बहियें पढेगा तो मेरा सारा खजाना दाढ़ी की कीमत में ही चला जायगा।

जगाद वैश्यो भवतः कुसीदम् न कामयेऽहं व्ययितं हि याचे।
द्वात्रिंशलक्षं मम कूर्चमूल्यम् देयं त्वया मूलधनं हि राजन् ॥२०॥

वैश्य बोला—महाराज! मैं आप से व्याज नहीं लेना चाहता, लागत दाम ही मांग रहा हूं। हज़ूर, मेरी दाढ़ी की क़ुल कीमत, आप बत्तीस लाख रुपया मूल धन ही दे दीजिये।

अकब्बरो वै मनसि व्यचिन्तयत् कृते नकारे नहि मानरक्षणम्।
तस्माद्दिमं कण्टकपादपोपमम् दत्वा, तु मूल्यं हि विसर्जयाम्यहम् ॥

अकबर बादशाह ने अपने मन में विचार किया कि सौदा लेने से

मना कर देने पर मान रक्षा न हो सकेगी। अतः बत्तीस लाख रुपया देकर कंटीले झाड़ की भांति चिपटं हुवे इस चालाक से राहत पानी उचित है।

द्वात्रिंश लक्षं प्रददौ स भूपतिः सम्प्रापयद् वैश्यवरः स्वकं गृहम्।
चमत्कृताः सर्वजनाः सभासदो गृहे गृहेऽयं विषयो व्यजृम्भत ।२२।

शाह ने बत्तीस लाख रुपया खजाने से दिलवा दिया। सेठ ने वह सब अपने घर भिजवा दिया। सारे सभासद इस घटना से बड़े आश्चर्य चकित हुए। नगर भर में घर २ चर्चा फैल गई।

तत्कूर्चकं मुण्डयितुं तु नापितो यावत्समुद्यम्य करं समुद्यतः।
तावद्धि वैश्यस्तमुवाच भर्त्सयन् रे मूर्ख जानासि न राज्यशासनम्।

जब नाई सेठ जी की दाढी काटने के लिये तैयार हुआ तो सेठ ने उसे फटकारते हुवे कहा—अरे, बेवक़ूफ! क्या तू राज्य का कानून नहीं जानता।

न साम्प्रतं मे खलु कूर्चकोऽस्ति राज्ञागृहीतो बहुमूल्यतोऽयम्।
तस्मान्नृपं पृच्छ 'महामहिन्द्र किं कूर्चकं ते किल मुण्डयामि' ।।२४।।

यह दाढ़ी अब मेरी नहीं है, इसको बादशाह ने बहुत मूल्य देकर खरीद लिया है। इसलिये उन्हीं से पूछो—'शहंशाहे आलम! क्या मैं आपकी दाढ़ी काट सकता हूं।

पृच्छेत् कथं नापित एष भूपम् वदेत्कथं 'मुण्डय' शाहशाहः।
नृपेङ्गितो वीरबलो जगाद, भो वैश्य! गच्छ स्वगृहं कृतार्थः ।।२५।।

[विचित्र समस्या थी।] किस प्रकार तो नाई यह बात बादशाह से पूछे [कि 'आपकी दाढ़ी मूंड दूं?'] और कैसे बादशाह ही कहदें कि हां 'मूंड लो'। तब शाह के सङ्केत से वीरबल ने कहा—'सेठजी! आप घर जाओ'।

वैश्योऽवदत् त्रिःप्रणिपत्य भूमौ क्षन्तव्य एवात्र ममापराधः।
विक्रीतवस्तु स्वगृहे न रक्ष्यम् नृपोऽधुना मुण्डयतु स्व कूर्चम् ।।२६।।

वैश्य ने तीन बार प्रणाम किया और कहा—हजूर! मेरा अपराध क्षमा करें। बेची हुई चीज को अपने घर नहीं रखना चाहिये अतः आप अपनी दाढ़ी को कटवा लीजिये।

शाहोऽब्रवीत् वीरबलस्य कर्णे प्रेष्यस्त्वयं युक्तिशतैः प्रबोध्य ।
द्रव्यग्रहे वै वणिजां समक्षे नान्यस्य बुद्धिश्चलति क्षितीन्द्र! ॥२७॥

वादशाह ने बीरबल के कान में कहा—इसको किसी तरह युक्ति से चलता करो, पर वीरबल ने उत्तर दिया—महाराज ! रुपये पैसे के विषय में वैश्यों के सामने किसी की बुद्धि नहीं चलती ! मैं प्रयत्न करता हूं ।

'रक्षेमं कुर्चकं त्वं 'प्रतिदिवसमहो देहि मे पञ्च मुद्राम्
भृत्यः सेवार्थमस्य प्रथितसुरभितं चान्दनं चैव तैलम् ।
यावज्जीवं किलैतत् यदि मम नियमाः पाल्यमाना भवेयुः,
कूर्चं संरक्षयामि क्षितिपतिसदसि श्रावयामीह सर्वान् ॥२८॥

वीरबल ने वैश्य से दाढ़ी पूर्ववत् रखने को कहा। उसने उत्तर दिया 'यदि मुझे प्रतिदिन पांच मुद्रा मिले, और इस दाढ़ी की सेवा के लिये एक सेवक और सुगन्धित चन्दन का तेल प्राप्त होता रहे—यदि जीवन भर मेरे इन नियमों का पालन हो तो मैं भरे दरबार में कहता हूं कि तभी शहनशाह की इस दाढ़ी को सुरक्षित रख सकता हूं ।

चातुर्य्ययुक्तां वणिजः कथां तथा, तां तन्तुवायस्य विनोदसंयुताम् ।
जनाः समेता नगरेऽवदन् मुदा चैकस्य बुद्धिं ह्यपरस्य मूर्खताम् ॥

चातुर्य्य से भरी वैश्य की यह कथा और विनोद से पूर्ण जुलाहे की वह कहानी जहां तहां इकट्ठे हुवे नगर वासी एक दूसरे से कह रहे थे। एक की बुद्धिमत्ता और दूसरे की मूर्खता की सर्वत्र चर्चा थी ।

श्रुत्वा तु भार्या खलु तन्तुवायम् उवाच भो मूर्खतमोऽसि लोके ।
एकैव मुद्रा तव कूर्चमूल्यम् वैश्यस्य कूर्चो बहुलक्षमूल्यः ॥३०॥

जुलाहे की स्त्री ने जब घटना सुनी तो वह अपने पति को लज्जित करते हुए बोली—अरे ! तू दुनिया में सबसे बेवकूफ है। तेरी दाढ़ी केवल एक रुपये की है, और वैश्य की लाखों रुपये की ।

नीतस्तु लोकैः परिहासपात्रताम् निर्भर्त्सितो बन्धुजनैश्च भार्यया ।
स तन्तुवायः कुपितोऽथ दुःखितो गत्वा नृपं प्राह प्रतारितस्त्वया ॥

जब सब लोग उस जुलाहे की हंसी उड़ाने लगे, इष्ट मित्रों ने तथा पत्नी ने बहुत भर्त्सना की तो वह क्रुद्ध और दुःखित होकर बादशाह से जाकर बोला— आपने मुझे ठग लिया ।

ममातिलम्बः खलु कृष्णकूर्चकस्त्वयैकया चैव हि मुद्रया हृतः ।
वैश्यस्य तुच्छश्चतुरंगुलस्तथा क्रीतः सभायां बहूलक्षरूप्यकैः ।।३२।।

मेरी इतनी लम्बी काली दाढ़ी का आपने केवल एक रुपया दाम दिया । और वैश्य की चार अंगुल की छोटी सी दाढ़ी को भरे दरबार में लाखों रुपये देकर खरीदा !

प्रेम्णा तदा वीरबलो जगाद तम्, न वञ्चितस्त्वं त्वयका स्वयेच्छया
स्वयं हि दत्तोऽपि न रोचते यदि, प्रगृह्यतामेष तवास्ति कूर्चकः ।।

तब वीरबल ने प्रेमपूर्वक उसे समझाया कि हमने तुम्हें नहीं ठगा— स्वेच्छा से ही तुमने दाढ़ी दी थी । फिर भी यदि यह सौदा तुम्हें स्वीकार नहीं हो तो यह तुम्हारी दाढ़ी है उठा ले जाओ इसे ।

स तन्तुवायो नृपरूप्यकन्तदा निक्षिप्य सद्यो जगृहे स्वकूर्चकम् ।
स्तुवन्नरेशं हसतश्च मन्त्रिणः स कूर्चहस्तः प्रययौ यथागतम् ।।३४।।

जुलाहे ने बादशाह का रुपया वहीं फेंक कर अपनी कटी हुई दाढ़ी ले ली । मन्त्री हंस रहे थे । वह शाह की स्तुति करता हुआ अपनी कटी हुई दाढ़ी हाथों में थामे अपने घर आ गया ।

शाहं तदा वीरबलो जगाद, विलोकितौ सम्यगुभौ परीक्ष्य ।
जात्यातिमूर्खः खलु तन्तुवायो जात्या पटुर्वित्तहरो वणिक् किम् ।।

तब वीरबल ने बादशाह से कहा—हजूर ! आपने दोनों की भली भान्ति परीक्षा की । देखा, जुलाहा जाति परम्परा से ही कितना भोला सिद्ध हुआ और वैश्य इतना अधिक रुपया प्राप्त करने के कारण चालाक निकला ।

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा

(असली और नकली भक्त)

अथैकदा श्रीपतिदर्शनोत्सुको जगाम वैकुण्ठपुरीं स नारदः।
मार्गे वटच्छायगतेन केनचित् तपस्विनाऽसौ प्रणिपत्य सत्कृतः॥

अर्थ—एक बार देवर्षि नारद लक्ष्मीपति भगवान् की दर्शन लालसासे वैकुण्ठ धाम को चले, मार्ग में वट वृक्ष की छाया में आसन जमाए किसी तपस्वी ने प्रणाम पूर्वक उनका बहुत सम्मान किया।

वैकुण्ठयात्रां तु निशम्य नारदं स तापसः प्रार्थयतोज्झितकलमम्।
कदा नु मां दास्यति दर्शनं हरिः संपृच्छ्य सूच्योऽस्मि कृपालुना त्वया।

अर्थ—प्रसङ्गात् जब यह सुना कि नारद जी वैकुण्ठ पधार रहे हैं तो इस तपस्वी ने शान्त-चित्त नारद जी से प्रार्थना की कि हे भगवन्, भक्तवत्सल भगवान् इस "दास" को अपने दर्शनों से कब कृतार्थ करेंगे—यदि यह बात भगवान् से पूछ कर मुझे सूचित करें तो बड़ी ही कृपा हो।

वाढं समाश्वास्य जगाम नारदो मार्गेऽपरः सम्मिलितो जटाधरः।
गङ्गातटे स्थण्डिल-संस्थितो ह्ययं संप्रार्थयामास तदेव नारदात् ॥३॥

अर्थ—नारद जी ने उक्त तपस्वी की प्रार्थना स्वीकार की भगवान् से पूछ कर उनका उत्तर इन तक पहुंचाने का आश्वासन दिया और आगे चलते बने। रास्ते में आगे फिर एक अन्य जटाधारी तपस्वी मिला जो गङ्गा किनारे ऊंचे चबूतरे पर आसन जमाये बैठा था, संयोग वश इसने भी पहिले तपस्वी की भान्ति ही प्रार्थना की कि मुझे भगवान कब दर्शन देंगे—इसका उत्तर भगवान् से पूछ कर मुझे बताने की कृपा करें।

कृतत्वरः प्राप्य हरिं प्रणम्य तं न्यवेदयत् सर्वजगद्व्यवस्थितिम् ।
प्रसङ्गतः प्राह च भक्तयोर्द्वयोर्नवीनयोर्दर्शनलालसां मुनिः ॥४॥

अर्थ—नारद जी झटपट वैकुण्ठ पहुंचे भगवान् को साष्टाङ्ग प्रणाम करके चौदह लोकों की नई २ रिपोर्ट दी। मृत्युलोक के प्रसङ्ग में पूर्वोक्त इन दोनों भक्तों की भी भगवद्दर्शन लालसा सम्बन्धी चर्चा की।

जगाद विष्णुर्वचनान्मम त्वया वाच्यो बृहत्पीतजटाधरो मुनिः ।
भजस्व मां जन्मनि सप्तमे गते मद्दर्शनं प्राप्स्यसि देवदुर्लभम् ॥५॥

अर्थ—भगवान् ने कहा कि उस लम्बी जटा वाले तपस्वी को तुम मेरा यह संदेश दे देना कि खूब भजन करते चलो तुम्हारे सात जन्म बीत जाने पर मेरे देव दुर्लभ दर्शन तुम्हें मिलेंगे।

वाच्यस्तथाऽसौ वट-मूलसंस्थो यावन्ति पत्राणि वटस्य सन्ति ।
तावन्ति जन्मानि भजस्व नित्यं यत्नेन मां द्रक्ष्यसि भाग्यतस्त्वम्

अर्थ—और सुनो, नारद जी ! वट वृक्ष के नीचे बैठे उस दूसरे तपस्वी को भी मेरा यह सन्देश पहुंचा देना कि इस वट वृक्ष के जितने पत्ते हैं उतने ही जन्मों तक तुम यत्न पूर्वक निरंतर भजन करो तभी तुम भाग्य से मेरे दर्शन पाओगे।

श्रुत्वा हसन् प्राह हरिं मुनीश्वरः संदर्शनेऽप्यस्ति हि तेऽनुदारता ।
उवाच शार्ङ्गी किमु वच्मि नारद ! चराचरं सञ्चितकर्मयन्त्रितम् ॥७॥

अर्थ—यह सुन कर नारद जी ने हंसते हुए भगवान् से कहा कि भगवन् आप तो दर्शन देने में भी महा कंजूसी करते हो। भगवान् बोले—क्या बताऊं नारद ! यह सब चराचर जगत् अपने २ सञ्चित कर्मों के बन्धनों में बंधा है।

प्रणम्य देवं बृहतीं क्वणन् मुनिः स मृत्युलोकं पुनराजगाम ह ।
जटाधरं प्राप्य च तेन पूजितः शुश्राव विष्णोर्भणितं मुदान्वितः ॥८॥

अर्थ—नारद मुनि भगवान् को प्रणाम करके अपनी बृहती नामक

वीणा को बजाते हुए पुनः मृत्युलोक में आ पहुंचे और गंगा तीर वासी जटिल तपस्वी के आश्रम में आ गए। इस महात्मा ने इनका बहुत स्वागत किया तब ये प्रसन्नता से फूलकर भगवान् का सन्देश सुनाने लगे।

स सप्तजन्मावधिमाकलय्य तत्, कोपेन विस्फारितरक्तलोचनः ।
संत्रोट्य मालां च विभज्य तुम्बिकां हन्तुं ह्यगात् चञ्चुपुटेन नारदम् ॥९॥

अर्थ—'सात जन्म बीत जाने पर दर्शन होगें'–तपस्वी यह बात सुनते ही क्रोध से अन्धा हो गया उसकी विस्फारित लाल आंखें अंगारे बरसा रही थीं। अपनी जप करने की माला को तोड़कर दाना २ बखेर दिया, तुम्बी को जमीन में मार कर टुकड़े २ कर डाले, और अपना चिमटा उठा कर नारद की कपाल क्रिया करने के लिए उद्यत हो गया।

रे तिष्ठ ! दम्भिन् ! भगवत्प्रचारक ! भवत्समैरेव जगत्प्रतार्य्यते ।
इदं मया जन्म वृथैव नाशितं स्यां सप्तजन्मावधि भिक्षुकः पुनः ॥

अर्थ—अरे पाखण्डी, भगवान् के एजेण्ट जरा ठहर ! तेरे जैसे पूपनों ने ही जगत् को ठग रखा है। यह जन्म तो मैंने व्यर्थ ही माला फेरते २ नष्ट कर लिया। अब सात जन्म तक और भिखमंगा बनू।

परांद्रवन्नारद आश्रमाद् द्रुतं शुशोच हाऽस्यैव यदीदृशी दशा ।
अनंतजन्मश्रवणात्तु स ध्रुवं क्रुद्धोऽद्य मां धक्ष्यति नात्र संशयः ॥११॥

अर्थ—नारद जी वहां से भागे सोचने लगे कि जब कि इस सात जन्म वाले की यह दशा है तब वट वृक्ष के पत्तों जितने जन्म की बात सुनकर तो वह तपस्वी आज अवश्य ही मुझे फूंके बिना न छोड़ेगा।

गच्छामि नो वा ? वचनेन बद्धः, सुसज्जितः स्यां बहुसावधानः ।
बद्ध्वा जटां मेखलया सुनद्धो विपादुकोऽगाद् वटदूरसंस्थः ॥१२॥

अर्थ—नारद जी सोच में पड़ गये 'वहां जाऊं कि ना जाऊं' अन्त में यही निर्णय किया कि वचन बद्ध होने के कारण जाना तो पड़ेगा ही, परन्तु मुझे अतीव सावधानी से तैय्यार होकर जाना चाहिये। झट जटाएं कसकर बांधी, तगड़ी को खब पक्की किया, पादुकाएं निकाल कर बगल में दवाली, फिर भी वह वट वृक्ष से दूर ही खड़े हो गये।

स तापसो वीक्ष्य समाह्वयन्मुनिं दूरस्थ एवाकथयद् हरेर्वचः ।
तपस्विवर्य्यस्त्वतिभक्तिविह्वलस्तथापि दुद्राव विशङ्कितो मुनिः ॥१३॥

अर्थ—तपस्वी ने जब नारद जी को देखा तो वह आदर पूर्वक उन्हें अपने निकट बुलाने लगा, परन्तु नारद ने दूर खड़े २ ही एक साँस में भगवान् का सब सन्देश कह सुनाया, [मैं तो अपने को दर्शन योग्य-नहीं समझता था परन्तु मुझे भी देर सवेर आखीर दर्शन हो जाएंगे इस आशय से] यह तपस्वी तो प्रेम विह्वल हो गया परन्तु नारद जी पहिले काण्ड की आशङ्का से भागने लगे।

न पृष्ठगं वीक्ष्य ददर्श तं मुनिस्तत्रैव नृत्यन्तमगाधराधसम् ।
देवर्षिवर्य्यः पुनरागतस्त्विह संकीर्तयन्तं ह्यवलोक्य विस्मितः ॥१४॥

अर्थ—जब भागते हुवे नारद जी ने अपने पीछे उस तपस्वी को आते न पाया किन्तु वहीं वट की छाया में प्रेमोन्मत्त होकर नाचते देखा तो वे स्वयं निर्भय होकर पुनः वहां लौट आए और तपस्वी को देहाध्यास रहित होकर कीर्तन करता देख चकित हुवे।

मुहूर्तमात्रेण स प्रेमविह्वलो यावत्तपस्वी पतनोन्मुखोऽभूत् ।
तावद्धरिः शंखगदाब्जचक्री स्वाङ्के न्यधाद् वत्सवरं यथाम्बा ॥१५॥

अर्थ—केवल मुहूर्त भर कीर्तन करते २ प्रेम विह्वल होकर ज्यों ही वह तपस्वी भूमि पर गिरा ही चाहता था कि त्यों ही शंख चक्र गदा पद्म-धारी श्रीमन्नारायण ने उसे अपनी गोद में संभाल लिया जैसे कि माता अपने पुत्र को संभाला करती है।

तपस्विनं कम्बुजलाभिषिक्तं यदा हरिर्वक्तुमियेष किञ्चित् ।
तदा प्रभुं प्राह विगृह्य नारदः शृणुष्व वाक्यं प्रथमं मदीरितम् ॥१६॥

अर्थ—भगवान् ने अपने शंख के जल से उस तपस्वी को सचेत किया जब वे उससे कुछ कहना ही चाहते थे कि तभी नारद जी ने प्रभु को अपने हाथ से झक-झोर कर कहा श्रीमान् जी पहिले मेरी बात सुनिये।

एकाधिकारः किमु ते मृषागिरि शस्तानि किं सन्ति शिरांसि नः प्रभो ।
सन्देशविज्ञप्तिरनन्त-जन्मनां क्षणादनाकारित एव चागतः ॥१७॥

अर्थ—भगवन् ! क्या दुनिया भर के झूठ बोलने का ठेका एकमात्र आपने ले लिया है ? और क्या हम लोगों के कपाल [फुड़वाने के लिये] सस्ते समझ रक्खे हैं। कहां तो आप अपने सन्देशों में अनन्त जन्मों के बाद दर्शन होने की बात कह रहे थे और कहां अब बिना बुलाए ही क्षण मात्र में आ पहुंचे ।

उवाच विष्णुः प्रथमं यदीरितं तत्पूर्वजन्मार्जितकर्ममूलकम् ।
तेष्वेव दग्धेषु वियोगवह्निना कः स्याद् विलम्बो मम दर्शने मुने ॥१८॥

अर्थ—विष्णु भगवान् ने कहा—नारद जी मैंने अपने सन्देश में जो अनन्त जन्मों के बाद दर्शन होने की बात कही थी, वह इस भक्त के जन्म जन्मान्तर के अगणित सञ्चित कर्मों के उपभोग की दृष्टि से कही थी, परन्तु मेरे प्रेमजन्य विरह की अग्नि ने जब उन समस्त कर्मों को क्षण मात्र में ही भस्म कर डाला तब फिर मेरे दर्शन में क्या देरी हो सकती थी ।

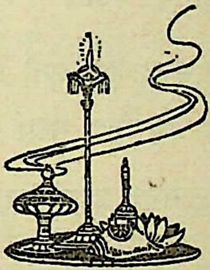

अहो कृतघ्ना न भजन्ति तं प्रभुम्

[प्रभु के अनन्त उपकार]

अथैकदा कोऽपि नृपो मदोद्धतः क्रीडन् ससैन्यो मृगयां वने वने ।
दैवाद् गणभ्रष्ट इतस्ततो भ्रमन् विवेश कान्तारममानुषं महत् ॥१॥

अर्थ– एक बार एक मदोद्धत राजा अपनी सेना सहित जंगल में शिकार खेलता फिर रहा था कि वह सेना से बिछुड़ कर अकेला इधर उधर भटकने लगा। इस प्रकार भटकता हुआ वह एक निर्जन वन में पहुंच गया।

प्रस्विन्नगात्रः श्रमचूर्णिताङ्गः तृषापरीतस्तरुमूलसंस्थः ।
एकाक्यहो वारि विना मुमूर्षुरवाप मूर्च्छां गतसर्वसंज्ञः ॥२॥

अर्थ–पसीने से उसका सारा शरीर भीग गया था और थकावट से शरीर चूर-चूर हो रहा था। प्यास से व्याकुल होकर वह एक पेड़ के नीचे बैठ गया। पानी न मिलने से उसके प्राण निकले जा रहे थे, उसे होश न रहा और वह मूर्छित होकर वहीं गिर पड़ा।

भाग्येन कोऽप्यत्र चरन् तपोधनः समागतो वीक्ष्य नृपं तथाविधम् ।
कमण्डलुस्थेन जलेन तन्मुखं सिसिञ्च सद्यः करुणापरिप्लुतः ॥३॥

अर्थ—सौभाग्य से एक तपस्वी महात्मा राजा को इस हालत में देख कर उसके पास आया और कमण्डलु से जल लेकर उसके मुखपर छींटे मारने लगा।

स लब्धसंज्ञोऽपि निरुद्धवाणिर्जलं ययाचे स्वकरेङ्गितेन ।
यावद् गृहीत्वा मुनिदत्तपात्रं इयेष पातुं तमुवाच साधुः ॥४॥

अर्थ—जल के छींटे लगने से राजा को जरा होश आया। परन्तु थकावट के कारण उसमें बोलने की शक्ति न थी उसने इशारे से पानी मांगा मुनि के दिये हुए जलपात्र को ज्यों ही उसने मुँह से लगाया त्यों ही मुनि ने उसे रोक कर कहा।

कमण्डलुस्थस्य जलस्य मूल्यं कियन्नु दातुं नृप ! प्रस्तुतस्त्वम् ।
अर्धं स्वराज्यं सहसाह भूपोऽब्रवीन्मुनिः संपिब भो यथेच्छम् ॥५॥

अर्थ—राजन् ! मेरे कमण्डलु के इस जल की क्या कीमत तुम इस समय दे सकते हो ? राजा तुरन्त बोला भगवन् अपना आधा राज्य दे सकता हूं। महात्मा बोले—तब ठीक है, तुम यथेच्छ जलपान करो।

पीत्वा जलं मृत्युमुखाद्विनिर्गतः स्वस्थः प्रजेशः प्रणिपत्य पादयोः ।
अस्तौन्मुनिं नम्रतया मुहुर्मुहुः मद्रक्षकः श्रीभगवान् भवान् ही ॥६॥

अर्थ—राजा ने यथेच्छ जलपान किया और मानों मौत के मुँह से लौट आया। विनम्र होकर मुनि के चरणों पर गिर पड़ा तथा कहने लगा महाराज ! जल पिला कर मेरी रक्षा आपने की है आप तो मेरे लिये साक्षात् भगवान् हो।

श्रुत्वा तदुक्तिं हृदयेऽहसन् मुनिः जगाद भूयो नृपतिं महामतिम् ।
मत्प्रश्नमेकं प्रविचार्य मानसे तदुत्तरं देहि नृपेन्द्र ! साम्प्रतम् ॥७॥

अर्थ—राजा की बात सुनकर मुनि जी मन ही मन हँसने लगे फिर राजा से कहने लगे—राजन् ! मैं एक प्रश्न आपसे पूछता हूं, सोच समझ कर उसका उत्तर दीजिये।

पीतं त्वया यत्सलिलं नु साम्प्रतम् तन्मूत्रभूतं यदि न स्रवेद् बहिः ।
तत्पीडया मृत्युमुखं गतो भवान् हा हा प्रकुर्वन् प्रपतेद् भुवस्तले ॥८॥

अर्थ—जो जल आपने अभी २ पीया है वह यदि मूत्र बनकर बाहर न निकले और आपको प्राणान्तक पीड़ा होने लगे तथा मूर्छित होकर भूमि पर गिर पड़ो।

तदा तु कश्चिद्यदि वैद्यराजो याचेत मूल्यं नु निजौषधस्य ।
रोगापनोदाय तदा कियत्त्वं धनं प्रदातुं खलु प्रस्तुतः स्याः ॥९॥

अर्थ—तब यदि कोई वैद्यराज आपसे अपनी औषधि का मूल्य मांगने लगे तो रोग से छुटकारा पाने के लिये आप उसका क्या मूल्य दे सकते हो ?

नृपोऽवदत्सर्वधनापहारे अर्धं त्यजन्तीति मृषा न वादः ।
तस्मात्तदाहं तु निजार्धराज्यं मुदा प्रदास्यामि विना विचारम् ॥

अर्थ—राजा ने कहा—महाराज ! जब सब कुछ समाप्त हो रहा हो तब आधा छोड़ देना चाहिये यह सिद्धान्त असत्य नहीं है । इसीलिये मैं भी अपना आधा राज्य बिना सोच विचार दे दूँगा ।

तपोधनः प्राह सुसिद्धमेतत् तवोक्तिभिस्ते किल सर्वराज्यम् ।
जलीय-हस्ताञ्जलितुल्यमूल्यम् पाने तथा प्रस्रवणे तदर्द्धम् ॥११॥

अर्थ—महात्मा बोले—ठीक है, आपके कहने के अनुसार आपका सारा राज्य एक अञ्जलि जल के मूल्य का है आधा पीने की कीमत और आधा उसे मूत्र रूप से बाहर निकालने की कीमत है ।

य ईश्वरो नित्यमियज्जलं भुवि ददाति मूल्येन विना जनेभ्यः ।
ऋणं कियत्तस्य विचार्यतां तथाप्यहो कृतघ्ना न भजन्ति तं प्रभुम् ॥

अर्थ—जो भगवान् प्रतिदिन बिना ही मूल्य के इतना जल संसार को देते हैं । जरा विचार करो उनका कितना ऋण हमारे ऊपर है । फिर भी कृतघ्न प्राणी उस प्रभु का भजन नहीं करते ।

सुन्युक्तिमाकर्ण्य विचार्य मानसे प्रभोरनन्तामुपकारसन्ततिम् ।
त्यक्तवा स्व-राज्यं निज-शेष-जीवनं परोपकृत्यै हरयेऽर्पयन्मुदा ॥

अर्थ—मुनि की तथ्य पूर्ण बात सुनकर और मन में भगवान् की अनन्त उपकार परम्परा को सोचकर राजा ने अपने सम्पूर्ण राज्य का परित्याग कर दिया तथा अपने अवशिष्ट जीवन को परोपकार के लिये प्रभु को अर्पण कर दिया ।

भवतरण-प्रयत्न-साफल्यम्

(भवसागर तरणार्थी पहिले मोह से उन्मुक्त हो !)

राकातिथावाश्विनमासि चैकदा 'चोबा' भिधाना मथुरानिवासिनः।
भङ्गां सुनिष्पिष्य मुदान्विता पपुरानन्दमग्ना जगदुः परस्परम् ॥१॥

अर्थ—एक बार मथुरा के रहने वाले 'चोबे' आश्विन मास की पूर्णिमा को भांग रगड़ २ कर पीते हुए आनन्दोल्लास के साथ परस्पर कहने लगे।

अहो सदुग्धा सितया समन्विता सकुंकुमा मांसलबीजसंयुता।
सूर्यात्मजापुण्यजले विमिश्रिता भङ्गा त्रिलोक्याममृतस्य सोदरा ॥२॥

अहो ! दूध चीनी से युक्त बादाम आदि गूदे वाले, सुन्दर बीजों वाली, यमुना के पवित्र जल में छनी हुई विजया महारानी (भाङ्ग) तीनों लोकों में अमृत की सगी बहन के समान है।

भङ्गा सुपीता पिटकाश्च भक्षिता लीढा यथेच्छं नवनीतपिण्डका।
गेया मिलित्वा 'रसिका'श्च सांप्रतम्, जयत्यहो श्रीजननी यमस्वसा॥

एक बोला—छक कर खूब भाङ्ग पी, पेड़े उड़ाये और यथेच्छ मलाई-रबड़ी मक्खन आदि की पिंडी चाटी। अब हम सब को मिलकर 'रसिया' गाने चाहियें। 'जै जमुना मैया की' इस जय घोष की गूंज से वह स्थान मुखरित हो उठा।

ततोऽपरः प्राह किमुच्यतेऽधुना जले शरच्चन्द्रमरीचिशोभिते !
नौकाविहारस्य पुरोगमो भवेत्तदा कृतार्था वयमद्य बान्धवाः ॥४॥

दूसरा कहने लगा—अहा, कितना सुहावना दृश्य है ! यमुना के निर्मल जल में शरत्कालीन चन्द्रमा की छिटकी हुई चांदनी कितनी मनो-

मोहिका प्रतीत हो रही है !! यदि अब नौका-विहार का प्रोग्राम बन जाय तो आज हमारे समान कौन दूसरा सौभाग्यशाली होगा ?

जगाद ‘हां हां!’ परिमृज्य तुन्दम्, अहोऽद्य स्रुघ्ने जनताः समेताः ।
‘ताजा’ख्य चैत्यस्य विलक्षणस्य चन्द्रप्रकाशे खलु दर्शनाय ॥५॥

तीसरे चौबा जी आनन्दातिरेक के कारण तोन्द पर हाथ फेर कर ‘हां, हां’ खंखारते हुये बोले—भई, आज पूर्णिमा की चांदनी में चमकते हुये, सुप्रसिद्ध ‘ताजमहल’ की अपूर्व छटा को देखने के लिये ‘आगरा’ शहर में जनता की बड़ी भीड़ लगी होगी ।

अन्योऽवदत् विद्यत एव नौका भवन्तु सर्वे क्रमशस्तु नाविकाः ।
स्रुघ्नः कियद्दूरमितोऽस्ति बान्धवा दूरं हि किं भो ! व्यवसायिनां भुवि

चौथा चौबा बोल उठा—अरे भाईयो ! आगरा यहां से दूर ही कितना है ! ये नौका तैय्यार है सब बारी २ से डांड चलाओ ! अब पहुंच जायेंगे । निश्चित ही परिश्रमशील के लिये भूमण्डल में क्या अप्राप्य है !’

ते साधु साध्विति वदन्त उपेत्य नावमारुह्य मोदभरलुप्तसमस्तसंज्ञाः ।
गायन्त एव रसिकान् करतालपूर्वम्, सर्वे क्रमेण जगृहुस्तरिवंशदण्डम्

वे सब ‘बहुत अच्छा, क्या कहना !’ बोलते हुये नौका में जा बैठे । आनन्द और भाङ्ग की मस्ती में उनके होश ठिकाने नहीं थे । ताली बजा २ कर ‘रसिया’ की तानें अलापने लगे और बारी २ से चप्पू चलाकर नाव खेने लगे ।

इत्थं व्यतीता रजनी समग्रा ते क्षेपणीचालनचूर्णिताङ्गाः ।
विलोक्य दीपान् यमुनोपकण्ठे प्राप्ता वयं स्रुघ्नमहो ! निनेदुः ॥८॥

इस भान्ति सम्पूर्ण रात्रि व्यतीत हो चुकी । डांड चलाते २ उनका शरीर थक कर चूर २ हो गया । यमुना किनारे चमकती दीपपंक्ति देखकर सब चिल्ला उठे लो पहुंच गये, हम लोग आगरा पहुंच गये ।

कालेन दीपेषु गतप्रभेषु स्नानार्थिनो वीक्ष्य जनान् तटस्थान् ।
प्रोचुः सहर्षं मथुरेव भाति ‘स्रुघ्नोऽप्यहो ! सर्वसमृद्धियुक्तः ॥९॥

अर्थ—धीरे २ दीपकों के प्रकाशहीन होनेपर उषाकाल के समय स्नान करने वाले किनारे पर स्थित व्यक्तियों को देखकर वे प्रसन्न होकर कहने लगे—अरे ! वैभव-सम्पन्न 'आगरा' भी मथुरा जैसा ही प्रतीत होता है।

एषा तु काचिन्मम गेहिनीव, तथा ह्ययं मे शिशुतुल्यनासः ।
आश्चर्यमेतत्खलु सर्वमर्त्याः स्रौघ्नाः कथं दृष्टचरा इवात्र ॥१०॥

एक बोला—अरे ! ये स्त्री तो मेरी पत्नी की तरह की है ! दूसरा कहने लगा—ओहो ! इस बालक की नाक बिल्कुल मेरे पुत्र जैसी है ! तीसरा बोला—आश्चर्य है, आगरे के सारे ही व्यक्ति पहले देखे हुए से प्रतीत हो रहे हैं।

मुखस्थ-'खैनी'-रसपूरिताधर उद्ग्रीव आसादितलम्बयष्टिकः ।
चौबाधिराजः कृतखंमहारवोऽब्रवीत् तटस्थान् मनुजान् विबोधयन् ॥

बड़ा चौबा जी—जिसके मुख में 'खैनी' भरी हुई थी—गर्दन ऊंची उठाकर, हाथ में लम्बा लठ्ठ लिये हुए खंखार कर किनारे के आदमियों से बोला —

भोः स्रुघ्नलोका ! वयमद्य माथुराः प्राप्ता मुदा 'ताज' विलोकनोत्सुका
यज्वान आशीर्वचनं प्रदीयते विधीयतां नः पिटकैश्च भोजनम् ॥१२॥

अरे आगरा निवासियो ! हम मथुरा के चौबे आनन्दपूर्वक मथुरा से ताजमहल देखने यहां पधारे हैं। यजमानों ! हम तुम्हें आशीर्वाद देते हैं—पेड़े खिलाकर हमारा स्वागत-सत्कार करो।

तीरे स्थिता भङ्गडधर्मपत्न्यो रोरुद्यमाना विहसन्त्य ऊचुः ।
यूयं निमग्ना इति सम्प्रधार्य कर्तुं प्रवृत्ता विधवाभिषेकम् ॥१३॥

किनारे पर खड़ी हुई भङ्गड़-चौबों की स्त्रियें—जो अब तक रो रही थी हंसते हुए बोली—'तुम सब यमुना में डूब कर मर चुके हो' ये सोचकर हम तो 'विधवा-स्नान' करने आई थीं।

न स्रुघ्नपूः श्रीमथुरापुरीयम् अद्यापि किं रोहति मातुलानी ।
गेहं समागच्छत शीघ्रमेव रुदन्ति बालाः क्षुधितास्तृषार्ताः ॥१४॥

ये 'आगरा' शहर नहीं है, ये तो मथुरा ही है । क्या अभी भी भांग का नशा चढ़ा हुआ है ? जल्दी घर आओ, बालक भूखे प्यासे रो रहे हैं ।

पण्ड्या महाविस्मितमानसास्तदा प्रोचुर्महत्कौतुकमत्र वर्तते ।
रात्रिर्गता चालयतामिमां तरिम् तथापि तिष्ठाम इहैव साम्प्रतम् ॥१५॥

आश्चर्यचकित होकर पण्डे कहने लगे—बड़ी अजीब बात है । सारी रात पतवार और डांड चलाते बीत गई पर हैं ! तब भी मथुरा में ही खड़े हैं ?

ततस्तटस्थो मुनिराह कश्चन भो बुद्धिमन्तः ! प्रचलेत्कथं तरीः ।
एषा तटस्था रशना विलोक्यते ह्यद्याप्यहो ! कूपकशङ्कु वेष्टिता ॥

तब किनारे पर खड़े कोई मुनि बोले—अरे बुद्धि के हिमालयो ! नौका कैसे चले ? नाव से बन्धी वह रस्सी देख रहे हो ? वह अभी तक भी किनारे पर गड़े हुए खूंटे में ही बन्धी है !!

स्वमूर्खतां तां प्रविलोक्य भङ्गड़ा महाट्टहासं जहसुस्त्रपान्विताः ।
संश्रावयामास तपोधनो मुनिराध्यात्मिकीमस्य महाप्रतिक्रियाम् ॥

अपनी इस मूर्खता को देख कर भङ्गड चोबे लज्जित हुए बड़े जोर से हंसने लगे । तव उस तपस्वी महात्मा ने इस घटना को आध्यात्मिक दृष्टिकोण से समझाते हुए कहा—

यत्राऽऽगरं तृप्यति संगतो जनः पीयूषकुम्भैरिव विष्णुदर्शनैः ।
तदेव वैकुण्ठपदं शुभावहमिहाऽऽगराख्यं प्रवदन्ति तद्विदः ॥१८॥

जहां पर गया हुआ मनुष्य गले तक, अमृत के भरे घड़ों के समान विष्णु के दर्शनों से संतृप्त हो जाता है वह वैकुण्ठ लोक ही यहां कल्याणप्रद 'आगरा' विद्वानों ने कहा है ।

मायावितानञ्च 'ततं' प्रसिद्धम् 'अजत्य'हो ! तत् क्षिपतीति भावः
ब्रह्मैव तत् 'ताज' पदाभिधानम् राका तथान्तःकरणं विशुद्धम् ।१९।

"(मायायाः) 'ततं' = [प्रसिद्धं (वितानम्)] 'अजति' = [क्षिपति] इस व्युत्पति के अनुसार (ततं-अजतीति 'ताजः') परब्रह्म ही 'ताज' शब्द वाच्य है। राका, पूर्णिमा ही दुग्धधवल शुभ्र होने के कारण शुद्ध निर्मल अन्तः-करण समझना चाहिये।

सांयात्रिकाः सन्ति हि सर्वजीवास्तथैषणास्तिस्र इहास्ति भङ्गाः।
मोहः स्वगेहे गुणवृक्षको हि रश्मिं तु वृत्तिं प्रवदन्ति सन्तः ॥२०॥

सम्पूर्ण प्राणी ही नाव के यात्री हैं, तथा सांसारिक तीनों एषणाएं लोकेषणा पुत्रेषणा और वित्तेषणा–ही भांग के सदृश हैं। गृहादिक में मोह ही किनारे पर गड़ा नाव बांधने का खूँटा है जिसमें समस्त वृत्ति रूप नौका की डोरी बन्धी हुई है—ऐसा सन्त महात्मा बताते हैं।

भङ्गामदोन्मत्तधियां यथाऽद्य वृथा प्रयातो भवतां श्रमोऽयम्।
तथैषणोन्मादवतां नराणाम् सर्वे प्रयासा विफला भवन्ति ॥२१॥

जिस प्रकार भाङ्ग के नशे में बुद्धिहीन हुवे तुम लोगों का सारा प्रयत्न व्यर्थ गया—ऐसे ही एषणाओं के मद से मत्त हुए सांसारिक जीवों की सम्पूर्ण क्रियाएं =कोशिशें व्यर्थ सिद्ध होती हैं।

वैफल्यहेतुर्गुणवृक्षकादहो ! पूर्वं भवद्भीरशना न मोचिता।
तथाहि लोके मनुजा गुणत्रयात् स्पृहामनुन्मुच्य भवन्ति निष्फलाः॥

असफल होने का एक मात्र कारण है, तुम्हारा किनारे के वृक्ष से नाव की रस्सी न खोलना। संसार में भी जो व्यक्ति मोह आदि से प्रवृत्ति नहीं हटाता उसकी अन्य सब चेष्टाएं व्यर्थ सिद्ध होती हैं।

अतो हि पूर्वं मनुजः स्ववृत्तिमुन्मोचयेद् दुर्दृढमोहशङ्कोः।
ततो निजां जीवनदीर्घनौकाम् उत्तारयेदात्मकृतप्रयत्नैः ॥२३॥

इस लिये मनुष्य का कर्तव्य है कि वह सर्व प्रथम मोह के मजबूत खूंटे से अपनी प्रवृत्ति रूप रस्सी को खोल डाले तब अपनी जीवन नैया को सत्प्रयत्नों के द्वारा स्वयं पार लगाये। ⊙

वास्तविका विरला:

(दूध पीने वाले मजनू बहुत, रक्त बहाने वाला कोई)

आसीत्पुरा निश्छलप्रेममूर्तिः दास्यास्तनूजो मजनुः प्रसिद्धः।
लैलाभिधाना किल राजकन्या तत्प्रेयसी पञ्चनदे बभूव ॥१॥

अर्थ—प्राचीन समय में प्रेम की साक्षात् मूर्ति 'मजनू' नाम से विख्यात एक दासीपुत्र था। पंजाब की रहने वाली 'लैला' नामक राजकुमारी उसकी प्रेयसी थी।

अन्योन्यसक्तावपि विप्रमुक्तौ तौ वंशवैषम्यविशिष्टहेतोः।
प्रवृद्धरागोन्मदखिन्न एष बभ्राम नित्यं विपिने वराकः ॥२॥

अर्थ—वे दोनों एक दूसरे को अनन्य भाव से प्रेम करते थे परन्तु फिर भी कुल की विषमता होने के कारण वे दोनों मिल न सके। इसलिये अत्यन्त खिन्न होकर अतिशय अनुराग के कारण उन्माद हो जाने से बेचारा मजनू दीवाना बना जंगलों की खाक छानता फिरता था।

लैला तु तज्जीवनरक्षणार्थं सखीकरेणाऽपि सुगुप्तरीत्या।
शृतं पयः प्रेषयति स्म नित्यं सान्विष्य तं पाययति प्रकामम् ॥३॥

अर्थ—लैला भी मजनू के जीवन की रक्षा के लिये गुप्त रीति से अपनी सखी के हाथ गर्म दूध भिजवाया करती थी। वह सखी जंगल में मजनू को ढूँढ कर उसे वह दूध नित्य पिला दिया करती थी।

दैवाद् विदित्वा नु रहस्यमेतत् वनेचरः कोऽपि च धूर्तराजः।
मार्गे मिलित्वा मजनोर्मिषेण दुग्धं गृहीत्वा पिबति स्म नित्यम् ॥४॥

अर्थ—दुर्भाग्य वश, इस रहस्य का पता लगाकर एक धूर्त जंगली

रास्ते में उस सखी को मिल जाता तथा अपने को मजनूं बताकर नित्य दूध पी जाता था।

परोऽपि कश्चित् ह्यपरोऽपि कश्चित् अन्यस्तथा चान्यतमोऽपि कश्चित्
नाना पयःपानविधानदक्षाः जाताः ह्यरण्ये मजनुस्वरूपाः ॥५॥

अर्थ—इस प्रकार एक दिन कोई, तो अगले दिन कोई, एक २ करके दूध पीने के लालची अनेकों नकली मजनू जंगल में दिखाई देने लगे।

नायं न चायं मजनुस्त्वहं हि, प्रोचुः समेताः खलु धूर्तराजाः।
सखीकरात्कोऽपि बलाच्छठेन्द्र आहृत्य दुग्धं ह्यपिवत्प्रसह्य ॥६॥

अर्थ—यह मजनू नहीं है, 'मैं ही मजनू हूं' इस प्रकार से सब धूर्त आपस में झगड़ा करते थे। कोई कोई दुष्ट तो जबर्दस्ती सखी के हाथ से दूध छीन कर पी जाता था।

भीता सखी सदनमेत्य जगाद लैलां
हञ्जेऽद्य ते मजनुभिर्भृशमाहताऽस्मि।
एकोऽभवत् सखि ! पुरा किल साम्प्रतं तु
नानाविधाः मजनवः शतशो हि जाताः ॥७॥

अर्थ—(इस प्रकार मजनुओं को देखकर) भयभीत सखी घर लौट आई। आकर लैला से बोली—सखि ! आज तो तेरे मजनुओं ने मुझे परेशान कर डाला। पहिले तो एक ही मजनू था परन्तु अब तो सैकड़ों मजनू जंगल में हो गये हैं।

ज्ञात्वा रहस्यं समुवाच लैला पातुं पयः केऽपि शठाः प्रवृत्ताः।
परीक्षितुं वास्तविकं प्रियं मे गच्छाद्य पात्रं छुरिकां गृहीत्वा ॥८॥

अर्थ—सारे रहस्य को समझ कर लैला ने सखी से कहा—सखि ! दूध के लोभी कुछ धूर्त मजनू बनने लगे हैं। मेरे प्रिय को पहिचानने के लिये तू आज एक पात्र और छुरी लेकर जाना।

प्रत्येकमामन्त्र्य वद प्रिये ! जनं, लैलाद्य हृच्छूलरुजा प्रपीडिता।
तदौषधं वै मजनोस्तु शोणितम्, आहृत्य देहे छुरिकां, प्रदीयताम् ॥

अर्थ—प्यारी सखी ! आज तू एक २ को बुलाकर कहना कि लैला को आज हृदय शूल का दौरा पड़ रहा है। वह रोग मजनू के खून से ठीक हो सकता है। आप लोग यह छुरी पकड़िये और (लैला के लिये) अपने शरीर से खून निकाल कर दीजिये।

तथाकृते दुग्धधिया समेताः सर्वेऽप्यहं पूर्वमहन्तु पूर्वम् ।
आकर्ण्य कर्णौ रुधिरस्य दानं पलायिताः गर्दभशृंगवत्ते ॥१०॥

अर्थ—(लैला के कथनानुसार) सखी ने वैसा ही किया। सब के सब धूर्त दूध की इच्छा से इकट्ठे हो गये तथा 'पहले मैं' 'पहले मैं' करने लगे। परन्तु सखी के मुंह से जब खून देने की बात सुनी तो सब इस प्रकार भाग गये जैसे गधे के सिर से सींग।

कोलाहलं तत्तु निशम्य दूरतो लैलेति लैलेति रटन् मुहुर्मुहुः ।
प्रियानुरक्तो मजनुर्मुदा स्वयमाहत्य कुन्तं प्रददौ स्वशोणितम् ॥

अर्थ— इस कोलाहल को सुनकर बार बार 'लैला लैला' की रट लगाता हुआ मजनू भी आगया तथा प्रियानुरागी उसने हंसते २ स्वयं अपने शरीर में छुरी मारकर खून निकाल कर दे दिया।

एवं ही लोकेऽवसरं विदित्वा भवन्त्यनेके स्व हिताय मुख्याः ।
समागते ते बलिदानकाले प्रयान्ति मेघा इव वायुधूताः ॥१२॥

अर्थ—इसी प्रकार से अनेक अवसरवादी लोग अपना स्वार्थ साधने के लिये मुखिया तो बन बैठते हैं। परन्तु जब कुछ बलिदान करने का अवसर आता है तो वे सभी स्वार्थी ऐसे तितर बितर हो जाते हैं जैसे हवा द्वारा उड़ाए हुए बादल।

क्षीरोदसम्भूतसुरत्नलिप्सवः सर्वेऽपि देवा अभवन् पदे पदे ।
हलाहलं पातुमहो समुद्यत एको हि लोके किल कोऽपि शंकरः ॥

अर्थ—क्षीर समुद्र से निकले हुए रत्नों को चाहने वाले तो सभी देवता थे परन्तु उग्र हालाहल का पान करने वाले भगवान् शंकर की भान्ति कोई बिरले ही एकाध

श्री रविदास-चरितम्

(भक्त रविदास)

जात्या निकृष्टोऽस्मि कुलेन हीनो जन्मापि कालुष्यमयं मदीयम् ।
त्वं रक्षको मे रघुराज! राम ! दासोऽस्म्यहं ते रविचर्मकारः ॥१॥

पद—मेरी जात कमीनी पात कमीनी ओछो जनम हमारो ।
तू रक्षक राजा रामचन्द्र कहै रविदास चमारो ॥ (रविदास की वाणि)

अनेकजन्मार्जितपुण्यसंचयैरित्थं मतिर्यस्य बभूव निश्छला ।
स उत्तमश्लोकपदाब्जषट्पदो, दासानुदासो रविदास ईर्यते ॥२॥

अनेक जन्मों के अर्जित पुण्य-संचयों द्वारा जिस भक्त की ऐसी छल-प्रपञ्च रहित बुद्धि हो गई थी, वह उत्तम श्लोक भगवान् के चरण कमल के भ्रमर-भूत हरिजनों का दास रविदास कहा जाता है ।

या मातरो वन्यतृणानि जग्ध्वा, पयोऽमृतं नित्यमभिस्रवन्ति ।
यासां सुवत्साः शकटेषु धुर्याः, कर्षन्ति शीराणि वहन्ति कूपान् ।३।

जो गायें जँगल की घास खाकर भी माताओं की भांति नित्य अमृत समान दूध की धाराएं बहाती हैं और जिनके बछड़े गाड़ियों में जुतते हैं, हल खींचते हैं और कूंवे जोतते हैं । [यहां से तीन श्लोक समन्विताथक हैं]

श्रीनीलकण्ठप्रियवाहनस्योपकारिणः सत्पशवः सजात्याः ।
कथं परेता अपि ते विदध्युः, संसारसेवामिति चिन्तयित्वा ।४।

जो श्री नीलकण्ठ भगवान् शिव के प्यारे वाहन नन्दीश्वर के सजातीय हैं और उपकारी पशु हैं, वे मर जाने पर भी संसार की सेवा किस प्रकार करते रहें— यह सोचकर ।

उत्कृत्य कृत्तिं करुणाकरो रविः हे राम रामेति गृणन् प्रतिक्षणम् ।
निर्माति नित्यं सुदृढे ह्यु पानहौ ये बाह्यतोऽभ्यन्तरतश्च निर्मले ॥

दयालु रविदास पशुओं की खाल उधेड़ कर प्रतिक्षण 'हे राम !' ऐसी रट लगाता हुआ नित्य ही—अन्दर बाहर जिन में कूड़ा कचरा नहीं ठूंसा गया ऐसे बहुत मजबूत जूते बनाया करता था ।

न वक्ति मूल्यं व्ययतोऽधिकं क्वचित्, न जीर्णखण्डानि तले निगूहति ।
सत्यं शिवं सुन्दरमीशमन्वहं, स्वकर्मणाभ्यर्चयति स्म मोक्षदम् ॥

लागत से अधिक वह कभी जूते का मोल नहीं बोलता था और तलुवों में पुराने चमड़े के टुकड़े नहीं ठूंसता था, नित्य प्रति मोक्षदाता सत्य शिव सुन्दर स्वरूप भगवान् की अपने वर्णोचित कार्य से अभ्यर्चना करता था ।

दधार सूत्रं नवतन्तुनिर्मितं
न कण्ठदेशे,—करचञ्चुसम्पुटे ।
अरी स्वयं किन्त्वरिरस्य नाभवच्
छिलोञ्छवृत्तिर्न, शिलोञ्छलाञ्छनः ॥७॥

वह नौ तारों का बना यज्ञोपवीत गले में नहीं धारण करता था, किन्तु नये धागों से बटा डोरा अपने हाथों की चुटकी में थामे रहता था। (यद्यपि जूता सीने की 'आर' रखने के कारण) वह स्वयं 'अरी' कहलाता था किन्तु संसार में उसका अन्य कोई अरि=शत्रु नहीं था । यद्यपि वह शिलोञ्छ वृत्ति से निर्वाह करने वाला तपस्वी नहीं था तथापि चमड़ा काटने की शिला को भगवान् का प्रतीक मानता था ।

स कर्मयोगी कठिनश्रमार्जितां, कपर्दिकामात्मनि बह्वमन्यत ।
अभ्यागतार्चां स्वकुटुम्बपोषणं, चकार तोषेण तयैव न्याय्यया ॥८॥

कर्मयोगी भक्त रविदास परिश्रम करके उपार्जित कौड़ी को भी अपने मन से बहुत मानते थे और उसी हक्क-हलाल की कौड़ी से अभ्यागतों का सत्कार एवं अपने परिवार का पालन प्रसन्नता पूर्वक करते थे ।

तृणानि गोभ्योऽतिथयेऽन्नचूर्णं शीतार्दितेभ्यः प्रददौ सुवासः ।
दरिद्रनारायणपादपूजां, विधाय वव्रेऽयमकिञ्चनत्वम् ॥ ९ ॥

रविदास गौवों को चारा, अतिथियों को आटा सीधा और सर्दी में ठिठुरते दीनों को नये कपड़े बांटता था। इस तरह दरिद्र नारायण की पूजा करके इसने स्वयं अकिञ्चनता को स्वीकार कर लिया था।

लक्ष्मीपते:पदसरोजकृतालयस्य, संसिद्धयो हरिजनस्य लुठन्ति गोष्ठे ।
इत्थं स सर्वगतमीश्वरमादिदेवं, लोकानुराधनबलेन वशं चकार।१०।

इस प्रकार रविदास ने निखिल ब्रह्माण्ड नायक आदिदेव भगवान् को लोक सेवा के बल से अपने वश में कर लिया, जो भक्त लक्ष्मी के पति नारायण के चरण कमलों में निवास करता हो ऐसे हरिजन के गोष्ठ में तो अणिमादि सिद्धियें ठोकर खाती हैं।

अथैकदा तन्नगराग्रणीर्धनी, जनैर्जगच्छ्रेष्ठिपदेन सत्कृतः ।
सुवर्णदासो नवपादुकाकृते, समाययौ श्रीरविदाससन्निधौ ॥११॥

एकबार उसी नगर का अग्रगण्य धनी सुवर्णदास जिसे वहाँ की जनता ने 'जगत् सेठ' की उपाधि से सम्मानित कर रखा था, वह नये जूते खरीदने के लिये रविदास भक्त के पास आया।

सरामरामं प्रणमन् तमब्रवीद्, गृहाण ते प्रस्तुत एव पादुके ।
दृढ़े ह्यपि प्राह धनी विनिर्मिते ? मया हि गंगास्नपनाय गम्यते ॥

रविदास ने राम राम कहकर सेठ जी को प्रणाम की और बोले—लीजिये, आपके लायक जूते तैयार ही हैं। सेठ जी ने कहा—खूब मजबूत भी बनाए हैं भाई ! मुझे गंगा स्नान के लिये जाना है।

संश्रुत्य गंगेति स गद्गदं रविर्निरुद्धकण्ठोऽमुकलाकुलेक्षणः ।
संस्मृत्य संस्मृत्य स पापहारिणीं, सद्भावभावाभिनिवेशतां गतः ॥

गंगा का नाम सुनते ही रविदास गद्गद हो गए, गला रुंध गया, प्रेमाश्रुवों से आंखें भर आईं। पतितपावनी माता का स्मरण करता २ वह भगवद् भाव के भावाभिनिवेश में गर्क हो गया।

मम प्रभावात्तु धनी ततर्क, त्रस्तो न वक्तुं प्रभवत्यनाथः ।
स्वल्पेन मूल्येन दृढ़े पदत्रे, यथाप्नुयां हन्त: ! यते तथाहम् ॥१४॥

सेठ जी ने भक्त की विह्वल दशा देखकर अनुमान किया कि यह बेचारा मेरे बडप्पन के प्रभाव से भयभीत हो गया है, इसी लिये मुंह से कुछ बोलते नहीं बनता, सो ये मजबूत जूते थोड़े ही दाम में जैसे मिल जाएं अब मैं ऐसा यत्न करता हूं ।

हृद्ये दृढ़े यद्यपि नैव पादुके, तथापि दास्ये नव ते कपर्दिका: ।
कुटुम्बवान्मे सुकुलक्रमागतः, पोष्यः सदा मत्सदृशेन निर्धनः ॥१५॥

[सेठ बोला] अरे भाई ! रब्बू ! यद्यपि ये जूते न सुन्दर हैं और नांही मजबूत ही हैं फिर भी तुझे नौ कौड़ी नकद दे ही देता हूं। अरे ! तू बाल बच्चे वाला है, फिर हमारा खानदानी कमीन भी है । मुझ जैसे धनियों को तुम जैसे गरीबों की परवरिश भी तो करनी ही चाहिये !

दुरुक्तमाकर्ण्य सहिष्णुताव्रती जगाद प्रेम्णा परिमृज्य चक्षुषी ।
यद्रोचते ते सुतरां प्रदीयताम्, धन्ये पदत्रे व्रजतां सुरापगाम् ॥१६॥

सहनशीलता व्रतधारी रविदास सब खरी खोटी सुनकर भी आंखें पोंछ कर प्रेमपूर्वक कहने लगा—आप जो चाहें बेखटके दे सकते हैं, मेरे बनाए ये जूते धन्य हैं जो माता गंगा की ओर जा रहे हैं ।

कार्यं तवायत्तमिदं मदेकं तत्साधनीयं कृपया धनेश ।
कपर्दिकेयं मम रक्षणीया, गंगाजनन्यै विधिवत्प्रदेया ॥१७॥

परन्तु सेठ जी ! मेरा एक काम आपके आधीन है, वह आपको कृपा पूर्वक अवश्य साधना पड़ेगा । लीजिये मेरी यह एक कौड़ी, भली प्रकार से संभाल लीजिये ! यह गंगा माता को विधिवत् देनी होगी ।

स्नात्वा स्वकार्यमखिलं विधिवत्समाप्य
वाच्या मदीयजननी रविचर्मकार: ।
नित्यं तव स्मरति कूजति राम राम !
तेनार्पिता नु बहुमूल्यकपर्दिकेयम् ॥१८॥

आप स्नान करके जब अपनी सब सेवा पूजा विधिवत् समाप्त कर चुकें तब मेरी माता गंगा को कहना कि तेरा पुत्र रविदास नामक चर्मकार तुझे बहुत याद करता है। उसने तेरे को 'राम राम' कहा है और यह बहुमूल्य एक कौड़ी तुझे भेंट में दी है।

न केवलं त्वं धनिनां हि माता, दीना सुताः मत्सदृशोऽप्यनेके ।
मुक्तामणिः स्यादथ काकिणी वा, विशुद्धभावोऽम्ब ! परीक्षणीयः ॥

गंगे ! तुम केवल धनीजनों की माता नहीं हो, किन्तु मेरे जैसे भी तेरे अनेक दीन पुत्र हैं। फिर मुक्तामणि हो चाहे कानी कौड़ी हो, हे जननी ! केवल विशुद्ध भाव की ही परीक्षा होनी चाहिये।

न काकिणीयं मम चौर्यलुण्ठिता, न विप्रलब्धा, न कुसीदसन्धिता ।
न मूल्यबाहुल्यचिता, न गर्हिता, न वा तथोत्कोचमयी विनिन्दिता ।

मेरी यह काणी कौड़ी डाके, चोरो में लूटी हुई नहीं है, न किसी को ठग कर ली गई, न सूद दर-सूद से इकट्ठी की हुई है, न चोर बाजारी से आई हुई। न अन्य किसी गर्हित मार्ग से प्राप्त की गई और नांही निन्दित घूसखोरी से संगृहीत है।

नेयं कदर्थितकृषाणजनाश्रुदिग्धा
नोत्पीडितश्रमिकरक्तकणाऽऽविला वा ।
नैवान्धमूकबधिराग्रजदेवसम्पत्
किन्त्वम्ब ! मे विहितसुश्रमशिल्पलब्धा ॥२१॥

यह मेरी कौड़ी शोषित किसानों के आंसुवों से भीगी नहीं हैं और नांही उत्पीड़ित श्रमिकों के खून से परिप्लुत है। अपाहिजों, अन्धों, गूंगों, विधवाओं, ब्राह्मणों और देव मन्दिरों की मारी धरोहर भी नहीं है, किन्तु जननी ! यह तो मेरी स्ववर्णोचित गाढ़े खून पसीने की दस्तकारी से कमाई हुई सर्वस्व भूत न्यायोपार्जित निधि है।

याऽर्जिता न पथि सम्मिलिता कुतश्चि-
न्न ग्राहकप्रहितधर्मकरांशक्लृप्ता ।

नेयं पुनः कपटलेखहृतेन्द्रभागा
न स्त्रीधनं क्षुधितबन्धुजनार्थिता न ॥२२॥

यह कौड़ी मैंने भीख मांग कर नहीं ली और न कहीं रास्ते में पड़ी पाई है, धर्मादे के रूप में ग्राहकों से वसूल की हुई [किन्तु यथा स्थान न दी गई—अमानत] भी नहीं है, नकली बही लिखकर गबन किये हुये राजकीय टैक्सों की मद से भी नहीं है, न यह स्त्री धन है और नांही भूखे बन्धुजनों की प्रार्थना अनसुनी करके लाई गई है।

तस्मादशंकितहृदाम्ब ! ममोपहार-
मुद्यम्य भावुककरं स्वकरं गृहाण।
मातः कपर्दनिलये ! न कर्पादिकेयम्,
त्वत्स्नेह एव चिरसञ्चित एष देवि ! ॥२३॥

इसलिये हे जननि ! मेरा यह उपहार निःशंक हृदय से अपना कल्याणकारी हाथ फैला कर ग्रहण कीजिये। हे शिव के कपर्द=जटाजूट में बसने वाली देवी ! यह मेरी कौड़ी नहीं है किन्तु यह तो चिरकाल से इकट्ठा हुआ तेरा मूर्तिमान स्नेह ही है।

सन्देशमाकर्ण्य यदा ममाम्बा, स्वं हस्तमुद्यम्य ग्रहीतुकामा।
तदैव देया शुभपाणिपद्मे, नो चेत्परावृत्य ददस्व मह्यम् ॥२४॥

माता गंगा जब मेरा सन्देश सुनकर मेरी इस पाई को ग्रहण करने के लिए अपना हाथ फैलावे, तभी तुम उस कमल सरीखे हाथ पर इसे रख देना, यदि ऐसा नहीं हो तो इसे वापिस लौटा कर मुझे ही संभला देना।

श्रेष्ठी निशम्य रविदासवचांसि मेने,
विक्षिप्त एष नितरां प्रलपत्यलीकम्।
मूल्यं वितीर्य परिगृह्य तथा पदत्रे,
नीत्वा वराटकमयं गृहमाजगाम ॥२५॥

सेठ जी ने रविदास के (भावुकता पूर्ण) वचनों को सुनकर यह समझा

कि इसका दिमाग खराब हो गया है, तभी तो अनाप-शनाप बकता है। दाम देकर जूता लेकर और रविदास की दी हुई वह कौड़ी लेकर घर आ गया।

गतेऽथ काले स तु पर्वपाते, स्नात्वा चिरं देवनदीप्रवाहे।
दत्वा द्विजेभ्योऽम्बरहेमधेनूः संप्रार्थयत्साञ्जलि जह्नुकन्याम् ॥२६॥

समय बीत जाने पर सेठ सुवर्णदास ने पर्व के दिन गंगा में खूब गोते लगाए। ब्राह्मणों को कपड़े, सोना और गायें दान दीं और अन्त में हाथ बांध कर गंगा से प्रार्थना की।

भागीरथीदेवि ! नमो नमस्ते, मत्कार्यसिद्धिस्तव वामहस्ते।
यदान्नवस्त्रे विगते न शस्ते, तदा वदिष्यामि सदा यशस्ते ॥२७॥

हे भागीरथी देवि ! तेरे को बार बार नमस्कार हो, मेरे कार्य की सिद्धि तो तेरे बाएं हाथ का खेल है। गेहूं, चावल आदि अनाज और फाइन कपड़ा अलभ्य हो जाए तो मैं सदैव तेरा यशोगान करूँगा।

[यदि इस युग का सुवर्णदास होता तो वह इस प्रकार प्रार्थना करता—

त्वं कण्टकान् रोलयसि स्वशक्त्या कण्ट्रोलरूपेण जगत्स्थितासि।
राश्यन्नभूता धनिनां गृहेषु, नमो नमो राशनरम्यरूपे ! ॥२८॥

तू कण्टक भूत दुष्ट जनों को ध्वस्त करने वाली है, इसलिये तू 'कण्ट्रोल' रूप से जगत् में व्याप्त है। धनी लोगों के घरों में अन्न के ढेर के ढेर बनकर बैठती हो अतः रमणीय 'राशन' रूप धारिणी भी तुम हो। अतः मैं बार-बार नमस्कार करता हूं।

मद्वस्त्रनिर्माणकलालयेषु गूढोऽम्बरोञ्छो गिरिदघ्न आस्ते।
मारी भवेद्युद्धमथापि देवि ! तदैव लाभोऽष्टगुणो मदीयः ॥२९॥

हे देवि ! मेरी कपड़ों की मिलों में छुपाया हुआ पर्वत के बराबर स्टाक पड़ा है सो यदि कोई महामारी पड़ जाय किंवा महायुद्ध छिड़ जाए तो तभी मुझे आठ गुणा मुनाफा हो सकता है।

काश्मीरदेशे सुमहानुपद्रवः, स्यात् पाकयुद्धं यदि वा भयंकरम्।
देशे बुभुक्षाऽऽकुल-लोक-संक्षयः तदैव गूढान्नचयोऽस्तु लाभदः।३०।

काशमीर में गड़बड़ी फैल जाए या पाकिस्तान का भयंकर युद्ध ही छिड़ जाए। अथवा देश में भुखमरी ही पड़ जाए तभी मेरा छुपाया हुआ अनाज का स्टाक लाभप्रद होगा। [क्षेपक समाप्त]

लक्षाधिपः कोट्यधिपो भवेयम् पाषाणप्रासादशतानि सन्तु।
दिने दिने वर्द्धय तुन्दिलत्वम् स्यात् श्रेष्ठिनी मे महिषीव रम्या ॥३१॥

मैं लखपति से करोड़पति बन जाऊं, मेरी संगमरमर की डबल स्टोरी सौ कोठियें हो जाए और मेरी यह तोन्द दिन प्रतिदिन बढ़ती ही चली जाय। मेरी श्रीमती सेठानी जी महिषी के समान सुन्दरी बन जाए।

कृत्वा परां स्वार्थमयीं कदर्थनां, श्रेष्ठी गृहं गन्तुमयं प्रचक्रमे।
आकाशवाणी सहसा तदाभवत् 'भो भ्रान्त सूनो! शृणु मेऽनुशासनम्

इस प्रकार स्वार्थ भरी खोटी प्रार्थना करके सेठ जी ज्यों ही अपने घर लौटने को तैयार हुये तो अकस्मात् तब आकाश वाणी ने कहा—अरे पथभ्रष्ट पुत्र! मेरा आदेश सुन।

यो जीवितो जीवयतीह भूतान्, मनोरथास्तस्य सदा फलन्ति।
कपर्दिका सा रविदाससूनोः, जलोत्थिते देहि करे मदीये ॥३३॥

जो स्वयं जीता है और दूसरे प्राणियों को जीने देता है उसके मनोरथ सदा सफल होते हैं और सुनो! मेरे बेटे रविदास की वह विस्मृत कौड़ी जल में ऊंचे उठे मेरे हाथ पर रखदो।

तथाकृते तेन भयान्वितेन हस्तः परः कंकणमाददानः।
भूयोऽवदद्देवगिरा धनेशं, दत्वा प्रसादं रवये स वाच्यः ॥३४॥

डरते हुए सेठ ने ज्योंही वह कौड़ी तत्काल गंगा के हाथ पर रखी त्योंही पुनः दूसरा हाथ निकला जिसमें एक जड़ाऊ कंगन था उसे देते हुए आकाशवाणी ने कहा—यह मेरा प्रसाद रविदास को दे देना।

यथाग्रजा मे तनयाः प्रिया इमे, ततोऽधिकाः प्रेष्ठवरास्तस्थान्त्यजाः।
तुल्येषु पुत्रेषु सुते स्तनन्धये, मातुर्हि रागातिशयश्च लक्ष्यते ॥३५॥

जितना मैं प्रेम अपने ब्राह्मण आदि स्वर्ण पुत्रों से करती उससे भी अधिक

मुझे अन्त्यज प्यारे हैं। क्योंकि सब पुत्रों के समान होने पर भी दूध पीने वाले बच्चे पर माता का स्नेह कुछ विशेष होता है ?

पिबन्ति भक्ताश्चरणामृतं सदा, त्रिविक्रमांगुष्ठसमुद्भवास्म्यहम् ।
शूद्राः समस्ता अपि पादसंभवाः सहोदरा मे सुतरां हरेर्जनाः ॥३६॥

भक्त लोग जिन भगवान् नारायण के चरणामृत को नित्य श्रद्धा पूर्वक पान करते हैं मैं उन्हीं वामन भगवान् के अंगूठे से उत्पन्न हुई हूं। समस्त शूद्र भी भगवान् के चरण कमलों से पैदा हुए है इसीलिये हरिभक्त शूद्र तो तो मेरे सहोदर भाई ही हैं।

स्पृश्या न सर्वैस्तु पतिव्रताः स्त्रियोऽस्पृश्या अनुष्ठानपरायणा द्विजाः ।
वयो नर-स्पृष्टशिशून् जहात्यहोऽस्पृश्यास्तु पापैस्तनया ममान्त्यजाः ॥

जिस प्रकार पतिव्रता स्त्रियें अन्य पुरुषों से सदा अस्पृश्य होती हैं उसी प्रकार धर्मानुष्ठान तत्पर द्विज लोग भी अस्पृश्य होते हैं। किसी पुरुष द्वारा स्पर्श किये हुए अपने बच्चों को पक्षी तक नहीं छूते फिर दुरात्मा पापी लोग मेरे पुत्र शूद्रों को किस प्रकार स्पर्श करने का साहस कर सकते हैं !

न स्वर्णभारैर्न च मौक्तिकैर्नवैः, मन्दारपुष्पैर्न च कामधेनुभिः ।
तैस्तैस्तथा मे न मनः प्रसीदति यथा हि भावोपहृतैर्जनाश्रुभिः ॥

स्वर्ण भारों से, नये बहुमूल्य मोतियों से, कल्पवृक्ष के मनोरम फूलों से किंवा साक्षात् कामधेनुओं से भी मुझे उतनी प्रसन्नता नहीं होती जितनी कि श्रद्धा पूर्वक समर्पण किए गए अश्रुओं से होती है।

श्रेष्ठी निशम्य स तु विष्णुपदीवचांसि
गेहं ययौ मनसि विस्मयमादधानः ।
प्रादर्शयत्कनकजं कटकं प्रियायै
स्मेराननाम्बुज-नटद्रुचिरारुणश्रीः ॥३९॥

गंगा के इस प्रकार के वचन सुनकर मन में अत्यन्त चकित हुआ धनपति अपने घर चला आया। वह सुन्दर सोने का कड़ा उसने अपनी पत्नी को दिखाया तो उस वक्त उसके मुख पर हंसी की लालिमा नाच रही थी।

दिव्यं महार्हमणिभिखचितं नवीनं,
जाम्बूनदेन घटितं कटकं विलोक्य।
सा श्रेष्ठिनी झटिति वामकरे निधाय
रिक्तं स्वदक्षिणकरं निभृतं शुशोच ॥४०॥

कीमती रत्नों से जड़े, शुद्धसोने से बने उस सुन्दर कंकण को देखते सेठानी ने तत्काल अपने बाएं हाथ में पहन लिया और दाएं हाथ को खाली देख पश्चात्ताप करने लगी।

श्रेष्ठी जगाद यदि सम्मिलितं कुतश्चित्
नेष्ये ध्रुवं तव कृते मम तात-मातः।
ईदृग्विधस्य कटकस्य न पात्रभूतो
रंको रविः कपिमुखोऽधमचर्मकारः ॥४१॥

सेठ जी ने कहा—हे मेरे बेटे की अम्मा! यदि ऐसा ही दूसरा कड़ा कहीं मिल सका तो मैं तेरे लिये जरूर लाऊंगा। भला इस तरह के जड़ाऊ कड़े का वह बन्दरमुंहा नीच चमार कैसे पात्र हो सकता है?

गतेऽथ काले स सुवर्णदासो, विस्मृत्य तां त्यक्तदिशं प्रविष्टः।
अपव्रजन्तं च विलोक्य दूरात् हे हे! तमुक्त्वा रविराजुहाव ॥४२॥

तब बहुत काल बीत जाने पर एक दिन अकस्मात् सेठ सुवर्णदास रविदास के मकान की ओर आ निकला, जिस तरफ कि वह गंगा यात्रा के बाद जान बूझकर आज तक कभी नहीं आया था। ज्योंही वापिस लौटने लगा तो दूर से रविदास ने देख लिया और—हे सेठ जी! हे सेठ जी! कह कर पुकारा।

अनिच्छया तत्र गतोऽतिदुर्मनाः, प्रणम्य पृष्टो रविणाऽब्रवीद्वचः।
हं हो रवे! किं कथयामि विस्तृतं, स्नात्वार्पितं भारमितं सुवर्णम् ॥

सेठ न चाहता हुआ भी मरे मन से वहाँ पहुंचा। रविदास ने प्रणाम करके पूछा तो कहने लगा—हाँ भाई! रब्बू! बढ़ा कर क्या बखान करूं, खूब स्नान हुआ एक भार सोना दान दिया।

धनाधिनाथाः बहवः समागताः
दत्तेऽपि भारे नहि हस्तदर्शनम् ।
क्व नाम गण्या तव सा वराटिका
क्षिप्ता जले हन्त ! शपेऽतिलज्जया ॥४४॥

वहाँ अनगिनत धनी लोग आए हुए थे, भारों सोना देने पर भी किसी का हाथ नहीं दिखाई दिया, वहां तुम्हारी उस कौड़ी की क्या गिनती थी मैंने लजाते हुए वह गंगा जल में फेंक दी, भई ! कसम है ।

ज्ञात्वाखिलं श्रेष्ठिविचेष्टितं रविः शिलां समुत्थाय तदन्तरस्थिताम् ।
अदर्शयद् देवनदीं तमाकुलम्, तथाविधैः सत्कटकैः ससंकुलाम् ॥४५॥

भक्त रविदास ने सेठ के हार्दिक भावों को ताड़कर अपने आगे रखी हुई चमड़ा काटने की शिला उठाई और उसके नीचे—उस सोने के कड़े जैसे ही सैकड़ों कड़ों से भरी हुई भगवती गंगा के दर्शन कराए ।

उवाच यावन्ति तवेप्सितानि, गृहाण तावन्ति सुकङ्कणानि ।
रिक्तं करं यत्तव धर्मपत्न्याः, न शोभते तद्युगलं विधेहि ॥४६॥

और फिर रविदास कहने लगा—लीजिये सेठ जी । जितने आप चाहें सोने के कड़े ले सकते हैं । आपकी धर्मपत्नी का एक हाथ सूना है ना, एक कंकण तो ले ही लीजिये ! उस दूसरे खाली हाथको भी कड़े वाला बना दीजिये !!

स व्रीडितस्तेन विकर्मणा भृशं, क्षमां ययाचे प्रणिपत्य दण्डवत् ।
निन्द्यां परित्यज्य सुवर्णदासतां परोपकाराय ददौ स्वसम्पदः ॥४८॥

अपने इस निन्दित कर्म से अत्यन्त लज्जित हुआ सेठ दण्डवत् प्रणाम करके क्षमा मांगने लगा । अपनी निन्दित सुवर्ण-दासता को छोड़कर अपनी समस्त सम्पत्ति परोपकार में लगा दी ।

धर्माय कीर्त्यै धनवर्धनाय निजोपभोगाय कुटुम्बकृत्यै ।
सः पञ्चधा संविभजन् स्ववित्तं नित्यं जनाराधनतत्परोऽभूत् ॥४९॥

सेठ सुवर्णदास ने अपनी समस्त संपत्ति के पांच भाग करके जिनमें पहिला भाग-दान आदि विशुद्ध धर्म रक्षा के लिये, दूसरा भाग-वापी कूप तड़ाग आदि कीर्ति वर्द्धक कृत्यों के लिये, तीसरा भाग—स्ववर्णोचित वृत्ति द्वारा धन वृद्धि के लिये, चौथा भाग—अपने खानपान आदि के व्यय में और पांचवां भाग–अपने सगे संबन्धी नौकर चाकरों के उपकार में लगाकर नित्य सर्वजनाराधन में तत्पर हो गया ।

ये संपठिष्यन्ति रवेः कथामिमां, जेष्यन्त्यजेयामपि ते कदर्य्यंताम् ।
इष्ट्वा जनाराधनवर्त्मना हरिं, शुद्धा इहामुत्र नितान्तनिर्भयाः ॥५०॥

जो लोग भक्त रविदास की कथा को पढ़ेंगे वे अजेय कदर्यता को भी जीत लेंगे । और लोकाराधन पद्धति से भगवत् परिचर्या करके लोक और परलोक में सदा निर्भय होकर विचरेंगे ।

आशां येऽन्यस्य कुर्वन्ति विहाय हरिहीरकम् ।
निरये ते पतिष्यन्ति तथ्यं पथ्यं रवेर्वचः ॥५१॥

दोहा—हरि सो हीरा छांडिके, करहिं आन की आस ।
ते नर दोजख जांहिगे, सत भाखे रविदास ॥

(रविदास की वाणी से)

मीरा चरितम्

(मीरा की भक्ति)

मेवाड़देशनृपकुम्भक-धर्मपत्नी,
नारायण-स्मरणकीर्तन-मूर्तिमीरा ।
यस्याः अभावमतुलं परिलक्ष्य साक्षात्
दिल्लीश्वरः स यवनोऽपि ववन्द पादौ ॥१॥

गिरधर गोपाल की प्रेम दिवानी मीरा मेवाड़ के राजा श्रीकुम्भक की रानी थी । जिसकी भक्ति के प्रत्यक्ष प्रभाव को देखकर दिल्ली का बादशाह अकबर, (मुसलमान होता हुआ भी) उसके पांव:पूजने को विवश हुआ ।

लोकप्रसिद्धमितिवृत्तमिदं विचित्रं, वैदेशिकप्रवरकर्नलटाडगीतम् ।
रम्यं रमापतिरतिप्रदमात्मगम्यं, प्रस्तूयते सरलदेवगिरा गभीरम् ॥

भक्तिमती मीरा का जगत्प्रसिद्ध यह ऐतिहासिक अतीव रम्य चरित्र जिसे प्रसिद्ध विदेशी विद्वान् श्री कर्नल टाड ने वर्णित किया है और जो भावपूर्ण होने के साथ २ भगवद्-भक्ति प्रदान करने वाला भी है उसे हमने सरल संस्कृत में निबद्ध किया है ।

अकब्बरो वीरबलं ह्युवाच, मीराकृतं दर्शय कीर्तनं माम् ।
मेवाडहर्म्येषु मम प्रवेशोऽतिदुष्करो नौ सुकरः कथं स्यात् ॥३॥

एकबार शाहंशाह अकबर ने बीरबल से कहा—बीरबल ! तुम मुझे किसी प्रकार मीरा का कीर्तन दिखाओ । मेवाड़ी महलों में मेरा प्रवेश अत्यन्त कठिन है वह किस प्रकार सुगम हो [यही करणीय है] ।

विधाय काषायिकदम्भवेशं, महात्मनां कीर्तन-तत्पराणाम् ।
प्रदोषआतिथ्यमिषेण नूनम् संभाव्यते नौ सुतरां प्रवेशः ॥४॥

बीरबल ने [सोचकर] कहा—जहाँपनाह ! कीर्तनकार साधु सन्तों का सा नकली वेष बनाकर संध्या समय आरती दर्शन के बहाने हम मेवाड़ी महलों में निश्चित ही प्रवेश कर सकते ।

तथा कृते भागवतेषु तावपि, स्थितौ विलोक्याद्भुतकीर्तनं हरेः ।
समाहितौ प्रेमयुतौ बभूवतुः, गताखिला सा क्षणदा क्षणं समा ।।५।।

इस प्रकार वे दोनों कपटसंन्यासियों का वेष बनाकर मेवाड़ के महलों में घुस गये और वहां मीरा का अद्भुत कीर्तन सुनकर सांवरे के भक्ति रस में इस कदर डूबे कि सारी रात किस प्रकार एक क्षण के समान बीत गई वे यह भी न जान सके ।

दुर्गस्थघंटानिनदेन भूसुरः, संप्राप्तसंज्ञो नृपतिं ह्यबोधयत् ।
उत्थीयतामाशु न वै पितुर्गृहम्, स्फुटे रहस्ये नहि प्राणरक्षणम् ।।

किले के घण्टे ने जब चार बजाए तो वीरबल हड़बड़ा कर सचेत हुवे और बादशाह को सचेत करते हुवे बोले—उठिये महाराज ! यह खाला जी का घर नहीं है मेवाड़ का महल है, यदि रहस्य खुल गया तो समझ लो जान की खैर नहीं ।

अकब्बरो मौक्तिकदामसुन्दरं, दत्वा करे वीरबलस्य चाब्रवीत् ।
गृहाण मीरे! भगिनि ! प्रभोर्गले, विधारयैतच्चरणौ नमामि ते ।।

अकबर ने बहुमूल्य मोतियों का हार निकाल कर वीरबल के हाथ पर रख दिया और कहा—हे वीरबल ! इसे मीरा को दे दो और कहदो कि बहिन जी ! यह हार प्रभु के गले में पहना दो । मैं तेरे चरणों में नमस्कार करता हूं ।

प्रगृह्य हारं विमलेन पाणिना, निमीलिताक्षी गिरिधारिणो गले ।
आरोपयन्ती प्रजहौ स्वचेतनां, समाधिनिर्धूतमलाऽमलाम्बरा ।।८।।

कान्हा के प्रेम में दिवानी मीरा ने मिची आंखों वह हार लिया और उसे गिरधर गोपाल के गले में पहिनाती हुई वह पवित्र वस्त्रा समाधिष्ठ-सी-आत्म विभोर हो गई ।

प्रणम्य पादौ मनसा सगद्गदं अकब्बरो वीरबलश्च जग्मतुः ।
मार्गे सुभानल्ल ! सुभानऽअल्ला ! सद् आफरीन् हन्त मुहूरटन्तौ ॥

मीरा के चरण कमलों में सादर प्रणाम करके अकबर और बीरबल दोनों अपने शाही महलों को लौटे । रास्ते भर वे 'सुभान अल्ला ! सुभान अल्ला ! [भगवान् तेरी महिमा, भगवान् तेरी महिमा] और 'सद आफरीन् सद आफरीन्' [सौ-सौ बार धन्यवाद सौ-सौ धन्यवाद] की बार बार रट लगाते थे ।

राणा दिने गुप्तचरैर्निवेदितः, प्रभोगर्ले या विधृताऽद्य मालिका ।
साकब्बरस्याङ्कितनाममुद्रिता, हा ! हन्त ! नारीचरितं दुरासदम् ॥

इधर प्रातःकाल होते ही जासूसों ने राणा को बताया कि महाराज ! भगवान् के गले में जो मोतियों की वेश कीमती माला पड़ी हुई है उसके प्रत्येक मोती पर अकबर का नाम लिखा है । दुःख है कि स्त्री चरित्र बड़ा ही अज्ञेय है ।

क्रोधातुरः प्राह नृपः स्वभृत्यान्, विनाशयध्वं गिरिधारिगेहम् ।
तां पांशुलां भक्तिमतीब्रुवां द्राक्, व्यापादयध्वं निशितासिधारया ॥

इतना सुनकर क्रोध से पागल हुवे राणा ने अपने नौकरों को तुरन्त आज्ञा दी कि—भगवान् के मन्दिर को नष्ट-भ्रष्ट कर दो ! और भक्ति का ढोंग रचाने वाली, उस कुलटा को भी तलवार के घाट उतार दो ।

प्रगृह्य पादौ निजभर्तुरब्रवीत्, स्वामिन्ममागो यदि लक्षितं त्वया ।
वधार्हणा चास्म्यहमेव केवलं न नाशयध्वं गिरिधारिमन्दिरम् ॥

मीरां ने अपने पति के पांव पकड़ कर दीनभाव से कहा—नाथ ! आपने यदि मुझ में कोई दोष देखा है तो मुझे ही दण्ड दीजिये, कृपा करके भगवान् कृष्ण के इस सुन्दर मन्दिर को अपमानित न करवाएं ।

पापेऽधमे ! म्लेच्छपतिस्त्वदन्तिकम्, अकब्बरो नूनमिहैति दुर्धिया ।
नो चेत्कथं ते गिरिधारिणा धृता, मालास्ति तद्दुर्जननाममुद्रिता ॥

राणा ने गुस्से से कहा—हे पापे ! कुलटे ! यह सब तेरी ही करतूत

है, वह मुस्लिम बादशाह जरूर यहां किसी खोटी मति से आया है, अन्यथा जो माला तेरे गिरधारी ने पहन रखी है उसके प्रत्येक मोती पर उस दुर्जन का नाम क्यों खुदा है।

दूरं विमुच्य तरसा गिरिसारहारं
दिल्लीश्वरांकनकलंकमयं मयंकम् ।
सा चक्रवाकगृहिणीव विमूर्च्छिताङ्गी
तावत्पपात सहसा सहसाध्वसेन ।।१४।।

इतना सुनकर मीरा ने मुरारि के गले में से तुरन्त वह हीरों से बना हार उतार दिया और अकबर के नाम रूपी कलंक वाले उस चन्द्रमा तुल्य हार को देखकर चक्रवाकी की तरह वह मूर्छित होकर भय से धरती पर गिर पड़ी।

हा ! स्मर्यते निशि हरेर्गुणकीर्तनान्ते
संबोध्य मां भगिनि ! चेति करे मदीये ।
हारोऽर्पितो हरिकृते विनयान्वितेन
केनापि मीलितदृशा न मया स दृष्टः ।।१५।।

फिर कुछ होश में आकर बोली—हा ! मुझे कुछ २ याद तो पड़ता है कि भगवान् के कीर्तन के बाद किसी अज्ञात व्यक्ति ने मुझे बहिन कह कर एक हार भगवान् को पहिनाने के लिये दिया था, किन्तु उस समय मुंदी आंखों मैंने उसे देखा भी नहीं।

सत्यं मदुक्तमखिलं, भवतां तथापि
प्रत्यक्ष एष न मृषा कलुषोऽभियोगः ।
आस्था न तेऽस्ति मम साक्षिणि प्राणनाथ !
तस्मात्पुनीतहृदयाप्यहमस्मि दुष्टा ।।१६।।

मीरा ने कहा—प्राणनाथ ! जो कुछ मैं कह रही हूं यद्यपि वह बिल्कुल सत्य है फिर भी आपने मुझ पर जो जघन्य आरोप लगाया है उस

के सत्य होने का प्रत्यक्ष प्रमाण यह हार विद्यमान है। मेरे साक्षी भगवान् हैं जिनमें आप की आस्था नहीं हैं। इसलिये मैं सर्वथा निर्दोष होती हुई भी अपराधिनी हूं।

अनन्यदासी तव पादपद्मयोर्मृषा कलंकेन विगीय हन्यते।
भयं न मृत्योर्मम किन्तु माधव! न भक्तभावेषु भवेद्धि विभ्रमः॥

[फिर मीरा अपने भगवान् की ओर मुँह करके बोली] हे दयानिधान! आपके चरणों की दासी मीरा आज झूठा कलंक लगाकर मारी जा रही है। मुझे मृत्यु की चिन्ता नहीं किन्तु इससे आपके भक्तों की सद् भावना को ठेस पहुंचेगी यही भय है।

वेणीं प्रगृह्य नृपतिर्विनिपात्य मीरा-
मुद्यम्य खड्गमतुलं विनिहन्तुकामः।
देवप्रभाव-हृतशक्तिजडीकृतांगो
भ्रूभंगमात्रमपि नो विहितुं शशाक॥१८॥

राणा ने मीरा के केश पकड़ कर उसे बलात् नीचे गिरा दिया और तलवार खींचकर उसके सर को धड़ से अलग करने के लिये तैयार हो गया, किन्तु किसी दैवी प्रभाव ने उसकी सम्पूर्ण शक्ति ही छीन ली हाथ चलाना तो दूर, भौंह तक हिलाना भी उसके वश का न रहा।

अधोमुखी कृष्णमनुस्मरन्ती, प्रतीक्षमाणा करवालपातम्।
ददर्श भूपं भयवेपमानं, कृष्णं सलीलास्मितमस्य पृष्ठे॥१९॥

उधर भगवान् का मन ही मन ध्यान करती हुई मीरा तलवार के वार की प्रतीक्षा कर रही थी। [किन्तु जब उसकी आशाके विपरीत तलवार उसपर न गिरी, तब] उसने [चकित होकर सिर उठाकर] देखा कि राणा का अंग-अंग भय से कांप रहा था और उनके पीछे भगवान् कृष्ण खड़े मुस्करा रहे थे।

गोपालदर्शनविवृद्धमुदञ्चितान्ता, मीरातिहर्षपुलकोद्गमचारुदेहा।
विस्मृत्य सर्वघटनाघटितं प्रसङ्गं, प्रेम्णा ननर्त पुरतो हरिमाह्वयन्ती॥

भगवान् के दर्शन करके मीरा का रोम २ पुलकित हो गया, वह सम्पूर्ण घटना-चक्र को भुला कर 'गिरधर गोपाल गिरधर गोपाल' पुकारती हुई प्रेम-पूर्वक भगवान् के सामने नाचने लगी।

हृष्टः श्रीगिरिधारिनागरनटः प्रोवाच मीरां मुदा
मुग्धे ! याच वरं प्रसन्नमनसा तुष्टोऽस्मि ते श्रद्धया।
स्वामिन् ! यद्यपि दर्शनेन भवतः किं किं न लब्धं मया
याचे देव! तथापि दर्शनमिदं राज्ञेऽपि देयं विभो ।२१।

मीरा की उस श्रद्धा भक्ति को देखकर प्रसन्न हुवे भगवान् गिर धर गोपाल ने मीरा से कहा—हे मुग्धे ! तेरी इस पवित्र भावना से मैं अत्यन्त सन्तुष्ट हूं जो चाहो वर मांगो ! मीरा ने कहा—नाथ ! आपके दर्शन से मुझे सब कुछ मिल गया है फिर भी मैं यही याचना करती हूं कि आप पीछे की बजाय सामने आकर राणा को भी दर्शन देने की कृपा करें।

स्वस्थो नृपः स्वपुरतः कमलायताक्षम्,
पीताम्बरं मकरकुण्डलमण्डितास्यम्।
नीलाद्रिसौभगतनुं सुकुमारकान्ति
भ्रान्ति विहाय ददृशे गिरिधारिदेवम् ।।२२।।

राणा को जब होश आया तो उसने अपने सामने कमल-लोचन भगवान् गिरधर गोपाल को निर्भ्रान्त होकर देखा. जिनका शरीर नील पर्वत के समान मनोरम था, कानों पर झूलते मकर-कुण्डलों से जिनके कपोल-युगल शोभित हो रहे थे।

तमद्भुतं भास्करकोटिसन्निभं, विलोक्य राणाऽमिततेजसं प्रभुम्।
विशुद्धधीर्निर्मलपूतमानसो ह्यमंस्त मीरां कलिकालराधिकाम् ।।२३।।

उन करोड़ों सूर्य्यों के समान अद्भुत कांति वाले तेजस्वी प्रभु को देख कर निर्मल हृदय राणा ने मीरा को कलिकाल की साक्षात् राधिका-रानी ही समझा। उसकी सारी भ्रांति दूर हो गई। ◉

अतिथि-देवो भव

(ना जाने किस रूप में नारायण मिल जाए)

वाराणसी-तीर्थ-निवास-भूमो, रहस्यवादी कविसार्वभौमः ।
हिन्दोर्महात्मा यवनस्य पीर, आसीत्पुरा भक्तवरः कबीरः ॥१॥

पूर्वकाल में काशी धाम में जिनकी निवास भूमि थी, ऐसे रहस्यवादी कवि चक्रवर्ती, भक्तश्रेष्ठ कबीर हुवे, जो हिन्दुओं के महात्मा और मुसलमानों के पीर कहे जाते हैं ।

प्रसिद्धसिद्धोऽपि दरिद्रमूर्तिर्मुकुन्दभृत्योऽपि कुविन्दकृत्यः ।
बभूव सोऽश्वस्तनिकोऽपि नित्यं महातिथेयव्रतिनां वरिष्ठः ॥२॥

कबीर साहिब यद्यपि अणिमादि सिद्धियों के स्वामी थे । तथापि साक्षात् दरिद्र मूर्ति बने रहते थे । यद्यपि मोक्ष प्रदान करने वाले भगवान् के अनन्य सेवक थे तथापि जुलाहे का काम करके ही जीवन निर्वाह करते थे । यद्यपि वे घर में कल के लायक अन्न नहीं रखते थे तथापि अतिथि को कभी खाली हाथों न लौटाने का व्रत धारण करने वाले लोगों में अग्रगण्य थे ।

स अत्यहं गर्तगतः सदारस्तन्तून्वितन्वन् समयं निनाय ।
स्मरन् परेशं मनसाचलेन, चिच्छेद नैजं भवतन्तुजालम् ॥३॥

वह कबीर नित्य खड्डे में बैठकर पत्नी सहित ताना बाना तानते हुये समय बिताते थे और स्थिर मन से भगवान् का ध्यान करते हुये अपने जन्म-मरण रूप ताने वाने के जटिल जाल को छिन्न भिन्न करते थे ।

साध्वी सती तद् गृहिणी पतिव्रता, छायानुगासीद् भुवनैकसुन्दरी ।
यां दिव्य-लावण्य-विशेषहेतुना, 'लोई' ति नाम्ना जगदुर्जना भुवि ॥

कबीर जी की गृहिणी सती, साध्वी, पतिव्रता, छाया की भांति पतिदेव का अनुगमन करने वाली और तीन लोक में एकमात्र सुन्दरी थी, जिस के अति लावण्य सौंदर्य के कारण ही संसार में लोग उसे 'लोई'—इस नाम से पुकारते थे।

अथैकदा श्रीपति-विश्वमूर्तिः, परीक्षितुं भक्तवरं कबीरम्।
विधाय काषायिकगुप्तवेषं, समाययौ शिष्यगणैः समेतः ॥५॥

अवसर पाकर एक बार विश्वमूर्ति लक्ष्मीपति भगवान् भक्तवर कबीर की परीक्षा करने के लिये साधु का कपट वेष बनाकर शिष्य मण्डली सहित आ पहुंचे।

द्वाःस्थान् सतः समवलोक्य दिनावसाने,
'नारायणेति' बहुशो रटतः समेतान्।
अभ्यागतानभिययौ गृहिणीसनाथो,
नत्वासनानि विससर्ज च खाद्दराणि ॥६॥

सायँकाल के समय द्वार पर आये सन्तों को देखकर—जो सन्त उच्चस्वर से बार बार 'नारायण ! नारायण' ऐसी रट लगा रहे थे—पत्नी सहित कबीर ने अभ्यागतों की अगवानी की और दण्डवत् प्रणाम करके खद्दर के आसन प्रदान किये।

चिन्तातुरो रहसि सोत्कमुवाच लोईं,
भद्रे ! गृहेऽतिथिवरा बहवः समेताः।
सौभाग्यमस्ति सुभगे ! महदावयोर्य-
दभ्यागता ननु भवन्ति हि विष्णुतुल्याः ॥७॥

फिर एकान्त में चिन्तातुर होकर बड़ी उत्कण्ठा पूर्वक, लोई से कहा—भद्रे ! आज अनेक श्रेष्ठ अतिथि आ पहुंचे हैं। हे सुभगे ! यह हम दोनों का बड़ा ही सौभाग्य है क्योंकि अभ्यागत अतिथि तो साक्षात् नारायण के तुल्य होते हैं।

निर्वतते यस्य गृहान्निराशो, ह्यभ्यागतस्तस्य वृथैव जन्म।
अतोऽन्नचूर्णं द्विदलां च देहि, क्षुधापरीताः प्रतिभान्ति सन्तः॥

जिस गृहस्थ के घर से अतिथि निराश लौटता है, उसका जन्म ही व्यर्थ है, इसलिये हे प्यारी ! इनको दाल आटा प्रदान करो ! क्योंकि सन्त लोग बहुत क्षुधायुक्त जान पड़ते हैं ।

धर्म्यं प्रियं पतिवचस्तु निशम्य साध्वी,
प्रोवाच नाथ ! हरिनामनिधिं विहाय ।
गेहे न धान्यकणिकास्ति न काकिणी वा,
ग्रासैकमात्रमपि चाद्य मया न भुक्तम् ॥९॥

साध्वी लोई पति के धर्म के युक्त प्रिय वचन सुनकर बोली— हे नाथ ! भगवन्नाम के खजाने को छोड़ कर घर में अन्न का एक कण भी नहीं है । और नांही काणी कौड़ी है, आज मैंने भी एक ग्रास भर भोजन नहीं खाया है ।

हा हा प्रिये ! मे सहजा दरिद्रता, तथोपवासा अपि नित्यसङ्गिनः ।
परं न चाद्यावधि मद्गृहाद् गताः कदापि पूज्यातिथयः पराङ्मुखाः ॥

हा हा प्यारी ! यद्यपि दरिद्रता मेरे साथ जन्मी है, और उपवास अर्थात् फाके रहना भी हमारे नित्य के सङ्गी हैं तथापि आज तक मेरे घर से कोई पूज्य अतिथि निराश नहीं लौटा है ।

'स केवलाघो य उ केवलादी' न जीवितुं हन्त ! समुत्सहेऽद्य ।
भागीरथी-पुण्य-जल-प्रवाहे, त्यजामि पापिष्ठमिदं शरीरम् ॥११

'जो केवल अकेला खाता है वह केवल पाप ही खाता है, निश्चय ही आज मैं जीना नहीं चाहता । अतः भगवती गङ्गा के पुण्य जल प्रवाह में इस पापी शरीर का परित्याग करता हूं ।

सा रुद्धकण्ठाश्रुमुखी सलज्जा, प्रोवाच पत्युश्चरणौ गृहीत्वा ।
एकोऽस्त्युपायस्तु तथाविधोऽहं, भोज्यं लभे किन्तु पतेयमन्धे ॥१२॥

लोई का गला रुंध गया, आंसुओं की झड़ी लग गई । अतीव लज्जित होकर पतिदेव के चरण पकड़ कर कहने लगी— नाथ ! एक ऐसा उपाय

तो है कि जिससे मैं खाने पीने की सामग्री ला सकती हूँ परन्तु मुझे नरक में पड़ना होगा।

प्रिये! प्रिये! ब्रूहि तथाविधं द्रुतमुपायमघ्न्ये! यमुपास्य साम्प्रतम्।
स्यात्कार्यसिद्धिः किमिहानुशोच्यते, न साधु-सेवा-फलमस्ति दुर्गतिः॥

हे प्रिये! ऐसा उपाय शीघ्र बतलाओ! हे पापरहिते! जिस उपाय के करने से अभी हमारा प्रयोजन सिद्ध हो जाए। तुम सोचती क्या हो? साधुवों की सेवा का फल नरक अर्थात् दुर्गति कभी नहीं हो सकता!

स्वामिन्! मदीयरसनास्फुरणैककाले,
नूनं पतिष्यति ह! वज्रशतं नभस्तः।
वेलां च हास्यति महामहिमोऽपि वार्धिः,
अत्याग्रहेण भवतां कथये तथापि॥१४॥

हे नाथ! वह उपाय बतलाने के लिये ज्योंही मेरी जिह्वा हिलेगी त्योंही निश्चित ही आकाश से विजलियां टूट पड़ेंगी, सदैव मर्य्यादा में रहने वाला महा महिम समुद्र भी अपनी बेला छोड़ देगा। परन्तु आप बहुत आग्रह कर रहे हैं, अतः मैं कहती हूं।

चतुष्पथोपान्तविशालहर्म्ये, स्थितो धनी पश्यति मां सकामः।
विक्रीय लज्जां व्रतपालनार्थी तामिस्रमग्नाऽपि भवामि मुक्ता॥१५॥

चौराहे के निकटवर्ती विशाल महलों में रहने वाला नगर सेठ मुझे कामुक दृष्टि से देखता है। सो अतिथि सेवाव्रत के पालनार्थ मैं अपनी लज्जा को बेचकर नरक में डूबती हुई भी मुक्त हो जाऊंगी।

अनभ्रवज्रोपमवाक्-प्रताडितः, पिधाय कर्णौ चकितो महाव्रतः।
प्रोवाच हा! हा! किमिदं त्वयोक्तं, धरा विशीर्य्येत नभः पतेद् ध्रुवम्॥

विना ही बादल बिजली टूट पड़ने के समान वाणी से आहत हुवे कवीर जी हाथों से दोनों कानों को ढांपकर बोले—हाय, हाय! तूने यह क्या कह डाला? निश्चित ही जमीन फट जायेगी, आकाश टूट पड़ेगा।

पतिव्रते ! त्वां नरके निपात्य मे, न चातिथेयव्रत-पालनं वरम् ।
प्रयान्तु सन्तो विमुखाः क्षुधातुराः, लोकाऽपवादो मरणं तथाऽस्तु मे ।।

हे पतिव्रते ! तुझे नरक में गिराकर अतिथि सेवा का व्रत पालन करना मैं अच्छा नहीं समझता, भले ही सन्त भूखे निराश लौट जाएं, संसार में निन्दा हो, चाहे मैं मर भी क्यों न जाऊं ।

स्वामिन् ! किमद्य परमार्थविदा त्वयैतत्,
स्वर्गापवर्ग-भयभावनया स्वधर्मः ।
सन्त्यज्यते, मतिमतांवर ! नात्र चित्रं
नारायणो हि सगणः समुपागतः स्यात् ।।१८।।

[लोई बोली] हे नाथ ! आप तो परमार्थ तत्त्व के वेत्ता हो, फिर इस स्वर्ग नरक की की व्यर्थ भावना से आज अपने [अतिथि सेवा व्रत] धर्म का त्याग क्यों कर रहे हो ! हे मतिमतांवर ! इसमें क्या आश्चर्य है कि कदाचित् साक्षात् भगवान् ही अपने पार्षदों सहित साधु वेष में आ गये हों ।

चाण्डालदास्यं, निजमांसदानं, देहार्धभेदोऽस्थिसमर्पणञ्च ।
किं किं न चक्रुर्भुवि सत्यसन्धास्त्वयाऽपि हेया नरकस्य चिन्ता ।१६।

(हरिश्चन्द्र ने) चांडाल की दासता, (शिवि ने) अपने मांस का दान, (मयूरध्वज द्वारा) हड्डियों तक दे डालना,—संसार में सत्यसन्ध लोगों ने क्या क्या कठोर कर्म नहीं किये हैं ! सो आप भी नरक की चिन्ता छोड़ दो ।

धर्मभ्रष्टा भवेयं पतितमिममहो चोद्धरेयं धनेशं,
देवो जानाति भेदं? वचनरचनया प्राप्तबोधः कबीरः ।
धारावृष्टिप्रपाते सति निजगृहिणीं कंबलेनावृताङ्गीं
स्कन्धे चारोप्य रात्रौ धनपतिसदनं प्रापयामास धीरः ।२०।

मैं धर्मभ्रष्ट हूंगी अथवा उस पतित नगर सेठ का ही उद्धार हो जायगा—यह रहस्य तो भगवान् ही जानते हैं । इस प्रकार लोई की वचन

रचना से कबीर जी व्यामोह छोड़ कर प्रबुद्ध हो गये। तब महाधीर कबीर ने मूसलाधार वर्षा में अपनी पतिव्रता अर्द्धाङ्गिनी को कंबल में ढांप कर स्वयं अपने कन्धे पर बिठाकर रात के समय नगर सेठ के घर पहुंचा दिया।

द्वारि स्थितो भक्तवरः कबीरो, लोई शनैः श्रेष्ठिगृहं विवेश।
चमत्कृतः श्रीकमलावरोऽपि, तयोस्तु लोकोत्तरसंयमेन ॥२१॥

भक्तश्रेष्ठ कबीर नगर सेठ के द्वार पर ठहर गये और लोई शनैः २ घर के अन्दर पहुँच गई। कबीर और लोई के इस लोकोत्तर त्याग को देख कमलापति भगवान् भी चकित रह गये।

दृष्ट्वा लोईं पुरस्तान्नगर-धनपतिः पुष्पशय्याधिरूढः,
सोल्लासं प्राह सत्यं किमु मदनकृता स्वप्नसम्मोहलीला।
कूपो यातः स्वयं किं सुतृषितसविधेऽतर्कितोऽयं सुयोगो,
या मां थूत्कृत्य नित्यं प्रचलति दयिता साद्य मेऽग्रे स्थितेयम्॥

फूलों की सेज पर लेटे हुये नगर सेठ ने जब लोई को सामने खड़ी देखा तो बड़े उल्लास से कहने लगा कि क्या मैं सचमुच देख रहा हूं अथवा यह सब कामदेव की लीला का वैचित्र्य ही स्वप्न में दीख पड़ रहा है? क्या कूआं ही प्यास से मरते के पास स्वयं आ पहुंचा है, इस योगायोग की तो कभी सम्भावना भी नहीं थी। आश्चर्य है जो प्यारी लोई नित्य मुझे देख थूक कर चलती थी, आज वही मेरे सामने खड़ी है?

नाऽयं स्वप्नो न लीला रतिपतिरचिता किन्तु दारिद्र्यशीला,
नाऽयं कूपोऽस्ति तादृग् विमलजलभृतः किन्तु रिक्तान्तरालः।
प्रायां थूत्कृत्य याऽहं मयि सकलजनाश्चाद्य दास्यन्ति थूत्कं,
गेहे तिष्ठन्ति सन्तो नहि चणककणो भोजनं देहि मह्यम् ॥२३॥

[लोई बोली] न यह स्वप्न है न कामदेव की बनावटी लीला है किन्तु यह तो मूर्तिमान् दरिद्रता की माया है। यह वह कूआ भी नहीं है जो विशुद्ध जल से भरा हो किन्तु यह सूखा अन्ध कूप है। जो मैं थूक कर चलती थी, परन्तु आज सब संसार मुझ पर थूक डालेगा। घर में अतिथि सन्त

बैठे हैं परन्तु चरणे का भी दाना नहीं है—इसलिये मुझे भोजन दीजिये ।

महानिशायां निबिडान्धकारे, एकाकिनी त्वं कथमागतासि ?
वर्षातिसारेऽपि न वारिविन्दुक्लिन्नासि को हेतुरिहास्ति शोभने ॥

(नगर सेठ ने पूछा) इस अखण्ड आधीरात के समय जबकि घोर अन्धकार छा रहा है तुम अकेली यहाँ कैसे पहुंच गईं ? मूसलाधार वर्षा हो रही है तब भी तुम पर एक छींटा भी नहीं गिरा ! हे सुन्दरी ! इस अचम्भे का क्या कारण है ?

इतोऽधिकेऽहं निरयान्धकारे, गन्तुं प्रवृत्तास्मि किमत्र चित्रम् ।
क्लिन्ना न वृष्ट्या किमनेन ? सद्यो मङ्क्ष्याम्यहं वैतरणी-प्रवाहे ॥

[लोई ने कहा] मैं तो आज इससे भी अधिक नरक के घोर अन्धकार में गिरने को तैयार होकर आई हूं । इसमें आश्चर्य की कौन सी बात है ? वर्षा का छींटा मुझ पर नहीं गिरा, इससे क्या ? मैं तो अभी अभी वैतरणी नदी के अथाह प्रवाह में डूबने वाली हूं ।

भक्ताधिराजो मम प्राणनाथः, स्वस्कन्धमारोप्य समानयन्माम् ।
याञ्चाममोघां प्रविधाय शीघ्रं, यद् रोचते ते कुरु तद् यथेष्टम् ॥२६॥

भक्त श्रेष्ठ मेरे प्राणनाथ कबीर साहिब ही अपने कन्धे पर चढ़ाकर मुझे यहाँ पहुंचा गए हैं, सो अब शीघ्र मेरी माँग सफल कर दीजिये फिर तुमको जो रुचे सो यथेच्छ करना ।

नहीं सांच को आंच

लोईवाक्येन बुद्धो नगरधनपतिर्विस्मयाविष्टचेता,
मञ्चादुत्थाय तस्याश्चरणकमलयोर्भक्तिनम्रः पपात ।
हंहो ! मातः त्वयाहं निजपदरजसा पावितः पावनेन
जायेताज्ञः कुपुत्रो नहि भवति पुनः क्वापि माता कुमाता ।२७।

लोई की वाणी सुनकर नगर सेठ की अन्तरात्मा जाग उठी वह चकित होकर पलंग से उठा, और लोई के चरण कमलों में भक्ति विनम्र

भाव से गिर पड़ा, कहने लगा—अहो जननी ! तूने अपनी पवित्र चरण रज से मेरी अन्तरात्मा को शुद्ध कर दिया है। मूर्ख बेटा कुपुत्र हो सकता है परन्तु संसार में कभी भी कोई माता कुमाता नहीं हो सकती।

द्वाःस्थं कबीरं प्रणिपत्य श्रेष्ठी, प्रोवाच योगिन् समनुगृहीतः ।
समर्पये श्रीचरणेषु देव ! सर्वं स्वकीयं खलु वस्तुजातम् ॥२८॥

दरवाजे पर बैठे कबीर जी को दण्डवत् प्रणाम करके नगर सेठ ने कहा—योगिराज ! मुझ पर आपने बड़ी कृपा की है। हे महात्मन् ! मैं सर्वस्व आपके चरणों में अर्पण करता हूं।

अथ त्रयस्ते मुनिवृन्दसन्निधौ, सुभक्ष्यभोज्यान्नयुताः समाययुः ।
देवाधिदेवोऽपि परीक्षितुं जनमुवाच सक्रोधमलं दहन्निव ॥२९॥

अनन्तर वे तीनों सुन्दर भक्ष्य भोज्य पदार्थ लेकर सन्तों की मण्डली के निकट पहुंचे। भगवान् भी अपने भक्त की कड़ी परीक्षा लेने के विचार से मानों क्रोध से फूंक डालेंगे— इस प्रकार बोले—

रे दुष्ट ! दम्भिन् ! विगतत्रपस्त्वं, सुप्तो गृहेऽस्मानतिथीन् विहाय ।
गता स्वकान्तं विषवल्लरीयं, यां मन्यसे मूढ़ ! सतीं सुसाध्वीम् ॥३०॥

अरे दुष्ट पाखण्डी ! तू बड़ा निर्लज्ज है, जो हम अतिथियों को यहां छोड़कर घर में पड़कर सो गया। विष की बेल तेरी यह स्त्री भी अपने प्रेमी के पासचली गई, अरे मूढ़ ! जिसे तू बड़ी सती साध्वी समझता है।

एवं कुवाक्यानि बहूनि माधवो, गृणन् कबीरस्य विशालमस्तके ।
स्वतुम्बिकां संप्रजहार तत्क्षणं, विव्याध लोईमपि लत्तया स्वया ॥

इस प्रकार भगवान् ने अनेक कुवाक्य कहते हुये कबीर के विशाल भाल में तत्काल अपनी तुम्बी दे मारी और अपनी लात से लोई की भी ताड़ना की।

निपत्य भूमौ रुधिरेण संप्लुतः, कबीरभक्तो मुनिमाह सान्त्वयन् ।
क्षन्तव्य एषोऽस्मि महाखलोऽप्यहं गृहाण भोज्यं चरणौ नमामि ते ॥

रुधिर से लथपथ हुये कबीर जी भूमि पर गिरकर अतिथि मुनि को सान्त्वना देते हुए कहने लगे कि निस्सन्देह मैं महादुष्ट हूं, तथापि आप क्षमा करें। मैं आपके चरणों में नमस्कार करता हूं कृपया यह भोजन ग्रहण कर लीजिये ।

लोई कराभ्यां मुनिपादपङ्कजं संवाहयन्ती निजनेत्रवारिभिः ।
संस्नापयामास-भृगोर्विचेष्टितं, स्मरन्मुकुन्दोऽतितरां तुतोष ह ॥३३॥

लोई अपने हाथों से मुनि के चरण कमल को सिहराती हुई अपने नेत्रों के जल से आप्लावित करने लगी। भगवान् [पूर्व कालीन] भृगु [द्वारा अपने वक्षःस्थल में लगी लात] प्रसंग को स्मरण करते हुये अतीव प्रसन्न हुये ।

भगवद्दर्शन

ततः परेशः शतसूर्यसन्निभश्चतुर्भुजः शङ्खगदार्य्युदायुधः ।
भूत्वा सतीं प्राह पतिव्रतोत्तमे ! तुष्टोऽस्मि ते याच वरं यथेप्सितम् ॥

तब सैंकड़ों सूर्यों के समान तेजवाले, शंख, चक्र, गदा और पद्म आयुध धारण किये चतुर्भुत रूप में भगवान् प्रकट हुये और सती लोई से बोले—हे पतिव्रताओं में उत्तम ! मैं तुम पर प्रसन्न हूं, तू जो चाहे सो वर मांग ।

प्रीतिर्दृढ़ा मे पतिपादयोः स्यात्, मुक्तो भवेत् श्रेष्ठिवरो वराकः ।
कलौ न कार्या कठिना परीक्षा, वरत्रयं देहि जगन्निवास ! ॥३५॥

(लोई बोली) हे जगन्निवास भगवान् ! मुझे तीन वर दीजिये। (प्रथम) पति के चरणों में मेरी दृढ़ प्रीति बनी रहे। (दूसरा) यह बेचारा नगरसेठ मोक्ष का भागी बने। (तीसरा) कलिकाल में भक्तों की ऐसी कठिन परीक्षा आज से आगे आप न लें ।

तथाऽस्तु भद्रे ! तव कीर्तिगाथा पतिव्रतानां पथदर्शिका स्यात् ।
तवानुकम्पैकधनो धनेशः, काष्ठाश्रितायोऽपि तरेत्समुद्रम् ॥३६॥

हे भद्रे ! तथास्तु, अर्थात् जैसा तुमने मांगा वैसा ही हो। तेरी यह

कीर्ति कथा पतिव्रताओं को मार्ग दर्शन करे। एक मात्र तेरी कृपा ही जिसकी पूंजी है—यह नगर सेठ भी काठ के साथ लोहे की भांति भवसागर से पार हो।

तवातिथेयव्रतपालनेन, तुष्टोऽस्मि योगिन् ! व्रियतां यथेच्छम् ।
को वा भवेत् त्वत्सदृशो भवेऽन्यो महामनाः षड्रिपुबन्ध-मुक्तः ।३७।

(भगवान् कबीर से बोले) हे योगिन्, मैं तेरे अतिथि सेवाव्रत पालन से बहुत सन्तुष्ट हूं। तू यथेच्छ वर मांग। संसार में तेरे सदृश काम, क्रोध आदि षड् रिपुओं से मुक्त, महा मनस्वी अन्य कौन हो सकता है।

याचेऽद्वितीयो भगवान् यथा त्वं, तथाहमेकोऽभगवान् भवेयम् ।
भवे भवे मे भवताद् भवेश ! दरिद्रनारायण-पादपूजा ।।३८।।

(कबीर जी बोले) मैं यह मांगता हूं कि जैसे आप 'भग' शब्द वाच्य षड्विध ऐश्वर्य के एकमात्र अनन्य स्वामी हैं, इसी प्रकार मैं 'अभग' शब्द वाच्य समस्त दारिद्रय का एकमात्र पात्र बन जाऊं। हे भवेश ! अन्यान्य जन्मों में भी मैं दरिद्र नारायण की चरण सेवा करने वाला बनूं।

तथाऽस्तु! सद्भाव-शुभावहा महा, 'क'वित्व-'वी'रत्व-'र'सत्वभावित।
दरिद्रनारायण-भव्यभारती, भवाऽरतिस्ते प्रतिभातु भारते ।।३९।।

[भगवान् ने कहा] तथास्तु, अर्थात् ऐसा ही हो। अनेक सद्भावना-पूर्ण, शुभकारिणी और तुम्हारे नामाक्षरों के अनुसार 'क'वित्व अर्थात् काव्यकला, 'वी'रत्व अर्थात् ओजस्विता तथा 'र'सत्व अर्थात् सरसता से परिप्लुत तुम्हारी भव्यभारती भारत में संसार के मिथ्या प्रलोभनों से बचाने वाली सिद्ध हो।

दत्त्वा वरं प्रणत-पालन-पारिजातश्चान्तर्दधे, कुसुमवृष्टिरभून्नभस्तः ।
भक्तो जगाद वनितां सुनिमीलिताक्षो मातर्मया गुरुपदे निहिता त्वमद्य

भक्तों की पालना में कल्पवृक्ष के समान भगवान् वर देकर अन्तर्धान हो गए। आकाश से पुष्प वृष्टि होने लगी। तब कबीर जी ने अपने दोनों नेत्र भली भांति बंद करके कहा कि हे मातः ! तुम्हें आज से मैंने ज्ञानप्रद गुरु के स्थान में नियत कर लिया है।

भावे हि विद्यते देवः

(हरि अनाथ के नाथ)

गङ्गातटे विष्णुपुरे पुराभवद् बंगप्रदेशे हरिमोहनो द्विजः ।
यः सुप्रसिद्धे गदराख्यविप्लवे यशोऽर्ज्जयन् वीरगतिङ्गतो युवा ।।१।।

कुछ समय पूर्व बंगाल प्रान्त के अन्तर्गत विष्णुपुर नामक नगर में हरिमोहन नाम के एक कर्मनिष्ठ ब्राह्मण रहते थे। उन्होंने सन् १८५७ के स्वतन्त्रता संग्राम में भाग लेने के कारण युवावस्था में ही वीरगति को प्राप्त किया। वे अपने समय के यशस्वी व्यक्तियों में से अन्यतम थे।

तद्धर्मपत्नी विमला तपस्विनी ह्यनन्यनाथा विधवा यशस्विनी ।
स्ववंशबीजं खलु पञ्चहायनम् सुपालयन्ती नयति स्म जीवनम् ।।२।।

उनकी पतिव्रता धर्मपत्नी बेचारी विमला अनाथ होने पर भी अपने वंश के अंकुर एक मात्र पुत्र की पालना करती हुई जीवन यापन कर रही थी। वह बालक अभी पांच वर्ष का ही था।

स प्राप्तकालः शिशुरिन्द्रमोहनः स्वग्रामतः क्वापि सुदूरवर्तिनि ।
विद्यालये नित्यमयादतन्द्रितो 'भव्यद्रुमाः स्निग्धदला भवन्ति हि' ।।

कुछ समय बाद वह बालक बड़ा हो गया। उसका नाम रक्खा गया—इन्द्रमोहन। वह अपने गांव से काफी दूर होने वाले एक विद्यालय में प्रतिदिन बिना आलस्य किये पढ़ने जाया करता था। [लोकोक्ति प्रसिद्ध है कि—] "होनहार बिरवान के होत चीकने पात"।

विद्यालयीयेऽध्वनि निर्जने वने गच्छन्नयं त्रस्यति वेपते भृशम् ।
अस्यैव चान्ये सहपाठिनोऽर्भकाः सुखं समायान्ति सहाग्रजैः स्वकैः ।

विद्यालय के मार्ग में बड़ा भयानक बीहड़ जङ्गल पड़ता था । जहां से आते जाते बालक इन्द्रमोहन भय से कांप उठता था । जब कि उसके साथ के अन्य बालक अपने बड़े भाईयों के साथ बड़े आनन्द से आते जाते थे ।

स चौकदा प्राह रुदन् स्वमातरम्
हंहोऽम्ब ! मे क्वास्ति पिताथवाग्रजः ।
एकाकिनं मां पथि यः सहानयन्
कुर्यादरं वीतभयं दयान्वितः ॥५॥

एक दिन वह अपनी माता से रोता हुआ पूछने लगा – मेरे पिता या बड़े भाई कहां हैं ? दया करके जो मुझ अकेले को रास्ते में तत्काल डरने न दें और अपने साथ ला सकें ।

विलोक्य बालं सहसा रुदन्तम् सा सान्त्वयामास बहुप्रयत्नैः ।
परं शिशुर्बालहठाद् रुरोद क्व मे पिता क्वास्ति तथाग्रजो वा ॥६॥

बालक को रोते देख माता ने अनेक प्रकार से सान्त्वना देने का प्रयत्न किया । पर बालहठ के कारण वह रो रो कर यही कह रहा था कि 'कहां हैं मेरे पिता ? कहां हैं बड़े भैय्या ?

अनन्यनाथा विमलातिधीरा शोकाश्रुपूरं सहसा निरुध्य ।
स्वपूज्यदेवं खलु बालकृष्णम् प्रदर्श्य तं प्राह तवाग्रजोऽयम् ॥७॥

बेसहारा विमला ने अपने आंसुओं को बलात् रोक लिया और अपने आराध्य भगवान् श्रीकृष्ण की प्रतिमा दिखाते हुए बड़ी गम्भीरता से बोली—'बेटा ! इन्द्र ! ये ही तरा बड़ा भाई है ।

यदा वने त्वं सभयो भवेस्तदा 'गोपाल! एह्येहि'-वद त्वमुच्चकैः ।
सदैव तस्मिन् विपिने वसत्ययम् महाभयं ते व्यपनेष्यति ध्रुवम् ॥८॥

जब तुझे वन में भय लगे तो 'गोपाल भैया ! आओ' कह कर जोर जोर से आवाज लगाना । यह हमेशा उसी जङ्गल में रहता है तेरे भय को अवश्य दूर करेगा ।

स श्रद्धधानो वचने परेद्युर्वनेऽरटत्तारस्वेण बालः ।
'गोपाल! गोपाल!! ममाग्रजस्त्वम् 'गोपाल! एह्येहि पुनः पुनश्च ॥

अपनी माता के वचनों में श्रद्धा रख कर बालक इन्द्रमोहन अगले दिन वन में जाते ही जोर जोर से पुकारने लगा "भैया गोपाल ! आओ, आओ गोपाल भैया !!

वर्हावतंसो धृतवेणुदण्डः सपीतवासा कमलायताक्षः ।
गोपालकृष्णः समुपेत्य दोर्भ्याम् आपीड्य वक्षस्तमसान्त्वयद् द्राक् ॥

उसी समय श्री बालकृष्ण वहीं पर आगये। जिनके शिर पर मोर, पंख का मुकुट था, हाथ में मुरली थी, पीताम्बर शरीर पर था, कमल के समान सुन्दर नेत्र थे। उन्होंने आते ही तत्काल इन्द्रमोहन को बांहों में भर कर आलिङ्गन किया और सांत्वना दी।

तदा प्रभृत्येव स वन्यसङ्कट आकारयामास निजाग्रजं सदा ।
श्रीबालकृष्णोऽपि समेत्य सत्वरम् स्कन्धे समारोप्य वनादपारयत् ॥

तब से इन्द्रमोहन प्रतिदिन वन की भयानकता से बचने के लिये "गोपाल भैया! आओ" कहकर ज्यों ही पुकारता त्यों ही श्री बालकृष्ण भी तत्काल आते और उसे कन्धे पर बैठा कर जङ्गल से पार छोड़ जाते।

अथैकदा श्री गुरुदेवसद्मनि महोत्सवे भाविनि भूरिभोजने ।
'स्वस्वालयेभ्यः पय आनयत्विति' सर्वेऽपि छात्रा गुरुणा प्रचोदिताः ॥

एक दिन गुरु जी के यहां कोई उत्सव होने वाला था। उन्होंने सब छात्रों को आज्ञा दी कि कल अपने २ घर से दूध लेकर आना।

सायं समागत्य स इन्द्रमोहनो गुरोरनुज्ञां भणति स्म मातरम् ।
तदाऽवशा सा तु तमाह तत्क्षणम् वाच्यस्त्वया तात स एव सोदरः ॥

सायंकाल इन्द्रमोहन ने गुरु की आज्ञा माता से सुनाई। [अनाथ देवी को] जब और कुछ न सूझा तो उसने कहा—पुत्र! अपने बड़े भैया से दूध के लिये कहना।

तथा कृते क्षुद्रतमामुदञ्चनीम् गोपालकृष्णाहृतदुग्धपूरिताम् ।
मुदा समादाय गतो गुरुर्गृहम् नत्वाऽवदत्तात ! ममापि गृह्यताम् ॥

इन्द्रमोहन ने ऐसा ही किया। और बड़े भाई गोपाल द्वारा दी हुई छोटी सी दूध की लुटिया को लेकर गुरु जी के घर गया। प्रणाम करके बोला—गुरुदेव ! मेरा दूध भी लीजिये ।

गुरुस्तु शिष्याहृतदुग्धकुम्भान् महाकटाहे स्वयमेव चाक्षिपत् ।
परं वराकस्य च मोहनस्य सोदञ्चनी दृष्टिपथं न याता ॥१५॥

गुरु जी तो सम्पन्न छात्रों द्वारा लाये हुये दूध से भरे घड़ों को स्वयमेव एक बड़े विशाल कड़ाहे में डालने में व्यस्त थे। अतः मोहन की छोटी सी लुटिया पर उनकी नजर ही न पड़ी ।

स उन्मना प्राह पुनः पुनर्गुरुम् गृहाण भो तात ! गृहाण मे पयः ।
गुरुस्तु निर्भर्त्स्य रुषा तमब्रवीत् प्रयच्छ मे मन्द ! महाघटं स्वकम् ॥

वह फिर बैचेन होकर बोला—गुरु जी ! दूध लीजिये, मेरा भी दूध लीजिये ना ! गुरु जी उसे डांटते हुए क्रोध में भरे [व्यङ्ग्य पूर्वक] बोले—'मूर्ख ! ला ! अपने बड़े भारी दूध भरे मटके को ?'

त्रस्तः शिशुः क्षुद्रतमं स्वभाजनम्
गुरोः करेऽदात् सपयोऽतिलज्जितः ।
अपातयद् यावदयं महाघटे
तावत्क्षणादेव स पूरितोऽभवत् ॥१७॥

डरे हुए मोहन ने शर्माते हुए अपनी सब से छोटी दूध की लुटिया गुरु जी के हाथ में दे दी। गुरु जी ने एक विशाल खाली घट (घड़े) में—जब उस लुटिया के दूध को उडेला तो वह घड़ा ऊपर तक लबालब भर गया।

महाघटा भाजनभाण्डकुम्भा द्रोण्यस्तथा सत्कलसाः कटाहाः ।
दुग्धेन पूर्णा अखिला क्रमेण तथापि सोदञ्चनिका न रिक्ता ॥१८॥

उस छोटी सी लुटिया के दूध से वहां रक्खे हुए सब बड़े बड़े घड़े,

बर्तन, कड़ाही, कड़ाहे, कलश आदि क्रमशः भर गये, किन्तु वह लुटिया तब भी खाली नहीं हुई।

चमत्कृतोऽध्यापकवर्य्यं आह तम् कुतः समानीतमिदं पयस्त्वया।
'अहो! बताश्चर्यमिदं सकौतुकम् सत्यं समुद्राश्चुलुकेन पूरिताः'।१९।

गुरु जी ने आश्चर्य से चकित होकर पूछा—यह दूध तुम कहां से लाये हो? अरे! बड़े आश्चर्य की बात है!! आज तो यह कहावत सत्य हो गई कि 'एक चुल्लु से विशाल समुद्र भर गया।'

वटुर्गुरुं प्राह वने ममाग्रजः गोपालनामा वसतीह सोदरः।
बर्हावतंसो धृतपीतकर्पटः दत्तं पयस्तेन दयार्द्रचेतसा ॥२०॥

इन्द्रमोहन ने गुरु जी को बताया—इस जङ्गल में मेरा सहोदर भाई रहता है। जिसका नाम गोपाल है। वह मोरपंख का मुकुट सा बान्धे हुए है—पीले कपड़े पहनता है—उसी ने मुझे यह दूध दिया है।

श्रुत्वा गुरुः सोदरलक्षणानि दृष्ट्वा तथा तत्पयसो महत्त्वम्।
स्कन्धे समारोप्य वटुं चलन्नयम् उवाच मां दर्शय सौम्य! तं शिशुम्॥

गुरु जी ने जब बड़े भाई के लक्षण सुने और उस दूध की अद्भुत घटना को देखा तो इन्द्रमोहन को कन्धे पर बैठा कर चल दिये और बोले—हे वत्स! उस बालक के पास मुझे ले चलो, मैं उसे देखना चाहता हूं।

महावने संस्थित इन्द्रमोहन 'एह्येहि गोपाल!' जगाद नित्यवत्।
न भाषते नैति च पूर्ववत्तदा निराशतां प्राप्य रुरोद बालकः।२२।

उस भयानक जंगल में पहुंच कर इन्द्रमोहन ने रोज की तरह पुकारा—'गोपाल भैया! आओ, आओ!' पर जब उसे न तो कोई उत्तर मिला और न ही कोई आया तब वह निराश होकर रोने लगा।

क्षणात्तदा देवगिरा तमाह किं रुद्यते संप्रति नाऽद्वितीयः।
अकुर्वतां दीनजनेऽनुकम्पाम् न दर्शनीयोऽस्मि कदापि बन्धो ॥२३।

तभी आकाश वाणी हुई—भैया! तुम रोते क्यों हो? आज अकेले तो नहीं हो! जो गरीबों पर दया नहीं करते मैं उनको दर्शन नहीं देना चाहता

श्रुत्वा गुरुर्देवगिरं विलज्जितो रुदन् शिशु प्राह दयस्व पुत्रक ।
त्वमेव सम्प्रार्थय भक्तवत्सलम् स्वभ्रातरं सर्वजगत्पितामहम् ।।

आकाश वाणी की बात सुनकर गुरु जी लज्जित हो गये । बालक से रोते हुए बोले— पुत्र ! मुझे क्षमा करो । तुम अपने भाई से, जो कि वास्तव में समस्त विश्व का पितामह है—प्रार्थना करो ।

सगद्गदं प्राह शिशुस्तदानीम् अयं गुरुः पूज्यतमो मदीयः ।
एह्येहि शीघ्रं न तु तेऽपराधम् मात्रेऽद्य नूनं कथयामि बन्धो ।।

बालक इन्द्रमोहन ने गद्गद् होकर पुनः पुकारते हुए कहा—ये मेरे पूज्य गुरु जी हैं । भैया ! जल्दी आजाओ—नहीं तो तुम्हारा यह अपराध माता से आज अवश्य कहूंगा ।

ततो लसत्कुण्डलमण्डितास्यः स्फुरन् महामौक्तिकदामकण्ठः ।
पीताम्बरो बर्हकृतावतंसो गोपालदेवः सहसोदतिष्ठत् ।।२६।।

तब श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द तत्काल वहां प्रकट हुए । सुन्दर मुख पर कुण्डलों की कान्ति विराजमान थी । गले में मुक्तामणियों की अमूल्य माला सुशोभित थी । पीताम्बर और मयूरपंख का मुकुट धारण किये हुए भगवान् दिव्यतम लग रहे थे ।

अवोचदेनं शृणु तात ! मेऽयं क्षन्तव्य एवागमने विलम्बः ।
त्वं ब्रूहि मां दुर्वचनं यथेच्छम् वाच्यो न दोषो मम मातुरग्रे ।।

भगवान् ने मोहन से कहा—भाई ! मैं बहुत देर से आया हूं मेरे इस अपराध को क्षमा करो । तुम मुझे कुछ भी बुरा भला कह लो, पर ये अपराध माता के सामने मत बतलाना ।

तं देवदेवं प्रणिपत्य साञ्जलि गुरुस्तथा बालक इन्द्रमोहनः ।
विशीर्णजन्मार्जितकर्मबन्धनौ जाताविहामुत्र च भव्यभागिनौ ।।

उन देवाधिदेव जगत्पति प्रभु को साष्टांग प्रणाम करके इन्द्रमोहन तथा गुरु जी के जन्म जन्मान्तर के कर्म विपाक जन्य सब पापादि नष्ट हो गये । प्रभु कृपा से इहलोक और परलोक में उन्होंने अलौकिक आनन्द प्राप्त किया । ●

कबीर चरितम्

(भक्त कबीर)

वाराणसी-तीर्थ-निवास भूमिः, रहस्यवादी कवि-सार्वभौमः ।
हिन्दोर्महात्मा यवनस्य पीरः आसीत्पुरा भक्तवरः कबीरः ॥१॥

पूर्वकाल में काशी धाम में जिनकी निवास भूमि थी ऐसे रहस्यवादी, कवि–चक्रवर्ती, भक्त-श्रेष्ठ कबीर हुए। जो हिन्दुओं के महात्मा और मुसलमानों के पीर कहे जाते हैं।

बाल्यात्प्रभृत्येव स रामभक्तो योगात्परिभ्रष्टनृदेहधारी ।
दीक्षागुरुं कर्तुमना मनस्वी बभ्राम काश्यामतिश्रद्दधानः ॥२॥

कबीर जी बालकपन से ही राम भक्त थें; क्योंकि वे योगभ्रष्ट कोई मुक्तात्मा ही मनुष्य रूप में प्रादुर्भूत हुए थे, इसीलिये वह मनस्वी, दीक्षा-गुरु को ढूंढने के निमित्त बड़ी श्रद्धा पूर्वक निरन्तर काशी में भ्रमण करते थे।

श्रीरामानन्दकीर्ति विबुधजनमुखादाकलय्यातिहृष्टः,
प्राप्तस्तद्द्वारि शिष्यैर्विदितकुलकृतिर्भर्त्सितो वारितश्च ।
बुद्ध्वोपायं कदाचिन्मुनिचरणरजः स्पर्शनार्थं स सोत्कः,
पुण्ये ब्राह्मे मुहूर्तेऽलुठदमरनदीघट्टमार्गे प्रबुद्धः ॥३॥

विद्वानों के मुख से श्री रामानन्द जी की कीर्ति सुनकर कबीर बहुत प्रसन्न हुए, (गुरु धारण के विचार से ज्यों ही) उनके द्वार पर पहुंचे तो शिष्यों ने कबीर जी को जुलाहे के वंश में पैदा हुआ कपड़ा बुनने वाला हीन कुलोत्पन्न जानकर झिड़कियां देकर अन्दर जाने से रोक दिबा। समय

पाकर श्री रामानन्द के चरण छूने को उपाय सोचकर श्रद्धालु कबीर प्रातः ब्रह्म मुहूर्त में ही गंगा घाट पर जाने वाले मार्ग में बड़ी उत्कण्ठा पूर्वक आड़े लेट गये ।

वृद्धो महात्मा ह्यवगाहनार्थी समागतस्तच्चरणाहतोऽयम् ।
पस्पर्श पादावतिभक्तिनम्रः सोप्याह खिन्नो ननु राम ! राम ॥४॥

वृद्ध महात्मा रामानन्द जी जब स्नान करने के लिये उस मार्ग से निकले तो आड़े लेटे कबीर के मस्तक में उनके पांव की ठोकर लगी । कबीर अतीव भक्तिपूर्वक गुरुदेव के पांव पलोटने लगे और रामानन्द जी (किसी मनुष्य को ठोकर लग गई— इस पाप को दूर करने के विचार से) दयार्द्र होकर 'राम राम' कहने लगे ।

पादस्य घातं सुविविच्य दीक्षां रामेति मत्वा गुरुदत्तमन्त्रम् ।
जजाप नित्यं मनसाऽचलेन, बभूव सिद्धो व्रतिनां वरिष्ठः ॥५॥

पांव की ठोकर को गुरु दीक्षा मानकर और राम राम को गुरु का दिया मन्त्र मानकर कबीर जी अचल मन से नित्य इसका जाप करने लगे जिससे वे व्रतधारियों में श्रेष्ठ सिद्ध हो गये ।

श्रुत्वा कबीरस्य परां प्रसिद्धिं, शिष्याः क्रुधा श्रीगुरुदेवमूचुः ।
कुविन्दपुत्रोऽनुगृहीत एष, वृथा गतं नो वत जन्म लोके ॥६॥

कबीर की सार्वजनीन प्रख्याति सुनकर श्री रामानन्द जी के अन्यान्य शिष्यों ने क्रुद्ध होकर गुरुदेव से शिकायत की कि आपने वह जुलाहे का बेटा तो सिद्ध बना दिया परन्तु दुःख है कि [सेवा करते करते] हमारा जन्म यूँ ही व्यर्थ गया ।

रामो मुनिः प्राह मया कदापि, कुविन्दपुत्रो विहितो न शिष्यः ।
ते क्रोधदग्धाश्च कबीरगेहं, गत्वा तमूचुः शृणु रे कुविन्द ॥७॥

श्री रामानन्द जी ने कहा कि मैंने तो कभी किसी जुलाहे के बालक को शिष्य नहीं किया । शिष्य लोग यह सुनकर क्रोध से जल भुने कबीर जी के घर पहुंचे और जाकर कहने लगे 'सुन रे जुलाहे' !

शिष्योसि चेद् राममुनेर्गुरोस्त्वं तत्सन्निधौ गच्छ गद त्वमेवम् ।
कबीरभक्तो भगवत्प्रभुत्वं ज्ञात्वा महाहृष्टमना बभूव ॥८॥

यदि तू गुरुवर श्री रामानन्द जी का चेला है तो उनके पास चल और यह बात कह ! कबीर भक्त, भगवान् की महिमा जानकर प्रसन्नचित्त हो गद्गद हो गए ।

यैर्भर्त्सितोऽहं विनिवारितस्तथा, त एव मां नेतुमिहागता अहो !
अतो विनोदावसरोऽस्ति साम्प्रतमुवाच तान्नाहमितो व्रजामि भोः ।

[कबीर जी मन ही मन सोचने लगे] 'जिन सज्जनों ने मुझको डांटा था और गुरुदेव के निकट जाने से रोका था आज वे ही सब मुझे लिवा ले जाने कें लिए आये हैं ।' इसलिये आज विनोद करने का अच्छा अवसर हाथ लगा है । बोले—'मैं यहां से नही जाऊंगा' ।

ते स्कन्धमारोप्य बलात्कबीरं, समानयन् राम-मुनेः कुटीरम् ।
यः प्राङ् निषिद्धोऽद्य स एव नीतो विलोक्यतां राम-जप-प्रभावः ॥

उन लोगों ने बलपूर्वक कबीर जी को कन्धे पर उठा लिया और श्री रामानन्द जी की कुटिया में ले आये । जिसे पहले आने से रोका था आज उसे ही स्वयं पहुंचाया—देखिए ! राम नाम जाप की कितनी विलक्षण महिमा है ।

नत्वा गुरुं राममुनिं कबीरो मेने तदात्मानमलं कृतार्थम् ।
मुनिस्तु तं भक्तवरं विदित्वा पप्रच्छ कस्यासि विनीत शिष्यः ॥११॥

कबीर साहिब ने श्री रामानन्द जी को प्रणाम किया और उस समय अपने आपको सर्वथा कृतार्थ समझा । गुरुदेव ने भी उन्हें श्रेष्ठ भक्त समझ कर पूछा—'हे सौम्य ! तुम किसके शिष्य हो ?'

ततः कबीरो निजपूर्ववृत्तं निवेदयामास यथाक्रमं सः ।
पाद-प्रहारं, गुरु-मन्त्र-दीक्षां श्रुत्वा तु सर्वे चकिता बभूवुः ॥१२॥

तब कबीर जी ने अपना सब पहिला वृत्तान्त यथा-क्रम निवेदन

किया—पाद प्रहार और गुरुमन्त्र-दीक्षा की अनोखी घटना सुनकर सब चकित हो गए।

परीक्षितुं प्राह मुनिः कबीरं, प्रयच्छ शीघ्रं गुरुदक्षिणां मे।
अकिञ्चनस्त्वं ह्यत एव लोके, यत्स्यान्निकृष्टं नु तदानयाशु ॥१३॥

कबीर जी की परीक्षा लेने के विचार से गुरु रामानन्द जी ने कहा—कि 'हमें अविलम्ब गुरु दक्षिणा दे।' तू सर्वथा निर्धन है इसलिये संसार में जो वस्तु किसी भी काम की न हो, वही निकृष्ट वस्तु जल्दी ले आ।

स कण्टकव्रातमहो ! निकृष्टं, मत्वा जिघृक्षुः कृषकैर्निषिद्धः।
कुमक्षिकावृन्दजिघृक्षुरन्यैर्निवारितः पादपशास्त्रविज्ञैः ॥१४॥

वह कबीर कांटों के ढेर को [निकृष्ट मानकर उठाना चाहता था तब किसान लोगों ने हटा दिया, फिर भिनभिनाती मक्खियों को निकृष्ट मानकर पकड़ने चला तो वनस्पति शास्त्र ज्ञाता लोगों ने [मक्षिकाओं को वृक्ष पुष्पों में फलत्वाधायक बताकर] हटा दिया।

दृष्ट्वा पुरीषं नगरोपकण्ठे थूत्कारसाहस्रशतैर्विगीतम्।
मत्वा निकृष्टं नितराममेध्यं ग्रहीतुकामः स मलेन शप्तः ॥१५॥

अनन्तर नगर के निकट ही पड़ी हुई विष्ठा को देखा जिस पर अगणित आने जाने वाले थूकते थे और निन्दा करते थे। जब उस मल को नितांत अपवित्र और निकृष्ट जानकर उठाने चले तो उसने भी डाँटते हुवे कहा।

दूरं तिष्ठ ! कथं ? करेण तव भोः सम्भाव्यतेऽमेध्यता।
उच्चारस्त्वमहं तु पूततटिनीस्नातोऽतिमेध्यो व्रती ॥
जाने ! त्वत्सदृशेन मोदकवपुश्चैतां दशां प्रापितः।
सम्प्रत्येष विभेमि ते करगतः कां कां दशां प्राप्नुयाम् ॥१६॥

[प्रश्नोत्तर] मल ने कहा—'मुझसे दूर रहो। कबीर—'क्यों ?' मल—'तेरे हाथ छू जाने से मेरे अपवित्र हो जाने की सम्भावना है।' कबीर—

'तू अपवित्र मल ! और मैं पवित्र नदी में नहाया धोया अतीव पवित्र व्रतधारी महात्मा !!' मल—'हां ! मैं [तुम जैसे मनुष्यों की काली करतूत ख़ूब] जानता हूं, तेरे जैसे मनुष्य ने ही लड्डू पेड़े के रूप में विद्यमान मुझ को (खाकर) इस मल दशा में पहुंचा दिया है।। अब मैं डरता हूं कहीं पुनरपि तेरे हाथों में पड़ा हुआ न जाने किस बुरी दशा में पहुंचूं।

मलोक्तिमाकर्ण्य गुरुप्रसादाद् ज्ञात्वा रहस्यं मनसातिहृष्टः ।
स रिक्तपाणिर्मुनिपादपद्मं, प्रणम्य तं प्राह गृहाण दासम् ॥१७॥

मल की फटकार सुनकर गुरुदेव जी की कृपा से कबीर जी सब रहस्य समझ गए और बहुत प्रसन्न हुए। तब खाली हाथों ही गुरु चरणों में दण्डवत् प्रणाम करते हुए बोले—(गुरु दक्षिणा में) मुझ दास को ही स्वीकार कीजिए।

निकृष्टमन्वेष्टुमहं प्रवृत्तो, लब्धो न लोके स मया पदार्थः ।
यावन्निजात्मानमपश्यमन्ते, मत्तो निकृष्टं नहि वस्तुजातम् ॥१८॥

गुरुदेव ! आपकी आज्ञानुसार [गुरु दक्षिणा में देय] निकृष्ट वस्तु ढूंढ़ता हुआ मैं लोक में घूमा परन्तु [कांटे, मक्खी मल तक सभी वस्तुवों को खेत की बाड़, पुष्पों में गर्भाधान, शूकरादि की क्षुत् निवृत्ति आदि उपयोगों में आने वाली होने के कारण] कोई निकम्मी चीज न मिल सकी अन्त में जब मैंने अपने आप पैर विचार किया तो मालूम हुआ कि मुझ से निकृष्ट अन्य कोई वस्तु नहीं है।

दोहा—बुरा जो ढूंढन मैं चला, बुरा न मिलया कोय।
जो मन खोजूं आपना, तो मुझसे बुरा न कोय ॥

विश्वासः फलदायकः

(विश्वास का फल)

आसीत्पुरा कोशलदेशमध्ये महेशसिंहस्य सुतो रमेशः ।
यो बाल्यभावे जनकस्य पुत्रीम्, ददर्श रामं च कलौ स्वदृग्भ्याम् ॥

कुछ काल पूर्व कौशल प्रदेश में महेशसिंह नामक व्यक्ति के एक रमेश नाम का पुत्र था। जिसने शैशव में इस कराल कलिकाल में भी भगवती सीता और भगवान् राम के साक्षात् दर्शन किये थे।

अथैकदा भाविनि होलिकोत्सवे प्रोचुः समेताः शिशवः परस्परम् ।
प्रातर्भगिन्याः सदनं व्रजाम्यहम्, अहं परेऽह्न्यस्मि परात्परेऽहनि ॥

[घटना इस प्रकार है]—एक बार होली के अवसर पर, होलीकोत्सव से दो चार दिन पूर्व बालक इकट्ठे होकर आपसमें एक दूसरे से कह रहे थे —मैं अपनी वहन के यहां कल जाऊंगा—'मैं परसों जाऊंगा 'मैं' अगले दिन जाऊंगा।

उवाच तेष्वन्यतमोऽपि बालो, रमेशनामाहमपि व्रजामि ।
सपाणिघातं जहसुस्तमुच्चैर्मिथ्यातवोक्तिर्भगिनी क्व ते भोः ॥

उनमें से रमेश नामक एक बालक बोला—'मैं भी अपनी बहन के यहां जाऊंगा' यह बात सुनते ही सब लड़के हाथ पर हाथ मारकर उसकी खिल्ली उड़ाते हुए हंस कर कहने लगे– तू बिलकुल झूठ बोलता है अरे ! तुम्हारी वहन है ही कहां ?

रुदन् रमेशो गृहमेत्य मातरम्, उवाच का मे भगिनी ? पुनः पुनः ।
सा बालकं सान्त्वयती प्रकल्पनैर्जगाद सीता भगिनी तवानघ !

रमेश रोता हुआ घर पहुंचा। माता से बार २ पूछने लगा—'मेरी बहन कौन है अम्मा ? !' वह भी बालक को सान्त्वना देते हुए झूटमूठ बोली बेटा—तुम्हारी बहन सीता है।

हृष्टः समागत्य स बालगोष्ठ्याम् तथावदत्तान् सपणं सगर्वम् ।
काले तथाम्बामनुरुध्य रोषादादाय देयं प्रतिगन्तुमैच्छत् ॥

बालक हर्षित होकर बालकों की मंडली में आ गया। शर्त लगाकर बड़े गर्व के साथ उनसे बताया [कि मेरे भी एक बहन है जिसका नाम सीता है—मैं होली पर उसके यहां अवश्य जाऊंगा"] निश्चित समय पर बालक ने अपनी माता से रोषपूर्वक आग्रह किया- और आखिर में वस्त्र मिष्ठान्न आदि लेकर जाने को उद्यत हो गया।

अनन्यनाथा जननी रमेशम् प्राबोधयत् ते भगिनी नु सीता ।
स्वसुः पती राम इति प्रसिद्धः साकेतपुर्य्यां वसतिस्तदीया ॥

बेचारी अनाथ माता ने उपायान्तर न देखकर उसे [सामान इत्यादि देते हुऐ] समझाया—कि तुम्हारी बहन सीता है उसके पति का नाम राम है, जो अयोध्या नगरी में रहते हैं !

पृच्छन् विपृच्छन् पथिकान् हठादयम् प्राप्तश्च साकेतपुरीं निशामुखे ।
लोकान् यदाऽपृच्छदयं स्वसुर्गृहम् हसद्भिरेभिः समुपेक्षितश्चिरम् ॥

मुसाफिरों से रास्ता पूछते २ यह हठी बालक रमेश आखीर सायंकाल के समय अयोध्या जा पहुंचा। वहां जब उसने लोगों से अपनी बहन के घर का पता पूछा तो—सबने उपेक्षा भाव से हंस कर उसे टालते हुवे बहुत देर तक टर्काया।

ऊचुर्युगेऽस्मिन् क्व नु रामराघवः क्व वा कलौ सा च विदेहनन्दिनी
केनाऽप्ययं बालिशबालको वृथा प्रतारितः क्लिश्यति पर्यटन्नहो !

वे आपस में कहने लगे—इस कलियुग में रामचन्द्र कहां ? या सीता भगवती कहां ? निश्चित ही इस अबोध बालक को किसी ने व्यर्थ बहकाया है—तभी तो बेचारा दुःखी होकर मारा-मारा फिर रहा है !!

अचिन्तयद् मात्र्युपदेशनिष्ठः इह स्वसा मे वसतीति सत्यम् ।
न मेलनं स्याद् यदि दैवकोपाद् मज्जामि नूनं सरयूप्रवाहे ॥

माता के वचनों में विश्वास करके रमेश सोचने लगा मेरी वहिन इसी नगरी में अवश्य है—यह सर्वथा सत्य है। पर यदि दुर्भाग्यवश मैं उससे न मिल सका तो निश्चित ही सरयू के प्रवाह में डूब कर अपनी जान खो दूंगा।

श्रान्तो भ्रमन् राजपथान्तिके क्वचित् शिश्ये क्षितौ देयकृतोपबर्हणः ।
विश्वासमालक्ष्य शिशोस्तदा दृढम् जगाद सीतां रघुनन्दनः स्वयम् ॥

बेचारा रमेश इसी प्रकार घूमते २ थक कर रास्ते में ही कहीं भूमि पर उस सामान को तकिये की जगह सिरहाने रखकर सो गया। उसके इस दृढ़ विश्वास पूर्ण निश्चय को जानकर अन्तर्यामी भगवान् राम स्वयं सीता से कहने लगे।

प्रिये! प्रिये! किं ससुखं प्रसुप्यते लुठत्यहो! भूमितले तवानुजः ।
प्रेमोपहारः प्रहितस्तवाम्बया गच्छाव आगच्छ तदन्तिके द्रुतम् ॥

प्रिये जनकनन्दिनी! क्या आराम से सो रही हो, तुम्हारा छोटा भाई तो जमीन पर लोट रहा है! तुम्हारी माता ने [होली के उपलक्ष्य में] प्रेमोपहार भेजा है—आओ, जल्दी से उसके पास चलें।

सीता निशीथे पतिपृष्ठगामिनी जगाम पद्भ्यामतिविस्मिता सती ।
श्रान्तं प्रसुप्तं शिशुमाह दर्शयन् अयं शुभे! तेऽभिनवः प्रियोऽनुजः ॥

सीता रात्रि में पैदल ही चकित सी होकर अपने स्वामी के पीछे २ चलने लगी। श्रीराम ने वहां पहुंचने पर थकावट से चूर २ होकर सोये हुये उस बालक को दिखाया और बोले, कल्याणि! यही तुम्हारा प्यारा नया छोटा भाई है।

उत्थाप्य बालं जनकस्य पुत्री पप्रच्छ प्रेम्णा वद कोऽसि बाल।
स प्राह सीता भगिनीह मेऽस्ति देयं प्रदातुं ह्यहमागतोऽस्मि ॥

जनकनन्दिनी उस बालक को जगाकर प्रेम से पूछने लगी—तुम

कौन हो ? उसने भी स्वाभाविकता के साथ उत्तर दिया--यहां पर सीता नाम की मेरी बहिन है—मैं उसे होली की ये मिठाई पहुंचाने आया हूं।

रामोऽवदत्सौम्य! तव स्वसेयम् मां विद्धि रामं भगिनीपतिं स्वम् ।
बालः कटाक्षेण निरीक्ष्य सीताम् उवाच नेयं भगिनी ममास्ति ॥

भगवान् राम बालक से कहने लगे—हे सौम्य! यह ही तुम्हारी बहिन सीता है—और मैं हूं तुम्हारा बहनोई राम! परन्तु बालक ने व्यङ्ग्य पूर्वक सीता की ओर देखकर उत्तर दिया—यह मेरी बहिन नहीं हो सकती।

स्वसा तु कण्ठे स्वकरौ निधाय रोदिस्यतीति किल लोकरीतिः ।
रामो हसन्नाह विदेहपुत्रीम् कुरु प्रिये! सम्प्रति लोकरीतिम् ॥

क्योंकि लोक-व्यवहार तो यह है कि बहिन भाई के गले में हाथ डालकर रोती है। तब राम हंसकर सीता से बोले—प्रिये! अब तुम [अपने रोदन के पाठ का अभिनय करती हुई] लोक व्यवहार पूर्ण करो [जिससे इसे तुम्हारे बहिन होने का विश्वास हो]।

सा बाहुपाशं शिशुकण्ठदेशे निधाय तारस्वरतो रुरोद ।
त्यक्ता! कथं मे स्मृतिरेव मात्रा, हा तात! हा मातरितो नयेथाम् ॥

तब सीता जी उस बालक के गले में भुजाएं डालकर जोर २ से रोते हुए कहने लगीं— हाय! पिता जी! ओ प्यारी अम्मा!! आपने तो मुझ को बिल्कुल ही भुला दिया। मुझे यहां से बुला लो।

बालोऽवदत्तो नयनार्थमिव समागतो मा रुदिहि प्रकामम् ।
विशुद्धभावेन वशीकृतश्च श्रीरामचन्द्रोऽपि चिरं रुरोद ॥

बालक कहने लगा—बहिन, मैं तुम्हें लिवा ले जाने के लिये ही आया हूँ, तू मत रो, मेरी प्यारी बहिन, अधिक मत रो। बालक के इस प्रकार निश्छल व्यवहार को देखकर प्रेम के वशीभूत भगवान् राम भी काफी देर तक स्वयमपि रोते रहे।

विश्रम्य बालः कतिचिद्दिनानि नरेन्द्रहर्म्ये बहुपाल्यमानः ।
स्वस्रा स्वयं भूषितसर्वगात्रो मुदा प्रतस्थे स्वगृहं रमेशः ।।

बालक कुछ दिन [भगवान् के 'कनभवन' नामक] राजमहल में स्वागत सत्कार का आनन्द लेता रहा। एक दिन बहिन द्वारा पहिनाये हुए कपड़ों तथा अलङ्कारों से सुसज्जित रमेश घर की ओर खुशी २ चल पड़ा।

माता शिशुं वीक्ष्य गृहागतं सा, श्रुत्वा च साकेतपुरीप्रसङ्गम् ।
संस्मृत्य संस्मृत्य तु रामकीर्तिं ध्यानेन तद्धाम जगाम सद्यः ।।

उसकी भक्त माता ने जब घर वापिस लौटे अपने पुत्र को देखा और अयोध्या में घटने वाला सब प्रसङ्ग सुना तो वह भगवान् राम की कीर्ति का बार २ स्मरण करती हुई ध्यानमग्न होकर तत्काल साकेत धाम को प्रयाण कर गई।

सीताप्रदत्तैश्च महार्हरत्नैर्वयस्कतां प्राप्य रमेशसिंहः ।
चकार पैयागपुराख्यराज्यम् जनश्रुतिः सर्वजगत्-प्रसिद्धा ।।

वयस्क हो जाने पर उस बालक रमेशसिंह ने सीता द्वारा दिये हुये अमूल्य हीरे-रत्न-मणियों के मूल्य से [ही अवध प्रान्तीय] "पैयाग पुर" नामक राज्य की स्थापना की। यह किंवदन्ती सम्पूर्ण विश्व में प्रसिद्ध है।

श्वासो न चैको नवकोटिलभ्यः

(नौ करोड़ मूल्य में भी एक श्वास नहीं मिल सकता)

कश्चित्कृषाणः स्वकृषिं खगेभ्यस्त्रातुं स्थितः प्रोन्नतमञ्चपृष्ठे ।
मृद्गोलकं गोफणिकान्तराले सन्धाय नित्यं क्षिपतिस्म वेगात् ॥१॥

कोई किसान पक्षियों से अपने खेत की रक्षा (रखवाली) करने के लिये मिट्टी की गोलियें गुलेल में रखकर बड़ी तेजी से फेंका करता था ।

अथैकदाऽयं गुलिकां विधातुम्, मृदे स्वभूमिं खनतिस्म यावत् ।
तावत्तु गर्ते गुलिकाप्रपूर्णम्, ददर्श भाण्डं निहितं पुरस्तात् ॥२॥

एक दिन गोलियें बनाने के लिये भूमि खोदते समय उसने गोलियों से भरा घड़ा गड्ढे में देखा । प्रसन्न हो वह सोचने लगा ।

अचिन्त्यत् पितृपितामहाद्यैरिहैव नित्यं कृषिकर्म क्लृप्तम् ।
तन्निर्मिता या गुलिकास्तु शिष्टास्ता एव भूमौ निहिताः कदाचित् ॥

मेरे पिता दादा परदादा आदि यहीं पर खेती का काम करते रहे हैं । उन्होंने भी गोलियें बनाईं होंगी जो शेष बची वे कभी भूमि में दबा दी गईं होंगी ।

ततः प्रभृत्येष तु गोफणे ताः सन्धाय निक्षिप्य निहन्ति काकान् ।
भक्ष्यं समादाय कृषाणभार्या नित्यं समायाति गृहीतपुत्रा ॥४॥

तब से यह किसान उन गोलियों को ही गुलेल में रख कर फेंकता और कौवों को भगाया करता था । उसकी स्त्री प्रतिदिन उसके लिये खाना लाया करती थी । साथ में पुत्र भी होता था ।

संवीजितोऽसौ निजभार्यया वै, चखाद खाद्यं पिबतिस्म तक्रम् ।
स्तनन्धयः क्रीडति जानुहस्तैरुत्कीर्णभूमौ तरुमूलसंस्थः ।।५।।

उसकी स्त्री पंखे से हवा करती और वह भोजन करता था, लस्सी पीता था। उसका दूधमुहा छोटा बच्चा घुटनों के बल वहीं खुदी हुई जमीन में पेड के नीचे खेला करता था।

अथैकदा बालक एष दैवाद् धृत्वा मुखे तां गुलिकां चुचोष ।
कृषाणभार्या स्तनपानकाले न्यसारयत्तां स्वगृहे मनोज्ञाम् ।।६।।

एक दिन भाग्यवश वह लड़का उस गोली को मुँह में लेकर चूसने लगा। घर आकर किसान की स्त्री जब स्तन पान कराने लगी तब उसने उसके मुख में से वह चमकती गोली निकाली।

विचोष्यमाणा गुलिका मुखेन महोज्ज्वला दीपशिखेव जाता ।
सा कर्षकी काचमयीं विचित्राम् मेने शिशोः क्रीडनकं विचित्रम् ।।

बहुत समय तक मुख में चूसे जाने के कारण यह गोली दीपक की लौ की भान्ति चमक रही थी! पर किसान की स्त्री ने उसे बालकों के खेलने की विचित्र सी कांच की गोली ही समझा।

अथैकदा तत्र च कोऽपि रात्निकः समागतः क्रीडनकं ददर्श ह ।
परीक्ष्य तं विस्मितमानसोऽभवद्, अहोऽस्य मूल्यं नवकोटिरूप्यकम् ।।

एक दिन वहां पर कोई जौहरी आ निकला। उसने जब बच्चे का खिलोना वह कांच की गोली देखी तो परीक्षा करने के उपरान्त वह सोचने लगा—अरे, यह तो नौ करोड़ रुपये मूल्य का लाल है।

उवाच भद्रे ! कुत एष आगतो मणिर्विचित्रो नवकोटिमूल्यवान्।
गृहाण वित्तं भव सर्वमंगला तथा पतिस्ते धनदोपमो भवेत् ।।९।।

जौहरी किसान की स्त्री से बोला—देवी! ये नौ करोड़ रुपये के मूल्य की विचित्र मणि तुम्हारे पास कहां से आई? मेरे से खूब धन इस के बदले में लेकर आनन्द करो— तुम्हारा पति कुबेर के समान बन जायगा।

तथाकृते रूप्यसुवर्णभारैः कुटीरकं तत्कृषकस्य पूर्णम्।
मोमुद्यमानाह पतिं समेत्य केदारचिन्तां त्यज गच्छ गेहम् ॥१०॥

स्त्री ने जौहरी के कथनानुसार किया। उसकी झोपडी रुपयों तथा सोने से भर गई। वह हर्षातिरेक के साथ दौड़ कर पति के पास गई और बोली—छोड़ो खेत की चिन्ता, घर चलो।

दिवानिशं या गुलिकास्तु नित्यम् क्षिपस्यहो ! त्वं खगवारणाय।
बालोद्धृता ह्येकतमा तु तासाम् क्रीता सहर्षं नवकोटिमूल्ये ॥११॥

आप रात दिन जिनको गोली समझ कर पक्षियों को हटाने के लिये फेंकते रहे हो, उन्हीं में से एक को बालक ले गया था। उसे एक जौहरी ने बड़े हर्ष के साथ नौ करोड़ में खरीद लिया।

ज्ञात्वा स्वपत्न्या गुलिकामहार्घताम् ददर्श यावन्निजभाण्डमुत्सुकः।
निरीक्ष्य रिक्तं प्ररुरोद दुःखितो मूर्खस्य मे पश्यत निन्द्यदुष्कृतिम् ॥

अपनी स्त्री के द्वारा उन गोलियों की महत्ता और मूल्य जानकर वह उत्सुकता के साथ घडा देखने लगा—पर उसको खाली पाकर बड़ा दुःखित हुवा और बड़े जोर से रोने लगा—अरे ! मेरा मूर्खता पूर्ण निन्दनीय कार्य्य तो देखो।

क्षिप्ता महार्हा मणयो दिवानिशम् खगापनोदे गुलिका इव स्वयम्।
धिङ् मां महाज्ञं खलमात्मघातिनम्, इत्थं रुदन्नेव जहौ कलेवरम् ॥

"मैंने इतनी मूल्यवान् मणियों को रात दिन पक्षियों के भगाने में गोलियें के रूप में नष्ट कर डाला। मैं कितना मूर्ख हूं मुझे धिक्कार है !" ऐसे रोते २ ही उसने शरीर छोड़ दिया।

जीवः कृषाणो ललना तु बुद्धिः मनस्तु बालो मणयोऽसवश्च।
क्षेत्रं वपुर्वौ विषया विहंगा गुरुर्महारात्निक एव विज्ञः ॥१४.।

जीवात्मा किसान है, बुद्धि किसान की स्त्री है, मन ही बालक है, मणि प्राण रूप है, शरीर खेत है, विषय भोग पक्षी हैं और गुरु जौहरी के समान है।

वेदान्त-शास्त्रं हि सुवर्णभारम्, अज्ञानमेवात्र विपर्य्ययश्च ।
प्राणात्ययास्ति ह्यनुताप उग्रो विवेचनीयः सुधिभिः स्वबुध्या ।।१५।।

वेदान्त शास्त्र स्वर्ण और रुपया समझना चाहिये, मूर्खता ही विपर्य्यय (अदल बदल) है, प्राण-परित्याग पश्चात्ताप का ही स्वरूप है ये दार्ष्टान्त विद्वानों को समझना चाहिये ।

जीवः स्वमौर्ख्यान्निजकोटिमूल्यान् श्वासानहो ! व्यर्थयति प्रकामम् ।
प्राणात्यये चैकतमेऽवशिष्टे ज्ञात्वा तदर्घं शुचमेति मन्दः ।।१६।।

मूर्खबुद्धि जीव नौ करोड़ की कीमत वाले अमूल्य श्वांसों को विषय-वासनाओं में ही व्यर्थ नष्ट कर देता है—और अन्त काल में जब उन श्वांसों का मूल्य उसे ज्ञात होता है तो बहुत पछताता है ।

तस्मात्तु पूर्वं हि रहस्यमेतद् बुद्ध्वा विपश्चिन् न भजेत्प्रमादम् ।
कुर्यादवन्ध्यं परमार्थसंस्थः क्षणं क्षणं दुर्लभजीवनस्य ।।१७।।

इसलिये बुद्धिमान् को सब कुछ समझते हुए प्रमाद नहीं करना चाहिये । परोपकार में ही जीवन बिताना चाहिये । जीवन का एक २ क्षण दुर्लभ है और समय अमूल्य है ।

शिक्षयाः परोक्षवचनैर्हि जनाः सदैव

(युक्तिपूर्ण शिक्षा ही देनी चाहिए)

कश्चिन्नृपः शुद्ध-कुल-प्रसूतिः दुर्भाग्यतोऽभूद् बहुमद्यसेवी ।
तत्संगतोऽमात्यजनाः प्रजाश्च, कादम्बरीपानरता बभूवुः ॥१॥

अर्थ—कोई उच्चकुलीन राजा दुर्भाग्य से अत्यन्त मदिरापान करने लगा। उसी की संगति से मन्त्री एवं सम्पूर्ण प्रजा-जन भी निरन्तर मदिरापान में रत रहने लगे।

क्षीबो नृपः पतति भूमितले कदाचित्
पत्नीं प्रताडयति भर्त्सयति स्वभृत्यान् ।
गच्छत्यहो विगतलज्जतमस्त्वगम्यां
राज्ये गृहेऽपि खलु मात्स्यनयः प्रवृत्तः ॥२॥

अर्थ—राजा मदिरा पीकर बेहोश हो जाता और भूमि पर गिर पड़ता, कभी उन्मत्त होकर अपनी पत्नी को मारने लगता और कभी नौकर-चाकरों को बिना बात हा डाँटता फटकारता। वह निर्लज्ज की भाँति अगम्या गमन करने लगा। उसके घर में ही केवल यह दशा न थी अपितु सारे राज्य में ही इस प्रकार 'मात्स्यन्याय' (बड़ों द्वारा छोटों को खा जाने का दोष) फैल गया।

पुरोहितैस्तत्कुलधर्मरक्षकै-
र्महात्मभिस्तद्धितचिन्तकैस्तथा ।
निवारितोऽस्माद् दुरिताद् यदा नृपो
बद्ध्वा तदा तान्निगडे न्यपातयत् ॥३॥

अर्थ—राजकुल के धर्मरक्षक पुरोहितों ने तथा उसके हितचिन्तक महात्माओं ने मिलकर राजा को इस पाप से बचाने का प्रयत्न किया तो राजा ने उन सब को कारागार में बंद कर दिया।

इत्थं समग्रेऽपि नृपस्य राज्ये, व्याप्तः क्रमेणानुदिनं ह्यधर्मः ।
यथा हि राजा च तथा प्रजा वै लोकोक्तिरेषा स्फुटतां जगाम ॥४॥

अर्थ—इस प्रकार सम्पूर्ण राज्य में प्रतिदिन अधर्म की वृद्धि होने लगी। वहां की इस दशा को देखते हुए 'जैसा राजा वैसी प्रजा' यह लोकोक्ति चरितार्थ हुई दीखने लगी।

अथैकदैको नृप-राज्य-वासी, तपोधनो वीक्ष्य च दुर्दशां ताम् ।
अनर्थमूलात्खलु मद्यपानाद् उद्धर्तुमैच्छत् कृपया नरेशम् ।।५।।

अर्थ—एक बार उसी राज्य का रहने वाला कोई तपस्वी महात्मा राजा की इस दुर्दशा को देखकर सोचने लगा कि राजा को इस अनर्थमूलक मद्यपान से बचाना चाहिए।

प्रत्यक्षरूपेण नृप-प्रबोधनं कारागृहक्लेशफलं हि केवलम् ।
तस्मादयं जैमिनि-दर्शितेन हि, मार्गेण तं शिक्षयितुं समुद्यतः ।।६।।

अर्थ—प्रत्यक्ष रूप से राजा को सचेत करना तो जेल के कष्टों को निमन्त्रण देने के बराबर था। इस लिए महात्मा ने (मीमांसा दर्शनकार) जैमिनि के प्रदर्शित परिसंख्या मार्ग द्वारा ही राजा को सचेत करने का विचार किया।

स प्राप्य राज्ञः किल राजधानीं सुचत्वरे सार्वजनीनमार्गे ।
गतागतैः पञ्चजनैः प्रपूर्णे स्थित्वावदद् मद्यगुणान् प्रकामम् ।।७।।

अर्थ—ऐसा सोचकर तपस्वी महात्मा राजा की राजधानी में जा पहुंचे और वहां एक सार्वजनिक चौराहे पर जहां कि आने-जाने वाले सर्वसाधारण की खासी भीड़भाड़ रहती थी खड़े होकर शराब के गुणों का वर्णन करने लगे।

श्रुत्वा तदा मद्य-गुणान् सुराप्रियाः, परस्परं प्राहुरहो ! महत्फला ।
उदन्त एष प्रथितः श्रुतो यदा, राजा तमाकारयतिस्म सादरम् ।।८।।

अर्थ—मुनि के मुख से शराब के गुण सुनकर सभी नगर वासी शराब के गुणों की प्रशंसा करने लगे। यह बातें जब राजा के कानों में पड़ी तो उसने तपस्वी को सादर बुलाया।

भक्त्या मुनेः स प्रणिपत्य पादयोर्जगाद विद्वन् ! श्रुतमेव ते यशः ।
नाद्यावधि त्वत्सदृशोऽपरो जनः, सुरागुणाख्यानपरोऽवलोकितः ।।९।।

अर्थ—राजा भक्ति से विह्वल होकर मुनिजी के चरणों पर गिर पड़ा और कहने लगा—महाराज ! आपका यश मैंने बहुत सुना है, वास्तव में मैंने आजतक

आप जैसा कोई दूसरा विद्वान् नहीं देखा है जो शराब का इस प्रकार गुणगान करता हो ।

श्रीमन्नहं मन्त्रिगणाः प्रजास्तथा,
सर्वे सुरापानरसानुरागिणः ।
तन्निन्दकाः मन्निगडे स्थिताः प्रभो !
त्वं मे गुरुः शाधि हि मद्यवैभवम् ।।१०।।

अर्थ—महाराज ! मैं, मेरे मन्त्रिगण तथा सम्पूर्ण प्रजाजन सभी मदिरा के अनुरागी हैं । जो मदिरा के निन्दक हैं प्रभु ! वे सब मेरी जेल में बन्द हैं । आप मेरे गुरु हैं मुझे शराब के गुण बताइये ।

किं वच्मि राजन् ! मदिरागुणानहं, क्षीरोदजाता कमलासहोदरा ।
यत्पानतो भूमिगतोऽपि मानुषः स्वर्गस्थितो ह्येव न कोऽपि संशयः ।

अर्थ—महात्मा बोले—राजन् ! मदिरा के गुणों का क्या वर्णन करूं, यह तो भगवती लक्ष्मी की सहोदरा बहिन है । जिसका सेवन करने से मर्त्यलोक में रहने वाला पुरुष भी स्वर्गीय सुख का उपभोग करता है ।

न वृद्धतामेति सुरारतो जनो, न वाऽस्य गेहे खलु तस्करागमः ।
न कुक्कुरस्तं दशति क्वचिन्नृप! परं पिबेच्चेद्यदि तां यथाविधि ।।१२।।

अर्थ—निरन्तर सुरापान करने वाला प्राणी कभी भी बूढ़ा नहीं होता न उस के घर में कभी चोर, आ सकते हैं और न ही कभी उसे कुत्ता काट सकता है । परन्तु राजन् ! शराब में इतने गुण तभी आते हैं जबकि उसे विधि के अनुसार पीया जाय ।

पप्रच्छ राजा भगवन्! स को विधिरज्ञोऽस्म्यहं तं नहि वेद्मि सर्वथा ।
लोके न चाद्यावधि हा भवादृशो लब्धः सुरापान-विधानपण्डितः ।।१३।।

अर्थ—राजा ने विनम्र होकर पूछा—भगवन् ! मैं अज्ञानी हूं मुझे मदिरापान की विधि नहीं आती, आप मुझे बताइये कि वह विलक्षण विधि कौन सी है ? आप जैसा सुरापान विधान का पण्डित मैंने सारे संसार में नहीं देखा ।

श्रीराममन्त्रस्य सपादलक्षजपेन शुद्धा स्फटिकाक्षमाला ।
एकं तदक्षं चषके निधाय प्रपूर्य मद्यं प्रपिबेन्मनुष्यः ।।१४।।

अर्थ—महात्मा बोले—जिस स्फटिक माला पर श्रीराम मन्त्र का सवा लाख

जप हो चुका हो उसका एक-एक मनका प्रतिदिन प्याले में रखकर यदि मदिरापान किया जाय तो श्रेयस्कर रहता है।

एवं द्वितीये दिवसे द्वितीयं, तृतीयमक्षं दिवसे तृतीये।
शतं तथाष्टोत्तरमेव यावद् क्रमाद् विदध्यात् खलु पानपात्रे ॥१५॥

अर्थ—इसी प्रकार दूसरे दिन दूसरा, तीसरे दिन तीसरा रखते एक सौ आठ मनके तक क्रम क्रम से एक एक करके प्रतिदिन प्याले में रखते रहना चाहिये।

अक्षेषु सर्वेष्वपि सङ्गतेषु निस्सार्य्यं तान् संस्नपयेज्जलेन।
एवं हि निक्षिप्य पुनः पुनर्वा पिबेन्मनुष्यो विधिपूतमद्यम् ॥१६॥

अर्थ—जब एक सौ आठ मनके प्याले में रखे जा चुकें तो उन्हें प्याले से निकाल कर शुद्ध जल से धो ले तथा फिर उसी क्रम से विधि-पूर्वक मद्य का पान करे।

श्रुतो विधिः किन्तु गृहे न माला न राममन्त्रस्य कृतो हि जापः।
स्वामक्ष-मालां कतिचिद्दिनानि प्रयच्छ मह्यं कृपया मुनीश ॥१७॥

अर्थ—राजा ने कहा—महाराज! विधि तो मैंने सुन ली किन्तु मेरे घर में न तो कोई ऐसी माला है और नाहीं मैंने कभी राम-मन्त्र का सवा लाख जप ही किया है। आप अपनी यह (स्फटिक निर्मित) जपमाला कुछ दिनों के लिये मुझे देने की कृपा करें।

तथा कृते भूमिपतिर्यथाविधि पपौ सुरामक्षयुते तु भाजने।
स्वीयाक्षमालाकरणाय प्रत्यहं श्रीराम-मन्त्रं जपतिस्म तत्परः ॥१८॥

अर्थ—इस प्रकार राजा प्रतिदिन एक-एक मनका प्याले में रखकर विधि-पूर्वक मदिरा पान करने लगा तथा अपनी घरेलू माला तैयार करने के लिए प्रतिदिन श्री राम-मन्त्र का जप भी करने लगा।

इत्थं गतेषु किल षोडशवासरेषु,
श्रीराममन्त्र-जप-पूत-मतिर्नरेशः।
दृष्ट्वाक्षपूरितमिमं चषकं स्वहस्ते
मद्यं नगण्यमिव तत्र च विस्मितोऽभूत् ॥१९॥

अर्थ—इस प्रकार इस विधि से मदिरा पान करते हुए जब सोलह दिन

व्यतीत हो गए तो श्री राम-मन्त्र का जप करने से विशुद्ध हृदय वाले राजा ने देखा कि सारा प्याला माला के मनकों से ही प्रायः भर गया है और उसमें मदिरा तो नहीं के बराबर ही ऊपर-ऊपर छलकती है, तो उसे अत्यन्त आश्चर्य हुआ ।

अहन्तु नित्यं मनसि व्यचारयं त्यागो हि मद्यस्य महान् सुदुष्करः ।
प्रत्यक्षमेतत् ह्रसितं तु प्रत्यहमहोऽवशिष्टं खलु नाम मात्रकम् ।।२०।।

अर्थ—मैं तो प्रतिदिन सोचा करता था कि शराब छोड़ना मेरे लिए अत्यन्त दुष्कर है किन्तु अब मेरे देखते देखते ही वह प्रतिदिन (एक एक मणिया के बराबर घटते-घटते) इतनी कम हो गई कि प्याले में नाम-मात्र को ही छलकती सी रह गई ।

सुरां विना मे मरणं विनिश्चितं यासीत्पुरा हन्त मदीयधारणा ।
सा भ्रान्तियुक्तेति सुसिद्धमेतत् मुनेर्विधानं नियतं सहैतुकम् ।।२१।।

अर्थ—राजा सोचने लगा कि आज से पहले सुरा के बिना मेरी मृत्यु निश्चित है, यह जो मेरी धारणा थी वह वास्तव में भ्राँतियुक्त ही थी अब सिद्ध हो गया, मुनि का यह सुरापान-विधान निश्चित ही गुप्तरहस्य पूर्ण सहैतुक है ।

गत्वा प्रणम्य मुनिमाह नृपो द्विजेश !
श्रीमत्प्रयुक्तविधिना तु सुरा ह्युपास्ता ।
प्रोक्तास्त्वया बहुगुणा अपि ये सुरायाः,
तत्रापि कूटरचना किमु शाधि सम्यक् ।।२२।।

अर्थ—राजा ने मुनि के पास जाकर प्रणाम करके कहा—मुनिवर ! आपके बताए हुए विधान के अनुसार मदिरापान करने से तो मेरा मदिरापान लगभग समाप्त ही हो गया है । पहले आपने मदिरा के जो गुण मुझे बतलाए थे उनका भी कुछ व्यंग्य अर्थ है क्या ? आप मुझे विस्तार पूर्वक बताइये ।

तपोधनः प्राह हसन्निदानीं सुरागुणानां शृणु गुप्त-तत्त्वम् ।
क्षीराब्धिजातः किल कालकूटः स्वसा तदीया मदिरापि तुल्या ।।२३।।

अर्थ—महात्मा हंसे और बोले—राजन् ! मैंने जो सुरा के गुणों का गान किया था उसका वास्तविक रहस्य सुनो । क्षीरसागर से मन्थन के समय सर्वप्रथम कालकूट-विष निकला था मदिरा उसकी बहिन है अतः गुणों में हलाहल के ही समान है ।

न वृद्धतामेति सुरारतो जनो नूनं ह्यकाले म्रियते स यौवने ।
मद्योष्मणा विक्षत-फुफ्फुसे, निशि कफाद्विनिद्रे क्व च चौर्यसंभवः ।।

अर्थ—मदिरापान करने वाला मनुष्य वृद्ध नहीं होता । इसका तात्पर्य यह है कि वह प्राणी युवावस्था में ही अकाल मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। मदिरा की गर्मी से शराबी के फेफड़े गलने लगते हैं सो वह रात भर खांसता रहता है तब उसके घर में चोरी की संभावना कैसे हो सकती है ?

स भग्नपृष्ठो लगुडाश्रितश्चलन्
तत्सन्निधौ याति न कुक्कुरो भयात् ।
भूमिस्थितोऽप्येष हि नाकसंस्थितो
व्याजेन जीवन्मृत एव प्रोच्यते ।।२५।।

अर्थ—शारीरिक शिथिलता के कारण उसकी कमर झुक जाती है और वह लाठी के सहारे चलता है। इसलिए डंडे के डर से कुत्ता उसके पास नहीं आता । भूमि पर स्थित होता हुआ भी वह स्वर्ग-स्थित होता है—इसका तात्पर्य तो यह है कि जीवित होता हुआ भी वह मृत के समान है ।

श्रुत्वा तु राजा मुनिभाषितं वचोऽनुभूय सर्वं सततं निजात्मनि ।
क्षीरोदजां क्षारनिधौ विसृज्य तां, सहस्रखण्डं चषकं चकार ह ।।२६।।

अर्थ—मुनि की सारगर्भित वाणी को सुनकर राजा मन-ही-मन सब कुछ अपने अनुभव से समझ गया और उसने तुरन्त मदिरा को समुद्र में फैंक दिया तथा प्याले के हज़ारों टुकड़े कर दिये ।

उन्मुच्य तांस्तान्निगड़े निपातितान्, क्षमापयामास निजागसं पुनः ।
गो-भू-हिरण्यानि बहूनि तत्क्षणं, तेभ्यो ददौ व्रीडित-मानसो नृपः ।।

अर्थ—राजा ने जिन निरपराध विद्वान् लोगों को जेल में डाल रखा था उन सबको मुक्त कर दिया तथा उन्हें गौवें, भूमि एवं सुवर्ण दान करके प्रसन्न कर दिया । अपने कार्य के लिए राजा अत्यन्त लज्जित हुआ ।

तन्मन्त्रिणोऽमात्यगणाः प्रजास्तथा नृपानुगास्तेऽपि जहुः सुरां ततः ।
व्रतादिगंगास्नपनादिकाः क्रियाः, चक्रुः समेताः मुनिना प्रबोधिताः ।।

अर्थ—राजा के मंत्रीगण उसकी सम्पूर्ण प्रजा तथा अन्य राजकर्मचारी

समुदाय ने उसी क्षण से मदिरा का परित्याग कर दिया तथा मुनि के आदेशानुसार व्रत, गंगास्नान आदि धार्मिक क्रियाएं करने लगे।

तपोधनस्तान्निगड़ाद्विमोचितान्
जगाद विप्रान् कलिकाल आगतः।
स्वल्पास्तु लोके किल धर्मभीरवः।
प्रकामभक्षाः बहवस्तु पापिनः ॥२९॥

अर्थ—महात्मा ने जेल से छूटे उन ब्राह्मणों से कहा—विप्रश्रेष्ठो ! भयंकर कलिकाल आ गया है। धर्म से डरने वाले बहुत थोड़े लोग रह गये हैं। मन-माना अभक्ष्य भक्षण करने वाले प्राणी बहुत हो गए हैं।

तस्माज्जना ऋजुपथेन न बोधनीयाः
शिक्ष्यास्तु जैमिनिदिशा परिसङ्ख्ययैव।
कारां गता ऋजुविबोधपरा भवन्तः
कूटैः परोक्षवचनैर्गुरुतां गतोऽहम् ॥३०॥

अर्थ—अतः लोगों को कोई बात सीधे रास्ते से नहीं समझानी चाहिये किन्तु महात्मा जैमिनि के द्वारा प्रदर्शित परिसंख्या से ही समझाना चाहिये। आप लोगों ने राजा को सीधे शब्दों में समझाने की कोशिश की तो जेल में डाले गये, मैंने उसी बात को कूट वचनों से समझाया तो मेरा सम्मान किया गया। ●

परो हि योगो मनसः समाधिः

(मन जीते जग जीत)

भिक्षामटन् कोऽपि महादरिद्रो ज्येष्ठातपे खिन्नतनुस्तृषार्तः।
शून्ये वने पादपमूलसंस्थः शुशोच दीर्घं स्वदशां विचिन्त्य ॥१॥

कोई भिखारी बहुत निर्धन होने के कारण जेठ की झुलसा देने वाली गर्मी में भी भीख माँगता फिरता था। एक दिन प्यास से पीड़ित, पसीने से लयपथ शरीर वाला वह एकांत जङ्गल में किसी पेड़ के नीचे बैठकर अपनी दुर्दशा के विषय में बहुत दुःख से सोचने लगा।

अहा धनाढ्या गृहकन्दरासु गुप्ता हिमप्रस्तर-मंडितासु ।
संवीजिता: सद्व्यजनै: स्वदासै: पिबन्ति चामीररसं सिताढ्यम् ।।२।।

अहो ! वे धनिक भी हैं जो इस भीषण गर्मी में बर्फ की सिल्लियों से सम शीतोष्ण किये ठंडे तहखानों में पड़े हुए हैं और नौकर पंखों के द्वारा जिन्हें हवा करते हैं तथा मिश्री से बना चन्दन का शर्बत पी रहे हैं ।

दीना: पुन: संप्रति मादृशो जना: पदत्रहीना मरुबालुकापथि ।
क्षुत्क्षामकण्ठा: सुजलाभिलाषिण:, क्लिश्यन्ति नित्यं विजने महावने ।।

मेरे जैसे दीनहीन प्राणी नंगे पावों ही रेतीली भूमि पर चलते हैं । प्यास से सूखा गला लिये जलकी बून्द को ढूंढ़ते निर्जन जङ्गल में दुःख उठाते हैं ।

अहो! जगन्नाथकृपाकर प्रभो ! वृद्धोऽस्मि पद्भ्यां चलनेऽपि निर्बल: ।
तुच्छातितुच्छोऽश्वतरोपि मे भवेद्, नये कथञ्चिन्निजशेषजीवनम् ।।४।।

हे प्रभु ! आप कृपासागर हैं । मैं वृद्ध होने के कारण पैदल चलने में भी असमर्थ हूं । यदि आप दया करें और कोई घटिया सा खच्चर ही दिलादें तो मैं अपना शेष जीवन किसी तरह बिता लूं ।

एकत्र दीन: प्रलपत्यभीक्ष्णम्, अन्यत्र कश्चित्पथि राजदूत: ।
एकाक्यसौ शोचति मेऽश्विनीयम्, वने प्रसूता कथमाशु नेया ।।५।।

एक ओर तो ये गरीब भिखारी इस प्रकार विलाप सा कर रहा था । दूसरी तरफ उसी वन में कोई राजकर्मचारी एकेला होने के कारण इस चिन्ता से व्यग्र था कि सद्य: प्रसूता उसकी घोड़ी के नन्हें बच्चे को नगर तक कौन उठा ले जाएगा ।

अहन्तु पद्भ्यां चलितुं समर्थो नेयोऽश्व-बाल: पुरुषान्तरेण ।
प्रभो ! द्रुतं प्रेषय भारवहम्, य: प्रापयेत्सम्प्रति वाजिडिम्भम् ।।६।।

मैं तो पैदल चल सकता हूं । परन्तु इस बच्चे को तो कोई दूसरा ही उठाकर ले चलेगा । हे ईश्वर ! जल्दी ही किसी भार ढोने वाले को भेजो ! जो इस घोड़े के बच्चे को उठा ले जा सके ।

यावद्दरिद्रश्चलतिस्म किञ्चित् तावत्स दूतेन बलान्नियुक्त: ।
स्कन्धे समारोप्य ममाश्ववत्सम्, ममानुग: प्रापय वाजिशालाम् ।।७।।

गरीब धीरे-धीरे चलता हुआ अचानक उधर ही जा निकला। राजकर्मचारी ने जबरदस्ती उसे पकड़ कर कहा इस घोड़े के बच्चे को उठाकर मेरे पीछे-पीछे चलो और घुड़शाल तक पहुंचाओ।

क्षुत्तृट्परीतोऽपि भयेन दीनः, स्कन्धे समारोप्य तमश्वडिम्भम्।
मार्गे चलन् शोचति सत्यमुक्तम्, छिद्रेष्वनर्थाः बहुलीभवन्ति ।।८।।

भूख प्यास से परेशान होते हुए भी वेचारे को भय के कारण वह घोड़े का बच्चा कन्धे पर उठाना पड़ा। चलते-चलते वह रास्ते में सोचता जा रहा था यह किसी ने ठीक ही कहा है कि विपत्ति पर विपत्ति आती ही है। एक अनर्थ अनेक अनर्थों का कारण बनता है।

हे हे जगन्नाथ ! श्रुता तु प्रार्थना, परं तदर्थो विपरीत एषः।
स्ववाहनायैव ममार्थितोऽश्वः कृतस्त्वयाहं खलु तस्य वाहः ।।९।।

हे प्रभो ! आपने मेरी प्रार्थना तो अवश्य सुनी पर उसका अर्थ आपने उल्टा ही समझा। मैंने अपनी सवारी के लिए घोड़ा मांगा था, पर आपने घोड़े को मुझपर सवार वना दिया। मैं ही घोड़े को ढो रहा हूं।

जीवो दरिद्रः पशुकीटयोनिषु भ्रमन् मुकुन्दं बहु नाथते भृशम्।
मनोमयोऽश्वो यदि मे भवेत्तदाऽऽयास्यामि शीघ्रं भवने तव प्रभो ।।

यह जीव रूपी दरिद्र है, जो पशु, कीट,पतंग आदि चौरासी लाख योनियों में घूमता हुआ ईश्वर से बहुत प्रार्थना करता है कि मुझे यदि मन रूपी घोड़ा मिल जाय तो मैं शीघ्र ही आप के पास पहुंच जाऊं।

अथोग्रपुण्यैर्बहुजन्मसञ्चितैर्हरेः कृपाया उदयेन मानवः।
मनोविकासेन युतं सचिन्मयम् मनुष्यदेहं लभतेऽतिदुर्लभम् ।।११।।

फिर समय पाकर जन्म-जन्मार्जित पुण्यों के प्रताप से प्राणी मनुष्य जन्म को प्राप्त करता है और ईश्वर की कृपा से सम्पूर्ण शक्तियों से युक्त मन भी उसे मिलता है।

मनो हि हेतुः खलु बन्धमोक्षयोर्वेदे "ऽजिरं तद्धि जविष्ठ" मुच्यते।
अश्वं मनोरूपमिमं तु साधक आरुह्य गन्तुं प्रभवत्यधोक्षजम् ।।१२।।

शास्त्रों के कथनानुसार 'मन एवं मनुष्याणां कारणं बन्धयोक्षयोः, मन ही

मानव के मोक्ष और बन्धन का एक मात्र हेतु है। वेद में भी 'अजिरं जविष्ठम्' मन्त्र में यही प्रतिपादित किया है। साधक व्यक्ति इसी मन रूपी अश्व पर चढ़कर मोक्ष की ओर बढ़ सकता है।

परं मनोऽश्वं लभते यदा यदा, तदा तदाऽयं हतभाग्यमानवः ।
तमेव चारोप्य निजे तु मस्तके तदानुगः क्लिश्यति हा पदे पदे ।।१३।।

परन्तु प्राणी मनोरूप अश्व को प्राप्त करके भी अपनी मन्द-भाग्य की विडम्बना के कारण उल्टा उसी को अपने ऊपर चढ़ा लेता है और फिर जीवन पर्यन्त उसका आज्ञाकारी बनकर कष्टों को भोगता है।

यज्ञः सर्वस्य जीवनम्

(यज्ञ ही जीवन है)

कश्चिन्नरेशो निजयज्ञकुण्डे समिद्धवह्नौ सुहुतं सुहव्यम् ।
स्वाहाकृतं वीक्ष्य वृतांस्तु विज्ञान् पप्रच्छ सर्वान् प्रणिपत्य मूर्ध्ना ।।१।।

एक बार किसी राजा ने अपने यज्ञकुण्ड में अनेक प्रकार की सामग्रियों को 'स्वाहा' स्वाहा' करके डालते हुए, वरण किये ब्राह्मणों से बड़ी नम्रता के साथ मस्तक झुकाते हुए जिज्ञासा प्रकट की।

अहो ! भवद्भिः किल शर्कराघृतमन्नं सुभक्ष्यं बहुवान-संयुतम् ।
अलभ्य-काश्मीरिक-केशरादिकम्, प्रदह्यतेऽग्नौ बत ! केन हेतुना ।।

आप लोग चीनी, घृत, चावल आदि खाद्य पदार्थ, कीमती मेवे, दुर्लभ काश्मीरी केशर और अन्य वस्तुओं को अग्नि में डाल रहे हैं पर यह सब कुछ किस लिए ?

अन्नं सदा प्राणवतां हि जीवनम्, अन्नं विना त्रस्यति साम्प्रतं जगत् ।
तदेव विप्रैः क्रियतेऽद्य भस्मसाद्, अहो ! विचित्रा खलु विज्ञवृत्तयः ।।

प्राणियों का जीवनाधार अन्न है। उसके अभाव से आज जन-जन पीड़ित हैं और वही अन्न आप ब्राह्मण लोग जला रहे हैं—पढ़े लिखे लोगों का यह कृत्य भी अति विचित्र है।

सदस्पतिः प्राह महाधिराज ! निषीद किञ्चित्समयं सधैर्यम् ।
स्वयं भवान् भोजनकाल एव प्रश्नोत्तरं ज्ञास्यति शीघ्रमेव ।।४।।

यज्ञचार्य ने शाँति के साथ कहा—महाराज ! थोड़ी देर धैर्य के साथ प्रतीक्षा कीजिए भोजन के समय स्वयं ही अपने इस प्रश्न का उत्तर अविलम्ब मिल जाएगा ।

सदस्पतिर्मन्त्रिणमाह सौम्य ! रहस्यमेकं करणीयमद्य ।
अन्नार्थिनां भोजनकाल एव दोष्णोर्निबध्यः खलु काष्ठदण्डः ।।५।।

यज्ञ के अधिष्ठाता पंडित ने राजमंत्री से गुप्त मन्त्रणा की, कि आज भोजन के समय एक रहस्यमय कृत्य होना आवश्यक है । वह यह कि अतिथि लोग जब भोजन करने बैठें तब उनकी दोनों भुजाओं में कोहनीं के साथ एक-एक डंडा अच्छी तरह बाँध देना चाहिए ।

तथाकृते भोजनमण्डपे जना, एकत्र यज्ञार्थविदः स्थिता बुधाः ।
अन्यत्र साधारणभोजनार्थिनः सुभक्ष्यमेषां निहितं पुरस्तदा ।।६।।

भोजन के समय एक विशिष्ट स्थान में वेदपाठी ब्राह्मण बैठे और आम जगह पर अन्य सब अतिथि बैठाए गए । अच्छे पदार्थ सब के सामने परोसे गए ।

राजा तु सर्वान् अवदत्सुभुज्यताम् यदा प्रवृत्ताः समुदं त्वरान्विताः ।
तदा कफूणीस्थितदण्डहेतुना, ग्रासः करस्थः स्वमुखे न गच्छति ।।७।।

राजा ने सब को कहा—'खाना आरम्भ कीजिए' । उत्सुकता से सबने भोजन खाना चाहा तो कोहनी पर बन्धी फट्टी के कारण हाथ मुख तक जा न पाया ।

साधारणा ये त्विह भोजनार्थिनः क्षुत्क्षामकण्ठा विवशा इव स्थिताः ।
प्रोचुर्न किञ्चिन्नृपभर्त्सनाभयात् 'भाग्यं विना पाणिगतं न भुज्यते' ।।

साधारण भोजनार्थी तो हाथ बन्धे रहने के कारण भूखे प्यासे ही बैठे रहे । राजा के भय के कारण वे कुछ भी न बोल सके । ठीक ही है, "बिना भाग्य के हाथ पर रखी हुई वस्तु भी उपभुक्त नहीं हो सकती" ।

परं यदा याज्ञिकपण्डितानामियं समस्या पुरतः स्थितासीत् ।
तदावगम्य श्रुतिवाक्यसारम् पंक्तिद्वयं चक्रुररं पुरस्तात् ।।९।।

किन्तु जब यही समस्या याज्ञिक पंडितों के सामने उपस्थित हुई तो उन्होंने वेद वाक्य के आदेशानुसार जल्दी ही आमने-सामने दो पंक्तियें बना लीं ।

सदस्पतिः प्राह किमत्र चिन्त्यते श्रुत्यर्थमालम्ब्य सुभुज्यतां द्रुतम्।
'त्वं देहि मेऽहञ्च ददामि ते' सदा, परस्परं भावयतां क्व सङ्कटम् ॥

यज्ञाचार्य ने कहा—सोच क्या रहे हैं आप लोग श्रुति वाक्य के अनुसार भोजन प्रारम्भ कीजिये। 'देहि मे ददामि ते' अर्थात्—तुम मुझे दो मैं तुम्हें देता हूं" इसका आचरण कीजिये। वस्तुत, पारस्परिक आदान-प्रदान होने पर संकट कैसे आ सकता है?

अन्योन्यसम्बन्धमवाप्य सर्वे, स्वसम्मुखस्थान् समभोजयन्ते।
तुल्येऽपि विघ्ने गुणिनः सुतृप्ता अतत्त्वविज्ञाः कृपणाः क्षुधार्ताः॥११॥

इस तरह वे एक दूसरे की सहायता करते हुए अपने-अपने सामने के व्यक्ति को खिलाने लगे। इस प्रकार समान समस्या होते हुए भी वेदपाठी ब्राह्मणों ने तृप्ति पूर्वक भोजन किया और इस रहस्य को न जानने वाले मूर्ख भूखे रहे।

तद् वीक्ष्य राजा चकितोऽब्रवीद् वचः तुल्येऽपि विघ्ने विषमं फलं कुतः।
सदस्पतिः प्राह नराधिनायक! प्रश्नस्य ते सुस्फुटमुत्तरं त्विदम् ॥१२॥

ये देखकर चकित हुए राजा ने पूछा—परिस्थिति समान होते हुए भी परिणाम विभिन्न क्यों हुआ? यज्ञाचार्य ने उत्तर दिया—राजाधिराज! यह आपके उस प्रश्न का उत्तर है।

यावन्त एते भुवि सन्ति देहिनस्ते वै सदा दैवनिबद्धपाणयः।
तस्माद् गृहे सत्स्वपि भोज्यवस्तुषु, भोक्तुं समर्था नहि दैवयन्त्रिताः॥

पृथ्वीतल पर जितने भी प्राणी हैं उनके हाथ भाग्य ने बान्ध रक्खे हैं। इसलिए भोग्य पदार्थ घर में होने के बावजूद भी वे देवनियन्त्रण के कारण खा नहीं सकते।

न लभ्यते दुग्धमहोऽद्य निर्धनैः पातुं न शक्ताः सधना रुचिं विना।
इत्थं जगत्यामुभयेऽपि दुःखिताः 'क्व भोगमाप्नोति हि दैवपीडितः'॥

गरीब व्यक्ति को दूध के दर्शन तक नहीं होते। धनवान् दूध होने पर भी रुचि के अभाव में नहीं पी सकते। देव कृपा के बिना इस प्रकार संसार में धनी और निर्धन दोनों ही दुःखी हैं। वस्तुतः दुर्भाग्यशील व्यक्ति भोग्य पदार्थों का कैसे उपभोग कर सकता है?

यथा च यज्ञार्थविदो विपश्चितः
परस्परादानविधान-विद्यया।

दत्वा परेभ्यो जगृहुस्ततः स्वयम्
सुबद्धहस्ता अपि तृप्तिभागिनः ॥१५॥

जिस प्रकार यहां प्रदर्शित उदाहरण में हाथ बन्धे रहने पर भी यज्ञार्थ के ज्ञाता उन ब्राह्मणों ने परस्पर पहिले एक दूसरे को दे लेकर पूर्ण तृप्ति प्राप्त की।

एवं हि यज्ञे मनुजाः पदार्थान्, हुत्वा समन्त्रं ददते सुरेभ्यः।
तुष्टास्तु ते भोगरुचिञ्च भोगान्, मुदा प्रयच्छन्ति हि मानवेभ्यः ॥१६॥

इसी प्रकार यज्ञ में भी जो मनुष्य मन्त्रोचरण पूर्वक देवताओं को विविध प्रकार की सामग्रियें देते हैं—हवन करते हैं, वे देवताओं से भी बदले में भोग्य पदार्थ और उपभोग की रुचि प्राप्त करते हैं।

प्रोक्तं श्रुतावग्निमुखा हि देवाः स देवदूतः स पुरोहितश्च।
तस्मिन् हुतं सद्हविरर्कदेवम्, प्रविश्य संवर्षति मर्त्यलोके ॥१७॥

श्रुतियों में वर्णन है कि देवताओं का मुख अग्नि है। वही देवदूत है और वही उनका पुरोहित है। अग्नि में डाली हुई हवि सूर्यदेव में प्रवेश करती है। और बाद में पर्जन्य के रूप में बरसती है।

अतः समाम्नातमिदं श्रुतौ स्मृतौ, यज्ञेन पूज्या मनुजैः सदासुराः।
अदत्तभोक्ता मनुजस्तु तस्करः, पुण्याः प्रशस्ता मखशिष्टभोजिनः ॥

इसलिए वेद-पुराण-स्मृतिग्रन्थों में यह प्रतिपादित किया गया है कि मानवों को यज्ञ द्वारा देवों को प्रसन्न करते रहना चाहिये। वह व्यक्ति चोर है जो देव पितर आदि को बिना दिये खाना चाहता है, यज्ञशेष अन्न खाने वाले ही प्रशंसनीय हैं और पुण्य के भागी हैं।

जगत्समग्रं खलु देवतन्त्रम्, देवाश्रितो जीवति मर्त्य एषः।
ज्योतिर्विना द्रष्टुमयं न शक्तो, वायुं विना न श्वसति क्षणार्धम् ॥१९॥

सम्पूर्ण विश्व देवाधीन है। देवों के आश्रय पर ही मानव जीवित है। सूर्य के बिना वह देख नहीं सकता, और वायु के बिना एक क्षणार्ध भी श्वांस नहीं ले सकता।

"यज्ञेन यज्ञं ह्ययजन्त देवताः" प्रजाश्च सृष्टाः समखाः स्वयम्भुवा।
यज्ञो नृलोके खलु सर्वकामधुक् यज्ञार्थकं कर्म न बन्धमूलकम् ॥२०॥

यज्ञों के द्वारा देवताओं का यजन-अर्चन करना चाहिए। ब्रह्मा ने यज्ञों के साथ ही मानव का सर्जन किया है। सम्पूर्ण कार्यों को कामधेनु की भांति पूर्ण करने वाला यज्ञ ही है। यज्ञ के लिए किया जाने वाला कार्य बन्धस्वरूप नहीं है।

ज्ञात्वा नृपो यज्ञरहस्यमेतत् सदस्पतेराशु ववन्द पादौ।
असूचयत् डिण्डिमघोषणेन "यज्ञो विधेयो निजजीवनाय ।।२१।।

यज्ञ के इस अद्भुत रहस्य को समझ कर राजा ने यज्ञाचार्य के पाँवों में साष्टाङ्ग नमन किया, और उसने डिंडिमघोषणा के साथ आदेश दिया कि प्रजाजनों को "अपने जीवन के लिए यज्ञ अवश्य करना चाहिये।" ●

फणीन्द्र चरितम्
(बाबा फरीद की कथा)

विपाट्शतुद्र्योः पुलिनेऽवसत्पुरा, सिद्धः फणीन्द्रः किल पाकपत्तने।
वदन्ति यं वै यवना महामदा बाबा-फरीदेति फकीरसंज्ञया ।।१।।

अर्थ—विपाशा और शतुद्रु के रेगिस्तान में 'पाक-पट्टण' नामक नगर में सिद्ध फणीन्द्र निवास किया करते थे। जिन की सिद्धि से प्रभावित हुए मुसलमान आज भी उन्हें 'बाबा फरीद' के नाम से याद किया करते हैं।

स वै गृहे स्वां जननीं जरार्ताम्, अन्धं तथानन्यगतिं च तातम्।
भार्यां परित्यज्य तथा सुसाध्वीं हठात्तपस्तप्तुमगादरण्यम् ।।२।।

अर्थ—उसने घर में वृद्धा माता को, अन्धे अनन्य-गति पिता को तथा सच्चरित्रा पत्नी को छोड़ कर हठात् उग्र तप करने के लिए वन को प्रस्थान किया।

अष्टाङ्गयोगेन विधूतकल्मषः तपश्चचाराद्भुतमुग्रमन्वहम्।
वर्षाभिषिक्तस्तपसा प्रतापित आकण्ठमग्नोऽप्सु तथा हिमागमे ।।३।।

अर्थ—अष्टाँग योग के अभ्यास से अपने सम्पूर्ण विकारों को दूर करके उसने वर्षा में भीगते हुए, तीक्ष्ण धूप में तपते हुए तथा शीत के दिनों में गले तक शीतल जल में बैठ कर उग्र तप किया।

स चैकदा ध्यानपरः प्रभाते, जजाप यावत्तरु-मूल-संस्थः ।
सम्भूय तावच्चटकासमूहः उच्चैस्तरां तत्र रुतं ततान ।।४।।

अर्थ—एक बार प्रातःकाल के समय ध्यानावस्थित होकर फणीन्द्र मुनि ने एक वृक्ष के नीचे जप करना प्रारम्भ किया, उसी समय कुछ चिड़ियों का समूह एकत्रित होकर वहाँ शोर करने लगा ।

कोलाहलोद्विग्नमनाः तपोधनो-
विवृद्धमन्युर्हृदयेन दूयता ।
चुक्रोश तांस्तान्विरुतान्पतत्रिणो
हं हो! न मद् बिभ्यति दुष्ट-पक्षिणः ।।५।।

अर्थ—चिड़ियों के कोलाहल से उद्विग्न होकर उन्होंने गुस्से से चिल्लाकर कहा दुष्ट पक्षियो ! क्या तुम मुझसे तनिक भी नहीं डरते ?

आस्तां तदद्यैव लभध्वमुद्धता महापराधस्य फलं सुदारुणम् ।
उन्मील्य यावद्ददृशे स्वचक्षुषा तावन्मृताः पेतुरधोमुखाः भुवि ।।६।।

अर्थ—अच्छा तो फिर लो अपने महान् अपराध का भयंकर फल भोगो, यह कहकर उन्होंने क्रोध-पूर्ण नेत्रों से ज्यों ही उन पक्षियों की ओर देखा, त्यों ही वे सब प्राणहीन होकर धरती पर आ गिरे ।

भुग्नाक्षिकूपान्स्फुटचञ्चुतुण्डान्, तथाऽन्नजग्धार्धकणान् लुठन्तः ।
सशावकान्तान्पतगान्विलोक्य, बभूव सिद्धः करुणापरीतः ।।७।।

अर्थ—उन मृत पक्षियों की आंखें खुली की खुली रह गई थीं, उनकी चोंचें बाई गई थीं, उनके मुख से अधकुचले अन्न-कण निकल रहे थे और अर्ध-मृतावस्था में धरती पर पड़े तड़प रहे थे । यही दशा उनके शावकों की भी हो रही थी । पक्षियों की यह हालत देख कर मुनि फणीन्द्र करुणा-प्लावित हो गये ।

अहो ! मयामर्ष-परिप्लुतेन दण्डोऽयमुग्रो निहितोऽण्डजेषु ।
अनुग्रहार्हाः कृपणा वराकाः तथैव संजीवत तानुवाच ।।८।।

अर्थ—वह अपने मन में सोचने लगे कि मैंने क्रोध में आकर व्यर्थ ही वेचारे पक्षियोंको इतना उग्र दण्ड दिया । यह सब तो दया के पात्र हैं यह सोचकर उन्होंने उन पक्षियों से पुनः जी जाने के लिये कहा ।

फणीन्द्रजिह्वास्फुरणक्षणे ते, चोड्डीयमानाः सरुतं विचेरुः ।
तदद्भुतं वीक्ष्य स सावलेपो मेने तदात्मानममोघवीर्यम् ॥९॥

अर्थ—सिद्ध फणीन्द्र की जिह्वा के हिलते ही वे सब के सब पक्षी जीवित हो कर पुनः उसी प्रकार चहचहाने लगे। फणीन्द्र इस चमत्कार को देखकर घमण्ड में चूर हो गया और अपने आप को अमोघ वाक् समझने लगा ।

किं मालया ? किन्नु जपेन ? पूजया ?
किं ध्यानयोगेन ? तथा समाधिना ?
वशे मदीये ह्यणिमादिसिद्धयो
विनिग्रहानुग्रहयोरहं प्रभुः ॥१०॥

अर्त—(इस प्रकार अभिमान पूर्ण होकर वह सोचने लगा कि जब) मेरे वश में सम्पूर्ण अणिमादि सिद्धियां हैं फिर अब जप, तप, ध्यान, समाधि, योग, साधना आदि की क्या आवश्यकता ? मैं जिसे चाहूं मार दूं, जिसे चाहूं जिला दूँ, यह मेरे बाँएं हाथ का खेल है ।

इत्युन्मदोऽसौ प्रविहाय चाश्रमं, स्वसिद्धिसंदर्शनजातलालसः ।
पुरं जगामाशु च पाकपत्तनम्, अहो! विचित्रं भगवद्विचेष्टितम् ॥

अर्थ—इस प्रकार अभिमानी होकर उसने आश्रम का परित्याग कर दिया और अपनी सिद्धि के प्रदर्शन की लालसा से वह अपने जन्म स्थान पाक-पट्टन गांव को चल दिया । भगवान् की लीला बड़ी ही विचित्र है ।

मार्गे तृषार्तो जलपानकाम्यया, गृहं गतो विप्रवरस्य कस्यचित् ।
आज्ञापयामास वधूं सुवासिनीं त्यक्त्वाखिलं कर्म्म जलं प्रयच्छ मे ॥

अर्थ—प्यास से व्याकुल होकर सिद्ध पानी पीने की इच्छा से एक ब्राह्मण के घर गये और गृह-वधू को सब काम छोड़ कर पानी देने का आदेश दिया ।

पतिव्रता सा निजभर्तृसेवां समाप्य सिद्धाय जलं ददाना ।
विलम्बहेतोः कुपितेन चक्षुषा विलोकिता सा चटकेव वन्या ॥१३॥

अर्थ—मार्ग में किन्तु वह पतिव्रता अपने पति की सेवा समाप्त करके सिद्ध के लिए पानी लेकर आई । देर हो जाने के कारण कुपित होकर सिद्ध ने जंगली चिड़ियों की भांति उसे भी गुस्से से देखा ।

प्रणम्य भक्त्या मुनिमाह सुव्रता क्रोधं प्रभो ! संहर दुःखदायकम् ।
न सापराधास्मि विनैव कारणं, न कल्पनीया चटका वनोद्भवा ।।१४।।

अर्थ—मुनि को क्रोधपूर्ण देखकर पतिव्रता वधू ने भक्तिपूर्वक प्रणाम किया और कहने लगी—मुनिवर ! अपने भयंकर क्रोध को रोकिये, मैं सर्वथा निर्दोष हूँ । बिना ही कारण आप मुझ से रुष्ट हो रहे हैं मुझे जंगली चिड़िया न समझें ।

अत्यद्भुतं गुप्ततमं स्ववृत्तं, श्रुत्वा फणीन्द्रश्चकितो बभूव ।
कुतोऽनया ज्ञातमिदं रहस्यं, धिग्वै वृथा-तापसमानिनं माम् ।।१५।।

अर्थ—उस गृहिणी के मुख से इस प्रकार अपना रहस्य वृतान्त सुनकर फणीन्द्र अत्यन्त चकित हुआ । (वह अपने मन में सोचने लगा) इसने किस प्रकार मेरा यह गुप्त रहस्य जान लिया । अपने तपस्वीपन पर व्यर्थ गर्व करने वाले मुझ को धिक्कार है ।

भक्त्या तच्चरणौ प्रणम्य शिरसा पप्रच्छ लज्जान्वितः
भद्रे ! ब्रूहि कथं त्वयाल्पवयसि प्राप्तेयमृद्धिः परा ।
योगिन् ! किं कथयामि भर्तृचरणैः सौभाग्यरात्र्युत्सवे
मार्ष्टुं मे नवसंगमोद्भवभयं मत्तो जलं याचितम् ।।१६।।

अर्थ—(इस प्रकार अपने मन में सोच कर) फणीन्द्र ने भक्तिपूर्वक उस सुगृहिणी की चरण वन्दना की और लज्जित होकर पूछा—भद्रे! इस छोटी-सी अवस्था में ही तुमने इतनी सिद्धि किस प्रकार प्राप्त कर ली ? गृहिणी ने उत्तर दिया—योगिन् ! क्या बताऊं, विवाह के बाद सौभाग्य रात्रि का ही मेरे पतिदेव ने मेरा संकोच दूर करने के लिए मुझसे पानी मंगाया ।

जलं गृहीत्वा समुपस्थिताहं, परं पतिर्मे ससुखं प्रसुप्तः ।
न लज्जमानाहमबोधयं तं, इत्थं समग्रा रजनी व्यतीता ।।१७।।

अर्थ—परन्तु मैं जबतक पानी लेकर आई तब तक मेरे पतिदेव सुख की नींद सो गये । लज्जा के कारण मैंने उन्हें जगाया नहीं । सारी रात इसी प्रकार (पानी हाथ में थामे खड़े खड़े) बीत गई ।

स्वयं, प्रबुद्धस्तु, पतिः प्रभाते, दृष्ट्वा स्थितां मां जलपात्रहस्ताम् ।
सगद्गदं सप्रणयं मदीयं स्वपाणिना संस्पृशति स्म भालम् ।।१८।।

अर्थ—प्रातःकाल जब पतिदेव स्वयं जागे और मुझे पानी का पात्र लिये खड़ी देखा तो वे गद्गद् होगये और प्रेमपूर्वक मेरा माथा सहलाने लगे।

तदा प्रभृत्येव पतिप्रसादात्, ऋतम्भरा मे धिषणा बभूव।
नित्यं स्वपत्युश्चरणौ भजामि तत्सेवया सर्वमिदं स्मरामि ॥१९॥

अर्थ— बस! उसी क्षण से पतिदेव की कृपा से मेरी बुद्धि ऋतम्भरा (सत्य को जानने वाली) हो गई। मैं नित्य अपने पति की सेवा करती हूँ और सेवा के प्रभाव से ही मैं आपका यह गुप्त रहस्य जान गई।

क्व ते पतिर्यस्य कृपेयमीदृशी, भद्रे! दिदृक्षामि तमुग्रतेजसम्।
योगिन्निदानीं गृह एव तिष्ठति पादप्रवेशेण पुनीहि मेऽङ्गणम् ॥२०॥

अर्थ—(इतना सुनकर फणीन्द्र बोले)—भद्रे! तुम्हारा पति कहाँ है? जिस की कृपा इतनी सिद्धि देने वाली है, उस महा तेजस्वी के मैं दर्शन करना चाहता हूं। गृहिणी ने कहा—योगिराज! वे इस समय घर में ही हैं, आइये! पधारिये! अपने चरणों से मेरे आंगन को पवित्र कीजिये!

गत्वा सद्मनि मातृ-तात-चरणौ-संवाहयन्तं मुदा
तत्कुष्ठक्षत-पूयशोणित-मल-प्रक्षालने व्यापृतम्।
दृष्ट्वा भूसुर-बालकं मुनिवरो जज्ञे रहस्यं परं
लज्जा-नम्रमुखः प्रणम्य प्रययौ त्यक्तं पुनः स्वं गृहम् ॥२१॥

अर्थ—घर में प्रवेश करके सिद्ध फणीन्द्र ने देखा कि एक युवक अपने माता पिता के पाँव दबा रहा है और उनके कोढ़ के घावों से बहतीं मवाद और खून की पपड़ियों को अपने हाथ से साफ कर रहा है। उसे देखकर फणीन्द्र सब रहस्य जान गये। वे बड़े लज्जित हुये। उस पतिव्रता को और उसके पितृ-भक्त पति को प्रणाम करके वे अपने छोड़े हुए घर को वापिस लौट आए।

अहो! मदीया महती कदर्यता सन्त्यज्य हा धिक् पितरौ गतो वनम्।
तयोर्हि पादेषु लुठन्ति सिद्धयो, विहाय गंगां मरुषु प्रधावितः ॥२२॥

अर्थ—(सिद्ध फणीन्द्र सोचने लगे) अहो! मेरी कितनी अज्ञानता थी जो मैं माता पिता को छोड़ कर वन में चला गया था। मुझे धिक्कार है। माता पिता के चरणों में ही तो सम्पूर्ण सिद्धियां लोटती रहती हैं। गंगा को छोड़ कर मैं निस्संदेह रेगिस्तान में ही भटक रहा था।

अर्थार्थीचार्थमाप्नुयात्

(हरि अनाथ के नाथ)

गङ्गातटे कर्णपुरे पुराभवत् पित्रा विहीनो द्विजबाल उद्धवः ।
स एकदाऽध्यापकवर्य्यंचोदितोऽलिखत्पलाशं जनकाय शिक्षणे ।।

गङ्गा के किनारे बसे हुए कानपुर नामक नगर में उद्धव नाम का एक पितृहीन बालक रहता था । एक बार विद्यालय में अध्ययन करते हुए अभ्यास बोध के लिए उसे अध्यापक महोदय ने पिता के नाम फीस माफी पत्र लिखने को कहा ।

पप्रच्छ बालो जननीं क्व मे पिता किं पत्र संकेतपदे लिखाम्यहम् ।
सा दुःखिता सान्त्वयती स्वबालकम् उवाच वैकुण्ठपुरेऽस्ति ते पिता ।।

उसने [घर आकर] माता से पूछा—'मेरे पिताजी कहाँ हैं ? पत्र पर उनका क्या पता लिखूं ? दुःखातुर माता ने बालक को सान्त्वना देते हुए उत्तर दिया कि—तुम्हारे पिताजी वैकुण्ठपुरी में हैं ।

वैकुण्ठसंकेतयुतं निजं दलम्, यथाक्रमं संपुटितं स उद्धवः ।
पत्रालयीये पिटके समुन्नते, प्रक्षेप्तुमैच्छत्करमुन्नयन् स्वकम् ।।३।।

उद्धव पूरी तरह से पत्र लिख कर वैकुण्ठ का पता लिखे हुए उस पत्र को पत्र पिटक (लेटरबक्स) में डालने गया । वह छोटा था, लेटरबक्स ऊँचे पर था, वह एड़ी पर खड़ा हो ऊँचा हाथ करके पत्र डालने का प्रयत्न करने लगा ।

तथा यतन्तं तमपश्यदातुरम्, कश्चिद् धनी तत्स्वयमाददे दलम् ।
तत्पत्रसंकेतमयं यदृच्छया, पठन् पठन् विस्मितमानसोऽभवत् ।

उद्धव को इस प्रकार प्रयत्न करते हुए किसी धनी व्यक्ति ने देख लिया, जो स्वयं भी पत्र डालने आया था । अचानक उसकी दृष्टि पत्र के पते पर गई । पढ़ते-पढ़ते वह आश्चर्य चकित हो गया ।

समुत्सुकः किं लिखितं कले दले स्वपत्रमुत्सृज्य शिशुर्विसर्जितः ।
पपाठ यावद् गृहमेत्य तद्दलम् तावत्स हृष्टः पुलकाञ्चितोऽभवत् ।।

'इस पत्र में क्या लिखा है' धनिक की यह उत्सुकता बढ़ चली । उसने अपना पत्र डालकर बालक उद्धव को बहकाते हुए घर भेज दिया और स्वयं अपनी भव्य अट्टालिका में आकर जब बालक के उस पत्र को पढ़ा तो वह हर्ष से गद्गद् होगया ।

पत्रेऽङ्कितं श्रीयुतपितृपादाः ! नमो नमस्ते चरणाबु नित्यम् ।
तवात्मजोऽहं भवतो वियुक्तो धृतिं न विन्दामि लभे न शर्म ॥६॥

पत्र में लिखा था—"पूज्य श्री पितृचरणों में अनेकशः प्रणाम स्वीकार हो। आपका तनुज मैं आप से बिछड़ा हुआ हूं। इस लिए न मुझे शान्ति मिल रही है और ना ही सुख !

सुस्नामि नित्यञ्च हरिं स्मरामि विद्यालये पाठमहं पठामि ।
न दुष्टबालानुगतो भ्रमामि कथं कृपाभाजनतां न यामि ॥७॥

मैं प्रातःकाल उठकर भलीभांति स्नान करता हूं। भगवत्स्मरणानन्तर विद्यालय में अध्ययन करता हूं। बुरे लड़कों की कुसंगति से बचता हूं, फिर भी आपका कृपा-पात्र नहीं बन पाता ! क्यों ?

वैकुण्ठनाथोऽसि मयेति संश्रुतम् कथं ममाम्बा मलिनाम्बरा ततः।
जना अनाथोयमिति ब्रुवन्ति माम् तथापि भो तात! कथं न लज्जसे ?

मैंने सुना है आप वैकुण्ठपुर के स्वामी हैं। फिर मेरी माता के जीर्णशीर्ण मलिन वस्त्र क्यों ? लोग मुझे अनाथ कहते हैं तब भी क्या आप को शर्म नहीं आती पिता जी !

मम क्षमार्हा ह्यपराधसंहतिः प्रेष्याणि शीघ्रं बहुमोदकानि ।
पत्रोत्तरं देयमरं दयानिधे ! भवत्पदाम्भोजषडङ्घ्रिरुद्धवः ॥६॥

आशा है कि आप मेरे सम्पूर्ण अपराधों को क्षमा करके जल्दी से पत्र का उत्तर देंगे और पर्याप्त मात्रा में लड्डू भेजना न भूलेंगे। 'आप के चरणों का चञ्चरीक—उद्धव" [लिख कर वह पत्र समाप्त किया गया था।]

संकेतलेखेऽस्य दलस्य-विन्दकः श्रीयुक्तवैकुण्ठपुराधिनायकः ।
क्षीरार्णवः श्रीमदनन्तमण्डलम् प्रसिद्धवैकुण्ठपुरे कृतालयः ॥१०॥

पत्र प्राप्त करने वाले व्यक्ति का पता लिखा था—''श्री वैकुण्ठपुराधिपति, स्थान-क्षीरसागर, मण्डल श्री मदनन्त [शेष भगवान्] (प्रसिद्ध वैकुण्ठपुर)।

दलं पठित्वा धनिकः शुशोच ह वृथा व्यतीतं मम सर्वजीवनम् ।
न चेह सन्तानसुखाप्तिरर्जिता नामुत्र नारायणलाभसंभवः ॥

पूरा पत्र पढ़ने के उपरांत धनिक सोचने लगा "मेरा सम्पूर्ण जीवन व्यर्थ ही बीत गया। मैं न तो इस लोक में सन्तान का सुख प्राप्त कर सका, और न परलोक में भगवत् प्राप्ति की सम्भावना है [क्योंकि धर्म कार्य में मैंने तन-मन-धन कुछ भी नहीं लगाया।]

मत्तोऽधिको बुद्धियुतस्त्वयं शिशुः यस्तातभावेन भजत्यहो ! हरिम् ।
उन्मीलिते मे नयनेऽद्य सर्वथा बालेन सत्यं गुरुरूपिणाऽमुना ॥१२॥

मेरे से अधिक बुद्धिमान् तो यह बालक है जो पितृरूप में भगवान् का भजन करता है। आज मेरी आंखें इस बालक ने खोल दी हैं। यह सचमुच मेरा गुरु है।'

अद्यैव तस्मादिममेव बालकम् स्त्रीकृत्य पंचायतने स्वदत्तकम् ।
तीर्थेष्वटन् साधुषु संस्मरन् हरिम् कृतार्थयाम्यैहिकशेषजीवनम् ॥

इस लिए मैं आज ही इस बालक को पंचायत में अपना दत्तक पुत्र स्वीकार करके सम्पूर्ण घर बार इसे सौंप कर, तीर्थों में भ्रमण से तथा सन्तों की संगति से अपने शेष ऐहिक जीवन को सफल करूंगा।

तथैव कृत्वा धनिकोत्तमस्तु हरिं भजन् मुक्तिपदं प्रयातः ।
वयस्कतां प्राप्य तथोद्धवोऽपि धनेन वैकुण्ठगृहं चकार ॥१६॥

अपने निश्चय के अनुसार धनिक ने ऐसा करके भगवद्-भजन करते हुए मुक्ति को प्राप्त किया। उद्धव ने भी वयस्क हो जाने पर सम्पत्ति से वैकुण्ठनाथ का भव्य मन्दिर बनाया।

अद्यापि श्री कर्णपुरे प्रसिद्धो वैकुण्ठनामाऽच्युतदिव्यदेशः ।
यत्रार्चनं नारदपाञ्चरात्र-विधानमालम्ब्य भवत्यजस्रम् ॥१५॥

आज भी कर्णपुर में भगवान् का "वैकुण्ठ" नामक भव्य मन्दिर अपनी छटा दिखाते हुए विद्यमान है। जहां प्रतिदिन नारदीय पांचरात्र के विधानानुसार अर्चना आदि सम्पन्न होती है।

को मूर्खः ?

(मूर्ख कौन है ?)

पुरा गुणज्ञेन नृपोत्तमेन विचिन्वता साधु परीक्ष्य ते ते ।
सुरत्नभूताः गुणिनः सभायाम् बहुप्रयत्नैः किल संगृहीताः ।।१।।

पहले जमाने में गुणों का आदर करने वाले एक राजा ने अच्छी तरह परीक्षा करके बहुत से गुणीजन रत्नों के रूप में अपनी सभा में एकत्रित कर रक्खे थे ।

अचिन्तयद् देवपतेः सभायाम् एको गुरुर्वै कविरेक एव ।
एकः पुनस्तत्र कलाधरोऽपि बहुत्वमेषां सदसीह मेऽस्ति ।।२।।

उस राजा ने सोचा देवराज इन्द्र की सभा में एक ही गुरु (बृहस्पति) हैं, कवि (शुक्राचार्य) भी एक है और कलाधर (चन्द्रमा) भी दूसरा नहीं परन्तु मेरी सभा में अनेक गुरु (विद्वान्) कवि (कविता करने वाले) और कलाधर (कलाकार) हैं ।

निर्वाचिताः सन्ति यथाऽत्र विज्ञाः तथा भवेन्मूर्खतमोऽपि कश्चित् ।
तदा सभा मेऽन्वयतश्च पूर्णा भवेत्प्रपूर्णा व्यतिरेकतोऽपि ।।३।।

यहां मेरी सभा में चुने हुए महापंडित विद्वान् हैं । ऐसा ही कोई एक महामूर्ख भी नमूने के तौर पर होना चाहिए । तब मेरी सभा दोनों प्रकार के चोटी के रत्नों से पूर्ण हो जायगी ।

स मन्त्रिणं प्राह परीक्ष्य सम्यक् नेयस्त्वया मूर्खतमोऽत्र कश्चित् ।
सर्वोत्तमाः सन्ति यथेह विज्ञा आदर्शभूतोऽस्तु तथात्र मूर्खः ।।४।।

राजा ने मंत्री को आदेश दिया—किसी महामूर्ख को अच्छी तरह परीक्षा करके लाना चाहिए । मैं चाहता हूं—जिस प्रकार मेरी सभा में सर्वोत्तम पंडित विद्यमान हैं ऐसे ही कोई सर्वोच्च कोटि का मूर्खराज होना चाहिए ।

व्यज्ञापयद् डिण्डिमघोषपूर्वम् स मन्त्रिवर्य्यो निजसर्वराज्ये ।
राज्ञो महावश्यकता सभायाम् मूर्खोत्तमो ह्येव सुवांछनीयः ।।५।।

मंत्री ने सारे राज्य में ढिंढोरा पिटवा दिया, और मुनादी में कहा गया कि राजाधिराज को अपने दरबार में रखने के लिए एक उच्च कोटि के मूर्ख की शीघ्र आवश्यकता है ।

पत्रेषु केचिन्नृपपारिषद्ये सहर्षमावश्यकतां पठित्वा ।
वाक्कीलका द्राक्तर-प्राड्विपाकाः स्वप्रार्थनापत्रभरं ददुस्ते ॥६॥

ये सूचना पत्रों में भी पढ़ कर बड़े-बड़े वकील बैरिस्टरों ने भी बड़ी प्रसन्नता के साथ प्रार्थना-पत्र भेजे ।

एकोऽलिखद्यद्यपि दुर्भगत्वात् दुर्विश्वविद्यालयलब्धविद्यः ।
तथाऽप्यहं मूर्खतमोऽस्मि राजन् ! सुसाक्षिणौ मे खलु चन्द्रसूर्यौ ॥

एक ग्रेजुएट ने लिखा—हे राजन् ! यद्यपि मैंने दुर्भाग्य से एक दुर्विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त की है फिर भी मैं महामूर्ख हूं, मेरे साक्षी चान्द और सूरज हैं ।

परोऽलिखन्मत्सदृशो न मूर्खो भवेन्न भूतो न भवेच्च भव्यः ।
यस्यापि वाक्कीलकतां प्रयातः. तस्यैव पक्षस्य पराजयोऽभूत् ॥८॥

एक वकील ने लिखा—'प्रभो ! मेरे समान मूर्ख सम्पूर्ण विश्व में न हुआ न है, और न होगा । मैं जिस का भी वकील बना वही मुकदमे में हारा ।

अन्योऽलिखद् द्राक्तर-नामधेयो राजन् महामूर्खतमोऽस्मि लोके ।
यं यं स्पृशे रुग्णमहो ! स एव यमालयं गच्छति पश्य साक्ष्यम् ॥

एक डाक्टर ने लिखा—महामहिम ! मेरा नाम 'जल्दबाज' है । मैं उच्चकोटि का मूर्खराज हूं । मैंने जिस रोगी को भी हाथ लगाया वही यमपुर सिधार गया । आप प्रत्यक्ष देख सकते हैं ।

लिलेख कश्चिच्च महामहीन्द्र ! विमूढदासस्य च दासदासः ।
सम्प्राप्तनानापदवीकवन्द्यः मूर्खाग्रणीर्विस्मृतसर्वशास्त्रः ॥१०॥

किसी अन्य ने प्रार्थनापत्र में लिखा—'महाराज ! मैं मूर्खाधमों का भी दासानुदास हूं । यद्यपि मैं अनेक उपाधियों से विभूपित हूं फिर भी शास्त्र का एक अक्षर मात्र मुझे स्मरण नहीं ।

लिलेख पत्रेऽह्यपरो 'न केवलम् मूर्खोऽस्म्यहं भूप ! मदन्वये सदा ।
मूर्खाधमाः पितृपितामहादयोऽभवन्नतो मूर्खतमः कुलक्रमात् ॥११॥

एक प्रार्थी ने लिखा—'श्रीमान्, मैं ही केवल मूर्ख नहीं हूं बल्कि मेरे पूर्वज पितृ पितामहादि भी अपने समय के मूर्ख-शिरोमणि थे । अतः मैं तो वंश परम्परागत उच्च कोटि का महामूर्ख हूं ।

उवाच मन्त्री नृपते ! त्वया तु मूर्खस्य चैकस्य कृतोऽभिलाषः ।
पश्येममावेदनपत्रसङ्घम् सर्वाः प्रजा मूर्खपदं प्रयाताः ॥१२॥

मन्त्री ने राजा से निवेदन किया—महाराज ! आप तो एक मूर्ख की इच्छा कर रहे थे यह प्रार्थना पत्रों का ढेर देखिये ! सारी प्रजा ही मूर्ख बनने के प्रयत्न में है ।

जगाद राजा भुवि सभ्यधूर्ता नानाविधाः सन्ति हि काकपुत्राः ।
पाखण्डिनस्तेऽवसरं विलोक्य भवन्ति सद्यः कृकलासरूपाः ॥१३॥

राजा ने कहा—संसार में सभ्य धूर्तों की कमी नहीं है । ये सब पाखण्डी हैं 'काकपुत्र' हैं । अवसर के अनुसार 'गिरगिट' की तरह रंग बदल लेते हैं ।

यैर्युक्तियुक्तं लिखितं नु पत्रम् मंद्भृत्यताप्राप्तिकृते मनुष्यैः ।
मूर्खा न ते किन्तु सुकूटवाचो दण्ड्याः प्रजालुण्ठनतत्परास्ते ॥१४॥

जिन लोगों ने मेरी नौकरी पाने के लिए अपनी मूर्खता को सिद्ध करते हुए ऐसे युक्तियुक्त प्रार्थना पत्र लिखे, वे मूर्ख नहीं अपितु जालसाज हैं, धूर्त हैं, प्रजा को भी लूटते हैं, वे तो दण्डनीय हैं ।

जानाति न स्वात्महिताहितं यः, तस्मात्त्वया साधु परीक्ष्य मन्त्रिन् ।
अन्वेषणीयः प्रथितो हि मूर्खः स एव मूर्खोत्तम धारणेयम् ॥१५॥

जो अपना स्वयं का भी हिताहित (बुरा भला) नहीं जानता ऐसे मूर्ख की परीक्षा करनी चाहिए । और उसे ही ढूंढ कर लाने का आप प्रयत्न करें: वही सर्वोत्तम मूर्ख हो सकता है । मेरा ऐसा विश्वास है ।

भ्रमन् चिरं मन्त्रिवरः पदे पदे लेभे न मूर्खं भुवि सर्वथाजडम् ।
गतो निराशां विचरंस्तदैकदा ददर्श चैकं पशुपालमद्भुतम् ॥१६॥

मन्त्री ने दुनिया का कोना-कोना छान मारा परन्तु बिल्कुल वज्र-मूर्ख कोई व्यक्ति न मिल सका । वह निराश हुआ घूम रहा था कि अचानक उसकी दृष्टि एक विचित्र व्यक्ति पर पड़ी ।

योऽश्वत्थशाखामधिरूढ आस्ते उष्ट्रा अधस्ताच्च चरन्ति तस्य ।
या चैव शाखाऽऽसनतां प्रयाता तामेव मूले नितरां छिनत्ति ॥१७॥

वह पशुपालक एक पीपल की ऊंची टहनी पर बैठा हुआ था और उसके ऊंट नीचे चर रहे थे । जिस शाखा पर वह आसीन था उसी को कुल्हाड़ी से काटने में व्यस्त था ।

विलोक्य मन्त्री स्वनृपोक्तलक्षणैर्युक्तं महामूर्खमिमं तुतोष ह ।
नूनं ह्ययं वेत्ति न मृत्युभीमपि यस्यां स्थितस्तां हि लुनाति निर्भयः ।।

राजा द्वारा बताये गए लक्षणों से युक्त इस व्यक्ति को देखकर मन्त्री अत्यन्त हर्षित हुआ । उसने सोचा कि यह व्यक्ति मृत्यु-जीवन आदि के ज्ञान से शून्य है । जिस शाखा पर बैठा है उसे ही निर्भय होकर काट रहा है [इसे ज्ञान ही नहीं कि टहनी कटकर गिरते ही मैं नीचे गिरूंगा और मर जाऊंगा ।]

'भो भोः ! किं कुरुषे ?' 'न पश्यसि दिने शाखां छिनद्मि त्विमाम्'
'छिन्नायां तव पात एव नियतो' 'ज्ञातं हि पूर्वं मया ।'
आरोहे ह्यतिदुर्गमोऽस्ति नितरां वृक्षो महास्कन्धवान्
छिन्नेऽहं सुपथा श्रमेण रहितो यास्ये सशाखो भुवम् ।।१९।।

मन्त्री ने कहा—"अरे ! तुम यह क्या कर रहे हो ?' मूर्ख ने उत्तर दिया—'क्या दिन में भी दिखाई नहीं पड़ता कि इस शाखा को काट रहा हूं !' आश्चर्य से मन्त्री ने समझाया—'इसके कटते ही तुम भी नीचे गिर पड़ोगे पता है ?" उत्तर मिला—'मैं भी जानता हूं यह बात ! यह इतना विशाल ऊंचा वृक्ष है और इसके ये बड़े-बड़े टहने ! इससे उतरना मेरे बस की बात नहीं । इस शाखा के कटकर भूमि पर गिरते ही मैं भी इसके साथ बिना किसी परिश्रम के सरलता से नीचे आ जाऊंगा ।

श्रुत्वाऽद्भुतान्येव तु तद्-वचांसि प्रसन्नचित्तः खलु मंत्रिवर्यः ।
बहुप्रयत्नैस्तमु वृक्षतो द्राक् उतार्य राज्ञः पुरतः स नीतः ।।२०।।

उसके विचित्र वार्तालाप से मंत्री मन ही मन बड़ा प्रसन्न हुआ, और अनेक उपायों से प्रयत्न पूर्वक उसे नीचे उतार कर जल्दी से राजा के सामने उपस्थित कर दिया ।

राजापि पप्रच्छ यदेव तत्तद् जगाद मूर्खो नितरां विचित्रम् ।
क्रीड़ामृगत्वं च निरूप्य तस्मै ददौ मुदा भृत्यक-ताम्रपट्टम् ।।२१।।

राजा ने भी उसे जो जो पूछा उसका मूर्ख ने अजीब ही उत्तर दिया । तब

प्रसन्न होकर राजा ने उसे 'मन बहलाव का साधन' मान लिया और नौकरी का पट्टा दे दिया।

यदा यदा कार्य्यभरेण राजा क्लिष्टः संकामयते विनोदम्।
तदा तदाऽऽहूय च मूर्खमेनम् प्रश्नोत्तराभ्यां मुदमेति सद्यः ॥२२॥

जिस समय भी राजा राज्यभार से थक कर मनोरंजन चाहता तत्काल इसी मूर्ख को बुलाकर बातचीत द्वारा दिल बहला लेता था।

गृहे वने वा विजयाभियाने प्रायो नृपो गच्छति यत्र यत्र।
स तत्र तत्रैव विनोदपात्रं मूर्खाधिराजं नयति स्म सार्धम् ॥२३॥

राजा प्रायः घर में, वन में, या विजय यात्रा में जहाँ भी जाता वहीं मनोरञ्जनार्थ इस मूर्ख को भी अवश्य ले जाता था।

एवं तयोः संवदतोः परस्परम्, गतोऽप्रतर्क्यो बहुभाग आयुषः।
श्रान्तोऽथ रुग्णः कृशतां गतस्तथा क्रमेण यातो मरणान्तिकां दशाम्।

इसी प्रकार मनबहलाव करते-करते दोनों की—राजा और मूर्ख की आयु का काफी भाग बिना किसी बाधा के व्यतीत होगया। अवस्थाजन्य शिथिलता के कारण राजा को बिमारी ने घेर लिया, और वह बिमारी बढ़ने से मरणासन्न होगया।

भूविष्टरे सम्पतितोऽथ दर्शं, दर्शं स्वभूतिं प्ररुरोद खिन्नः।
किमद्य सर्वं प्रविहाय हा धिक्! नूनं गमिष्यामि हि रिक्तहस्तः ॥

भूमिशैय्या पर लेटा हुआ राजा अपनी अपार धनराशि को देखकर रुदन करता और दुःखी होता विलाप कर रहा था। क्या आज इस अतुल्न सम्पत्ति वैभव विलास को छोड़ कर मुझे खाली हाथ जाना होगा?

दैवात्तदा मूर्खतमं स्मृतिं गतमाकारयद् दूतमुखेन सत्वरम्।
अहो! कदाचिद् रुदतस्तदुक्तिभिर्मनः प्रसीदेदिति निष्फलाशया ॥

अचानक राजा को उस मूर्ख का स्मरण हुआ। दूत द्वारा उसको तत्काल यह सोच कर बुला भेजा कि शायद उसकी मनोरंजक बातों से इस महा दुःख के समय कुछ सान्त्वना मिल सके। पर यह व्यर्थ की आशा थी।

रिक्तां जडो राजसभां विलोक्य पृच्छन् प्रविष्टः किल मृत्युगेहम्।
भूमौ प्रसुप्तं तु निरीक्ष्य भूपम्, चमत्कृतोऽसौ चकितः शुशोच ।७२।

सभा को निर्जन देखकर वह मूर्ख-शिरोमणि पूछता २ वहां पहुंच गया जहां राजा मरणासन्न-भूमि पर लेटा हुआ था। इस प्रकार भूमि पर राजा को देख वह चौंका, चकित सा हुआ सोचने लगा।

प्रासादहर्म्योत्तमकोष्ठिकासु च, पर्य्यङ्कसिंहासनसंदिकासनः ।
हा हन्त ! भूमौ हि विधूसरे गृहे रोरुद्यमानः पतितोऽद्य किं नृपः ॥

विशाल भवन, अट्टालिकाओं और कोठियों में पलङ्ग सिंहासन दिव्य कोचों पर बैठने वाला ये राजा हाय ! आज धूल भरी धरणी पर रोता हुआ क्यों पड़ा है ?

पप्रच्छ किं मल्लकलाऽद्य शिक्ष्यते ? सूर्यप्रणामोऽथ शवासनं तथा ।,
तदुक्तिमाकर्ण्य हसन्नृपोऽब्रवीत् मूर्खाधिराजाद्य मया तु गम्यते ॥

उसने राजा से पूछा—'महाराज ! क्या आज पहलवानी सीख रहे हो ? या सूर्य प्रणाम शवासन आदि कर रहे हो ? उसकी बात पर हंसते हुए राजा ने उत्तर दिया— 'अरे मूर्खाधिराज ! आज मैं जा रहा हूं।'

'कं देशं यासि राजन् ?' 'नहि विदितमिदं' 'जात एव प्रबन्धः ?'
'नाभूत्स्तोकोऽपि','मार्गे किमु सुपरिचिताः?' 'हन्त! मेऽदृष्टपूर्वाः।'
'किं वाऽदूरं पदं तत् ?' 'नवनवतिमिताः क्रोशकोट्यो विलंघ्याः'
श्रावं श्रावं स्वचित्ते चकित इव जड़ोऽचिन्तयद् हा ! हतोऽयम् ॥

मूर्ख और राजा में फिर इस प्रकार बातचीत हुई—'हे राजन् ! आप किस देश की यात्रा कर रहे हैं ?' 'मुझे कुछ ज्ञान नहीं', 'क्या रास्ते की व्यवस्था पूरी हो चुकी ?' नहीं, कुछ भी नहीं' 'तो क्या इस मार्ग में आप के संबन्धी सुपरिचित विद्यमान हैं ?' 'नहीं, मैंने आज तक वहां के किसी व्यक्ति को देखा तक भी नहीं, 'क्या गन्तव्य स्थान अति निकट है ? 'नहीं, सुना जाता है वह तो निन्यानवे करोड़ कोश से भी अधिक दूर है,' यह सब सुनकर मूर्ख आश्चर्यचकित हो गया और मनमें विचारने लगा—'हा ! खेद है कि ऐसी यात्रा में तो राजा का सर्वनाश हो जायेगा।

'सार्धं सेनाः क्रियत्यो ?' 'नहि चरणाचरः कोऽपि कान्यस्य गाथा'
'का का भार्यास्ति नेया ?' प्रतिकृतिरपि हा ! तत्र नेतुं न शक्या ।'
'आहूतोऽद्य त्वयाऽहं किमु मम गमनं निश्चितं स्वेन सार्धम् ?'
'एकाकी सर्वथाऽहं जड़मतिकृपण ! प्रैमि भो ! रिक्तपाणिः ॥'

मूर्ख ने पूछा—'आपके साथ में सेना कितनी है ?' एक पैदल भी साथ नहीं होगा, औरों का तो क्या कहना' 'आपके साथ कौन-कौन सी महारानी जायेंगीं ?' 'दुःख है कि अपनी छाया तक भी वहाँ नहीं ले जाई जा सकती !' 'क्या आपके साथ मुझ सेवक का जाना निश्चित हुआ है ।' 'अरे ! बेवकूफ, आज तो मैं अकेला ही खाली हाथ जा रहा हूं ।'

यात्राप्रसंगेषु पुरा सदा नृपः प्रागेव संस्कारयति स्म सत्पथाम् ।
पाथेयभारान् पुरतः पथिष्वयम् अपेक्षमाणान् न्यदधाद् पदे पदे ।।

अब तक तो राजा की यात्रा के प्रोग्राम महीनों पहले निश्चित हो जाते थे । सम्पूर्ण मार्ग निष्कण्टक साफ स्वच्छ होता । मार्ग में खाने का पूरा २ प्रबन्ध इसके पहुंचने से पूर्व ही हो जाता था और आवश्यकतानुसार प्रत्येक वस्तु इसके संकेत पर तैयार मिलती थी ।

वदत्ययं दूरतमः प्रदेशो मार्गे न पाथेयकसुप्रबन्धः ।
अदृष्टपूर्वेषु जनेषु वास—एकाक्यहो ! यास्यति रिक्तपाणिः ।।३३।।

राजा कह रहा था—"वह स्थान बहुत दूर है—रास्ते में भोजन आदि का प्रबंध भी नहीं, अब से पूर्व न देखे व्यक्तियों के साथ रहना और अकेले ही खाली हाथ जाना होगा" बड़ी विचित्र बात है !

विचिन्त्य सर्वं निजनामपट्टम् निस्सार्य भूपाय स दातुमैच्छत् ।
ज्ञातं नृपालेन बिभेति दीनो नृपे मृते नंक्ष्यति भृत्यवृत्तिः ।।३४।।

जब सब बातें पूछ कर उस मूर्ख ने अपने नाम का जागीरी पट्टा निकाला और राजा के हाथ में देना चाहा तो राजा ने समझा कि बेचारा डर रहा है कि कभी राजा के मरने के साथ ही मेरी जागीर समाप्त न हो जाय ।

राजाऽवदद् रक्ष न तेऽस्तु चिन्ता त्वज्जीवने वृत्तिहरो न कोऽपि ।
स प्राह राजन् ! स्वकरे गृहाण ब्रवीम्यहं गुप्ततमं रहस्यम् ।।३५।।

राजा ने उसे सान्त्वना देते हुए कहा—'इस पट्टे को तुम अपने पास रक्खो चिन्ता मत करो तुम्हारी नौकरी कोई नहीं छीनेगा । उस मूर्ख ने उत्तर दिया—'महाराज ! आप इसे जरा अपने हाथ में तो थामिये, मैं इस सम्बन्ध में एक रहस्य भरी गुप्त बात आप से निवेदन करता हूं ।

अदृष्टपूर्वं स्वजनैर्विहीनं
सुदूरमध्वानमहो यियासुः ।
चक्रे न सज्जां यदणीयसीं हा !
कोऽन्यस्त्वदन्यो भुवि मूर्खराजः ।।

आश्चर्य है जिस मार्ग को आपने कभी देखा नहीं, जहां आपके कोई परिचित स्वजन भी नहीं हैं और है भी वह मार्ग बहुत लम्बा परन्तु वहां जाने के लिए आपने तैयारी कुछ भी नहीं की । अतः आप से अधिक महा मूर्ख और कौन हो सकता है !

तस्मादिदं मूर्खतमस्य भूषणं
त्वमेव कण्ठे कुरु हेमकल्पितम् ।
निशम्य मूर्खस्य बचः सुदारुणं
महीपतिः क्लेशकषायितोऽभवत् ।।

इस लिये 'मूर्खाधिराज' पद के लिये दिये गये इस सुवर्णपदक (गोल्ड मैडल) को अब आप ही धारण करें । मूर्ख के इस प्रकार के बचनों से राजा को वस्तु तत्त्व का ज्ञान हो जाने से बड़ा पश्चात्ताप पूर्ण कष्ट हुआ ।

देवार्चन-व्रत-तपो-निगमागमोक्त-
दानादिशून्यमवगत्य वृथा निजायुः ।
श्रीकान्त-पाद-युगले विनिधाय चित्तम्
चक्रे स्वजन्मसफलं वितरन् धनानि ।।

राजा को भान हुआ कि जीवन में वेदादि शास्त्र प्रोक्त, देवाचर्न, व्रत, तप दान आदि कुछ भी नहीं करने से मेरी आयु व्यर्थ ही गई । अतः अब अन्तकाल में उसने अन्तःकरण को श्रीमन्नारायण के चरणारविन्द में लगाकर खूब दान धर्मादि आचरण द्वारा अपने जन्म को सफल बनाया ।

* * *

एकोजनस्तारयते कुटुम्बम्

(कुल तारिणी बहूरानी)

आसीत्पुरा कोटिधनाधिनाथो लोके जगत्-श्रेष्ठिवरः प्रसिद्धः ।
कार्पण्यदोषेण स वित्तयक्षो विण्-मक्षिका-चोष्य-प्रथां प्रयातः ।।१।।

किसी नगर में कोई करोड़ों रुपये की सम्पत्ति वाला 'जगत् सेठ' रहता था। वह इतना अधिक धन होने पर भी अपनी कंजूस वृत्ति के कारण 'मक्खी चूस' नाम से प्रसिद्ध था ।

तद्गेहिनी तत्सदृशी गुणाढ्या स सर्पनाथो यदि साऽहिनाथा ।
तुलाधृतौ कोऽस्ति तयोर्गरीयो ज्ञातुं न शक्यः क्रमशो गुरुत्वे ।।२।।

उसकी स्त्री भी उसके समान ही गुणवती थी । कृपणता में वह भी कम नहीं थी । यदि सेठ 'सांपनाथ' था तो वह 'नागनाथ' थी । उन दोनों को तराजू पर तोल कर भी यह नहीं कहा जा सकता था कि कौन कम है ?

चेन्मक्षिका तस्य घृते पतेद्यदा तदैव निष्पीड्य न केवलं घृतम् ।
स मक्षिकासारमपि स्वभाजने निश्चोतयत्येव न लज्जते भृशम् ।।

यदि उसके घी में मक्खी गिर जाती तो वह उसे निचोड़-निचोड़ कर केवल घी ही वापिस नहीं निकालता था बल्कि अपनी थाली में उस मक्खी का रस भी निचोड़ने में शर्म का अनुभव नहीं करता था ।

पुत्रोऽपि तादृग् यमु कृष्णसर्पात् प्रासूत गोधा ह्युभयोर्विषेण ।
गौधेयतुल्यः खलु येन दष्टो न याचते वार्म्रियते विलेऽस्मिन् ।।४।।

उनका लड़का भी मानो काले नाग से गोधा (गोह) में उत्पन्न होने के कारण दोनों के विष से युक्त महाविषैला विषखपरा था । जिस का काटा हुआ व्यक्ति पानी भी नहीं मांग सकता बल्कि बिल पर ही प्राण त्याग देता है ।

न विप्रपादोदककर्दमाङ्कितम् न शास्त्रवेदध्वनिगर्जितं तथा ।
स्वाहास्वधाकारविहीनमस्य हि, श्मशानतुल्यं ह्यभवन्निकेतनम् ।।

ब्राह्मणों के प्रक्षालित चरण जल से उसका घर पवित्र नहीं था । वेद शास्त्रों

की मधुर ध्वनि की गर्जना नहीं थी। और 'स्वाहा • स्वधा' के याज्ञिक कृत्यों के न होने के कारण विशाल भी उसका भवन श्मशान तुल्य बना हुआ था।

दैवात्तु तत्पुत्रवधूर्विवाहिता समागता प्रोच्चकुलीनकन्यका।
यत्पितृगेहे सततं भवन्ति हि सद्धर्मकृत्यानि पवित्रपर्वसु ॥६॥

सौभाग्यवश उस सेठ की पुत्रवधू किसी सत्कुल की कुलीन कन्या आ गई। जिसके पितृ-गृह में समय २ पर धार्मिक पर्वों के उपलक्ष्य में धर्मकृत्य होते रहते थे।

पत्युर्गृहे सा प्रसमीक्ष्य तद्दशामचिन्तयद् नात्र शुभावहो विधिः।
तथापि यत्नैर्बहुभिः शनैः शनैः सुशिक्षणीयाः मयका कुटुम्बिनः ॥

पति के परिवार में जब उस नववधू ने ये दुर्दशा देखी तो सोचने लगी कि कल्याण का मार्ग नहीं अपना रहे हैं। तब भी मुझे शनैः-शनैः प्रयत्न करके इन कुटुम्बियों को शिक्षा देनी चाहिए।

अथैकदाऽऽर्यां प्रणिपत्य सादरम् जगाद मातस्तुलसी ह्यपेक्ष्यते।
तत्पादपः स्याद्यदि नो गृहेऽनघे! तत्सेचनात्स्वर्णमयं गृहं भवेत् ॥

एक दिन वह अपनी सास से प्रार्थना करने लगी कि—माताजी! तुलसी का पौधा मंगा दीजिये। जिस घर में प्रतिदिन वह सींचा जाता है उस घर को वह सोने से भर देता है।

न प्रार्थ्नेयं बहुद्रव्यसाध्या कुतोऽपि नेयः खलुपादपोऽयम्।
विचार्य वृद्धा निजभृत्यहस्तादानीय वृक्षं प्रददौ स्नुषायै ॥९॥

"यह प्रार्थना बिना रुपया पैसा के खर्च किये ही सिद्ध हो सकता है कहीं से भी पौधा मंगाया जा सकता है" इस विचार के अनुसार सास ने नौकर के हाथ एक पौधा मंगवा कर पुत्रवधू को दे दिमा।

सा तु क्षुपं मन्दिरमेव मत्वा चकार नीराजनमस्य नित्यम्।
पाखण्डबुद्ध्या स तु श्रेष्ठिपुत्र उपाहसत्तामयि! देवदासि!

नववधू तुलसी के पौधे को ही मन्दिर-स्वरूप मान कर प्रतिदिन आरती आदि क्रिया करती थी। परन्तु उसका पति इस कृत्य को पाखण्ड कहकर उस साध्वी को 'देवदासी' शब्द से चिढ़ाने का प्रयत्न करता था।

सा प्राह भक्त्या 'जय देव देव !' स सानुनास्यं 'जँय देंव देवँ ।
तद्धीरवृत्त्या कतिभिश्च मासैः सुनिष्ठुरो भागवतो बभूव ।।११।।

वह श्रद्धापूर्वक 'जय देव देव' कहती तो सेठ का लड़का 'अपने स्वर को अनुनासिक बना कर 'जँय देंवदेंव' कहता था । परन्तु पत्नी की निश्छलता और धैर्य वृत्ति से प्रभावित होकर वह कुछ ही महीनों में धार्मिक बन गया ।

शुद्धे तु पत्यौ जननीं तदीयाम् शुद्धां विधातुं चकमे तु साध्वी ।
अथैकदा श्रावणमास्यमायाम् श्वश्रूँ प्रसन्नामिदमाह देवी ।।१२।।

पति के शुद्ध होने पर उस साध्वी ने अपनी सास को धार्मिक करने का विचार स्थिर किया । एक दिन श्रावणमास की अमावस्या के दिन उसने प्रसन्न मुद्रा में बैठी हुई अपनी सास से कहा—

गङ्गोपकण्ठे नगरे निवासः सर्वे जनाः स्नान्ति हि पर्वकाले ।
गङ्गा तु तुष्टा प्रददाति वित्तम् गच्छाव आवां यदि रोचतेऽम्ब !

माताजी ! आज अमावस्या का दिन है । गङ्गा के किनारे ही शहर में हम रहते हैं । सब लोग पर्व के पुण्यकाल में स्नान करते हैं । गङ्गा प्रसन्न होकर धन सम्पत्ति प्रदान करती है । यदि आपकी रुचि हो तो हम भी चलें ।

पप्रच्छ वृद्धा स्नपने कियान् व्ययः जानाति कार्पण्यरुजं स्नुषाऽस्याः ।
अतः समाश्वास्य जगाद पूज्ये ! न वै व्ययः काणवराटकस्य ।।

बुढ़िया ने पूछा 'स्नान में क्या खर्च होगा' । वधू उसके कृपणतारोग (कंजूसपन की बिमारी) को जानती थी । अतः आश्वासन दिलाती हुई बोली—जी ! उसमें तो कानी कौढ़ी भी खर्च नहीं होगी ।

आश्वासिता सा प्रययौ स्नुषान्विता पट्वी वधूश्चिन्तयति स्म मानसे ।
तत्रैव नूनं स्नपनं तु युज्यते न याचकानां खलु यत्र सम्भवः ।।१५।।

पर्याप्त आश्वासन दिलाने के उपरांत सास अपनी पुत्रवधू के साथ गङ्गा स्नान को चल पड़ी । चतुर वधू सोच रही थी कि जहाँ पर भिखारी न हों ऐसे एकांत स्थान में स्नान करना उपयुक्त होगा ।

गत्वा च पद्भ्यां विमलेऽजने तटे स्नाताऽद्य वृद्धा प्रथमं स्वजीवने ।
ब्रह्मद्रवस्पर्शविधूतकल्मषा समाप मोदानुभवं निजात्मनि ।।१६।।

पैदल ही गङ्गा के एक एकाँत से तट पर पहुंच कर वृद्धा ने अपने जीवन में प्रथम बार पाप-नाशिनी गङ्गा के निर्मल जल में स्नान कियां। ब्रह्म जल के स्पर्श से उसके पाप-ताप को शान्ति मिली और उसने हृदय में आनन्द का अनुभव किया।

ततः प्रभृत्येव च पर्वपर्वणि स्नाति स्वयं सा जरठा तपस्विनी।
क्रमाद् बभूवाव्ययधर्मचारिणी चकार चिन्तां श्वशुरस्य केवलम्॥

तबसे प्रत्येक पर्व-त्योहार के अवसर पर वृद्धा तपस्वनी-सास स्नान करने लगी। और इसी क्रम से वह बिना खर्च करने की प्रवृत्तिवाली धार्मिक बन गई। तब बहू ने अपने ससुर की चिन्ता की।

अथैकदा कोऽप्यतिथिर्महात्मा द्वाःस्थो ययाचे किल देहि भिक्षाम्।
पट्वी वधूस्तद् विफलां प्रतीक्षाम् रोद्धुं समेत्याह च रिक्तहस्ता॥

एक दिन दरवाजे पर कोई याचक महात्मा भीख लेने के लिए आया। 'यह साधु व्यर्थ में ही प्रतीक्षा न करे' यह विचार कर चतुर वधू खाली हाथ ही आकर उसे कहने लगी।

'अस्मिन् गेहे न रीतिर्', 'गृहगतमनुजाः किं पुनर्भक्षयन्ति ?'
'पूर्वं पक्वं हि दण्डिन्!' 'कथय निज वयः?' षोडशाब्दाऽस्मि नूनम्।
'स्वामी ते?' द्वित्रिवर्ष' स्तव पतिजननी? श्वो हि षण्मासिकी स्यात्,
'पत्युस्तातो?' न जातो, विदित-गृहगतिः प्रोच्य शं भिक्षुकोऽगात्॥

'इस घर में ये रीति नहीं है,' साधु ने पूछा—'घर के आदमी फिर क्या खाते हैं ?' 'स्वामीजी ! वे तो पहले पकाया हुआ ही खाते हैं,' 'तुम्हारी आयु क्या है ? 'सोलह वर्ष,' 'पति की आयु ? 'दो या तीन साल', 'तुम्हारी सास की अवस्था ? 'वह कल को केवल छः महीने की होगी,' ससुर ? 'अभी पैदा ही नहीं हुए', इस प्रकार की बात चीत से स्वामी ने घर की स्थिति को समझ लिया। और वह 'कल्याण हो' कह कर चला गया।

श्वश्रूस्तयोः संवदतोस्तु वार्ताम् श्रुत्वाऽतिकोपेन विदग्धदेहा।
पतिं सुमेतं किल भोजनार्थम् संवीज्य संवीज्य जगाद रुष्टा॥२०॥

सास, साधु और बहू की यह बातचीत सुनकर आग बबूला हो गई। पति जब

भोजन करने आये तो पंखा झलते-झलते उसने क्रोध में ये सारी बातें सुनाई और बोली—

नेयं वधूः किन्तु गृहस्य नाशिनी,
याऽभ्यागताग्रे स्वकुलं विनिन्दति ।
का नाऽत्र रीतिर्धनिनां हि सद्मनि,
कदा पुनः पर्य्युषितं हि भुज्यते ?

यह बहू नहीं है कभी घर का नाश करने वाली है, जो दरवाजे पर आये हुए अतिथियों और साधुओं से भी घर की झूठी निन्दा करती है। हम सेठों के घर में क्या रीति नहीं है ? हम कब 'बासी' भोजन करते हैं ?

स्वयं तु जाता खलु षोडशाब्दा किं द्वित्रिवर्षो हि सुतो युवा मे ?
षाण्मासिकीं मामवदद् विवृद्धाम् हा हा ! त्वमद्यापि न जात एव ॥

स्वयं तो यह सोलह वर्ष की बन गई और मेरे जवान लड़के को दो-तीन ही साल का कहती है। मुझ बूढ़ी स्त्री की आयु इसके कथनानुसार छः महीने की है और हाय ! तुम अभी तक पैदा ही नहीं हुए !

पृष्टा वधूश्चिन्तयतिस्म मानसे
प्रोक्तं न चाद्यावधि तातसन्निधौ ।
तथापि यावन्न हि वादसंगतिम्-
वक्ष्ये न तावत् श्वशुरोद्धृतिर्भवेत् ॥२३॥

ससुर ने जब बहू से ये सब बातें पूछी तब तो उसने मन में विचार किया कि—'मैं आजतक पिताजी (ससुर) के सामने बोली नहीं परन्तु जब तक इस प्रसंग का वास्तविक भाव ठीक नहीं बताया जायगा तब तक ससुर जी का उद्धार न हो सकेगा।

सा सादरं तस्य निपत्य पादयोर्विनम्रभावेन कृतावगुण्ठना ।
जगाद मे धर्म्मपिता भवान् प्रभो ! सत्यं हि सर्वं कथितं ममार्यया ॥

वह बड़ी नम्रता के साथ ससुर के पाँवों में गिर कर प्रणाम करने लगी। घूंघट से उसका मुख ढका हुआ था। विनय पूर्ण स्वर में बोली—आप मेरे धर्म पिता हैं। माता जी (सास) ने जो कुछ भी आप से कहा है वह सब सत्य है।

विरुद्धवाचां कथमत्र सङ्गतिर्विभावनीयं हि रहस्यमद्भुतम् ।
न ग्राम्यवादं प्रवदन्ति दण्डिनः परोक्षवादानुगतास्तदुक्तयः ।।२५।।

इस तरह की विरोधी बातों की परम्परा क्या सङ्गति है—यह रहस्य समझने की बात है । दण्डी स्वामी, सन्त-साधु संसारिक विषयों की चर्चा नहीं करते बल्कि उनकी तो प्रत्येक उक्ति परोक्ष (पारलौकिक) से सम्बद्ध होती है ।

भवद्-गृहे नास्ति हि दानपद्धतिः स्वपूर्वजन्मार्जितमेव भुज्यते ।
स्वजन्मकालादहमस्मि धर्मिणी पतिस्तु मत्संगतितोऽभवद्वरः ।।

आपके घर में दान की पद्धति (रीति) नहीं है । पूर्व जन्म के संचित पुण्यों का फल से इस जन्म में खाया जा रहा है । मैं अपने जन्मकाल से ही धार्मिक हूं और मेरे पतिदेव मेरी संगति से अन्यून तीन वर्ष से धार्मिक बने हैं ।

भक्ता प्रभोः श्रावणमासतोऽम्बिका
भवद्-गतिं वेत्ति भवान् स्वयं पुनः ।
स्वाऽजातहेतुं नहि पृष्टवान्वधूम्
अनूक्तमप्यूहति पण्डितो जनः ।।२७।।

माता जी (सास) इस श्रावण मास से ही भगवान् की भक्ता बनी हैं । अपने विषय में आप स्वयं जानते हैं । सेठ ने अपने उत्पन्न न होने का कारण पूछा ही नहीं । क्योंकि "बुद्धिमान् को इशारा ही काफी होता है ।"

प्रबोधितोऽसौ स्नुषया जगाद देयाऽतिथिभ्यश्चणकस्य मुष्टिः ।
पट्वी वधूस्तद्दिनतः प्रसन्नाऽदाद् भर्जितं सच्चणकान्नमेव ।।२८।।

पुत्रवधू की ज्ञानपूर्ण बातों से सेठ को कुछ बोध सा हुआ और उसने आज्ञा दी कि प्रत्येक याचक को एक मुठ्ठी भुने हुए चने की देनी चाहिए । अपनी योजना को कुछ-कुछ सफल होते देख बहू प्रसन्न हो गई तथा प्रतिदिन भुने हुए चने बांटने लगी ।

वर्षे व्यतीते समचिन्तयत्स्नुषा लोकान्तरे किं चणको हि भुज्यते ।
कार्याद्य पूर्णा श्वशुरोद्धृतिर्मया सूदा निषिद्धा न पचन्तु भोजनम् ।।

एक वर्ष व्यतीत होने पर बहू ने सोचा, क्या परलोक में केवल चने ही खाए जाते हैं ? आज ससुर जी का पूर्ण रूप से ही उद्धार करना चाहिए । इस निश्चय के

अनुसार उसने रसोइयों को मना कर दिया कि आज भोजन मत बनाओ।

मध्याह्नकाले जरठो धनेशः क्षुत्क्षामकण्ठोऽत्तुमयं निषण्णः।
धृतं पुरस्तात् चणकैः प्रपूर्णम् वस्त्रावृतं राजतशुभ्रपात्रम् ॥६०॥

मध्याह्न के समय भूखा-प्यासा बूढ़ा 'जगत सेठ' जब भोजन करने बैठा तो उसके सामने कपड़े से ढका हुआ एक चाँदी का पात्र चनों से भरकर रख दिया।

चक्रे धनी यावदनावृतं तत् ददर्श तावच्चणकान्नपूर्णम्।
बुभुक्षितः क्रुद्ध उवाच खिन्नो दीपालयो निसृत एव गेहात् ॥३१॥

सेठ ने कपड़ा हटा कर जब चनों से भरा पात्र देखा तो एक दम भूख के कारण क्रोधित और दुःखी होकर वह चिल्लाया—'क्या घर का दीवाला' निकल गया है ?"

स्नुषा प्रणम्याह कृतं मयैतत् 'एषोऽस्त्यदन्तस्य ममोपहासः'
'माभून्नु मत्तो हि गुरोरवज्ञा' 'सहैतुकं वै चणकान्नखाद्यम्' ॥३२॥

पुत्रवधू प्रणाम करके बोली—'ये मैंने किया है', सेठ ने कहा—'क्या दाँत रहित मुझ बूढ़े का उपहास करती हो ? बहू बोली नहीं ! गुरुजनों की अवज्ञा मुझ से न होगी। (बहू ने नम्र शब्दों में निवेदन किया)—'ये चने का भोजन किसी विशेष कारण वश ही मैंने दिया है।

चिरात्प्रदत्तं चणकान्नमात्रम् तत्पूर्णकोशः परलोकलभ्यः।
भवेदकस्माद्धि न तत्र कष्टम् अतोऽशनाभ्यास इहैव युक्तः ॥३३॥

बहुत समय से चने का दान करने के कारण परलोक में प्राप्त हो सकने योग्य पर्याप्त चने का भंडार जमा हो गया है। पर वहाँ ऐक दम चने खाने में कष्ट न हो अतः यहीं से खाने का अभ्यास करना उचित है।

वधूक्तितः सुप्त इव प्रबुद्धः स कोटिमल्लो नितरां प्रहृष्टः।
ततः प्रभृत्येव हि सर्वदानम् कृत्वा तु लोकद्वयसाधकोऽभूत् ॥३४॥

पुत्रवधू की बात सुनकर सेठ 'करोड़ीमल' सोते से जाग उठे और अत्यन्त प्रसन्न हुए। तब से याचकों को प्रत्येक प्रकार की वस्तु दान करके उन्होंने इहलोक और परलोक को सिद्ध कर लिया।

स वै धनी तस्य च सैव भामिनी, स एव पुत्रोऽद्य जनैः प्रशस्यते ।
पुण्येषु लोकेष्वपि गीयते यशो दानं हि लोकद्वयसाधने क्षमम् ।।३५।।

आज उसी [कुछ समय पूर्व के कजूस 'मक्खीचूस'] 'करोड़ीमल' की, उसकी स्त्री की और पुत्र की प्रत्येक व्यक्ति प्रशंसा करता है। पुण्य लोकों में भी उनका यशोगान होता है। वस्तुतः दान द्वारा ऐहिक और आमुष्मिक ऋद्धि-सिद्धि प्राप्त होते हैं।

गुरोः कृपा सर्वसुखाप्तिहेतुः

(गुरूपदिष्ट यत्न से ही सुख मिलता है)

स्नानार्थिनो कापि नृपस्य पत्नी विमुच्य माणिक्यमयं स्वहारम् ।
ररक्ष यावत् खलु नागदन्ते तावत्तमादाय खगोऽपयातः ।।१।।

एक बार किसी राजा की रानी स्नान करने को तैयार हुई। उसने अपना अमूल्य मणिमाणिक्य से बना हार खूंटी पर लटका दिया। तत्काल एक पक्षी उसे लेकर उड़ चला।

हा हा ! कृतं भृत्यजनैस्तथापि क्षणेन लीनो विततेऽम्बरेऽसौ ।
रुरोद्यमाना नृपमाह राज्ञी जीवामि हारेण विना न राजन् ।।२।।

नौकरों ने काफी 'हो हो' की आवाज की, परन्तु क्षण भर में ही पक्षी आँखों से ओझल हो गया। तब रानी ने रोकर राजा से कहा—राजन् ! यदि हार न मिला तो मैं अपने प्राण खो दूंगी।

चिन्तातुरो डिण्डिमघोषपूर्वकम् असूचयत् सर्वजनान् स भूपतिः ।
योऽन्विष्य हारं जन आनयिष्यति स एव नूनं भवितार्धराज्यभाक् ।।

चिन्तित राजा ने ढिंढोरा पिटवाकर घोषणा की 'जो भी व्यक्ति हार ढूंढकर लाएगा, वह आधे राज्य का अधिकारी बना दिया जायेगा।'

श्रुत्वा जना भूपतिघोषणां तदा नृपार्धराज्यस्य महाभिलाषिणः ।
सर्वाणि कार्याणि विहाय सोद्यमाः हारं समन्वेष्टुमितस्ततो गताः ।।

राजा की इस घोषणा को सुनते ही आधे राज्य के लोभ से नगर का प्रत्येक व्यक्ति सम्पूर्ण कार्यों को छोड़ कर हार ढूंढ़ने के लिए इधर-उधर निकल पड़ा।

अत्रान्तरे तत्र पुरे कृतालयो महादरिद्रः खलु काष्ठविक्रयी।
प्रत्यासरन् काष्ठभरेण पीड़ितो वने विशश्राम सरोऽन्तिके क्वचित्॥

इस बीच में उसी नगर का रहने का एक निर्धन लकड़हारा जङ्गल से लकड़ियों का भार सिर पर रक्खे चला आ रहा था। वह काफी थका हुआ था, अतः एक तालाब के किनारे विश्राम करने के लिए बैठ गया।

स राजधानीमलदूषिताम्भसि ह्रदोपकण्ठे तरुमूलसंस्थितः।
शुशोच दुःखेन तृषा क्षुधार्दितः धृत्वा निजे वामकरे स्वमस्तकम्॥

भूखा-प्यासा, दीन लकड़हारा नगर से आने वाले गन्दे नाले के जल से भरे उस तालाब के किनारे पर खड़े वृक्ष के नीचे बैठा था, और सिर पर बायाँ हाथ रक्खे हुए चिन्ता की मुद्रा में कुछ अनमना सा सोच रहा था।

स मार्जयन् दक्षिणपाणिना निजान् प्रस्वेदबिन्दून् श्रमभारनिःसृतान्।
यदृच्छयाऽपश्यदयं सरोजले तमेवहारं पतितं समुज्वलम्॥७॥

दाँए हाथ से उसने पसीने की बूंदें पोंछी जो परिश्रम के कारण मस्तक पर पा गई थीं। अचानक बैठे-बैठे उसकी नजर तालाव के जल में चमकते हुए रानी के उसी अमूल्य हार पर पडी।

नृपार्धराज्याप्तिसुखप्रकल्पनातरङ्गिते तस्य समुद्रमानसे।
तदाऽवशं हारहिमांशुदर्शनात् सद्यो महाज्वार इवागतोऽधिकः॥

चमचमाती चान्दनी की छटा से भूषित निशा में पूर्णिमा के निष्कलङ्क पूर्ण चन्द्र को देख कर सागर में जैसे तूफान आ गया—ऐसे ही राजा के आधे सम्राज्य की कल्पना मात्र से ही लकड़हारे का मानस-सागर हार चन्द्र को देख हिलोरे लेने लगा।

स स्विन्नगात्रोऽपि च कच्चरेऽम्भसि हारं गृहीतुं सहसा मुदाऽपतत्।
अन्वेषमाणो बहुयत्नपूर्वकम् न लब्धवान् दृष्टचरं नु! हारकम्॥

लकड़हारे का शरीर पसीने से लथपथ था। तालाब का जल भी कीचड़ और मलादि के कारण गन्दला दूषित था, पर वह कुछ भी परवाह न करके हर्षा

तिरेक के कारण हार के प्राप्त करने के लिए जल में कूद पड़ा। बहुत ढूंढा खूब खोजा पर आश्चर्य ! हार न मिल सका।

प्राणावरोधेन विलुप्तसंज्ञः सरोजलव्याप्तमलाभिलिप्तः ।
श्वपन् नृपार्धासनलुब्धकोऽयम् तडागकोणेऽर्धमृतः पपात ॥

भूख-प्यास से पीड़ित, परिश्रम से क्लाँत, पसीना आते रहने पर भी जल में कूद पड़ने के कारण, मलमूत्र से सने शरीर की दुर्गन्धि से युक्त लकड़हारा [जब जी तोड़ खोज करने पर भी हार न पा सका तो श्रमाधिक्य के कारण] मूर्च्छित अधमरा सा हो कर आधे राज्य की तृष्णा मन में लिए हुए ही किनारे पर गिर पड़ा।

संप्राप्तसंज्ञः समयेन भूयसा शुशोच नूनं किमुदिष्टविभ्रमः ।
स्वप्नेन किंवा क्षणिकेन वञ्चितः क्व कच्चरेऽस्मिन्मणिहारसम्भवः ॥

काफी देर के बाद जब वह होश में आया तो फिर शोक करने लगा – यह क्या भाग्य की विडम्बना है ? अवश्य क्षणिक स्वप्न में ही मैं सब कुछ देख रहा था ! इस कीचड़ भरे तालाब में वह हार कहां सम्भव हो सकता है !

स्थिरे जले तत्र पुनः स हारो विलोकितस्तेन विमृज्य नेत्रे ।
विश्वस्य भूयोऽप्यपतत्तड़ागे कृते प्रयत्नेऽपि न हारलाभः ॥१२॥

जल के स्थिर हो जाने पर हार पुनः दिखाई पड़ा। अच्छी तरह आँखें पोंछ कर देखा—हार ही था। तत्काल कूद कर ढूंढने लगा। पर पर्याप्त खोज के उपरांत भी हार मिल न सका।

तटस्थितेनैष विलोक्यते पुरः कृते प्रयत्ने तु कथं न लभ्यते ?
अन्वेषणे वाऽप्यवलोकने भ्रम एतन्न निश्चेतुमलं बभूव सः ॥१३॥

किनारे पर बैठने पर हार बिल्कुल सामने दिखाई पड़ता है, परन्तु इतना प्रयत्न करने पर भी प्राप्त नहीं हो पाता। मेरे ढूंढ़ने में भ्रम है, या देखने में, लकड़हारा इस बात का निर्णय ही न कर पाया।

तथा यतन्तं तमवेक्ष्य दूरात् अन्योऽपि तत्रैत्य तथा चकार ।
अन्योऽपि कश्चिद् ह्यपरोऽपि कश्चित् एवं तडागे बहवः समेताः ॥

उसको इस प्रकार प्रयत्न करते हुए देख कर दूर से देखने वाला एक और

व्यक्ति आकर ढूंढ़ने लगा । उन दोनों को देख तीसरा, चौथा, पाँचवा, इस तरह तालाब में बहुत से व्यक्ति हार ढूंढ़ने लगे ।

“अहो ! तडागे पतितोऽस्ति हार:” उदन्त एषो नगरे व्यजृम्भत ।
सर्वे स्वकार्याणि विहाय लोका जग्मुरहं पूर्वमहन्नु पूर्वम् ।।१५।।

‘अरे ! हार तालाब में पड़ा है’ यह समाचार नगर में बिजली की तरह क्षण भर में फैल गया, और सारे नगर निवासी अहमहमिकया (मैं पहले मैं पहले) तालाब की ओर दौड़ चले ।

अर्धाभिषिक्ता अपि चार्धभुक्ता: केचित्तथा कर्णविलम्बिसूत्रा: ।
अन्ये जना अर्धविमुण्डिता वा त्वरान्विता वेगयुता अधावन् ।।१६।।

कुछ लोग आधा स्नान छोड़ कर, कुछ आधा भोजन बीच में परित्याग कर ही भग चले । किसी का यज्ञोपवीत कान पर ही चढ़ा था—पर भागे जा रहा था, किन्हीं की आधी ही हजामत हुई थी—पर आधे राज्य के चक्कर में वेतहाशा दौड़ पड़ा ।

तान् धावमानानवलोक्य भूपतिर्ज्ञात्वा रहस्यं त्वरित: स्वयं ययौ ।
न कोऽपि लुण्ठेन्मम राज्यशासनम् स्वहारमेनं स्वयमुद्धराम्यहम् ।।

इतने व्यक्तियों को बेतहाशा दौड़ते हुए देख कर राजा ने सम्पूर्ण रहस्य का पता चलाया । ‘मेरे इस आधे राज्य को अन्य कोई न पाये, मैं स्वयं ढूंढता हूं’ यह विचार कर वह भी शीघ्रता से वहाँ पहुंचा ।

स्रक्चन्दनालंकृतिभूषणोचितो भूपोऽपि तस्मिन् मलदूषिते ह्रदे ।
विलोक्य हारं सहसाऽपतज्जले लोभान्वित: किं न करोति किल्बिषम् ।।

फूलों की सुन्दर मालाओं और देदीप्यमान आभूषणों से अलंकृत होने वाले सुन्दर शरीर वाला भी राजा हार को देखते ही मलमूत्र-कीचड़ से भरे उस सरोवर में कूद पड़ा । ठीक ही है ऐसा कौन पाप हैं जिसे लोभी व्यक्ति नहीं करता ।

अन्विष्य चान्विष्य स रिक्तपाणिस्त्रपाभिभूतोऽपि पुन: पुनर्वा ।
मज्जत्यहोऽस्पृश्यतमे तड़ागे प्रभोर्हि मायाऽतितरामजेया ।।

बार २ ढूंढ़कर भी न मिलने के कारण खाली हाथों लज्जित हुवा राजा इस अतीव गन्दे तालाब में पुन:-पुन: गोते लगा रहा था । ईश्वर की माया बहुत ही अजीब है ।

देवात्ततस्तत्र च नारदो मुनिः
दवर्श चागत्य जनाकुलं ह्रदम् ।
पप्रच्छ लोकान् सहसाऽतिविस्मितः
किन्नाम तीर्थं किमु पर्व साम्प्रतम् ॥२०॥

भाग्यवश देवर्षि नारद वहां आ निकले, और वहाँ की इस विचित्र स्थिति को देखकर जनता से पूछने लगे—अरे ! भाई यह कौन सा पवित्र तीर्थ है ? आज कौन शुभ पर्व है । जो आप सब इस में स्नान कर रहे हैं !

मया चतुर्धामसु दर्शनं कृतम्
अनेकदा दिव्यपुरीर्विलोकिताः ।
स्नातोऽस्मि तीर्थेषु नदीषु चाप्यहम्
अदृष्टपूर्वं प्रतिभाति मे त्विदम् ॥२१॥

मैंने चारों धामों के दर्शन किए हैं, सुन्दर सप्त पुरियें भी मैं देख चुका हूं कई बार, प्रायः सब पवित्र तीर्थों और नदियों में स्नान भी अनेक बार किया है किन्तु यह तीर्थ-स्थान तो मुझे नया ही प्रतीत होता है, जिसे मैं आज तक न देख सका ।

प्रणम्य राजा मुनिमाह देव !
न तीर्थमेतन्न च पर्वकालः ।
हारो मदीयः पतितो जलेऽस्मिन्
विलोक्यते किन्तु न तत्र लभ्यते ॥२२॥

राजा ने मुनिराज को प्रणाम करके सविनय उत्तर दिया—हे देवर्षे ! ये कोई तीर्थ स्थान नहीं है—और न ही आज कोई पर्व है । मेरी रानी का हार इस में गिरा हुआ है जो दीखता तो है किन्तु मिल नहीं रहा ।

दृष्ट्वा विदित्वा निखिलं रहस्यम् श्रीनारदः सर्वजनानुवाच ।
गुरूपदेशेन विना न सिद्धिर्विभावयन्त्वत्र महानुभावाः ॥२३॥

स्वयं सब कुछ देखने और समझने के उपरांत नारद जी सब लोगों से कहा सज्जनो ! आपको ज्ञान होना चाहिए कि गुरु के उपदेश के बिना इस कार्य में सफलता नहीं मिल सकती ।

कर्णे गृहीत्वा मुखमुन्नयन्नसावदर्शयत् शाखिनि पक्षिनीडम् ।
तत्रैव हारञ्च विलम्बितं तं जले तु हारप्रतिबिम्बमात्रम् ।।२४।।

नारद ने राजा का कान पकड़ कर मुख ऊपर की और किया और पेड़ की शाखा पर पक्षी का घोंसला दिखाया। वहीं पर वह हार भी लटक रहा था। जल में तो केवल हार का प्रतिबिम्ब ही दीख पड़ रहा था।

यथात्र राजा जनताश्च सर्वा हारं त्विमं राज्यसुखाप्तिमूलम् ।
अन्वेषयन्तीह जले भ्रमेण तथैव मूढा विषयेषु सौख्यम् ।।२५।।

जिस प्रकार राजा और प्रजा के व्यक्ति हार को राज्य सुख की प्राप्ति का मूल कारण समझ कर भ्रान्तिवश जल में ढूंढ़ते। इसी तरह सांसारिक प्राणी भी विषय भोगों (के गन्दे-मल-कीचड़ वाले वासना रूप जल) में ही वास्तविक सौख्य खोजने का प्रयास करते हैं।

पदे पदे तत्र निराशतां गता अहो ! प्रवर्तन्त इहैव ते पुनः ।
विधिप्रपञ्चे समले सरोवरे क्व चात्र नित्यस्य सुखस्य सम्भवः ।।

सांसारिक विषय-छल प्रपंचों के जलपूर्ण सरोवर में बार-बार ढूंढ़कर असफल होने के बावजूद भी पुनः पुनः वहीं खोजने में प्रवृत्त होते हैं भला विषयों में नित्य-स्थायी-ब्रह्मानन्द-रस की अनुभूति कैसे हो सकती है ?

दैवाद्यदि स्याद् गुरुदेवलाभः, स चेत् प्रपञ्चाभिमुखं स्वशिष्यम् ।
ईशोन्मुखं स्वेन बलेन कुर्यात् जीवस्तदा स्यान्नितरां कृतार्थः ।।२७।।

सौभाग्य से यदि सद्गुरु की प्राप्ति हो जाए और वह प्रपंचों में फंसे अपने शिष्य को बलपूर्वक ईश्वरोन्मुख करदे तो जीव वस्तुतः कृतार्थ हो जाता है।

सत्यं जयति नानृतम्

(सत्य का बोल बाला झूठे का मुँह काला)

आसीत्पुरा 'शाहजहान' नामा दिल्लीश्वरो न्यायपरो नरेशः ।
यद्-राज्य-काले मृगपा अजाश्च तुल्यप्रघट्टेऽन्वपिबन् जलानि ॥

पहले जमाने में शाहज़हाँ नाम का एक बड़ा प्रतापी बादशाह था जो दिल्ली का अधिपति और बड़ा न्यायशील था । उसके राज्य में शेर तथा बकरी एक घाट पर इकट्ठे पानी पिया करते थे ।

स चैकदा संसदि पारिषद्यान् इस्लाम-भक्तानथ हिन्दू-मुख्यान् ।
पप्रच्छ प्रेम्णा वदताशु सभ्याः ! पतिव्रता कस्य गृहेऽस्ति भार्या ॥

एक दिन उसने अपने दरबार में बैठे मुसलमान और हिन्दु प्रमुखों से बड़े स्नेह के साथ पूछा—आप बतायें कि किस के घर में पतिव्रता स्त्री है ?

तूष्णीं स्थितेषु प्रमुखेषु राजसु, तथा नवाबेष्वपि मौनवत्सु ।
बुन्दीनरेशो यशवन्त-नामको नत्वाऽवदन् मे गृहिणी पतिव्रता ॥

इस प्रश्न को सुन कर जब सम्पूर्ण राजा-महाराजा और नवाब-मीर मौन बैठे थे तब बून्दी के नरेश यशवन्तसिंह ने मर्यादा के साथ नमस्कार करके निवेदन किया कि हजूर ! 'मेरी पत्नी पतिव्रता है' ।

निशम्य दिल्लीपतिराह तुष्टो धन्योऽसि धन्योऽसि च राजपुत्र !
धन्या वयं यत्सदसि प्रधाना भवादृशः सन्ति कुलीन-सभ्याः ॥

यह सुनते ही दिल्लीपति प्रसन्न होकर बोला—राजपुत्र ! धन्य हो, तुम बड़े धन्यवदार्ह हो ! हम भी धन्य हैं—जिसकी सभा में आप जैसे कुलीन सभ्य व्यक्ति प्रमुख पद पर हैं।

श्रुत्वाऽवदद् रोषपरिस्फुटोष्ठः स शेरखानोऽन्यतमः सदस्यः ।
श्रीमन्! मृषाऽयं वदतीह हिन्दुः परीक्षणीया भवताऽस्य भार्या ॥५॥

यह सुनकर शेरखान नाम का एक प्रमुख दरबारी क्रोध के कारण होंठ चबाता हुआ कहने लगा – हजूर ! यह हिन्दू झूठ बोलता है ! आप को इसकी स्त्री की परीक्षा करवानी चाहिए ।

अयं विधेयः खलु दृष्टि-बद्धो देयश्च मह्यं समयः सभेयाः ।
परीक्ष्य सर्वं बहु-वादिनोऽस्य मिथ्योक्तिमेनां खलु साधयामि ॥

इसको नजरबन्द कर दीजिए, और मुझे कुछ समय मिले तो मैं बेकार की बकवास करने वाले इसकी बात को झूठ साबित करके दिखा सकता हूं ।

तथाकृते दुर्जनशेरखानः, कात्यायनीं कुट्टणिकान्तु काञ्चित् ।
आहूय वित्तैः परितोष्य चैनामशिक्षयत्कूटशतं कुबुद्धिः ॥७॥

दुष्ट प्रकृति शेरखान के कथनानुसार बादशाह ने यशवन्तसिंह को नजरबन्द कर लिया और उसको समय दिया गया। तब शेरखान ने किसी अधेड़ उमर की कुटनी को बुलाया । खूब धन देकर उसे प्रसन्न किया और फिर दुष्ट ने उसको षडयन्त्र की सैंकड़ों बातें सिखाई ।

बुन्दीगढ़ं गच्छ सुगुप्तमन्त्रा बद्धोऽत्र राजा यशवन्तसिंहः ।
तद्धर्मपत्नीं बहुभिः प्रयत्नैः प्रतार्य नेयं गृहगुप्ततत्त्वम् ॥८॥

तुम चुपचाप बून्दी के किले में जाओ । राजा यशवन्तसिंह तो जेल में है । वहां जाकर उसकी पत्नी को हर सम्भव असम्भव प्रयत्न से ठग कर उनके घर के गुप्त रहस्यों का पता लगाओ ।

दुष्टार्धवृद्धा परिकल्प्य रूपम् प्रासादमासाद्य नृपस्य तस्य ।
पितृ-श्वसाऽहं तव पत्युरार्ये ! सुसत्कृताहो ! वसति स्म तत्र ॥९॥

वह दुष्ट प्रौढा स्त्री वेष बदल कर यशवन्तसिंह के महल में चली गई । और वहाँ जाकर रानी से कहा—बहू जी ! 'मैं तुम्हारे पति की बूआ हूं' । उसने विश्वासपूर्वक बहुत सत्कार किया । तब वह कुटनी वहीं पर रहने लगी ।

अथैकदा सा कमला मनोज्ञा पतिव्रता श्रीयशवन्तपत्नी ।
स्नातुं प्रवृत्ताथ तदा तु दुष्टा, सेवामिषेणैत्य ददर्श नग्नाम् ॥

एक दिन यशवन्तसिंह की पतिव्रता पत्नी कमला स्नान कर रही थी । उस दुष्टा कुटनी ने सेवा के बहाने से उसे नग्न [नंगी] देख लिया ।

तद्-वामजंघास्थित-कृष्ण-चिह्नम् सा कुट्टिणी वीक्ष्य मुदेन हृष्टा ।
एकं त्वभिज्ञानमिदं मयाप्तम् याच्यं महिष्या अपरं कदाचित् ॥

रानी की बांई जाँघ पर तिल का निशान देखकर कुटनी बहुत प्रसन्न हुई। और सोचने लगी एक निशानी तो देख ली दूसरी रानी से माँग लूंगी।

जगाद प्रेम्णा कुलटा तु राज्ञीम् कृता त्वया पुत्रि ! ममातिसेवा।
वत्सेऽधुनाऽहं खलु गन्तुकामा सदैव सौभाग्यवती भव त्वम् ॥१२॥

वह कुलटा रानी से प्रेमपूर्वक कहने लगी—पुत्रि ! तूने मेरी बहुत सेवा की है। मैं अब जाना चाहती हूं। तुम सदा सौभाग्यती रहो।

सा प्राह मातस्तव दर्शनेन कृपामयेनाऽऽचरणेन तुष्टा।
यदीप्सितं तत् सुगृहाण देवि ! कृपा विधेया मयि सेविकायाम् ॥

कमला ने नम्रता से उत्तर दिया—हे माता, मैं भी आपके दर्शनों तथा कृपापूर्ण व्यवहार से बहुत प्रसन्न हूं। आपकी मुझ सेविका के ऊपर कृपा रहनी चाहिए। भेंट रूप में जो आप को चाहिए वह मैं सहर्ष दे सकती हूँ।

दुष्टाह नित्यं प्रददाति भूरि, स भ्रातृजः श्री यशवन्तसिंहः।
का नाम लिप्सा स्वगृहेऽपि देवि! प्रभोः कृपा जीव चिराय वत्से !

वह दुष्टा कुटनी (आत्मीयता दिखाती हुई) कहने लगी—मेरा भतीजा यशवन्तसिंह मुझे हमेशा ही बहुत कुछ देता है। अपने घर में भी क्या लालच हो सकता है बेटी ईश्वर कृपा से तुम चिरकाल तक जीवित रहो—बस यही कामना है।

तथापि मद्-भ्रातृज-नाम-चिह्नितम् इदं प्रिये! व्याघ्रनखं मनोहरम्।
सुस्मारकं वंश-परम्परागतम् प्रयच्छ वत्से ! यदि मन्यसे भृशम् ॥

फिर भी यदि तुम कुछ देने की बहुत ही इच्छुक हो तो बिटिया रानी ! मेरे भतीजे के नाम से अङ्कित वंश परम्परागत मनोहर यह व्याघ्रनख (बघनखा) मुझे स्मारक रूप में दे दो।

तुष्टा तु राज्ञी प्रददौ तदीप्सितम् जगाम दुष्टापि यथागतं पुनः।
सा शेरखानञ्च शशंस चिह्नितम् जंघां, ददौ व्याघ्रनखं तदङ्कितम् ॥

प्रसन्न रानी से व्याघ्रनख लेकर कुटनी वापिस आ गई। उसने शेरखान को जंघा का गुप्त तिल बतला दिया और यशवन्तसिंह के नाम वाला व्याघ्रनख दे दिया।

अथैकदा सर्वजनाधिवेशने दिल्लीश्वरं प्राह स खान-दुर्जनः।
क्वास्ति स हिन्दुर्यशवन्त-भूमिपो यः स्वां प्रियां प्राह पतिव्रतामिह ॥

एक दिन दरबारे-आम में बैठे हुए बादशाह से उस दुष्ट शेरखान ने पूछा—हजूर ! वह राजा यशयन्तसिंह कहां है ? जिसने यहाँ सब के सामने अपनी स्त्री को पतिव्रता होने की डींग हाँकी थी।

श्रीमन्! यदाऽहं गतवान् तदन्तिके साऽऽलिङ्ग्यत्प्रेमभरेण मां तदा।
एकान्तवासे कतिचिद्दिनान्यहो ! तत्रैव हर्म्येष्ववसं तया सह ॥

हजूर ! मैं जब उसके पास गया तो उसने बड़े प्रेम से मेरा आलिङ्गन किया। मैं वहीं महलों के एकाँत स्थान में कुछ दिन उसके साथ आनन्दपूर्वक रहा।

तद्वामजंघास्थित-कृष्ण-चिह्नम् विलोकितं संगमकाल एव।
सन्तुष्टया व्याघ्रनखं प्रदत्तमिदन्तु सभ्याः प्रविलोकयन्तु॥

रतिकाल में ही उस की बांई जाँघ पर तिल का निशान भी मैंने देखा था। और प्रसन्न होकर उसने यह व्याघ्रनख मुझे दिया था। आप सब सभासद् लोग इसे देख सकते हैं।

रुष्टस्तदा शाहजहानभूपो बुन्दीश्वरं प्राह किमत्र सत्यम् ?
स राजपुत्रश्चकितः सदुःखम् जगाद राजन् ! किमु वच्मि बीजम्॥

क्रोध में भरकर बादशाह ने बून्दी नरेश से पूछा—क्यों शेरखान का कहना सच है ? दुःख और आश्चर्य में डूबते हुए राजपूत ने कहा—महाराजा क्या बताऊं मैं तो कुछ समझ नहीं पा रहा हूं।

श्रीशेरखानोक्तसुगुप्तचिह्नम्, सत्यं तथा व्याघ्रनखं ममैव।
न राजपुत्राः कथयन्त्यसत्यम् प्राणात्यये सर्वधनापहारे॥२१॥

राजपूत प्राण नष्ट होने पर और सम्पूर्ण धन मिटने पर भी असत्य सम्भाषण नहीं करता। श्रीमन् ! शेरखान का बताया हुआ गुप्त चिह्न सत्य है तथा यह व्याघ्र नख भी मेरा ही है।

दिल्लीश्वरः प्राह जनाः शृणुध्वम् खानाभियोगः किल सप्रमाणः।
बुन्दीश्वरो मोदयति स्वयं तम्, तस्मान्नरेशोऽनृत-वाक् सुसिद्धः॥

बादशाह ने कहा—प्रजा के सम्पूर्ण व्यक्ति सुनें कि शेरखान का अभियोग सप्रमाण है अतः सत्य है, बून्दी नरेश भी इसका स्वयं समर्थन करते हैं। अतः बून्दी नरेश झूठ बोलने के अपराधी पूर्णरूप से सिद्ध हो चुके।

अस्मत्समक्षे भवतां समक्षे पतिव्रतां प्राह मृषा स्वभार्याम् ।
तस्मादयं न्याय-सुरक्षणाय भवेद् ध्रुवं वै निगड़े निबद्धः ।।२३।।

आपके और मेरे सामने इसने झूठ ही अपनी पत्नी को पतिव्रता बतलाया । इसलिये कानून की रक्षा के लिए इसको निश्चित ही जेलखाने में बन्द करना चाहिये ।

तथाकृते दैववशात्कदाचित् श्रुत्वा चरात्सर्वमिदं तु राज्ञी ।
सा मायिनं दुर्मद-शेरखानम् स्वमायया नाशयितुं किलैच्छत् ।।

बादशाह ने यशवन्तसिंह को कारागार में डाल दिया । यह घटना अचानक गुप्तचरों के द्वारा रानी कमला को भी ज्ञात हुई । उसने छली शेरखान को छल के द्वारा ही नष्ट करने की योजना बनाई ।

सा दास-दासीसहिता पतिव्रताऽतिगुप्तरूपेण समेत्य देहलीम् ।
दिल्लीपतेः सार्वजनीन-संसदि प्रविश्य नत्वा भणति स्म सादरम् ।।

पतिव्रता कमला योजनानुसार अपने दासदासियों सहित गुप्त रूप से दिल्ली पहुंच गई । आम-दरबार में जाकर बादशाह को प्रणाम करने के उपरांत उसने बड़े अदब से निवेदन किया ।

राजा प्रजाया जनको निरूपितो न्यायार्थिनी पुष्पपुरात्समागता ।
तत्रत्य-वेश्यास्मि सुलोचनाभिधा श्रृण्वन्तु सभ्या मम नम्र-वेदनम् ।।

राजा को प्रजा का पिता कहा गया है । मैं न्याय की भिक्षा लेने के लिए पेशावर से आपकी सेवा में आई हूँ । मैं सुलोचना नाम की वहां की वेश्या हूं । सब सभासद मेरी विनम्र प्रार्थना सुनें ।

अयं सुसभ्यः खलु शेरखानो ममालये प्रागवसत् सुखेन ।
सहस्र-मुद्रा ऋणतो गृहीता शीघ्रं प्रदास्यामि कृता प्रतिज्ञा ।।

ये शेरखां साहब मेरे यहाँ कुछ समय तक बड़े सुख से रहे । जाते समय इन्होंने एक सहस्र मुद्रा मुझ से उधार ली थी और जल्दी ही वापिस करने की प्रतिज्ञा की थी ।

भूयान् व्यतीतः समयो न दत्ताः प्रदापयन्तु प्रमुखाः सुसभ्याः ।
दिल्लीश्वरो न्याय-परायणोऽस्ति विनिर्णये सर्वजनाः प्रमाणम् ।।

बहुत समय व्यतीत होने पर भी मेरी मुदाएं वापिस नहीं की गई। आप सब प्रमुख अधिकारी बैठे हैं मेरा कर्ज इससे दिलवाने की कृपा करें। क्योंकि दिल्ली-पति न्याय प्रेमी हैं। अतः उचित निर्णय आप सब के समक्ष हो जाना चाहिए।

श्रुत्वार्थनां सर्वजनाः सुविस्मिता
ईदृग्-विधाः सन्ति कलौ सभासदः।
शाहोऽतिरोषेण जगाद खानकम्
किमत्र वक्तव्यमहोऽस्ति तावकम्?॥२९॥

उसकी प्रार्थना सुनकर सब सभ्य बहुत विस्मित हुए कि ऐसे भी पदाधिकारी कलियुग में होते हैं। बादशाह ने भी क्रोधित मुद्रा में शेरखान से पूछा—इस विषय में तुम क्या कहना चाहते हो?

उत्थाय मूर्ध्ना प्रणिपत्य खानोऽवदद् जगद्-वन्द्य! किमत्र चित्रम्।
इयं तु पूर्वं मयका कदापि स्वप्नेऽपि दृष्टा नहि जीवनेऽपि॥

शेरखान ने उठकर सिर झुकाते हुए बड़े अदब से कहा—शाहें-आलम! बड़ा ही आश्चर्य है। मैं स्वयं अचम्भे में हूं कि मैंने तो इसे अपने सम्पूर्ण जीवन में स्वप्न में भी कभी नहीं देखा, यह सर्वथा झूठ बोलती है हजूर!

उवाच राज्ञी 'किमु सत्यमेतत्?
स प्राह 'सत्यं नितरां तु सत्यम्'।
अल्लां शपे स्वंच शपे कुरानम्
सत्यं मया पूर्वमितो न दृष्टा॥३१॥

रानी ने कहा—क्या तू सच बोल रहा है? शेरखान ने उत्तर दिया मैं सर्वथा सच कह रहा हूं। अपनी कसम! अल्लाह की कसम! कुरानशरीफ की कसम मैं सच कहता हूं कि अब से पहले मैंने तुझे कभी देखा तक भी नहीं।

तं प्राह राज्ञी पिशुनाधमस्त्वम् त्वयाहमद्यावधि चेन्न दृष्टा।
जंघातिलं व्याघ्रनखञ्च तद्वै कुतः समानीतमिदं वद त्वम्॥३२॥

तब रानी ने कड़क कर कहा—अरे नीच! पापी! जब तूने आज तक मुझे देखा भी नहीं तो मेरी जांघ का तिल तूने कैसे दखा, और व्याघ्रनख तुझे कहां से मिला बतला!

ज्ञात्वा रहस्यं चकितः स शाह आसन् सुसभ्या अपि तत्त्वविज्ञाः ।
निःसारितो बन्दिगृहान्नरेशः सुसत्कृतः सर्वजनैः स्तुतश्च ॥३३॥

सारा रहस्य सुनते और समझते ही बादशाह और सम्पूर्ण प्रजा-जन इस षड्यन्त्र से बड़े विस्मित हुए । तत्काल राजा यशवन्तसिंह को कारागार से निकाला गया । उसका खूब सम्मान किया, और सब ने प्रशंसा की ।

पतिव्रता सा कमला नरेशम् प्रणम्य तत्पाद-तले निषण्णा ।
तदा पुनर्दिल्लिपतिर्यशस्वी जगाद सभ्यान् ससुखं शृणुध्वम् ॥

पतिव्रता कमला महाराज यशवन्तसिंह को प्रणाम करके उनके चरणों में जा बैठी । तब उदारमना बादशाह ने सारी प्रजा को शान्तिपूर्वक बताया ।

खानाऽधमेन पिशुनेन हि वञ्चितोऽहम्
सभ्या अपीह शयतानवशं प्रयाताः ।
दैवात्तदा निगड़ितो यशवन्तसिंहो-
देव्यानयाऽपि बहुदुःखमिहानुभूतम् ॥३५॥

इस नीच पामर चुग़लखोर शेरखां ने मुझे तथा आप सब को झूठ मूठ खूब बहकाया । हम इसकी शैतानियत न समझ सके । दुर्भाग्यवश ही राजा यशवन्तसिंह को जेल जाना पड़ा और इस पतिव्रता देवी को भी यहाँ आने में अनेक कष्ट उठाने पड़े ।

ये ये अनर्था अभवन् समेषाम् तेषान्तु खानापसदो हि मूलम ।
वधार्ह एषः खलु पापमर्त्यो राज्ञे महाराजपदं ददामि ॥३६॥

जो कुछ भी अनर्थ हुए उन की जड़ ये नीच खान है अतः इसको मृत्युदण्ड की आज्ञा है । राजा यशवन्तसिंह को मैं प्रसन्न होकर 'महाराज' का पद प्रदान करता हूं ।

इयं सुसाध्वी नहि केवलं सती सुराजनीत्यादिषु बुद्धिमत्यपि ।
स्वसुः पदेऽस्माभिरियं निधीयते भवन्तु सर्वे खलु साक्षिणो मम ॥

यह देवी केवल पतिव्रता सती ही नहीं है बल्कि नीतिनिष्णात और बुद्धिमती भी है । इसको आज से मैं अपनी बहिन बनाता हूं आप सब मेरे साक्षी हैं ।

बुन्दीपतिर् बा-इखलाक आला पाजी चुगल्खोर च खानशाला ।
सदाकतस्यापि हि बोलबाला फरेब झूठस्य हि मूँह काला ॥

बून्दी नरेश सम्मानार्ह चरित्रवान् हैं और चुगलखोर हरामी खान पाजी है । ठीक ही है 'सच का बोलबाला झूठ का मुंह काला' । ●

अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः

(अन्ध के अनुगामी महा अन्धे)

अथैकदा प्रावृषि दुर्दिनेषु महान् जलौघो निशि संप्रवृत्तः।
यस्मिन् जनानां बहुवस्तुजातम्, वहद्-वहद् रुद्धमहो ! स्थलेषु ॥

एक वार वर्षा ऋतु में बहुत अधिक वृष्टि हुई। बाढ़ का पानी रात भर में चारों ओर फैला गया। लोगों की बहुत सी चीजें बाढ़ में बहती हुई जहाँ तहाँ अटक गई थी।

प्रातः प्रबुद्धा लघुघोषवासिन-स्तद्वस्तुजातं ददृशुर्यतस्ततः।
परस्परं प्राहुरिदं हलं महत् कुद्दाल एषोऽस्ति रथाङ्ग-धारकः ॥२॥

प्रातःकाल ग्वालों के किसी छोटे से गाँव के आदमियों ने इधर उधर पड़ी हुई चीजें देखीं। वे आपस में कह रहे थे 'देखो ये कितना बड़ा हल है' अरे ! ये कुदाल है यह रथ का धुरा तो देखो।

गच्छन्त एते पुरतो व्यलोकयन् सुवर्तुलं काष्टमयं महोन्नतम्।
सगर्तमेकं दृढ़दण्डसंयुतम्, अदृष्टपूर्वं किमपीह संस्थितम् ॥३॥

चलते २ इन्होंने एक अजीब सी चीज देखी जो गोलाकार लकड़ी का एक गड्ढेदार खोल सा था और उसके गड्ढे में एक मजबूत लट्ठा फंसा हुआ था सब आश्चर्य से बोल उठे—भई ! यह क्या है ?'

अहो! किमेतद् झगड़ो! महामते! किं भो वदत्त्वं रगड़ो! पितामह!
किं किं प्रकुर्वन्त इदं न जज्ञिरे, निमन्त्रितो बूझ-बुझक्कड़स्तदा ॥

वे पूछने लगे—क्यों बुद्धिसागर 'झगड़ू महोदय ! यह क्या है ? दादा रगड़ू ! आप ही बताओ ! "क्या ? क्या ?" इस प्रकार कहते हुए जब वे भी नहीं बता सके। तब 'बूझ बुझक्कड़' महाशय को निमन्त्रित किया गया।

स लम्बधौतो दृढ़दण्डपाणिः शिरोधृतोष्णीष उदग्र कण्ठः।
सर्वान् दिधक्षन्निव घोर-दृष्ट्या समागतो बूझबुझक्कड़ाख्यः ॥

तब लम्बी धोती बान्धे, हाथ में लट्ठा लिए, सिर पर विशाल दुपट्टा (पगड़ा) कसे, ऊंची गर्दन किए और अपनी तेज दृष्टि से सब को भस्म सा बनाते हुए श्री बूझ बुझक्कड़ जी पधारे।

अदृष्ट-पूर्वं खलु वीक्ष्य वस्तु न वेद रूपं न च नाम तस्य।
तथाप्ययं दम्भ-सुरक्षणायाऽब्रवीत् शृणुध्वं मम वेद-वाक्यम् ॥६॥

इस नई चीज को देख कर वह उसका नाम रूप गुण कुछ भी न समझ सका, फिर भी अपनी शान रखने के लिए रोब दाव के साथ बोला—सब ध्यान से मेरे वेद-वाक्य को सुनो—

जानन्ति वेदा ऋषयोऽपि किञ्चित् जानामि भो! बुझबुझक्कड़ोऽहम्।
ईशस्य नेत्राञ्जन-पात्रमेतत्, च्युतं नभस्तः सशलाकमेव ॥७॥

इसे या तो वेद जानते हैं या कुछ कुछ ऋषि मुनि भी जानते हैं और पूरी तरह से मैं बूझबुझक्कड़ जानता हूं। यह तो ईश्वर की आँख आंजने की सुरमेदानी और सलाई आकाश से गिर गई है।

या कोई जाने पाधा पंडित बूझ बुझक्कड़ स्याणा।
आसमान से गिरा हुआ यह खुदा का सुरमेदाणा॥

मूर्खैस्तदा बूझबुझक्कड़स्तु स्कन्धे समारोप्य सवाद्यघोषम्।
शोभा-समारोह-विधानरीत्या संभावितः सूत-पदेऽभिषिक्तः ॥८॥

तब मूर्खों ने उसे कन्धे पर उठाया और गाजें बाजे के साथ जलूस निकाला। तथा 'सूत' की उपाधि से सम्मानित किया।

गृहे-गृहे तस्य गुणस्य चर्चा हीदृग् न भूतो भविता न भूयः।
अज्ञातनाम्नः खलु वस्तुनोऽपि वैज्ञानिकं तत्त्वमनेन चोक्तम् ॥९॥

उस बूझ बुझक्कड़ के गुणों की प्रशंसा घर २ में हो रही थी। ऐसा गुणी व्यक्ति न अब तक हुआ और न आगे होगा। जो अज्ञात नाम वाली वस्तु का भी वैज्ञानिक रहस्य बता देने में समर्थ है।

दैवात्कदाचित्खलु तत्र कोऽपि समागतो नागरिको मनीषी।
तं दर्शयामास यदाञ्जनीं ताम् स प्राह मूर्खान् विहसन् तदानीम्॥

भाग्यवश कोई बुद्धिमान् नागरिक वहाँ पर कुछ दिन बाद आ निकला। जब उसे वह 'सुरमेदाणा' दिखाया गया तो वह हंस कर मूर्खों से बोला।

इदं तु मूढ़ाः ! खलु तैलयन्त्रम् मध्ये धृता पीडनयष्टिकेयम् ।
केनापि धूर्तेन प्रतारिता भोः ! 'किं दुर्घटं दुर्वदतां जनानाम्' ।।

अरे ! वेवकूफो ! यह तो तेल पेलने का यन्त्र कोल्हू है, और इसके बीच में पीड़ने के लिए लाठ है। तुम्हें तो किसी धूर्त ने बहका दिया। झूठ बोलने वालों के लिए क्या कुछ बकना मुश्किल है।

यथाहि धूर्तेन तु वञ्चिता जना न तैलयन्त्रं विदुरत्र तत्त्वतः ।
लोके तथा मस्करिणा प्रतारिताः शिवाऽऽकृतिं नैव विदन्ति नास्तिकाः ।।

जिस प्रकार धूर्त से ठगे हुए मूर्ख लोग कोल्हू को नहीं जान सके थे उसी प्रकार अहो ! नास्तिक महाशयों द्वारा बहकाए वे बाबू शिवलिङ्ग की वास्तविकता नहीं जानते (उसे मूत्रेन्द्रिय समझते हैं)।

खखाभ्रवेदाक्षिमितैश्च पद्यैर्गीतं पुराणे शिवलिङ्ग-तत्त्वम् ।
खखाभ्रखाब्ज-प्रमितैश्च पद्यैर्लिङ्गस्य तत्त्वं भणितं पुराणे ।।

शिवलिङ्ग की पुराणों में २४००० श्लोकों में—'शिवपुराण' में शिव शब्द की, और १०००० श्लोकों में—'लिङ्ग पुराण' में लिङ्ग शब्द की महिमा गाई है।

अशीति-साहस्रमितैश्च पद्यैः स्कन्देऽपि गीता शिवलिंग-कीर्तिः ।
इत्थं नु लक्षाधिक-पद्यगीतं शिवं नु मूत्रेन्द्रियमाह धृष्टः ।।१४।।

अस्सी हजार श्लोकों में स्कन्द पुराण में शिवलिङ्ग विवेचना की है। इस प्रकार एक लाख से अधिक श्लोकों में वर्णित 'शिवलिंग' को नास्तिक महाशय मूत्रेन्द्रिय कहने की धृष्टता करते हैं।

न तैलयन्त्रं नयनाञ्जनाशयो
मूत्रेन्द्रियं नो शिवलिंगमेव च ।
मृषाऽन्ध-शिष्यान्धमतावलम्बिनो
भ्रान्ताः स्वयं बूझबुझक्कड़ोक्तिभिः ।।१५।।

जिस प्रकार कोल्हू 'सुरमेदाणा' नहीं इसी प्रकार शिवलिंग भी मूत्रेन्द्रिय नहीं हो सकता। अन्ध परम्परा ग्रस्त महाशय व्यर्थ में ही बूझबुझक्कड़ के बहकावे में आये हुए हैं।

प्रसङ्गोऽर्थस्य साधकः

(प्रसंग से ही तात्पर्य समझ में आ सकता है)

''देयं वारस्त्रियै देयं, न विप्राय कदाचन।
तस्यै दत्ते सुताप्तिः स्यात् तस्मै दत्ते कुलक्षयः ॥१॥

जो दीजै वेश्या को दीजै, ब्राह्मण को कबहूं नहि दीजै।
वेश्या को देने से बढ़ेगा वंश, ब्राह्मण को देने से जाय निर्वंश ॥

कोऽयं प्रसंगः क इहास्ति वक्ता किन्देयमस्त्यत्र फलं कथं तत्।
पूर्वापरं सर्वमिदं विचिन्त्य, यो वक्ति भावं स यथार्थवादी ॥२॥

इस श्लोक का प्रसंग क्या है? वक्ता कौन है ? देने की वस्तु क्या है ? तादृश फल कैसे मिलेगा ? इत्यादि की विवेचना करके जो व्यक्ति इस का पूरा-पूरा भाव बताएगा वही वास्तव में यथार्थ-वक्ता कहा जा सकेगा ।

यो मूढ़धीः शास्त्रविधिं विहाय विना प्रसंगं प्रवदेत्प्रकल्प्य ।
नोपक्रमं वेत्त्युपसंहृतिं वा स शास्त्रहन्ता खलु सर्वचौरः ॥३॥

जो मूर्ख शास्त्र मर्यादा को छोड़ कर बिना प्रसंग जाने ही कपोल कल्पना से मनमानी बात बोलता है और उपक्रम (कथानक का प्रारम्भ) या उपसंहार (कथानक की समाप्ति) नहीं जानता वह शास्त्र घाती है और (वाक्-स्तेय के कारण) सब कुछ चुराने दाला है ।

तदस्य पद्यस्य निरूपणाय प्रस्तूयते चात्र कथाप्रसंगः ।
ज्ञाते तु तस्मिन् नहि कापि शङ्का विलोकनीयं सुधिभिः स्वबुद्धया ॥

इस लिए इस उपर्युक्त पद्य को सप्रसंग समझाने के लिए एक कथा प्रस्तुत की जाती है। उसके जानने के उपरांत कोई भी शंका शेष नहीं रहती । विद्वान् सज्जनों को बुद्धिमत्ता पूर्वक उसे देखना चाहिए ।

आसीत्पुरा ब्राह्मणपुत्र एको विद्वान् धनी श्रेष्ठ-कुल-प्रसूतः ।
पतिव्रता विज्ञपितुः सुपुत्री सद्वंशजाता खलु तस्य भार्या ॥५॥

पहले समय में कोई बड़ा विद्वान्, धनी ब्राह्मण किसी नगर में रहा करता

था। सद्वंश में उत्पन्न होने के कारण उसके साथ एक पंडित ने अपनी कुलीन शुभ लक्षणों से युक्त कन्या का विवाह कर दिया।

स भाग्यहीनो निजदिष्ट-दोषाद् बभूव वेश्यारत उग्रकर्मा।
पीत्वा सुरां रात्रिदिनं प्रमत्तस्तदालये तिष्ठति सुप्रसक्तः ॥६॥

भाग्यहीन वह ब्राह्मण-पुत्र बदकिस्मती के कारण वेश्यागामी हो गया। भयङ्कर दुष्कर्म करने लगा। शराब पीकर वह नशे में मस्त होकर दिन रात वहीं पड़ा रहता।

क्षीबः कदाचित्पततीह कच्चरे द्यूते कदाचिन्निगड़े निपात्यते।
चौर्य्ये कदाचिच्च निबध्यते चरैः विवेकहीनो लभते क्व भावुकम् ॥

नशे में चूर होने के कारण कभी वह कीचड़ में गिर जाता तो कभी जूआ खेलते हथकड़ियों में बाधा जाता, और कभी चोरी के आरोप में जेल की सजा पाता। विवेक रहित मनुष्य को कहां सुख मिल सकता है।

गृहे-गृहे सर्वजनो विनिन्दति महाकुलेऽजायत हा! नराधमः।
क्व सा सती क्वैष पिशाचदुर्मतिः को भाग्यरेखापरिवर्तने क्षमः ॥

घर-घर में उसकी निन्दा होती कि इतने उच्च वंश में ये नीच कहां से पैदा हुआ? कहाँ वह सती साध्वी इस की स्त्री, और कहां यह दुरात्मा पापी! वस्तुतः भाग्य के लिखे हुए को कौन मिटा सकता है!

अथैकदाऽसह्य-दशानुभूत्या शुशोच साध्वी किमु जीवनं नौ।
पूर्वं तु पत्ये गरलं ददामि, पुनः स्वयं नूनमहं पिबामि ॥६॥

इस पतिव्रता सती स्त्री ने एक दिन अपनी दुर्दशा का अनुभव करते हुए निश्चय किया कि इस प्रकार के जीवन से लाभ क्या? मैं पहले तो अपने पति को विष दूंगी और फिर स्वयं पीकर प्राणान्त करूंगी।

निश्चित्य चित्ते गरलं महोग्रम् पिपेष दुःखेन जले निपात्य।
अचिन्तयद् हा! किमु पाप-कृत्यम् कर्तुं प्रवृत्तास्मि महोग्रमेतत् ॥

पूर्ण निश्चय के अनुसार उसने उग्र जहर जल में मिला कर पीसना आरम्भ किया और चिन्ता करने लगी कि अरे! मैं यह क्या भयङ्कर दुष्कर्म करने चली हूं।

करं तु सांगुष्ठमिदं मदीयम्, पित्रा प्रदत्तं च विवाह-काले ।
प्रगृह्य येनास्मि कृतार्थिता प्राक्, तं तेन सार्धं गरलं ददामि ।।११।।

मेरे जिस हाथ का अंगूठा पकड़ कर पिता ने बड़े चाव से इन्हें थमाया था, और इन्होंने भी मेरे ऊपर कृपा करके स्वीकार किया था मैं आज उसी हाथ से उस पतिदेव को जहर देने लगी हूं ।

एवं भृशं सा विलपन्ती दीनाऽति-व्यग्र-चित्ता गरलं पिपेष ।
दैवात्तदा कापि सखी तदीया समेत्य पप्रच्छ किमद्य कष्टम् ?

इस प्रकार व्याकुलता दुःख और आत्मग्लानि की स्थिति में जब वह विष पीस रही थी तो उसी समय संयोगवश उसकी किसी सहेली ने आ कर अचानक पूछा कि आज क्या तकलीफ है ?

पूर्वं तु साध्वी सुरहस्यमेतद् ररक्ष तस्या अतिदुष्करत्वात् ।
पृष्टा तु भूयः पुनराह सर्वम् 'किं वै हितेभ्यः खलु गोप्यमस्ति' ।।

पहले तो सती स्त्री ने अपने इस रहस्य को बहुत भयंकर होने के कारण उससे छुपाना चाहा पर जब काफी विश्वास और आत्मीयता से उसने आग्रह किया तो, उसने सब कुछ बता दिया । ठीक ही है अपने हितैषियों से दुराव कैसा ?"

प्रियेऽतिदुःखेन मयाद्य निश्चितम् दत्त्वा च पीत्वा विषमुग्रमेकदा ।
नेया समाप्तिं निजवंश-वल्ली 'वंशीनिनादः क्व नु वेणु-संक्षये' ।।

हे प्यारी सखि ! मैंने अत्यन्त दुःखित होने पर आज यह निश्चय किया है कि पति को और स्वयं अपने को विष दे कर वंश को ही समाप्त कर दूं 'न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी' ।

श्रुत्वा सखी बुद्धिमती रहस्यम्, जगाद साध्वीमुचितं न कृत्यम् ।
विषं हि देयं यदि निश्चितं स्याद्, वारस्त्रियायेव हि देयमस्ति ।।

बुद्धिमती सखी सारे प्रसंग को सुन करे बोली—यह कार्य तुम ठीक नहीं कर रही हो ! यदि जहर देना ही निश्चित है तो वह वेश्या को देना चाहिए ।

त्वन्निश्चये सम्प्रति विप्रहत्या पत्युर्वधः स्वात्मवधो महोग्रः ।
कुलावसानं ह्यपि तत्फलं स्यादित्थं महानर्थपरम्पराऽत्र ।।१६।।

यदि तुम अपने निश्चित प्रोग्राम के अनुसार पति और स्वयं को जहर दोगी तो ब्राह्मण हत्या, पति हत्या और आत्महत्या आदि महाभयङ्कर पाप लगेंगे, और इसका दुष्परिणाम होगा तुम्हारे वंश का अवसान। यह अनर्थों की बड़ी लम्बी शृङ्खला है।

एकैव हत्या गणिकावधेऽस्मिन्
तथाप्यहो ! सा बहुदुष्टनार्याः।
तया वियुक्तश्च खलद्विजोऽपि
शुद्धयेत्तथा त्वं सुतभागिनी स्याः॥

वेश्या को जहर देने का अर्थ है केवल एक हत्या और वह भी पतिता दुष्टा की। फिर यह निश्चित है कि उस वेश्या से बिछुड़ कर तेरा दुष्ट पति सन्मार्ग पर आ जायेगा और तुम्हें पुत्र प्राप्ति हो सकेगी जिस से वंश चल निकलेगा।

'देयं वार-स्त्रियै देयं न विप्राय कदाचन।
तस्यै दत्ते सुताप्तिः स्यात् तस्मै दत्ते कुलक्षयः' ॥१८॥

जो दीजै वेश्या को दीजै, ब्राह्मण को कबहूं नहि दीजै।
वेश्या को देने से बढ़ेगा वंश, ब्राह्मण को देने से जाय निर्वंश॥

विना प्रसंगं यदि पद्यमेतत्
व्याख्याय कश्चित् प्रवदेन्मनुष्यान्।
दानं तु दद्याद् गणिकाजनेभ्यो,
न ब्राह्मणेभ्यः 'किमु सत्यमेतत्'॥

यदि इस पद्य की व्याख्या, बिना पूर्वोक्त प्रसंग के जाने कोई करे और मनुष्यों को समझाये कि "वेश्याओं को दान देना चाहिए ब्राह्मणों को नहीं"—तो क्या यह उचित व्याख्या कहलायेगी।

* * *

तरन्ति मायां शरणागता जनाः

(शरणागत जन माया को तर जाते हैं)

कस्मिंश्चिदच्छाम्बुयुते तडागेऽवसन् झषाः शल्लकरोहिताद्याः ।
तत्रैत्य कश्चित् खलु मत्स्यजीवी वितत्य जालं किल तान् बबन्ध ।।

किसी निर्मल जल से परिपूर्ण तलाब में शल्लक-रोहित आदि जातियों के अच्छे २ मच्छ रहते थे । एक बार मछियारे ने आकर वहां जाल फैला दिया और बहुत से मच्छों को पकड़ कर ले गया ।

दिनं दिनं तद् वडिशाभिभूताः क्रमेण मत्स्या विलयं प्रयाताः ।
अथैकदा ध्यानपरं तटस्थम् कश्चिन्मुनिं प्राह झषाधिराजः ।।२।।

प्रतिदिन उसके वंशी के कांटे में फंसते हुए मच्छ धीरे २ थोड़े से शेष रह गये । एक दिन किनारे पर संध्या वन्दन में संलग्न किसी मुनि से जा कर मच्छों के सरदार ने कहा—

नमो नमस्ते भगवन् महामते ! सर्वे वयं त्वां शरणागता विभोः ।
जनेन केनापि च मत्स्यजीविना निःशेषतां नीतमिहत्यमत्कुलम् ।।३।।

हे भगवन् ! हम सब की ओर से नमस्कार स्वीकार करो । हम आप की शरण में आये हैं । हे प्रभो ! किसी मछियारे ने यहां आकर मेरे परिवार का विनाश ही प्रारम्भ कर दिया ।

निशम्य दुःखं शरणागतस्य तत्
विचिन्त्य चित्ते मुनिराह प्रार्थिनम् ।
रोद्धुं न शक्तोऽस्मि हि मत्स्यजीवितम्
तथाप्युपायं शृणु रक्षणक्षमम् ।।४।।

शरणागत मच्छ की प्रार्थना सुनकर मुनि महाराज ने कुछ समय विचार करके उत्तर दिया, कि मैं मत्स्यों का संहार करने वाले को तो रोकने में समर्थ नहीं हूं परन्तु तुम्हारी रक्षा का उपाय बता सकता हूं।

दृष्ट्वा नु जालं विततं भयातुराः
प्रयान्ति यूयं ह्यधुना त्वितस्ततः ।
अतो हि जाले पतिताः स्वजीवनम्
कृत्वा विपन्नं विलयं व्रजन्त्यहो ! ।।५।।

इस समय तुम लोग जाल को फैला हुआ देख कर भय के कारण इधर उधर दौड़ने लगते हो, इस लिये जाल में फंस कर प्राणों से हाथ धो बैठते हो !

तदद्य जाले विततेऽपि निर्भयैर्न यत्र कुत्रापि भवद्भिरट्यताम् ।
किन्त्वस्य जालास्तरणं प्रकुर्वतः छायातलं प्रव्रजताशु पादयोः ।।६।।

आज तुम्हें यह उपाय करना चाहिए कि जाल फैला देने पर भी निर्भय होकर रहो—और व्यर्थ में प्राण रक्षा के लिये इधर उधर मत दौड़ो। किन्तु जाल फैलाने वाले मछियारे के चरणों की छाया के नीचे जल्दी से चले जाओ।

अथास्तृते पूर्ववदेव जाले मत्स्या अभीता मुनिनोपदिष्टाः ।
पादाश्रिता जालवितानकर्तुर्न बन्धनं प्रापुरिति प्रहृष्टाः ।।७।।

निश्चित समय पर मछियारे ने जाल फैलाया। मुनि के उपदेशानुसार मच्छ मछियारे के पांवों के निकट चले गए, और बन्धन से बचे रहने के कारण बहुत प्रसन्न हुवे।

भवो ह्रदस्तत्र झषास्तु जीवा जालं हि माया वडिशश्च भोगाः ।
ईशो हि जालाधिप ऊहनीयः पादाश्रयो बन्धनभीतिमुक्तिः ।।८।।

यह संसार ही सरोवर है सांसारिक प्राणी मत्स्य के समान हैं, माया जालस्वरूपा है वंशी कांटा ही विषयोपभोग है, परम ब्रह्म-जाल फैलाने वाला

मछियारा है—उनके चरणों की शरण में जाना ही बन्धनों से मुक्ति प्राप्त करना है ।

जगाद गीतोपनिषत्सु कृष्णो दुरत्यया मेऽतितरां हि माया ।
ये वै जना मच्छरणं प्रयान्ति त एव चास्यास्तरणे समर्थाः ॥९॥

श्रीमद्भगवद् गीता में भगवान् कृष्ण ने कहा है—मेरी माया का पार पाना असम्भव है । परन्तु जो व्यक्ति मेरी शरण में आ जाते हैं वे ही इस माया के बन्धन से मुक्त हो जाते हैं ।

यदा जनो जालभयाकुलो गुरुम् प्रपद्य सम्पृच्छति मुक्तिसाधनम् ।
स वै तदा तं प्रभुपादसेवकम् विधाय लोकेष्वभयं करोत्यहो ॥१०॥

जब मनुष्य माया जाल के भय से व्याकुल होकर गुरु के पास पहुंचता है और मुक्ति का उपाय पूछता है तो वह उसको प्रभु चरणों का सेवक बना कर संसार के विषय भोग और भय शोक से निर्भय कर देता है ।

न जालविस्तारक एति जालम्
स वै सदा जालकबन्धमुक्तः ।
तत्पादनैकट्य-समाश्रितोऽपि
बद्धः कथं स्यात्खलु जालयन्त्रे ॥११॥

जाल फैलाने वाला स्वयं कभी जाल में नहीं फँसता किन्तु सदा जाल के बन्धन से मुक्त रहता है । उसके चरणों के नैकट्य का आश्रय लेने वाला व्यक्ति भी बन्धन में कैसे बन्ध सकता है ।

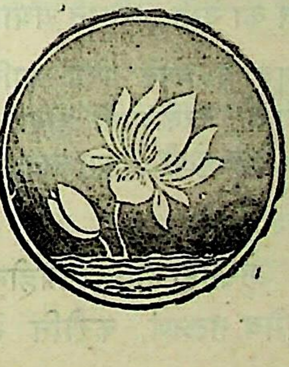

श्रीरामानुजस्य-जन-कल्याण-कामना

(रामानुज स्वामी की जन-कल्याण भावना)

आसीत्पुरा मद्रक-भूतपुर्य्यां, रामानुजः शेषवरावतारः ।
यः सद्गुरोर्यादव-युक्-प्रकाशाद् मुदाऽऽप नारायणमन्त्रदीक्षाम् ॥

पूर्व काल में मद्र प्रदेश की भूतपुरी नामक नगरी में भगवान् शेष के अवतार श्री स्वामी रामानुजाचार्य महाराज प्रकट हुवे जिन्होंने प्रसन्नता पूर्वक सद्गुरु स्वामी यादवप्रकाश महाराज से नारायण मन्त्र की दीक्षा ग्रहण की ।

रामानुजं प्राह गुरुस्सबीजमष्टाक्षरो मन्त्रवरो मदुक्तः ।
देयो न कस्मैचिदपि त्वया भोः, दत्ते तु वासो नरके ध्रुवं स्यात् ॥

गुरुवर्य्य श्री यादवप्रकाश ने विशेष उद्देश्य से श्री रामानुज को कहा कि मैंने जो तुमको अष्टाक्षर महामन्त्र प्रदान किया है उसे तुम अन्य किसी को भी मत बतलाना । यदि बताओगे तो निश्चित ही तुम्हारा नरक में वास होगा ।

पप्रच्छ रामानुज आस्तिकं गुरुं, मन्त्रप्रदाता तु भवेद्धि पातकी ।
पुनर्ग्रहीतुर्भविता च का गतिः श्रीमन् यथाशास्त्रमिदं नु कथ्यताम् ॥

स्वामी रामानुज ने अपने परम आस्तिक गुरुवर्य्य से पूछा कि भगवन् ! मन्त्रोपदेष्टा तो नरक गामी होगा परन्तु मन्त्र को ग्रहण करने वाले व्यक्ति की क्या गति होगी ? यह बात भी शास्त्रानुसार बतलाने की कृपा करें ।

विचार्य्यं प्रोवाच गुरुर्महाकविर्मन्त्रग्रहीतुर्न कदापि दुर्गतिः ।
यतः सकृत् सुस्मृतमेव तत्क्षणं, करोति नारायणनाम मङ्गलम् ॥

महा क्रान्तदर्शी गुरु ने विचार करके कहा कि मन्त्र को ग्रहण करने वाले व्यक्ति की तो कदापि दुर्गति न होगी क्योंकि एक बार भी स्मरण किया हुआ श्रीमन्नारायण भगवान् का नाम तत्क्षण ही कल्याण करता है।

भक्त्या प्रणम्य गुरु-पादयुगं मनीषी,
संरुह्य दिव्यशिखरं हरिगोपुरस्य।
उद्यम्य पाणिरिह सर्वजनेभ्य एव,
तारस्वरेण प्रददौ गुरुदत्तमन्त्रम् ॥५॥

बुद्धिमान् स्वामी रामानुज भक्तिपूर्वक गुरुदेव के युगल चरणों में साष्टाङ्ग प्रणाम करके विष्णु मन्दिर के परमोच्च मुख्य द्वार गोपुर के दिव्य शिखर पर आरूढ़ हो गए। और उन्होंने अपना वरद हस्त ऊँचे उठा उठाकर तत्रस्थ सर्व साधारण जनों को तार स्वर पूर्वक गुरु प्रदत्त नारायण महामन्त्र का उपदेश प्रदान कर दिया।

श्रुत्वा गुरुर्जनमुखेभ्य इदं विचित्रम्,
रामानुजस्य परमार्थविधानकृत्यम्।
चित्तेऽति मोदभरितोऽपि परीक्षणार्थं,
व्याजेन प्रस्फुटितकोप इवाऽवदत् तम् ॥६॥

गुरु जी ने जब अनेक जनों के मुख से स्वामी रामानुज का यह विचित्र परमार्थ विधायक कार्य्य सुना तो वे अपने मन में अतीव प्रसन्न हुवे, परन्तु शिष्य की परीक्षा करने के लिये मानो वे बड़े ही कुपित हैं—ऐसा अभिनय करते हुवे बोले—

मया निषिद्धोऽपि कथं जनेभ्य आपामरेभ्योऽकथयस्स्वमन्त्रम्।
एतत्फलं ते नरके निवासो भविष्यतीत्यत्र न संशयोऽस्ति ॥७॥

मेरे निषेध करने पर भी तू ने आपामर सर्व साधारण जनों को अपना मन्त्र क्यों प्रदान किया? इसका दुष्परिणाम तुझे नरक में जाना होगा इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है।

रामानुजेन कथितं भगवन् प्रकाम-,
मेकाकिनो मम भवेन्नरके निवास।
जाता अनेकमनुजास्तु गृहीतमन्त्रा,
वैकुण्ठधामनिलया इति मेऽतिहर्षः ॥८॥

स्वामी रामानुज ने कहा—भगवन् ! मुझ अकेले का भले ही नरक में निवास हो परन्तु मंत्र ग्रहण करने वाले अनेक मनुष्य तो वैकुण्ठ धाम के अधिकारी बन गए मुझे इस बात का बड़ा भारी हर्ष है।

जनकल्याणसद्भावं ज्ञात्वा शिष्यस्य सद्गुरुः।
अङ्क आरोप्य सस्नेहमाशीर्भिः समबर्द्धयत् ॥९॥

गुरुवर्य्य स्वामी यादवप्रकाश महाराज ने अपने सत् शिष्य रामानुज का ऐसा करुणामय सौहार्द जानकर उन्हें अङ्क में बिठला लिया तथा स्नेह पूर्वक उन्हें अपने आशीर्वचनों द्वारा आप्यायित किया।

धन्यो गुरुर्धन्यतरः स शिष्यस्तत्रापि ते धन्यतमाः प्रशिष्याः।
वात्सल्यमूर्तिः करुणापरीतः सौभाग्यवन्तस्त्रय एव धन्याः ॥१०॥

मूर्तिमान् वात्सल्य गुरु यादवप्रकाश धन्य हैं उनके शिष्य करुणा के अवतार स्वामी रामानुज धन्यतर हैं तत्रापि (गोपुरारूढ़ स्वामी जी से मन्त्र ग्रहण करने वाले वे) महा सौभाग्य शाली प्रशिष्य धन्यतम हैं। इस प्रकार ये तीनों ही महानुभाव धन्यवाद के भाजन हैं।

क्षणिक-सत्संगति-फलम्

(बलि के पूर्व जन्म की कथा)

त्रैलोक्यशास्ता चिरजीविमुख्य, आसीद् बलिर्यो हरिणाभियाच्यः ।
तत्पूर्व-जन्माचरणं विविच्य, नरेण सत्सङ्ग-परेण भाव्यम् ॥१॥

तीनों लोकों का एकमात्र शासक, अष्ट चिरञ्जीवियों में प्रमुख, स्वय भगवान् भी जिसके याचक बने–ऐसा महामहिम जो राजा बलि हुवा उसके पूर्वजन्म के वृत्तान्त का मनन करके मनुष्य को सत्सङ्ग-परायण होना चाहिये ।

स मद्यमांसव्यभिचारतत्परो वेश्यागृहं गच्छति नित्यमेव हि ।
मार्गस्थदेवालयकीर्तनध्वनिभयेन कर्णाविपिधाय धावति ॥२॥

बलि (पूर्वजन्म में) बड़ा ही मद्य-मांस-भोजी (शराबी कबाबी) और व्यभिचारी, था । वह नित्य नियम पूर्वक वेश्या के चौबारे में जाता था, दैवात् रास्ते में पड़ने वाले एक मन्दिर में हरि कीर्तन होता था, यह व्यक्ति कथा-कीर्तन का कोई शब्द कान में न घुस जाए इस भय से हाथों से दोनों कानों में अंगुलिये डालकर भागता हुवा निकल जाता था ।

अथैकदा पण्यवधूं प्रयातो मिष्टान्नताम्बूलनिरुद्धपाणेः ।
कर्णं प्रविष्टोऽस्य कथा-प्रसङ्गो नश्यद्धनं श्रीहरये समर्प्यम् ॥३॥

एक दिन वह वेश्या की ओर जा रहा था, दोनों हाथ (वेश्यानिमित्तक) मिष्टान्न, फूलों के हार और इतर फुलेलादि सामग्री से रुन्धे थे । (मन्दिर के निकट से निकलते हुए) इसके कान में ये शब्द पड़ गये कि–'जो सम्पत्ति नष्ट होती दीख पड़े उसे भगवान् के अर्पण कर देना चाहिये ।'

धावन् स वर्षार्द्र विपिच्छिले पथि भ्रष्टो जवाद्भग्नकपाल आपतत्
मत्वा गतप्रायधनं कराच्च्युतं, प्राणांस्त्यजन् श्रीहरये समर्पयत् ॥४॥

(कहीं अधिक कथा कान में न पड़ जाए इस भय से) वह वहां से ज्योंही भागने लगा त्यों ही वर्षा से भीगे फिसलने वाले मार्ग में वह धड़ाम से गिर पड़ा, कपाल फूट गया । जब मरने लगा तो यह सोचकर कि मिष्टान्न आदि सामग्री अब न मेरे काम आएगी और नांही मेरी प्रिया वेश्या के काम आएगी– अतः यह सब अब नष्ट ही हो रही है बस ! श्रुत-कथा के केवल एक वाक्य को स्मरण करके उसे भगवान् के अर्पण कर दिया ।

मृतं यमः प्राह मुहूर्तभोग्यमैन्द्रं पदं कल्पमितोऽधभोगः ।
ब्रूहि द्वयोः किं प्रथमं वृणोषि· धूर्तोऽवदत्स्वर्गसुखं वृणोमि ॥५॥

जब वह जुवारी मरकर यमलोक में पहुंचा तो प्रेतराज ने इसके शुभाशुभ कर्मों का विपाक देख कर कहा कि मरते समय वेश्या के निमित्त आनीत, नष्ट होते हुवे अपने सर्वस्वभूत पदार्थों को तूने नारायण के अर्पण किया है इस पुण्य से तुम केवल दो घड़ी भर इन्द्र पद के अधिकारी हो किन्तु अगणित महा पापों के कारण कल्पपर्यन्त तुम नरकों के पात्र हो । बोलो दोनों में पहले तुम क्या भोगना चाहते हो ? जुवारी को दाव सूझ गया, बोला कि मुझे पहिले दो घड़ी इन्द्र पद के आनंद को लूटने का अवसर दे दीजिये ।

इन्द्रासनस्थो मनसि व्यचारयत् स्वल्पस्य दानस्य फलं यदीदृशम् ।
कुर्य्यां महादानमहं कथन्न वै ददौ द्विजेभ्योऽखिलनाकसम्पदम् ॥६॥

यमराज की प्रार्थना से इन्द्र दो घड़ी के लिये स्थानांतरित हो गये और यह ज्यों ही इन्द्र के सिंहासन पर आसीन हुवा तो विचार करने लगा कि जब नगण्य तुच्छ से दान का फल मुझे इन्द्रासन के रूपमें प्राप्त हुवा है तब अब मैं लगते हाथों महादान क्यों न कर दूं । बस ! फिर क्या था , ऐरावत हाथी, उच्चैश्रवा घोड़ा, कल्पवृक्ष, चिन्तामणि, कामधेनु गाय, और नन्दन वन आदि सब वस्तुएं एक-एक करके ब्राह्मणों को दान कर दीं ।

गते मुहूर्ते स यमेन सार्धं जगाम यावद् मघवा स्वगेहम् ।
विलोक्य शून्यं स्वगणैः प्रदिष्टो ज्ञात्वा रहस्यं यममाजुहाव ॥७॥

दो घड़ी बीत जाने पर यमराज के साथ ज्यों ही यह जुवारी चला कि इन्द्र ने आकर स्वर्ग को सुनसान पाया, अपने द्वारपाल आदि से जब सर्व-दान की बात सुनी तो यम को पुनः बुला कर इस धूर्त की सब अनधिकार चेष्टा कह सुनाई।

यमेन पृष्टो निजगाद निर्भयं, कृतं यथेष्टं कुरु ते यदीप्सितम्।
बुभुक्षितो हस्तगतं स्वभोजनं भुञ्जीत दद्यादिति वा निजेच्छया॥

यम ने जब उसे डांटा तो वह निर्भय हो कर बोला कि मुझे जो अच्छा लगा सो कर डाला, अब जो तुम्हारी इच्छा हो सो तुम करो। भूखे को यदि भोजन दो तो वह अपने हाथ में आने पर उसे चाहे खाए और चाहे किसी अन्य को प्रदान कर दे, यह उसकी इच्छा है (मैंने भी प्राप्त स्वर्ग की भोग्य वस्तुओं का उपभोग न करके उन्हें दे डाला है यह मुझे अधिकार था।)

श्रुत्वा यमो धर्म्यमिदं तदुक्तं ददौ महादानफलं प्रहृष्टः।
त्रैलोक्यराज्यं चिरजीविताञ्च तथाऽमलां श्रीहरिपादभक्तिम्।६।

यम ने जुवारी का धर्मानुमोदित यह उत्तर सुना तो प्रसन्न होकर, किये हुवे महादान के उपलक्ष्य में उसे तीन लोक का राज्य, चिरंजीविता और भगवान् के श्री चरणों की अनन्यभक्ति प्रदान की।

परोक्षवादो गुरुगम्य एव

(गुप्त रहस्य गुरु द्वारा ही प्राप्य)

कश्चिद् धनी द्रव्यनिधानदक्षो भाव्यर्थकृच्छ्रप्रतिकार हेतोः ।
कोशं विनिर्माय सुगुप्तमेकं ररक्ष स्थाने विविक्तदेशे ॥१॥

किसी धनवान व्यक्ति ने अपने परिवारी व्यक्तियों के भावी संकट को दूर करने की इच्छा से बहुत सा धन गुप्तरीति से कहीं एकांत स्थान में सुरक्षित रख दिया।

न धर्मपत्नी न च पुत्रपौत्रा जानन्तु तत्स्थानरहस्यमन्ये ।
मामोपदेशेन हि विज्ञता स्यात् लिलेख सांकेतिककूटलेखम् ॥२॥

मेरी स्त्री, पुत्र, पौत्र या कोई अन्य व्यक्ति इस स्थान के रहस्य को न जान सके और मेरे बिना बताये ढूंढ न सकें ये विचार करके उसने एक गुप्त संकेत लिख दिया।

विपद्दिनेषु स्वयमुद्धरेयम् वदाम्यहं मृत्युभये स्वबन्धून् ।
विचार्यमाणः स दिवं प्रयातः 'प्रतीक्षते मर्त्यरुचिं न कालः ॥३॥

मुसीबत के दिनों में मैं स्वयं ये धन निकाल लूंगा या मृत्यु के समय अपने सम्बन्धियों को बता दूंगा ये सोचता रहा तो वह एक दिन मर गया। मृत्यु मनुष्य की कामनाओं की पूर्ति की प्रतीक्षा नहीं करता।

पित्रर्जित-द्रव्यमदेन मत्ताः पुत्रास्तदीया व्यसने प्रसक्ताः ।
गण्यै रहोभिः सकलं धनं तद् व्यनाशयन् तिष्ठति क्व सदार्थः ॥४॥

पिता की कमाई के मद से मस्त होकर उसके लड़के दुर्व्यसनों में फँस गये,

और कुछ ही दिनों में सम्पूर्ण धन को नष्ट कर डाला । “धन, एक के पास हमेशा कहां रहा है ?

अथैकदा ते स्वपितुः पुरातनीम् लेखां पठन्तो ददृशुस्तदङ्कितम् ।
विचित्रलेखं बहुद्रव्यसूचकम् समेत्य सर्वे ह्यपठन् पुनः पुनः ।।५।।

एक दिन उन्होंने अपने पिता की पुरानी बही पढ़ी । उसमें लिखित अजीब से लेख को देखा । जिससे बहुत से द्रव्य का पता चलता था । सबने बार-२ उसे पढ़ा ।

तत्राङ्कितं मम विनिर्मितमन्दिरस्य
मूर्ध्नि स्थितस्य कलशस्य समे प्रदेशे ।
कोशस्त्रिकोटिमितरत्नचयैः सुपूर्णो
ग्राह्यः स संकटमये समयेऽस्मदीयैः ।।६।।

उसमें लिखा था — मेरे द्वारा बनाये गये मन्दिर के ऊपर जो कलश है उसके बराबर के भाग में तीन करोड़ का खजाना है । मुसीबत के समय मेरे वंशज को ले लेना चाहिये ।

राकातिथौ कार्तिकमासि शोभने निशीथकाले गगने सतारके ।
निश्चित्य मल्लेखगतार्थकारिकाम् छोदक्षमः प्राप्स्यति रत्नसञ्चयम् ।।

‘कार्तिक मास की पूर्णिमा को आधी रात के समय जब आकाश में तारे चमक रहे हों—मेरी इस कारिका के भावार्थ को समझते हुए जो खोदेगा उसे ही रत्नों की प्राप्ति होगी ।

लेखं पठन्तोऽतितरां सुविस्मिताः परस्परं प्राहुरहो ! सुकौतुकम् ।
धनं यदा नः खलु देवमन्दिरे तदान्यलेखस्य न कापि सङ्गतिः ।८।

लेख पढ़कर सब आश्चर्य-चकित हो गये । कहने लगे ये बड़ी अजीब बात है ! जब हमारे मन्दिर में ही धन है तब बाकी लेख की संगति निरर्थक है ।

किं तान् मणीन् कार्तिक एव सूते ?
राका वराका खनने तथा का ?
निशीथकाले किमु चौर्य्यकृत्यम् ?
वृद्धस्य ते तात मतिर्विनष्टा ।।९।।

क्या कार्तिक महीना उन मणियों को पैदा करता है ? खोदने में बेचारी पूर्णिमा तिथि ही कौन होती है ? और क्या हम चोरी कर रहे हैं जो रात्रि में खोदें ? अरे पिता जी ! वृद्धावस्था के कारण आप की अकल खराब हो गई थी ।

इत्थं विचिन्त्य खलु माधव एव मासि
षष्ठ्यां सितेतरदले बहुर्दुदिने च ।
भग्नेऽपि देवसदने न वराटकोऽपि
लब्धस्ततो विधिमपास्य न कार्यसिद्धिः ॥१०॥

ये सोचकर उन मूर्खों ने बिना पूरा भावार्थ समझे वैशाख कृष्ण पक्ष की षष्ठी को ही बादलों के घिरे रहने पर भी मन्दिर के शिखर को खोद डाला - किन्तु फिर भी उन्हें एक फूटी कौड़ी तक न मिल सकी ।

ते रिक्तहस्ता अतिशोकपीड़िता मूर्खा अनिन्दन् जनकं मुहुर्मुहुः ।
अहोऽद्य तातेन वृथा प्रतारिता याता वयं सम्प्रति हास्यपात्रताम् ॥

खाली हाथ लौटकर वे बहुत दुःखी हुए । अपनी मूर्खता के आवेश में मृत पिता को खरी खोटी सुनाने लगे । अहो ! पिता जी ने बेकार की बातें लिख कर हमें बुद्धू बना दिया । इस घटना के कारण हम सब हंसी के पात्र बने ।

पप्रच्छ कश्चित्किमु जीर्णमन्दिरम्
नवं विधातुं विहितो महोद्यमः ।
अन्येऽवदन्नार्यसमाजशिक्षया
भ्रान्ता इमे मूर्तिविरोधिनः खलाः ॥१२॥

कोई पूछने लगा, क्या मन्दिर का जीर्णोद्धार कराने के लिए यह सारा महान् परिश्रम किया जारहा है ? कुछ लोग कहते थे कि ये मूर्ख आर्यसमाज की शिक्षा के बहकावे में आकर मूर्ति विरोधी हो गये हैं ।

कश्चित्तु तेषां जनकस्य मित्रम् निशम्य वृत्तं विदिताखिलार्थः ।
प्रोवाच गत्वा किमिदं ह्यकृत्यम् कृतं नु ! युष्माभिरकाल एव ।१३।

उनके पिता का कोई मित्र इस सारी घटना को सुन कर सब कुछ समझ

गया। और उनके पास आकर बोला—अरे ! तुम लोगों ने बेमौके ही ये क्या कर डाला ?

न कार्तिको नैव च पूर्णिमातिथि-
र्न वार्धरात्रं न नभः सतारकम्।
अज्ञाततत्त्वैः किमिदं विडम्बनम्
असाम्प्रतं ह्याचरितं नु साम्प्रतम् ॥१४॥

न तो कार्तिक मास है, न पूर्णिमा तिथि, न आधी रात और न ही आकाश तारों से युक्त था। पूरा रहस्य बिना समझे हुए ही अब तुमने ये बेमौके क्या कर डाला।

सुविस्मितास्ते जगदुः पितृव्य !
लेखानुसारं यदि मन्दिरे स्वम्।
तदात्र कालस्य हि को विचारः
'कूपे स्थितं वारि सदैव लभ्यम्' ॥१५॥

विस्मित से हुए वे कहने लगे— चाचा जी ! इस बही में लिखे हुए के अनुसार यदि धन मन्दिर में है तो समय आदि का क्या विचार करना ! 'कूएं में विद्यमान जल तो कभी भी प्राप्त किया जा सकता है।

सखाऽब्रवीत्सम्प्रति कालतत्त्वम् न शिक्षणीयं समये ब्रवीमि।
देवालयोऽयं ह्यधुना तु सौम्याः निर्मापणीयः खलु पूर्वतुल्यः ॥१६॥

पिता के मित्र ने उत्तर दिया— इस समय मौके और बेमौके के विषय में ज्यादा समझाने की कोई आवश्यकता नहीं। समय आने पर सब बताऊँगा। इस समय तो प्रिय बालको ! मन्दिर को पुनः पहले की तरह बनवा डालो।

तथाकृते देवगृहे प्रतिष्ठिते समागते कार्तिकमासि शोभने।
यथोक्तकाले गगने सतारके सखाब्रवीत् तान् समयः समागतः ।१७।

उसकी आज्ञानुसार श्रेष्ठी पुत्रों ने ऐसा ही किया। मन्दिर की पुनः प्रतिष्ठा के बाद उपरोक्त निश्चित समय पर सुन्दर कार्तिक मास की पूर्णिमा आई। आकाश

में तारे झिलमिला रहे थे। अर्धरात्रि के समय सेठ का मित्र लड़कों से बोला चलो। वह समय आ गया है।

'भो भोः ! शृणुध्वं विधुसुप्रकाशे देवालयीयोन्नतभागछाया।
यत्रास्ति भूमौ खलु स प्रदेशो निश्चित्य पूर्वं खननीय आस्ते ॥१८॥

अरे ! सुनो, चान्द की चांदनी में चमकते हुए मन्दिर के कलश की छाया भूमि के जिस भाग पर पड़े वहीं निश्चित रूप से खोदना चाहिए।

यथोपदेशं धनिकस्य पुत्राश्चख्नुर्यदा तं भुवनप्रदेशम्।
लब्ध्वानिधिं रत्नचयैः प्रपूर्णम् पुनः कृतार्था अभवन् धनाढ्याः ॥

उपदेशानुसार निश्चित स्थान को खोद कर उन्होने बही में लिखित संख्या के अनुसार सारा द्रव्य प्राप्त कर लिया और पुनः अपनी धनिकावस्था को प्राप्त किया।

सखावदत्सज्जनसम्प्रदायः सर्वार्थसिद्धौ गुरुगम्य एव।
परोक्षवादा ऋषयस्तु सर्वे हरेः प्रियं चात्र परोक्षमेव ॥२०॥

मित्र बोला—सज्जनों का सम्प्रदाय गुरु कृपा से ही सम्पूर्ण सिद्धियों को देता है। महर्षि परोक्षवाद के प्रवर्तक और पूर्ण ज्ञाता थे। परोक्ष ही भगवान को प्रिय है।

विद्या ह वै ब्राह्मणमाजगाम
गोपाय मां ते निधिरस्मि विप्र !
तस्माद्धि वेदान्तपुराणशास्त्रे
परोक्षवादं प्रवदन्ति सन्तः ॥२०॥

विद्या ब्राह्मण के पास जा कर बोली—मेरी रक्षा करो मैं तुम्हारा कोश हूं। इसी लिए वेद-वेदान्त-पुराण शास्त्रों में सज्जनों ने परोक्षवाद की परिकल्पना की है।

यो मातृमान् वै पितृमांश्च लोके आचार्यवान् यः पुरुषः स वेद।
असूयका ये खलु पापनिष्ठास्ते वेदतत्त्वस्य न पात्रभूताः ॥२१॥

जो व्यक्ति पिता-माता और आचार्य की श्रद्धापूर्वक सेवा करने वाला है—वही ज्ञान प्राप्त कर सकता है। जो उनकी निन्दा करते हैं वे पापी वेद ज्ञान के अधिकारी नहीं हैं।

धनी महेशस्तनयास्तु जीवाः कोशो विमोक्षः सुसखोपदेष्टा ।
वेदान्ततत्त्वं खलु कूटलेखः सङ्केतचिह्नानि च मन्दिराणि ॥२२॥

ईश्वर धनिक है, पुत्र जीव रूप है, गुप्त कोश मोक्ष है, मित्र ही गुरु है, वेदान्त तत्त्व कूट लेख है, सांकेतिक स्थल सम्पूर्ण मन्दिर है।

छायेशमूर्तिर्विधुरात्मनिष्ठा छायापदं हृत्खननञ्च पूजा ।
दृष्टान्तमेनं प्रविचार्य्य सम्यक् दार्ष्टान्तभावः परिकल्पनीयः ॥२३॥

ईश्वर मूर्ति छाया है, चन्द्रमा आत्मनिष्ठा है, छाया का सांकेतिक स्थान हृदय है और खोदना ही पूजा है। इस दृष्टान्त को दार्ष्टान्त रूप में भली प्रकार समझना चाहिए।

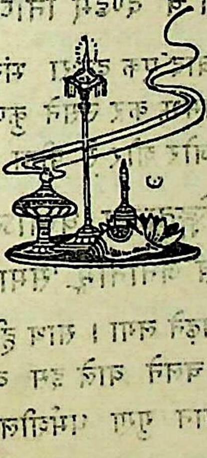

९३१६१

निजात्मबोधः खलु मुक्तिमूलम्

(मैं कौन हूँ ?)

यः पुष्पवत्याः खलु मातुलान्या रजोयुतं वारि पिबत्यजस्रम् ।
स भंगडाख्यः श्वसुरस्य गेहम् ययौ वसन्तोत्सवदर्शनाय ।।१।।

एक बार रजोगुणकारी भांग पीने वाला कोई भंगड़ वसन्तोत्सव देखने के लिये ससुराल के लिये चला ।

मार्गे वने कूपमवेक्ष्य चारु भंगां सुनिष्पिष्य पपौ मुखेन ।
स्वकुण्डिकां पेषणादण्डमुग्रम् बद्ध्वा स्वपृष्ठे शयनं चकार ।।२।।

रास्ते में एक स्थान पर उसने गहन वन में सुन्दर सा कुआं देखा । वहीं पर भाँग रगड़ कर आनन्द पूर्वक पीगया । बाद में कुण्डी और सोटे को पीठ पर बांध कर सोने लगा ।

सुप्ते तु तस्मिन्नपरोऽपि तादृग् ददर्श संगत्य जनं शयानम् ।
उन्मुच्य तत्पेषणिकां च दण्डम् निष्पिष्य भङ्गामपिबद् यथेच्छम् ।।

उसके सोने के बाद एक दूसरा भंगड़ वहां आया । सोते हुये व्यक्ति को जगाना उचित न समझ कर उसने कुण्डो और सोटा चुपचाप खोल कर भांग रगड़ी तथा खूब जोर शोर से पीना प्रारम्भ किया ।

अचिन्तयद् भूरितरङ्गितात्मा धन्योऽस्त्ययं सर्वसमृद्धियुक्तः ।
सत्यं किलैतद् भणितं जनानाम् 'समानशीलव्यसनेषु सख्यम्' ।।४।।

भांग का नशा चढ़ने लगा । साथ ही साथ वह सोच रहा था कि–सब चोजों को साथ लेकर चलने वाले इस व्यक्ति को धन्य है । महापुरुषों ने ठीक ही कहा कि समान गुण धर्मशील वाले व्यक्तियों से ही मित्रता उचित होती है ।

न बोधनीयः पुरुषः शयानः प्रतीयतेऽयं मम सार्थवाहः।
तस्मादिमां पेषणिकाञ्च दण्डम् बध्नाम्यहं हुं निजपृष्ठदेशे ॥५॥

सोते हुए व्यक्ति को जगाना अनुचित है। और ये दीख भी मेरा सहयोगी ही रहा है। इस लिए कुण्डी और सोटा मैं अपनी पीठ पर ही बान्ध कर सोता हूं।

समुत्थितोऽयं शयनाद् यदा माम् स्वपार्श्वगं द्रक्ष्यति तुल्यशीलम्।
तदा त्ववश्यं निजवस्तुहेतोः सम्बोध्य मां प्रक्ष्यति सम्यगैतत् ॥६॥

सोकर उठने के उपरान्त जब ये अपने पास लेटे हुये मुझे देखेगा तब समान स्वभाव का समझ कर, और अपनी कुण्डी आदि को लेने के निमित्त मुझे उठाकर सारी बातें अवश्य अच्छी प्रकार पूछेगा।

व्याप्तिर्यथोक्ता खलु धूमवह्न्योस्तथैव नित्या मम मातुलान्याः।
विवेकवान् पाणिनिराह सूत्रे 'प्यायः' प्रतिश्रुत्य ततस्तु 'पी'ति ॥७॥

जिस प्रकार 'यत्र २ धूमस्तत्र तत्र वह्निः' ये व्याप्ति है उसी प्रकार मेरी और भांग की भी व्याप्ति है। बुद्धिमान् पाणिनि ने अपने सूत्र में इसी लिए पहले 'प्यायः' और फिर 'पी' ये कहा है।

शिवप्रिये द्वे जगति प्रसिद्धे भङ्गा मनोज्ञा विमला च गङ्गा।
तयोस्तु गङ्गा शवपुष्पभक्षा भङ्गा पुनर्मोदकभक्षदक्षा ॥८॥

जगत् में आशुतोष शङ्कर की दो प्रियायें प्रसिद्ध हैं। आनन्ददायिनी भांग, और निर्मल जल वाली गङ्गा। किन्तु इन दोनों में गङ्गा तो मृतक शव के 'फूल' खाती है और भङ्गा (भांग) लड्डू पेड़े आदि।

शाकुन्तले प्राह स कालिदासो 'भङ्गाभिरामं पततीति' सत्यम्।
हालाहलोद्वेगविनाशनाय पीयूषरूपां पिबतीह शम्भुः ॥९॥

'अभिज्ञान शाकुन्तल' में महाकवि कालिदास ने 'भङ्गाभिरामं पततीति'' कह कर इसी विजया भवानी के गुण गाये हैं। शंभु भी हलाहल विष की गर्मी को शान्त करने के लिए अमृत स्वरूप भांग ही पीते हैं।

इत्थं स भङ्गां निगमागमेषु भुव्यन्तरिक्षे द्यवि यत्र तत्र ।
विराट्स्वरूपामवलोक्य मत्तः सुस्वाप संविस्मृतसर्वगात्रः ॥१०॥

इस प्रकार वेद शास्त्रों पृथ्वी–आकाश–स्वर्ग में सब जगह विराट् रूप से व्याप्त भांग का वर्णन करके सर्वत्र उसे ही देखता हुए वह भङ्गड़ सुध बुध खोकर सो गया ।

ततोऽपराह्णे प्रथमश्च भङ्गड़ो यदोत्थितोऽसौ निजचक्षुषी मृजन् ।
निजान्तिके पृष्ठसुबद्धपेषणीदण्डं शयानं ह्यपरं व्यलोकयत् ॥११॥

कुछ दिन ढलने पर जब पहला भंगड़ आंखें मसलता हुआ खड़ा हुआ तो उसकी दृष्टि अपने निकट सोते हुए दूसरे व्यक्ति पर पड़ी जिसकी पीठ पर कुण्डी सोटा बन्धा हुआ था ।

स्वपृष्ठदेशं परिलक्ष्य शून्यम् तथा द्वितीयस्य च साधनाढ्यम् ।
उत्थाप्य तं प्राह सुविस्मितोऽयम् किं त्वं ह्यहं वाप्यथवाऽस्म्यहं त्वम् ॥

अपनी पीठ को खाली और दूसरे की पीठ पर कुण्डी सोटा बन्धा हुआ देखकर उसने दूसरे को उठाया और आश्चर्य से पूछने लगा ‘क्या तुम मैं’ हो, या ‘मैं’ ‘तुम’ हूं ।

नाहं त्वहं किन्त्वहमेव हुं त्वम् द्वावेव किं चाहमथ त्वमेव ।
दण्डादिहीनस्त्वहमस्मि नाहम् भो भो ! नयव्याप्तिरिह प्रमाणम् ॥

“मैं” “तुम” नहीं हूं, बल्कि ‘तुम’ ‘मैं’ हो । या दोनों ही ‘मैं’ हैं । अथवा दोनों तुम हैं । कुण्डी और सोटा न होने के कारण ‘मैं’ तो ‘मैं’ हूं नहीं । यहां न्यायशास्त्र के अनुसार व्याप्ति से ये समझना चाहिये—“यो यः पेषणिकादण्डवान् स स “अहम्” ।

ततोऽपरः प्राह किमुच्यते त्वया त्वमेव चाहं तव धारणा वृथा ।
त्वं देवदत्तः खलु कृष्णवर्णवान् अहं पुनर्गौरतनुस्तथापरः ॥१४॥

तब दूसरा भंगड़ उठकर बोला ‘तू’ ‘मैं’ हूं और ‘मैं’ ‘तू’ तेरी ये व्यर्थ

की धारणा है। तू काले वर्ण वाला देवदत्त है और मैं गोरे रंग का दूसरा ही व्यक्ति हूं।

इत्थं द्वयोश्चलति भङ्गडयोर्विवादे
कश्चित्तपोधनमुनिः सहसाऽऽजगाम।
तावाह 'कोऽहमिति' वां प्रबलो विवादो
वेदान्तगम्य इति नात्र शयावकाशः ॥२५॥

उनका जब इस प्रकार विवाद हो रहा था तब एक तपस्वी महात्मा वहां पर आये और उन दोनों से बोले 'मैं' कौन हूं? तुम दोनों का यह गहन विवाद केवल वेदान्त शास्त्र के अध्ययन से ही ज्ञातव्य है इस बात में सन्देह को तनिक सा भी अवकाश नहीं है।

'अहं' पद प्रोक्त इहास्ति जीवः 'ब्रह्मैव' सोऽस्तीति च शङ्करोक्तिः।
तयोरभेदः खलु शास्त्रसिद्धो दृष्टानुवादैकपरो हि भेदः ॥१६॥

यहां 'अहं' पद से जीव विवक्षित है। 'वह' जीव 'ब्रह्म' ही है। ऐसा भगवान् शङ्कराचार्य का सिद्धान्त है। जीव और ब्रह्म दोनों का अभेद शास्त्रों में भी वर्णित है। भेद प्रतिपादक शास्त्र-वाक्य वास्तव में प्रत्यक्ष दृष्ट मात्र का ही अनुवाद करते हैं।

'ज्ञाज्ञा' विति प्राह द्विभेदकश्रुतिश्चिन्मात्रसाम्यत्वमभेदलक्षणम्।
य 'ईश्वरोऽस्मीति' च वक्ति मूढ़धीः स नारकी माध्वमतं सहैतुकम् ॥

परमात्मा 'ज्ञ'=सर्वज्ञ है और जीव 'अज्ञ'=अल्पज्ञ है यह विभेदक श्रुति है। जीव और ब्रह्म का चिन्मात्रत्व साम्य ही अभेद श्रुतियों का विषय है। जो व्यक्ति 'मैं ईश्वर हूं' ऐसा कहता है—वह 'ईश्वरोऽहमहं भोगी' इस गीता वाक्य के अनुसार मूढ़ है नरकगामी है। यह श्री मध्वाचार्य जी महाराज का मत है।

अद्वैतिभिर्भेदकवागुपस्थितिरभेदवाक् द्वैतमतावलम्बिभिः।
द्वैधं श्रुतीनामुभयैर्मताशयैरापाततः स्वीक्रियते न संशयः ॥१८॥

अद्वैत मतावलम्बी भेदक श्रुति वाक्यों की उपस्थिति स्वीकार करते हैं। द्वैतमत वाले भी अभेद प्रतिपादक वेदवाक्यों की सत्ता मानते हैं। इस तरह दोनों मत वालों की मान्यता के अनुसार आपाततः उभयविधश्रुति वाक्यों के कारण श्रुति द्वैविध्य स्वीकार करना ही पड़ता है।

समन्वये यद् चिदचिद्-विशिष्टम् ब्रह्मेति भावः खलु सर्वतन्त्रः।
अद्वैततेष्टा निगमे तयोर्हि रामानुजाचार्यमतं प्रसिद्धम् ॥१९॥

इस प्रकार उभयविध श्रुतियों के समन्वय करने पर 'चित् और अचित् विशिष्ट ब्रह्म है'। यह सर्वतन्त्र सिद्धान्त स्थिर होता है। वेद को चिद् अचिद्विशिष्ट ब्रह्म की अद्वैतता ही अभीष्ट है ऐसा श्री रामानुजाचार्य जी महाराज का सिद्धांत है।

भङ्गामदेनेह यथात्मविस्मृतिः कोऽहं भवद्भ्यामिति नैव बुध्यते।
तथाहि मायोन्मद एष पूरुषो विस्मृत्य नैजं पदमाप संसृतिम् ॥२०॥

भंग के मद से जैसे तुम लोग स्वयं को भूल गये कि 'मैं कौन हूं' इसी प्रकार माया से मत्त पुरुष अपने आप को भूल कर संसार सागर में गोते खाता है।

तस्मान्मनुष्यो निजमुक्तिकामो मायापतिं श्रीहरिमाश्रयेत्।
लब्ध्वाऽचिरात्तत्-कृपयात्मबोधम् प्राप्नोति विष्णोः परमं पदं तत्॥

इस लिए मुक्ति के इच्छुक व्यक्ति को मायापति प्रभु का आश्रय लेना चाहिए। उनकी कृपा से आत्मबोध होने पर ही मनुष्य विष्णु के परम पद को प्राप्त हो सकता है।

गूढोक्तिबुद्धं परिवर्त्यते मनः

(पते की गूढ़ बात सुनकर मन बदल जाता है)

अथैकदा नाट्यमभून् नृपाजिरे क्षणेन याता निखिला महा-निशा ।
श्रान्तान् नटान् वीक्ष्य जगाद सूत्रधृक् साङ्केतिकैः काव्यवचोभिरद्भुतैः

एक बार एक महाराजा के आंगन में नाटक का अभिनय हुआ । आनन्द २ में महानिशा समाप्त प्रायः हो चली, तब अपने पात्रों को थका मान्दा सा अनुभव करके [सुस्ती से रङ्ग में भङ्ग न हो अतः] सूत्र धारने अद्भुत कवितामय साङ्केतिक शब्दों द्वारा उन्हें [सचेत करते हुवे] कहा ।

बहुव्यतीतमत्यल्पं साम्प्रतं ह्यवशिष्यते ।
स्वल्पकालकृते किं भोः कलङ्को मूर्ध्नि धार्य्यते ॥२॥

अर्थ—बहु बीति थोरी रही, क्षण क्षण बीती जाय ।
एक घड़ी के कारणे क्यों कलङ्क ले जाय ॥

[उसका अभिप्राय था कि नाटक की बहुत सी कथा तो अभिनीत हो चुकी थोड़ी ही शेष है अब ढ़ीले पड़ कर क्यों मजा बिगाड़ते हो ।]

प्रादान्मुनिः स्वां स्फटिकाक्षमालां नृपात्मजो मौक्तिकदाम चारु ।
निष्कं सरत्नं नृपकन्यकाऽदात् पप्रच्छ राजा चकितः क्रमात्त्रीन् ॥३॥

[नट की उक्ति सुनकर] एक तपस्वी ने अपने गले से उतार कर स्फटिक माला उसे दे दी । राजा के पुत्र ने अपना बहुत सुन्दर मुक्ता मणियों का हार और राजा की कन्या ने अपना रत्न जड़ित तोड़ा दे दिया, राजा ने चकित होकर उक्त तीनों व्यक्तियों से ही क्रमशः इसका हेतु पूछा—

मुनिर्ह्यवोचत्तव वीक्ष्य वैभवं भवादृशः स्यामिति मे मनोऽभवत् ।
नटोक्तिमाकर्ण्य पुनर्विचारितं गतायुषः किं विभवैः प्रयोजनम् ॥४॥

मुनि ने कहा—राजन् आपके वैभव को देख कर मेरे मन में यह संकल्प दृढ़ हो गया था कि मुझे भी राजा के समान वैभवशाली होना चाहिये। परन्तु नट की कविता सुनकर पुनः मन में विचार आया कि चन्द वर्षों की अवशिष्ट आयु के लिये [भगवद् भजन छोड़ कर] नश्वर वैभव से क्या प्रयोजन सिद्ध होगा।

पुत्रोऽवदत्त्वं कृपणोऽसि तात ! दूनोऽस्मि नित्यं ह्यनवाप्य वित्तम्।
निश्चप्रचः श्वोदिवसे वधस्ते नटोक्तिबुद्धो हननान्निवृत्तः ॥५॥

युवराज ने कहा—पिता जी ! आप अति कंजूस हो ! मैं नित्य [दरिद्र पुत्रों की भांति] एक-एक कौड़ी के लिये तरसता हुआ तंग आ गया था। अतः कल का दिन आप की हत्या के लिये निश्चित कर चुका था, परन्तु नट की उक्ति से [विचार किया कि आखीर वृद्ध पिता मरणोन्मुख ही तो है फिर क्यों कलङ्क लूं] अतः इस उग्र पाप से निवृत्त हो गया।

जगाद कन्या नवयौवनाहं तथाप्यहो ! मे न कृतो विवाहः।
श्वो गन्तुकामा युवकेन सार्धं पापान्निवृत्ता नटवाक्प्रबुद्धा ॥६॥

कन्या बोली—पिता जी ! मैं प्राप्त यौवना हूं तथापि [कृपणता वश] आपने अभी तक मेरा विवाह नहीं किया अतः मैं कल ही एक युवक के साथ भागने वाली थी परन्तु नट की उक्ति से मुझे ज्ञान हो गया [कि मैंने जहां अब तक धैर्य्य रक्खा अब भी रक्खूं क्षणिक सुख के लिये क्यों कलङ्क लूं] मैं इस महापाप से हट गई।

तेषां वचांसि नृपतिः सहसा निशम्य
निर्विण्ण एष गृहदारधनात्मजेभ्यः।
सन्त्यज्य सर्व-विषयान् गतमानमोहोऽ-
रण्यं जगाम विरजो गतषष्टिवर्षः ॥७॥

राजा ने महात्मा, युवराज और अपनी कन्या की जब बातें सुनीं तो उसकी-घर, स्त्री, धन और पुत्रादि में जो आसक्ति थी वह सर्वथा काफूर हो गई, वह विषयोपभोगों की सब लालसाएं छोड़ कर मान मोह और रजोगुण से भी उन्मुक्त होकर साठ वर्ष की आयु में वन में प्रस्थान कर गया।

जनन्या हृदयम्

(मां का दिल)

प्रतीक्षमाणा चिरकालमेका माता सुतं प्राप बहुप्रयत्नैः ।
तं पालयामास च लालयन्ती दिने दिनेऽसौ ववृधे कुमारः ॥१॥

चिरकाल तक प्रतीक्षा करती हुई एक माता ने बड़े प्रयत्नों से एक पुत्र प्राप्त किया । बड़े लाड़ प्यार से उसका पालन-पोषण किया । माता की इस स्नेह–छाया से वह बालक दिनों दिन बढ़ने लगा ।

बाल्ये वयस्येव मृतस्तु तत्पिता निराश्रया भूत्कृपणा पतिव्रता ।
संपिष्य संकुट्य निनाय जीवनं स्वयं क्षुधार्तापि पुपोष बालकम् ॥

बाल्यावस्था में ही उस बालक का पिता दिवंगत हो गया, जिसके कारण वह पतिव्रता निराश्रया होगई । दूसरों का पीस कूट कर प्राप्त मजदूरी से जीवन व्यापन करने लगी । स्वयं भूखी रह कर भी वह बालक का पालन करती थी ।

स बाल्य-यौगण्ड-किशोरतां क्रमन् क्रमेण मात्रेप्सितमाप यौवनम् ।
साऽपि स्नुषालाभ-महोत्सवाशया दधार देहं जननी जरातुरा ॥३॥

वह बालक भी धीरे २ बाल्य, पौगण्ड एवं किशोर अवस्थाओं को पार करके माँ द्वारा चिर अभिनन्दित यौवनको प्राप्त करने लगा । वृद्धता से जर्जर हुई भी वह केवल पुत्रवधू दर्शन की लालसा से यथातथा अपने शरीर को धारण किये रही ।

गतेऽथकाले स युवा कदाचित् विलोक्य चैकां प्रमदां मुमोह ।
साप्युद्धता तेन गृहीत-चित्ता कन्दर्पतप्तं तमुवाच तन्वी ॥४॥

इसी प्रकार कुछ समय बीत जाने पर एक बार वह युवक किसी तरुणी को देखकर उसपर आसक्त हो गया। वह चञ्चल-हृदय वाली तरुणी उसके सौन्दर्य पर मुग्ध हो गई। काम-पीड़ित उस युवक से उस तरुणी ने कहा—

वृथा नु किं पश्यसि मां मनोज्ञ ! शक्नोसि किं मद्वचनं विधातुम् ।
वृणोमि कान्तं तरुणं तमेव, कूपेऽपि यो वै प्रपतेन्मदुक्तः ॥५॥

हे सुभग ! व्यर्थ ही क्यों ताँक–झाँक कर रहे हो ? मेरा कहा भी पूरा कर सकते हो ? क्यों कि मैं तो उसी सुन्दर तरुण के साथ विवाह करुंगी जो मेरे कहने से कूवे में भी कूद पड़े ।

ओम् ओम् तथोमिति जगाद यदा प्रमादी
वामा तमाह यदि सत्यमिदं त्वदुक्तम् ।
शीघ्रं तदानय गृहाद् हृदयं जनन्याः
प्रीता तवोपरि तदा बलिमाहरामि ॥६॥

कामान्ध युवक ने कहा— हां, हां तुम जो कुछ कहोगी मैं सब कुछ करुंगा। वह तरुणी बोली— यदि तुम्हारा कहना सचमुच टीक है तो तुम घर से जाकर अपनी माना का हृदय जल्दी ले आओ, तब मैं तुम्हारी बलैया लूंगी।

सुप्ताया उदरं विदार्य छुरिकाघातैर्जनन्याः सुतो ,
नीत्वा तद्-हृदयं जगाम तरसा तां सुन्दरी संस्मरन् ।
कामान्धो ह्यातज्जवेन, हृदयं भ्रष्टं करादब्रवीत्
हे प्राणप्रिय! पुत्र ! किन्नु पतनाद् घातस्तु जातो न ते ॥७॥

यह सुनकर वह कामान्ध युवक घर गया और वहां सोती हुई अपनी माना का छुरे से पेट फाड़ कर उसका हृदय निकाल लिया। माँ का कटा कलेजा हाथ में थामे उस सुन्दरी के स्मरण में तन्मय हुआ ज्यों ही वह चला जा रहा था त्यों ही ठोकर खाकर औंधे मुंह गिर पड़ा। और मां का वह कलेजा भी हाथ से छूट कर धरती पर जा गिरा। और माता का वह विदीर्ण हृदय बेटे की दुर्दशा देख कर बोल उटा कि हे प्राणप्रिय ! पुत्र ! गिरने से तुझे चोट तो नहीं लगी ?

अर्जुनदेवस्य गुरोर्जल-समाधिः

–(गुरु अर्जुन देव ने रावी नदी में समाधि ली)

गुरुः प्रसिद्धोऽर्जुनदेव आसीद्, विद्वान् मनस्वी श्रुतिधर्म-निष्ठः ।
लक्षाधिका यस्य विनम्रशिष्या आज्ञां तदीयां शिरसा वहन्ति ।१।

गुरु अर्जुन देव बड़े विद्वान् मनस्वी और वैदिक-धर्म में निष्ठा रखने वाले प्रसिद्ध हुवे, उनके लाखों विनम्र शिष्य थे जो उनकी आज्ञा को शिरोधार्य्य मानते थे ।

अथैकदा म्लेच्छ-जन-प्रपीड़िताः सम्भूय काश्मीरिक-पण्डितोत्तमाः ।
समागता अर्जुनदेव-सन्निधावूचुः प्रभो ! पालय हिन्दु-संस्कृतिम् ॥

एक बार म्लेच्छों से सताए हुवे कश्मीरी पण्डितों का मण्डल गुरु अर्जुन देव की सन्निधि में पहुंचा और बोला कि हे गुरुवर ! आप हिन्दु संस्कृति की रक्षा करे ।

म्लेच्छाधमोऽस्मान् कथयत्यभद्रो गृह्णीत दिव्यामिसलामदीक्षाम् ।
नो चेत् करिष्यामि समूलघातं मासो विचारार्थमयं प्रदत्तः ॥३॥

अधम म्लेच्छ हाकिम हमें कहते हैं कि तुम इसलाम मजहब को कबूल करो, नहीं तो मैं तुम सब को मौत के घाट उतार दूंगा । हमें सोचनें के लिये यह एक महीना दिया है ।

श्रुत्वा गुरुर्दीनदशामवोचद् म्लेच्छाधिपो मद्वचनात्स वाच्यः ।
यद्यर्जुमः स्याद् इसलाम-भक्तस्तदानुगा एव वयं तथास्मः ॥४॥

उनकी दीन दशा को सुनकर गुरु ने कहा कि आप जाकर म्लेच्छ हाकिम से मेरा सन्देश कह दो कि यदि गुरु अर्जुन देव मुसलमान बन जायगा तो हम सब भी उसके साथ ही मुसलमान बन जाएंगे ।

गत्वा द्विजा म्लेच्छ-पतिं तदेव, प्रोचुः स क्रुद्धो निजगाद दूतान् ।
आनीयतामर्जुन आशु वद्ध्वा तस्यैव पूर्वं खतनां करोमि ॥५॥

ब्राह्मणों ने जाकर म्लेच्छराज को गुरु का सन्देश सुना दिया । नवाब ने क्रुद्ध होकर अपने दूतों को हुकम दिया कि 'अर्जुन देव गुरु' को जल्दी बान्ध कर लाओ । मैं पहले उसी का खतना (मूत्रेन्द्रिय के अग्र भाग का छेदन) करता हूं ।

समागतः श्रीगुरुरर्जुनो यदा म्लेच्छस्तमूचे छलमिश्रितं वचः ।
सम्प्राप्य दीक्षाम् इसलामसंस्कृतस्त्वमद्य पीरो भव सर्व-वन्दितः ।६।

जब गुरु अर्जुन नवाब के सामने उपस्थित हुवे तो वह कपट भरे वचनों से उन्हें फुसलाने लगा, बोला—आप इसलाम मजहब को कबूल करके आज ही हम सब के पीर बन जाओ दुनिया तुम्हें सलाम करेगी ।

जगाद तं सद्गुरुरर्जुनस्तदा श्रुत्युक्तधर्मो हि महान् सनातनः ।
न जातु कामान्न भयान्न लोभतो धर्मं त्यजेयं न हि जीवनेप्सया ॥

तब सद्गुरु अर्जुन देव ने कहा कि वेदोक्त सनातन धर्म ही वस्तुतः अनादि धर्म है उसे किसी काम के कारण, भय से, किंवा लोभ से अथवा अपने प्राणों के भी भय से मैं नहीं छोड़ूगा ।

वाग्वाण-विद्धो यवनाधिपस्तदा, जगाद दूतान् त्वरयैष हन्यताम् ।
निहत्य गां तद्रुधिराक्तचर्म्मणा संवेष्टितो मारयितव्य एषः ॥

गुरु के वचन रूप वाणों से आहत हुआ म्लेच्छराज जल्लादों से बोला कि इसे फौरन कत्ल करदो, गाय को मार कर उसके रुधिर से तर चमड़े में लपेट कर इस का वध करना चाहिये ।

म्लेच्छोऽवदत्तेऽन्तिमकाल आगतो यद् रोचते ते कुरु तद् यथेप्सितम् ।
मिल स्वबन्धून् अपि भुंक्ष्व भोजनं अन्यद् यदिष्टं शृणु पश्य जिघ्र वा

नवाब बोला—अब तेरा मरने का वक्त आ पहुंचा है तू जो कुछ भी करना चाहता हो करले, अपने किसी भाई बन्धु से मिलना हो मिल ले, जो खाना चाहता हो सो खाले, सुन ले ! देख ले ! और सूंघ ले !

विचार्य सर्वं गुरुराह मे हृदि ह्येकैव जागर्ति विशुद्धलालसा ।
ऐरावती-पुण्य-जले यथाविधि स्नात्वाद्य कुर्य्यां हरिनाम-कीर्तनम् ॥

गुरु ने सब कुछ हृदय में विचार करके वहा—कि मेरे दिल में अब सिर्फ एक ही ख्वाहिश बाकी है कि मैं रावी नदी के पवित्र जल में विधिवत् स्नान करके आज प्रभु के नाम की रट लगाऊं।

मुक्तोगुरुर्गामभिवन्द्य सद्य ऐरावती-पुण्य-जलप्रवाहे ।
निमज्य सन्ध्यां समुपास्य धीरः, पुनर्निमग्नो ह्यपुनर्भवाय ॥११॥

गुरु ने बन्धन से उन्मुक्त होकर गाय को प्रणाम किया और रावी नदी के पवित्र जल प्रवाह में स्नान किया तथा सन्ध्योपासना के अन्त में पुनः स्नानके लिये डुबकी लगाई और जल समाधि द्वारा वीर-गति को प्राप्त हो गए।

धन्योऽयमर्जुनो देवो गोब्राह्मणहिते रतः ।
गोरक्षणाय यः प्राणान् परित्यज्याऽमरोऽभवत् ॥१२॥

गुरु अर्जुन देव धन्य है जो कि गो ब्राह्मण की रक्षा में सदैव तत्पर रहते थे, जिसने गोरक्षा के लिए जल-समाधि द्वारा अपने प्राण त्याग कर परम धाम प्राप्त किया। ◉

* * *

गुरु तेगबहादुरस्य शिरोदानम्

(गुरु तेगबहादुर का हिन्दु धर्म-रक्षार्थ शिर कटवाना)

अथैकदा तेगबहादुरो गुरुर्म्लेच्छैः कृतां हिन्दुदशां विचारयन् ।
चिन्तातुरस्तिष्ठति साश्रुलोचनो दैवात्तदागत्य सुतेन वन्दितः ॥१॥

एक बार गुरु तेग बहादुर म्लेच्छों द्वारा की जारही हिन्दुजाति की दुर्दशा का विचार करते हुवे बड़े चिन्तित हो रहे थे, उनके नेत्रों में आंसु झलक रहे थे। संयोग वश उसी समय गुरु गोबिन्द सिंह जी अपने पिता को प्रणाम करने को आ पहुंचे।

पप्रच्छ गोविन्दगुरुर्महामते ! किं चिन्त्यते सम्प्रति साश्रुलोचनैः ।
तेगोऽवदद् वैदिक-धर्म-रक्षणं महाजन-प्राणबलिं समीहते ॥२॥

गोविन्द सिंह ने पूछा– महान् बुद्धिमान् पिता जी इस समय बड़े चिन्तित होकर क्या सोचरहे हो आपके नेत्रों में ये अश्रुबिन्दु क्यों झलक रहे हैं ? गुरु तेगबहादूर ने कहा—पुत्र ! इस समय वैदिक धर्म की रक्षा का एक मात्र उपाय किसी महापुरुष का बलिदान सूझ रहा है।

गोविन्द आह भगवन् ! त्वमसि प्रसिद्धो
लोके महाजन इति प्रथितः पृथिव्याम् ।
त्वत्तोऽधिकः समुपयुक्तनरो न तस्माद्,
दत्वा गुरो! निजबलिं कुरु धर्म-रक्षाम् ॥३॥

गोविन्दसिंह ने कहा—भगवन् ! आप इस समय समस्त भूमण्डल में प्रसिद्ध महाजन के रूप में प्रख्यात हो ! आप से अधिक अन्य कोई व्यक्ति बलिदान के उपयुक्त नहीं दीख पड़ता इसलिये पिताजी ! आप ही अपने को बलिदान करके धर्म की रक्षा करें।

तेगोऽतिहृष्टः प्रशशंस पुत्रं त्वयाद्य मे धर्मपथः प्रदिष्टः ।
प्रातर्गमिष्याम्यहमिन्द्र-प्रस्थं, रक्षामि धर्मं स्वशिरोऽपि दत्वा ॥४॥

गुरु तेगबहादुर बहुत प्रसन्न हुवे अपने पुत्र की प्रशंसा करते हुवे बोले कि आज तूने मुझे धर्म का मार्ग दिखलाया है, मैं प्रातः काल ही दिल्ली के लिए प्रस्थान करूंगा अपना शिर देकर भी धर्म कीं रक्षा करूंगा।

अस्थीनि मे वीरगतिं प्रयाते, निक्षिप्य गङ्गाम्भसि पिण्ड-दानम् ।
पुराण-गाथा मृत-श्राद्ध-कृत्यं कार्य्यं हि गोपाल-द्विजानुमत्या ।५।

मेरे वीरगति को प्राप्त होने पर मेरी अस्थियें (फूल) हरिद्वार ब्रह्मकुण्ड में डालना, पिण्डदान गरुड़पुराण की कथा और अन्यान्य श्राद्ध कर्म अपने कुलपुरोहित गोपाल पण्डित की अनुमति से करना।

श्रुत्वा वचस्तेगबहादुरस्य शिष्या अनेकेऽप्यनुगा बभूवुः ।
परःशतैः शिष्य-गणैः समेतः स इन्द्र-प्रस्थं नगरं प्रतस्थे ॥६॥

गुरु तेग बहादुर के वचनों को सुनकर उनके अनेक शिष्य भी साथ चलने को उद्यत हो गये। इस प्रकार अपने सैंकड़ों शिष्यों सहित वे दिल्ली की ओर चल पड़े।

गच्छन्प्रगच्छन् कियताप्यनेहसा, सः स्त्रुघ्न-सज्ञं पुरमाविवेश हि ।
परन्तु शिष्या अनुगा क्रमेण तु, विहाय सार्थं स्वगृहं गता गताः ॥

चलते-चलते कुछ समय के अनन्तर वे आगरा नगर पहुंचे परन्तु साथ लगे बहुत से शिष्य एक-एक करके गुरुजी का साथ छोड़कर अपने २ घरों को भाग गये ।

ततोऽवदद् हा ! मम ते सखायः सङ्गं परित्यज्य गता यथेष्टम् ।
विपत्ति-काले रघुवंशनाथ ! एकस्त्वमेवासि ममावलम्बः ॥८॥

तब गुरु तेगबहादुर ने कहा कि—

दोहा—संग सखा सब तज गए, कोउ न निभियो साथ ।
कहु नानक अस विपत में, एक टेक रघुनाथ ॥

स इन्द्रप्रस्थे यवनाधिपेन प्रोक्तो मुसल्मान-मतं गृहाण ।
नो चेत् शिरस्ते पथि सर्व-गम्ये महासिना छेत्स्यति घातको द्राक् ॥

दिल्ली पहुंचने पर म्लेच्छ बादशाह ने कहा कि तू मुसलमान मजहब को ग्रहण कर ! अन्यथा जल्लाद चौराहे पर तेरे शिर को अपनी तलवार द्वारा धड़ से अलग कर देगा ।

जगाद तं तेगबहादुरो गुरुरात्माऽमरो मे श्रुति-शास्त्र-सिद्धः ।
न हिन्दुधर्मं प्रजह्यामि भीतो यद् रोचते ते कुरु मे न चिन्ता ॥१०॥

गुरु तेगबहादुर ने बादशाह को कहा कि वेद शास्त्रों के अनुसार आत्मा अजर अमर है, मैं डर कर अपने हिन्दू-धर्म को नहीं छोड़ सकता तुझे जो अच्छा लगे सो कर, मुझे इसकी कुछ भी चिन्ता नहीं ।

देहल्यां चान्दनी-चौक-विपण्यागारचत्वरे ।
दत्वा शिरोबलिं वीरो लेभे ध्रुवपदं परम् ॥११॥

देहली के चान्दनी चौंक बाजार के चौराहे पर अपने शिर की बलि चढ़ाकर यह वीर गुरु सर्वोत्तम ध्रुवपद मोक्ष को प्राप्त हो गया ।

भावेन तुष्यति सदा भगवाननन्तः

(भगवान् केवल भाव के भूखे हैं)

कश्चित्कृषाणः स्वगुरुं प्रणम्य, पप्रच्छ मन्त्रं निज-मुक्ति-हेतुम् ।
द्विजोऽपि तं गौ जयशब्दपूर्वं नृसिंह-मन्त्रं प्रददौ प्रसन्नः ।।१।।

किसी किसान ने अपने गुरु को प्रणाम करके अपने मोक्ष के लिये मन्त्र पूछा, गुरुदेव ने प्रसन्न हो कर उसे 'जय नृसिंह' यह मन्त्र प्रदान किया ।

रटन् स्मरन् मन्त्रमिमं स भक्तः प्रणम्य विप्रं स्वगृहं जगाम ।
गतोऽथदूरे पथि दैवयोगात् चिन्तां ययौ विस्मृतमन्त्र एषः ।।२।।

वह ग्रामीण इस [अटपटे से] मन्त्र को रटता हुआ और स्मरण करता हुआ गुरुजी को प्रणाम करके अपने घर को चल दिया परन्तु दूर चले जाने पर मार्ग में दैवयोग से जब वह इस मन्त्र को भूल गया तो बहुत चिन्ता में पड़ा ।

भूयोऽपि भूयः किल संस्मृतोऽपि स, यदा न मन्त्रः स्मृतिमागतश्चिरम् ।
तदा तदाकारसुतुल्यवर्णकं, स 'भैंस का सींग' इति स्मरन् ययौ ।।३।।

बार बार याद करने पर भी जब इस ग्राम्य को वह मन्त्र देर तक स्मरण नहीं आया तो वह अतीव चिन्ताग्रस्त हो गया, (बहुत विचार करने पर) 'जय नृसिंह' मन्त्र से मिलते जुलते अक्षरों वाला 'भैंस का सींग' ऐसा मन्त्र स्मरण करता हुवा आगे चल दिया ।

नद्यास्तटे कम्बलनिर्मितासने स्थित्वा सभक्ति जपतिस्म सस्वरम् ।
स 'भैंस का सींग'–इति स्मरन् हरिं प्रहर्षरोमाञ्चितसाश्रुलोचनः ।।

नदी किनारे कम्बल बिछा कर बैठ गया और अतीव श्रद्धा से ऊंचे

स्वर से 'भैंस का सींग' ऐसा मन्त्र जपता हुवा हरि का स्मरण करने लगा। भक्ति के उद्रेक से वह रोमाञ्चित हो रहा था और उसके नेत्रों से अविरत प्रेमाश्रु बह रहे थे।

स शेषशायी निखिलान्तरात्मा ज्ञात्वा रहस्यं समुदं जहास ।
पप्रच्छ पद्मा कमलायताक्षं निर्हेतुकं किं हससि प्रभो ! त्वम् ॥५॥

घट-घट में व्यापक शेषशय्या पर पड़े भगवान् भक्त के इस अनोखे मन्त्रजाप को जान कर बड़े प्रसन्न हुवे और स्वयमेव हँसने लगे। लक्ष्मी जी ने चकित होकर कमलनयन भगवान् से पूछा कि महाराज आप विना ही कारण एकाएक क्यों हँस रहे हो।

जगाद विष्णुः कथयामि किं प्रिये! वेदेषु नामानि बहूनि सन्ति मे ।
एकेन भक्तेन तथाप्यहो धृतं नवं हि नामाद्य ममातिशोभनम् ॥६॥

विष्णु भगवान् ने कहा—प्रिये ! तुझे क्या बतलाया जाय, यूँ तो वेदों में मेरे अगणित नाम भरे पड़े हैं परन्तु आज तो एक भक्त ने मेरा बहुत विचित्र नया ही नाम रख छोड़ा है।

कोऽयं सुभक्तः? किमु नाम ते धृतमित्युत्सुकां दर्शन-लालसां श्रियम् ।
सहानयन् श्रीपतिराययौ, नदी-तटान्तिकं प्राह च पद्मसम्भवाम् ॥

[लक्ष्मी ने पूछा महाराज !] वह ऐसा कौन भक्त है ? और उसने आपका ऐसा क्या नया नाम धरा है ? मुझे यह जानने की बड़ी उत्कण्ठा है और देखने की भी लालसा है। तब भगवान् उत्कण्ठित लक्ष्मी को साथ ले कर नदी के किनारे जा पहुंचे और उससे बोले।

अहन्तु तावद् निभृतोऽत्र गर्ते तिष्ठामि याहि त्वमु भक्तपार्श्वे ।
तथा कृते हन्त! ददर्श डित्थं तं 'भैंस का सींग' रटन्तमुच्चैः ॥८॥

(भगवान् ने कहा) मैं तो तब तक इस गढ़े में छुपकर चुपचाप बैठता हूं और तू भक्त के पास जा ! ऐसा करने पर लक्ष्मी ने निकट जाकर देखा कि एक ग्राम्य जन ऊंचे स्वर से 'भैंस का सींग, भैंस का सींग' ऐसा चिल्ला रहा है।

लक्ष्मीः परावृत्य जगाद विष्णुं ग्राम्यो जनः स्वां महिषीं विरौति ।
न हि प्रिये ! मां रटति प्रपन्नः संपृच्छ गत्वा यदि संशयस्ते ।।९।।

लक्ष्मी ने वापिस लौट कर भगवान् से कहा—महाराज ! वह तो कोई गंवार किसान अपनी भैंस को टेर रहा है [भगवान् बोले] नहीं प्रिये ! वह तो मेरा शरणागत होकर मुझे ही स्मरण कर रहा है, यदि इसमें तुझे कुछ भी सन्देह है तो जाकर पूछ देखो ।

समाधि-मग्नं पुनरेत्य लक्ष्मीः पप्रच्छ 'कं स्तौसि' करं गृहीत्वा ।
स भग्नवृत्तिः कुपितोऽवदत्तां आं चञ्चले! ते दिधिषुं भजामि ।।१०।।

समाधिमग्न भक्त के पुनः निकट जाकर लक्ष्मी ने हाथ से झकझोर कर उससे पूछा—अरे तू किसको स्मरण कर रहा है ? वह समाधि टूट जाने के कारण निरानन्द होकर गुस्से से झुंझला कर लक्ष्मी से बोला— अरी चञ्चल ! तेरे खसम को याद कर रहा हूं ।

पप्रच्छ भूयः क्वनु मे स भर्ता यं मुग्ध! सेर्ष्यं 'दिधिषुं' ब्रवीसि ।
सोऽप्याह किं पृच्छसि यत्र तत्र कुत्रापि गर्ते पतितो ह्यनाथः ।।११।।

लक्ष्मी ने पुनः पूछा कि अरे अज्ञ ! बता मेरे वे स्वामी कहां हैं ? जिन्हें तूं झुँझलाकर 'खसम' बता रहा है । वह बोला– क्या पूछती है वह अनाथ भी जहां तहां यहीं कहीं खड्डे में पड़ा होगा ।

श्रुत्वा तदुक्तिं चकिता रमा हरिमुवाच सङ्गत्य निपत्य भूतले ।
धन्यो भवान् धन्यतमोऽस्त्ययं जनो, यस्त्वां स्मरत्येव च वेत्ति गर्तगम्

भक्त की [कही पते की] बातें सुनकर लक्ष्मी बहुत चकित हुई, भगवान् के निकट आकर साष्टाङ्ग प्रणाम पूर्वक बोली—भगवन् ! आप धन्य हैं और आपका यह नया भक्त भी अतीव धन्य है–जो न केवल आपका स्मरणमात्र ही कर रहा है, अपितु आप खड्डे में छुपे हो वह भी जानता है ।

विधेः दूषणान्वेषणम्

(विधाता की भूल की खोज)

अथैकदा कोऽपि कुतार्किकाग्रणी यः पण्डितम्मन्य इति प्रसिद्धः ।
उच्चैस्तरां घोषयतिस्म साग्रहम् जगद्-विधाता नितरां विमूढ़ः ।।

कोई कुतर्की विचारों का व्यक्ति जो स्वयं को महान् पण्डित समझे हुए था—कहा करता था कि संसार को बनाने वाला ब्रह्मा बिल्कुल मूर्ख है। अपनी इस बात को वह हठपूर्वक प्रमाणित करता था।

अहो न चेन्मूर्खतमः पितामहस्तदास्य सृष्टिर्विकला कथं भवेत् ।
पदे-पदे तद्-रचितेषु वस्तुषु प्रत्यक्षदोषान् गणयन्तु मेऽनुगाः ।।

मेरे अनुयायियो ! यदि ब्रह्मा अव्वल दर्जे का बेवकूफ न होता तो उसकी सृष्टि अधूरी कैसे होती ! मैं कदम कदम पर उस की बनाई हुई वस्तुओं में प्रत्यक्ष दोष गिनवाता हूं, गिनो ।

गन्धं सुवर्णे, फलमिक्षुदण्डे, नाऽकारि पुष्पं खलु चन्दनस्य ।
विद्वान् धनी नैव नृपश्चिरायुः, धातुः पुरा कोऽपि न बुद्धिदोऽभूत् ।।

सोने में सुगन्ध, ईख में फल और चन्दन में फूल न देना मूर्खता ही तो है। विद्वान् को धनवान् तथा राजा को दीर्घायु न बनाना मूर्खता की पराकाष्ठा है। वास्तव में ब्रह्मा को बुद्धि देने वाला पहले कोई था ही नहीं।

इत्थं सगर्वं प्रलपन्नितस्ततो बभ्राम लोके सगणः सबान्धवः ।
न मत्समोऽन्यो भुवि बुद्धिसागर इत्येव चित्ते स्मयमानमानसः ।।४।।

यही बात कहता हुआ वह अपने अनुयायियों को साथ लिए सब जगह घूमता था। 'मेरे समान कोई भी बुद्धिमान् नहीं है' इस गर्व में ही वह फूल रहा था।

दैवात्तदानीं स सुरम्यकानने
सुविस्तृते पुष्पफलान्वितद्रुमे ।
दृष्ट्वा तु शोभां विचरन् ससाहसम्
जगाद भोः ! पश्यत मूर्खतां विधेः ।।५।।

भाग्यवश वह एक बार बड़े विशाल उद्यान में घूम रहा था। फूल फल से लदे वृक्षों की शोभा देखने योग्य हो रही थी। वह अचानक बोला—अरे ! ब्रह्मा की मूर्खता देखो।

कूष्माण्डवल्ली नितरां तु तन्वी, फलं महत् स्थूलतमं तथाऽस्याः।
अहो ! विधेर्बुद्धिविपर्ययोऽयम् मृणालसूत्रेण गजो निबद्धः ।।६।।

कद्दू की बेल कितनी पतली और फल कितना विशाल है। ब्रह्मा की बुद्धि फिर गई है जो कोमल मृणाल तन्तुओं से हाथी को बान्धना चाहा है।

अहो ! जनाः पश्यत चूतवृक्षम्
एषोऽतिलम्बः फलमस्य सूक्ष्मम्।
लोकोक्तिरेषाऽवितथा कृतात्र
महोष्ट्रकण्ठे लघु-किंकिणीयम् ।।७।।

आप लोग ब्रह्मा की बेवकूफी का और उदाहरण देखिये। इस इतने विशाल लम्बे चौड़े आम के वृक्ष पर कितने छोटे छोटे फल हैं। यहां तो वही कहावत चरितार्थ हो रही है कि 'ऊंट के गले में घुंघरू की घन्टी'।

इत्थं विधेः सृष्टिगतांश्च दोषान् अन्विष्यमाणः स्थगितः श्रमेण।
मध्याह्नकाले सहकारमूलमाश्रित्य सुप्तो बहुघर्मतप्तः ।।८।।

इस प्रकार विधाता की सृष्टि में दोष ढूंढ़ते २ वह कुतर्की थक गया। मध्याह्न काल में धूप से व्याकुल होकर वह एक आम की छाया में सोने लगा।

दैवात्तदोत्तानशयस्य तस्य काकेन छिन्नं फलमेकमार्द्रम्।
दूराच्च्युतं प्रोन्नतनासिकायाम् पपात सद्यो गुलिकेव तीक्ष्णम् ।।

दुर्भाग्यवश वह ऊपर की ओर मुख किये सो रहा था। उसी समय कौव्वे ने एक ताजा आम काटा। बहुत ऊँचे से टूट कर गिरा हुआ वह आम गोली की तरह तेजी से उस की नाक पर आ कर गिरा।

स भिन्ननासो रुधिराभिषिक्तो मर्माहतस्तत्क्षणमाप मूर्च्छाम्।
शिष्य-प्रशिष्या अथ बान्धवाश्च चक्रुः समेता उपचारमस्य ।।

नाक फूटने पर रक्त की अधिकता से सारे वस्त्र भर गये। मर्म पर चोट लगने से वह मूर्च्छित हो गया। सारे भाई-बन्धु-शिष्य एकत्रित हो कर उपचार में लग गये।

स लब्धसंज्ञो ह्यवदत् स्वपार्षदान् विनाशयध्वं विधिदोषतालिकाम् ।
न क्वापि दोषो विधिसृष्टवस्तुषु ममैव मस्तिष्कशिरासु दुष्टता ॥

होश आते ही उसने अपने अनुयायियों को आज्ञा दी । ब्रह्मा की भूलों की वह सूचि नष्ट कर दो । विधाता की सृष्टि में दोष कहीं भी नहीं है मेरे मस्तिष्क का ही सारा विकार है ।

अहोऽद्य मे बुद्धिहिमालयस्य तर्कानुसारं यदि चूतवृक्षे ।
कूष्माण्डतुल्यः फलसंभवश्चेत् तदात्ववश्यं मृतिरेव मे स्यात् ॥

हाय ! आज यदि मेरे तर्क के अनुसार आम के वृक्ष पर कद्दू के आकार का फल होता तो मेरी मृत्यु ही निश्चित थी ।

गन्धं यदि स्यात्कनके तु चौरो दूरात्तदाघ्राय कथं न लुण्ठेत् ।
इक्षोः फलं मुष्टिमितं प्रकल्प्य क्व शर्करा स्यात् सुलभा तदानीम् ॥

यदि सोने में सुगन्ध हो तो चोर दूर से सूंघ कर ही क्यों न चुरा लेते । ईख में यदि छोटा सा कोई फल लग भी जाय तो फिर (इतनी अधिक) चीनी, शक्कर और गुड़ कहाँ से होता ।

किं सर्वदेशेषु भवेत्तदाप्तिर्विचार्य्यतां वै मलये सपुष्पे ।
न शास्त्रचिन्ता धनदुर्मदेषु न जीवनेच्छुर्विजयाधिकारी ॥१४॥

यदि चन्दन में फूल हों भी तो (वे मलय पर्वत पर ही होने के कारण) सर्वत्र प्राप्य नहीं हो सकते । विद्वान् व्यक्ति के पास धन हो जाये तो धनमद होने के कारण शास्त्रों का स्वाध्याय नहीं कर सकता । विजयलक्ष्मी को चाहने वाला राजा जीवन का भूखा नहीं होता ।

कुतर्कमाश्रित्य मया तु दोषा ये ये हि सृष्टौ कथितास्तदानीम् ।
ते ते गुणाः सम्प्रति चाद्रियन्ते निवृत्तदोषा नतमस्तकेन ॥

मैंने व्यर्थ की दलील दे कर विधाता की सृष्टि में जो जो अवगुण या कमियें बताई थीं, [मेरे मस्तक के सब दोष दूर हो गए अतएव] मैं अब विधाता की बुद्धिमत्ता के प्रति शिर झुकाता हुवा उन कथित सब दोषों को गुण मान कर आदर करता हूं ।

यथाहि पित्तोपहताक्षिमर्त्यो हिमाब्जशङ्खानपि वक्ति पीतान् ।
तथाहि पाश्चात्यकुशिक्षयाऽद्य निन्दति केचिद् भुवि हिन्दुशास्त्रम् ॥

जैसे पित्तरोग (पीलिया) होने पर व्यक्ति सीप वर्फ चन्द्रमा और शङ्ख आदि श्वेत वस्तुओं को भी पीली बताता है ऐसे ही पाश्चात्य कुशिक्षा से विकृत-मस्तिष्क कुछ लोग वेद शास्त्रों में तरह-तरह के दोष निकालते हैं।

तावन्न देवाः पितरो न पूजनं पाखण्डमेतत् प्रवदन्ति बाबवः।
यावन्न तेषां निजमस्तके पतेद् विपत्प्रहारः खलु मर्मपीड़कः॥

बाबू लोग तभी तक ही बकते हैं कि न कोई देवता है और ना ही कोई मृत पितर हैं तथा उनका पूजनादि करना भी कोरा पाखण्ड ही है जब तक इनके ऊपर मर्मघाती विपत्ति का प्रहार नहीं होता।

——:०:——

समर्थ स्वामी रामदासः

(समर्थ स्वामी रामदास जी)

लोके समर्थगुरुरित्युपनामधेयः
श्रीरामदासमुनिभागवतप्रधानः।
एकान्त-शान्तगिरिमूर्ध्नि वसन् वनान्ते,
भुक्त्वा फलानि वनजानि तपश्चकार॥१॥

लोक में 'समर्थ गुरु' इस नाम से प्रसिद्ध वैष्णव महात्माओं में अग्रगण्य श्री स्वामी रामदास हुए, जो वन में एकांत शान्त गिरि गुफा में बसते हुए जंगली फल खाकर तपश्चर्या करते थे।

अथैकदा त्राटकतत्परो मुनिः शुश्राव चीत्काररवं सुदारुणम्।
ददर्श धूमायितधूसरं नभः सोत्कः स पप्रच्छ किमस्त्युपप्लवः॥२॥

वह मुनि एक बार जब कि त्राटक ध्यान में मग्न थे तब उन्होंने बड़ी भारी दारुण चीत्कार ध्वनि सुनी, और आकाश को धुंवाधार हुआ देखा। उत्कण्ठित हो महात्मा ने पूछा यह क्या उपद्रव हो रहा है?

ऊचुर्जनाः सम्प्रति भारतेऽस्मिन् म्लेच्छाः स्वतन्त्रा विचरन्त्यसभ्याः।
घ्नन्ति देवानपमानयन्ति, दहन्ति वेदान् धनिकान् लुठन्ति।

लोगों ने कहा महाराज! इस समय भारतवर्ष पर असभ्य म्लेच्छों का आक्रमण हो रहा है. वे गौवों को मार रहे हैं, मंदिर तोड़ रहे हैं। वेदादि ग्रंथों को जला रहे हैं और धनिकों को लूट रहे हैं।

श्रुत्वा स्वदेशस्य तथाविधां दशां
शान्तोऽथदान्तो मुनिरर्दितोऽभवत् ।
किं मे विमुक्त्या तपसश्च किं फल-
महो्द्य देशो यवनैः प्रपीड्यते ॥४॥

स्वदेश की ऐसी दुरवस्था सुनकर वह शांत और दान्त भी मुनि अतीव दुःखित हुवे, सोचा मेरी मुक्ति से क्या लाभ ? तथा मेरे तप का क्या फल ! जब कि मेरा देश इस प्रकार यवनों द्वारा पीड़ित हो रहा है।

सोऽहं स्वकीयं सुतपोबलं महत्
कस्मिंश्चिदुग्रे निदधामि राजनि ।
म्लेच्छाऽधमान् क्षात्रबलेन मर्दयन्
स्वस्थं विधास्यामि विपन्नभारतम् ॥

सो मैं अपने उग्र तपोबल को किसी वीर क्षत्रिय में स्थापित कर के अधम म्लेच्छों को क्षात्रबल से तहस नहस कराकर विपद्ग्रस्त भारत को स्वस्थ बनाऊंगा।

गतेऽथ काले शिवरामदासयोर्बभूव योगो मणिरुक्मणोरिव ।
गुरुः सुशिष्याय सराममन्त्रकं काषायकेतुं तुलजां ददौ मुदा ॥

समय बीत जाने पर शिवाजी महाराज को समर्थ गुरु रामदास महाराज के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ मानो मणि और कांचन का ही योग हो गया। तब समर्थ गुरु ने अपने सुशिष्य शिवाजी को रामनाम मन्त्र, काषाय-ध्वज और तुलजा भवानी नाम की दिव्य शक्ति की प्रतिमा प्रदान की।

मन्त्राभिषिक्तखड्गेन शिवराजो महामतिः ।
मुगलम्लेच्छराज्यस्य विदधे मूलकृन्तनम् ॥७॥

नीति निपुण शिवाजी महाराज ने मन्त्र शक्ति से अभिषिक्त अपने उस भवानी नामक खड्ग से शताब्दियों से बद्धमूल मुगल साम्राज्य की जड़ों को खोखला कर डाला।

——:०:——

शठे शाठ्यं समाचरेत्

(शिवाजी ने औरंगजेब को छकाया)

औरंगजेबः शिवराजवीरमाहूय सद्भावमिषेण धूर्तः ।
निगृह्य तं सैन्यबलाभिगुप्ते दुर्गाजिरे रक्षितवान् सयत्नम् ॥१॥

धूर्त औरंगजेब ने मिलने जुलने के बहाने वीर शिवाजी को बुला कर बड़े यत्न से सैनिक पहरेदारों से सुरक्षित किले में नजर बन्द कर दिया ।

शठे चरेत् शाठ्यमिति प्रसिद्धां नीतिं समालम्ब्य स वीरवर्य्यः।
म्लेच्छेश्वरं प्राह गुरौ दशम्यां दानं करिष्यामि निजोद्भवेऽह्नि ॥

शठ के प्रति शठ नीति का ही आचरण करना चाहिये यह सोच कर वीरवर शिवाजी ने औरंगजेब बादशाह को कहा कि दशमी गुरुवार को मेरा जन्मदिन है। मैं उस दिन दान (खैरात) करना चाहता हूं ।

गावो हिरण्यं बहु वस्त्रजातं द्रोण्यस्तथा मोदकराशिपूर्णाः ।
मदीयवित्तेन सुसज्जिताः स्युः संरक्षकाः सर्वमिदं विदन्तु ॥३॥

गौवें, सुवर्ण, बहुत से वस्त्र और लड्डू आदि मिष्टान्न से भरे टोकरे ये सब मेरे निजी धन से तैयार हों, इन सब पहरेदारों को यह सूचना दे दी जाए ।

सुनिश्चिते दिव्यदिने द्विजेभ्यस्तथाऽधनेभ्यश्च ददौ यथेच्छम् ।
सुमोदकाच्छादितभाण्डमध्ये गुप्तो ययौ भृत्यशिरस्थ एव ॥४॥

सुनिश्चित वह शुभ दिन आने पर ब्राह्मणों को और निर्धन गरीबों को खूब मुंहमांगी वस्तुवें प्रदान कीं, अनन्तर स्वयं एक लड्डुओं से भरे टोकरे में छुप कर नौकर के मस्तक पर चढ़े ही कारागार से उन्मुक्त हो गए ।

सानन्दं स्वगृहं गत्वा म्लेच्छं प्रत्यलिखद्दलम् ।
तुरकाधम ! मां विद्धि धूर्तानां भगिनीपतिम् ॥५॥

शिवाजी ने सानन्द अपने घर पहुंच कर औरंगजेब को पत्र लिखा कि हे अधम तुरक ! समझ ले मैं धूर्तों का बहनोई हूं ।

शिवराजस्य महामानवता

(शिवाजी कीलोकोत्तर मानवता)

औरङ्गजेबः कुपितः स्वसैन्यं संप्रेषयामास शिवं गृहीतुम् ।
प्रान्ताधिपोऽहंमदशाहशूरो रुरोध गत्वा शिवराज-दुर्गम् ॥१॥

औरंगजेब ने क्रुद्ध होकर शिवाजी को गिरफ्तार करने के लिए अपनी बहुत सी सेना भेजी। सेना-नायक प्रान्त-पति अहमदशाह ने पहुंच कर शिवाजी के किले को घेर लिया।

बभूव युद्धं ह्यतिरोमहर्षणं, संमर्दिता म्लेच्छचमूः पराद्रवत् ।
सकन्यकोऽहंमदशाहदुर्मदो बलाद् गृहीतः शिवराज-सैनिकैः ॥२॥

दोनों सेनाओं में बड़ा भारी घोर घमासान युद्ध हुआ। आखीर मार खाकर म्लेच्छों की सेना भाग खड़ी हुई, सेनापति अहमदशाह और उसकी कन्या को शिवराज के सैनिकों ने कैद कर लिया।

यदाजिरे श्रीतुलजा-भवान्या हर्षोत्सवस्थः शिवराजसिंहः ।
तदा गृहीतामतिसुन्दरीं तामानिन्युरारादुपहारभूताम् ॥३॥

जब तुलजा भवानी के प्राङ्गण में विजयोत्सव मनाया जा रहा था तब सिंहासनासीन शिवाजी महाराज के सामने सैनिकों ने उस अत्यन्त सुन्दरी कन्या को उपहार की भाँति पेश किया।

बन्दी पिता तामवलोक्य लज्जितो व्रीडानता साप्यवगुंठनं व्यधात् ।
सभ्या भविष्यत्प्रतिकल्पनारता विचित्रवातावरणं तदाऽभवत् ॥

बन्दी पिता अहमदशाह अपनी कन्या को देखकर लज्जित हुवा और शरम के मारे नीचे मुख किये उस कन्या ने भी घूंघट से अपना मुख ढांप लिया। 'अब क्या होगा'—सभा में बैठे लोग ऐसी अनेक कल्पनाएं कर रहे थे, उस समय एक विचित्र वातावरण बन गया था।

अनिन्द्यरूपामवलोक्य कन्यकामुवाच नत्वा तुलजां महेश्वरीम् ।
अहो ! कदाचिज्जननी ममेदृशी स्यात्सुन्दरी स्यामहमप्यमेचकः ॥

शिवाजी ने उस अनिन्द्यरूपा सुन्दरी कन्या को देख कर अपनी इष्ट देवता माता तुलजा भवानी को प्रणाम किया और कहा—अहो! कदाचित् मेरी माता जीजाबाई भी इस कन्या की भान्ति सुन्दरी होती तो मैं भी गोरे रंग का होता ।

कन्यैषा मम हिन्दुसंस्कृतिदृशा दुर्गा भवानीसमा ।
पूज्या स्नानसुवस्त्र-भूषणवरैर्नम्या च तैः सैनिकैः ।।
अस्या एव तु कारणेन कुमतिर्म्लेच्छोऽप्ययं मुच्यताम् ।
दुर्गां मां समितिं प्रणम्य शिरसा सोऽप्येतु नैजं गृहम् ।।६।।

शिवाजी ने कहा—मेरी हिन्दु संस्कृति की दृष्टि से यह कन्या दुर्गा भवानी के समान है, इस लिए स्नान व वस्त्रभूषण आदि द्वारा इस की पूजा की जानी चाहिये और जो सैनिक इसे पकड़ कर लाए हैं उन्हें चाहिये कि वे इसे प्रणाम कर के क्षमा याचना करें । तथाच इस के ही कारण इस कुमति म्लेच्छ अहमदशाह को भी छोड़ देना चाहिये यह दुर्गा माताको, मुझ को और समस्त सभ्यों को शिर झुका कर प्रणाम करे और अपने घर लौट जाए ।

श्रुत्वा तु निर्णयमिदं यवनोऽतिहृष्ट
उच्चैर्जगाद सततं स सुभानअल्ला ।
कन्यापि मौन-वचसा प्रणनाम भूपं,
सभ्याश्च मोद-भरिता जयघोषमूचुः ।।६।।

शिवाजी के निर्णय को सुन कर अहमदशाह बहुत प्रसन्न हुवा और उच्च स्वर से बोल उठा 'सुभान अल्ला' । कन्या ने भी मौन वाणी से शिवाजी को प्रणाम किया । समस्त सभासद भी प्रसन्न हो कर जयघोष करने लगे ।

गोहरबानो-नाम्नीं कन्यां त्यक्त्वा शिवोऽन्वितार्थोऽयम् ।
कामपराजयलीलां पुनरपि चक्रे नवीनपर्य्यायाम् ।।८।।

गोहरबानो नाम की इस यवन कन्या का परित्याग कर के शिवाजी महाराज ने अपने 'शिव' नाम को अन्वितार्थ कर दिखाया, जो कि काम विजय की अपनी सुप्रसिद्ध पुरानी लीला की पुनरावृत्ति कर डाली ।

——:o:——

यजमानरक्षार्थं पुरोहितस्य बलिदानम्

(यजमानों की रक्षा के लिये पुरोहित का आत्मघात)

अथैकदा श्रीविजया-दशम्यां, राणाप्रतापो मृगयाभिलाषी ।
श्रीशक्तसिंहेन निजानुजेनाऽनुगम्यमानो व्यचरद् वनेषु ॥१॥

एक बार विजयादशमी के दिन राणा प्रताप अपने छोटे भाई शक्तसिंह सहित शिकार खेलने की इच्छा से जंगल में घूम रहे थे ।

उभौ हि दूरादवलोक्य कोलमाकर्णमाकृष्य धनुः शरौ तौ ।
लक्षीकृतौ चिक्षिपतुः सवेगं, विद्धो हृदि द्राङ् निपपात घृष्टिः ॥२॥

दोनों ने दूर से सामने एक सूकर को देखा तो दोनों ने ही कान तक धनुष को खींच कर निशाना किये हुए अपने वाणों को बड़े जोर से दे मारा, एक वाण से सुवर का हृदय विंध गया, और वह धराशायी हो गया ।

राणा जवादेत्य किरेः समीपं, निस्सार्य्य वाणं मृतदेहविष्टम् ।
प्रसन्नचेताः प्रशशंस भाग्यं, सुलक्षणोऽयं विजयप्रदोऽब्दः ॥३॥

राणा प्रताप भाग कर सूकर के निकट पहुंचे और उस मृत सुवर के देह में गड़े वाण को निकाला । प्रसन्न होकर अपने भाग्य की सराहना की कि शकुन बहुत अच्छा हुवा यह वर्ष विजयप्रद रहेगा ।

समेत्य पश्चादिह शक्तसिंह आलोक्य वाणं सहसा जगाद ।
भ्रातर्मदीयेन शरेण घोणिर्विद्धो मृतोऽयं न भवच्छरेण ॥४॥

पीछे शक्तसिंह भी वहाँ पहुँचा तो वह वाण को देख कर सहसा बोल उठा कि भाई जी ! यह सूकर मेरे वाण से विद्ध होकर मरा है आप के वाण से नहीं ।

न वै त्वदीयेन मदीयकेन हि, नूनं मदीयेन तवेषुणा नहि ।
इत्थं प्रवृद्धे कलहे ह्युभावपि, प्रगृह्य खड्गौ बत ! योद्धुमुद्यतौ ।

(यह सूकर) तुम्हारे वाण से नहीं मरा मेरे वाण से मरा है ! मेरे से ही मरा है—तेरे वाण से नहीं मरा—इस प्रकार जब कलह बढ़ गई तो तब दोनों ही अपनी २ तलवार सूंत कर युद्ध करने को उद्यत हो गए ।

क्रुद्धौ तदा वीक्ष्य पुरोहितस्तयोस्तौ सांत्वयन्नाह मुहुः सहेतुकम् ।
परं श्रुतं नैव यदा हितं वचस्तदा जघानासिमयं निजोदरे ॥६॥

जब राणा के कुल पुरोहित ने दोनों भाइयों को क्रोधान्ध हो कर लड़ मरने को उद्यत देखा तो उन को शाँत करने के लिए बहुत कुछ समझाया बुझाया परन्तु जब देखा कि वे अपने हित की बात को नहीं सुन रहे हैं तब तो पुरोहित उन्हें शांत करने के लिये अपने पेट में स्वयं कटार घोंप कर वहीं ढेर हो गया ।

इत्थं मृतं वीक्ष्य पुरोहितं निजं
राणाप्रतापो बहुदुःखितस्तदा ।
उवाच शक्तं कृतकिल्विषाधम !
मेवाड़-भूमिं त्यज गच्छ सान्वयः ॥

इस प्रकार (आत्म बलिदान कर के) मृत अपने पुरोहित को देख कर राणा प्रताप बहुत दुःखित हुवे और शक्तसिंह से बोले—अरे अधमपापी ! तू अपने परिवार सहित मेवाड़ भूमि को छोड़ कर अन्यत्र चला जा ।

श्रीशक्तसिंहो मनसा प्रणम्य गतः सुदूरं नयपालदेशम् ।
अद्यापि तद्वंशजभूमिपाला, राणाभिधाना निवसन्ति तत्र ॥८॥

शक्तसिंह (अपनी मातृ-भूमि और ज्येष्ठ भ्राता को) मानसिक प्रणाम कर के सुदूर नैपाल देश को चला गया, अब भी उस के वंशज 'राणा' नाम से विख्यात वहाँ बसते हैं ।

धन्योऽयं ब्राह्मणो विद्वान् अन्वितार्थः पुरोहितः ।
यो राष्ट्रहितमुद्दिश्य स्वप्राणान् विजहौ प्रियान् ॥९॥

यह विद्वान् ब्राह्मण धन्य है जिसने अपने 'पुरोहित' (यजमान का आगे २ हित सोचने वाला) नाम को सार्थक कर दिखाया । जो राष्ट्र के हित के लिए अपने प्रिय प्राणों का परित्याग करके अमर हो गया ।

—— o ——

प्रताप-शक्तयोः पुनर्मिलनम्

(राणा प्रताप और शक्तसिंह का पुनर्मिलन)

अथैकदाऽकब्बर-सैन्यनेता, भूत्वा गतो हन्तुमयं प्रतापम् ।
स्वदेशभक्तिं तु सहोदरस्य रणाङ्गणे वीक्ष्य विलज्जितोऽभूत् ।।१।।

एक बार यह शक्तसिंह अकबर बादशाह की सेना का नायक बनकर राणा प्रताप को मारने के लिए रणाङ्गण में पहुँचा परन्तु युद्ध-स्थल में जब अपने ज्येष्ठ श्रेष्ठ भ्राता राणा की अपने देश के प्रति निश्छल भक्ति देखी तो वह लज्जा के मारे पानी-पानी हो गया ।

यदा प्रतापं किल हन्तुकामौ
म्लेच्छाधमौ गुप्तचरौ प्रयातौ ।
तदा स शक्तोऽन्वयरक्तपृक्तो
विहत्य तौ भ्रातृपदौ ववन्दे ।।२।।

जब (शक्तसिंह ने देखा कि अकबर की सेना के) दो गुप्तचर राणा प्रताप का वध करने के लिए उस का पीछा कर रहे हैं तो तब स्ववंश के रक्त में तूफान आ गया और शक्तसिंह ने उन दोनों अधम म्लेच्छ गुप्तचरों को ही मार डाला ! फिर स्वयं सामने उपस्थित होकर अपने भ्राता के चरणों की वन्दना की ।

प्रतिकूले विधौ याति सोदरोऽपीह शत्रुताम् ।
स एव पुनरभ्येति ह्यनाहूतोऽपि भाग्यतः ।।३।।

मनुष्य का जब दैव प्रतिकूल होता है तो उस समय उसका अपना सहोदर भाई भी शत्रु बन जाता है परन्तु जब भाग्य अनुकूल होता है तो वह शत्रु-भूत भ्राता बिना बुलाया हुवा ही पुनः अपने संपर्क में आ जाता है ।

——:o:——

वन्य-विडाल-काण्डम्

(वनबिलाव घास की रोटी लेभगा)

यो हिन्दु-संस्कृति-सुरक्षण-बद्धकक्षो
लेभेऽत्र 'हिन्दु-पति'रित्युपनाममानम् ।
सोऽयं प्रतापनृपतिः किल दानशौण्डो,
जातः क्रमेण नितरां धनहीन-कोशः ॥१॥

जिस राणा प्रताप को हिन्दु-संस्कृति की रक्षा के लिये बद्ध कक्ष देख कर 'हिन्दु-पति' यह सम्मानजनक उपाधि प्राप्त हुई थी। वह प्रसिद्ध महा उदार दानी प्रताप समय पाकर धन से रिक्त कोश हो गया।

स्व-सैनिकान् मानधनो मनस्वी, व्यसर्जयद् दूनहृदार्थहीनः ।
स्वयं वनान्ते सकुटुम्ब एष, बभ्राम भुञ्जन् तृणपिष्टपाकम् ॥२॥

मान ही जिसका धन है ऐसे मनस्वी राणा ने धनहीन हो जाने के कारण अपने सैनिकों को बड़े दुःखित हृदय से विदा कर दिया और स्वयं अपने कुटुम्ब को साथ ले कर एक वन से दूसरे वन में भ्रमण करने लगा, घास को पीस कर उस की पकी रोटियें ही इस कुटुम्ब का इस समय प्राणावलम्बन का साधन था।

अथैकदा वन्यविड़ाल एत्य जहार कन्याकरतोऽद्यखण्डम् ।
रुरोद चीत्कृत्य बुभुक्षिता सा श्रुत्वा प्रतापो विकलो बभूव ॥३॥

एक समय बन के बिलाव ने झपट कर प्रताप की नन्ही-मुन्नी कन्या के हाथ से घास की रोटी का टूक छीन लिया। भूख से पीड़ित बालिका चीख मार कर रोने लगी। राणा प्रताप कन्या की चीख पुकार को सुन कर विकल हो गया।

शीर्णो हिमाद्रिर्ह्यतिशीतलो रविस्तत्याज वेलामपि हा! महार्णवः ।
धिङ् मां यदीयाः शिशवो बुभुक्षिता न वै लभन्ते तृणरोटिकामपि ।

हिमालय विशीर्ण हो गया! सूर्य ठंडा पड़ गया! महासमुद्र भी अपनी मर्य्यादा को उल्लंघन कर गया!! (राणा प्रताप सोचने लगे) मुझे धिक्कार है कि जिस के छोटे २ बालक आज भूख से व्याकुल होकर घास की रोटी के भी मोहताज हैं।

इत्थं विचिन्त्य सहसा निज-सन्धिपत्रं
संप्रैषयद् यवनराजकृतेऽतिखिन्नः ।
लब्ध्वा दलन्तु यवनो मुदितः परन्तु,
बुन्दीश्वरः छल-मयं तदुवाच पत्रम् ।।५।।

इस प्रकार चिन्ताग्रस्त राणा प्रताप ने सन्धिपत्र लिख कर सहसा यवन सम्राट् अकबर को भेज दिया। बादशाह पत्र पाकर बहुत प्रसन्न हुवा परन्तु वहां बैठे बुन्दी के महाराज ने कहा कि पत्र बनावटी मालूम होता है (पहले इस की पड़ताल होनी चाहिये)

बुन्दीनरेशोऽतिरहस्यपूर्णं, प्रतापमुद्दिश्य लिलेख पत्रम् ।
त्वं हिन्दुजातेरभिमान-विन्दुरक्षोभ्यसिन्धोर्विकृतिरसह्या ।।६।।

तंब बुन्दीनरेश ने एक अतीव रहस्यपूर्णं निजी पत्र राणा प्रताप को लिखा [कहा कि—] आप हिन्दु जाति के अभिमान की मान-विन्दु हो, अतः कभी भी न क्षुब्ध होने वाले समुद्र की यह विकृति सह्य नहीं है।

लब्ध्वा दलं हिन्दुपतिस्तु पूर्ववत्
स्वातन्त्र्यसंघर्षरतो बभूव ह ।
यथोपरागग्रहमुक्त उद्यतः,
प्रभाकरो भाति निरभ्रमण्डले ।।७।।

बुन्दीनरेश के पत्र को पढ़ कर हिन्दुपति राणा पूर्ववत् स्वतन्त्रता संघर्ष में प्रवृत्त हो गया। जैसे राहुग्रस्त दिवाकर उन्मुक्त हो कर निर्मल आकाश मण्डल में शोभित होता है वैसे ही अपनी टेक पर पुनः आरूढ़ हो गया।

महान्तो दैववशतो गच्छेयुर्यदि विक्रियाम् ।
तदा चिकित्सनीयास्ते स्वस्थचित्तैर्हितैषिभिः ।।८।।

यदि दैववशात् महापुरुष कभी मार्गभ्रष्ट होने लगें तो उस समय स्वस्थ-चित्त वाले हितैषियों का कर्त्तव्य है कि वे उनकी यथा तथा चिकित्सा करें—पुनः सन्मार्गारूढ़ करने का प्रयत्न करें।

——:o:——

अपंक्तिभोज्यो मानसिंहः

(जाति बहिष्कृत देशद्रोही)

अथैकदा हिन्दु-पतिः प्रतापः स्वहर्म्य-सर्वोच्चपदाधिरूढः ।
सायन्तनीं रक्तिम-मेघ-वृन्द-विचित्रलीलां समुदं ददर्श ॥१॥

एक बार हिन्दुपति राणा प्रताप अपने महल की ऊंची अटारी पर चढ़े सायंकालीन लाल-लाल बादलों की शोभा निरीक्षण कर रहे थे ।

क्षणेन धूलिं हयपाद-शब्दं ततोऽश्ववारं किल मानसिंहम् ।
विलोक्य शीघ्रं निज-पुत्रमाह, गत्वा प्रणम्यैनमिहानय त्वम् ॥२॥

(राणा ने देखा) क्षणमात्र धूलि उड़ी और फिर घोड़ों की टाप सुनाई दी, तब अश्वारूढ़ राजा मानसिंह दीख पड़े । उन्हें देख राणा ने अपने पुत्र अमरसिंह को कहा कि जल्दी जाओ और शिष्टाचार पूर्वक इन्हें यहां लिवा ले आओ ।

पित्रोपदिष्टोऽमरसिंहवीरः श्रीमानसिंहं प्रणमन्नुवाच ।
प्रदोषकाले गमनं न युक्तमस्माकमातिथ्यमतो गृहाण ॥३॥

पिता द्वारा उपदिष्ट वीर अमरसिंह ने मानसिंह को प्रणाम किया और कहा कि दिन छुप रहा है इस समय आपका जाना उचित नहीं अतः आज हमारा आतिथ्य स्वीकार कीजिए ।

राणानिमन्त्रणमिदं गृहि-धर्मसिद्धं,
मेनेऽन्यथैव यवनापसदस्य दासः ।
संगम्य हिन्दुपतिना नितरां प्रसन्नो
विश्रम्य राजभवने सुखमाप सद्यः ॥४॥

यद्यपि राणा प्रताप का यह निमंत्रण केवल गृहस्थ-धर्म के पालन के उद्देश्य से दिया गया था तथापि नीच यवन की दासता से विकृत मस्तिष्क राजा मानसिंह ने इसका अर्थ अन्यथा ही समझ लिया (मानो राणा प्रताप मेरे तेज से अभिभूत हो कर अकबर से सन्धि करने की भूमिका बान्ध रहा है) वह राणा से भली प्रकार मिल कर बहुत प्रसन्न हुआ और राजभवन में विश्राम ले कर सुख अनुभव करने लगा ।

निमन्त्रितो भोजनकाल आसने सुखोपविष्टोऽमरसिंह-सत्कृतः ।
श्रीमानसिंहः पुर आगतेऽशने पप्रच्छ राणा क्व गतो न दृश्यते ।।५।।

भोजन के समय अमरसिंह ने इनको बुलाया और सत्कारपूर्वक सुन्दर आसन पर बिठाया । जब भोजन का थाल सामने आ गया तब मानसिंह ने अमरसिंह से पूछा कि राणा नहीं दीखं पड़ते वे कहां हैं ?

समानपात्रे सममावयोर्द्वयोः स्याद् भोजनं क्षत्रियरीतिरुत्तमा ।
राणाप्रतापेन मयापि साधुना रक्ष्याऽत आकारयितव्य आस्तिकः ।।

(मानसिंह ने कहा—) एक ही थाल में हम दोनों एक साथ भोजन करें—ऐसी क्षत्रियों की उत्तम पुरातन परम्परा है । सो राणा प्रताप को और मुझे भी उस परम्परा की सम्प्रति रक्षा करनी चाहिए अतः (परम्परावादी) आस्तिक राणा जी को बुलाइये ।

राणोपदिष्टोऽमरसिंह आह राजा शिरोवेदनयाद्य रुग्णः ।
ज्ञात्वा रहस्यं नृपमानसिंहश्चकार भूयोऽपि हठं तथैव ।।७।।

राणा द्वारा पहिले से ही समझाये-बुझाए हुवे अमरसिंह ने कहा कि पिताजी के शिर में बहुत पीड़ा है वे रुग्ण हैं । मानसिंह रहस्य समझ गया अतः पुनरपि राणा को भोजनार्थ बुलाने का तथैव हठ करने लगा ।

वादे प्रवृद्धेऽमरसिंहवीरो
गुप्तं रहस्यं स्फुटमाह सर्वम् ।
निमन्त्रितः शास्त्रदृशाऽतिथिस्त्वं,
न पंक्तिभोज्यो यवन-प्रसक्तः ।।

जब बात बहुत बढ़ चली तो अमरसिंह ने गुप्त बात सुस्पष्ट कह दी कि श्रीमान् जी ! शास्त्र दृष्टि से आप हमारे अतिथि हैं इस लिये आपको निमन्त्रित किया है, परन्तु आप म्लेच्छों के संसर्ग से दूषित हैं अतः पंक्ति भोज्य नहीं हैं ।

वाग्बाणविद्धः किल मानसिंहः
पादाहतः सर्प इवातितुन्नः ।
अन्नं प्रणम्योत्थित आशुरात्रा-
वश्वं समारुह्य जगाम रुष्टः ।।९।।

वाणी रूपी वाण से विंधा हुआ मानसिंह, पांव द्वारा कुचले गए सर्प की भांति अतीव व्यथित हुवा (सामने रक्खे) अन्न को प्रणाम कर झटपट उठ खड़ा हुवा, और रात्रि में ही घोड़े पर सवार हो कर रोष पूर्वक चलता बना ।

व्रजन्नुवाचामर ! ते पितूरुजो
नीत्वौषधं विद्धि हि मां समागतम् ।
प्राहामरः सोऽपि सहैव नीयतां
म्लेच्छाधिपो यो भगिनीपतिस्तव ।।१०।।

चलते-चलते मानसिंह ने कहा—वेटा ! अमर ! तेरे पिता के सिर दर्द की औषधि ले कर बस समझ लो कि मैं आया ही खड़ा हूं । अमरसिंह ने कहा—उस म्लेच्छाधिपति (अकबर) को भी अपने साथ लेते आवें जो कि तुम्हारा बहनोई है ।

तिरस्कृतो भूपतिमानसिंहो
जगाद सर्वं यवनाधिनाथम् ।
क्रुद्धः ससैन्यं स्वसुतं सलीमं,
हन्तुं प्रतापं द्रुतमादिदेश ।।११।।

(इस प्रकार) मानसिंह ने अपमानित हो सब घटना (दिल्ली पहुंच कर) अकबर को सुनाई । बादशाह ने क्रुद्ध हो कर अपने पुत्र सलीम को बहुत बड़ी सेना सहित प्रताप को मारने के लिए भेजा ।

पतितैः सह संसर्गात् पतन्ति सुकृता अपि ।
चाण्डालोऽप्यतिथिः सेव्यः पंक्ति-भोज्यस्तु सत्क्रियः ।।१२।।

पतितों के साथ संसर्ग करके सत्कुलोत्पन्न व्यक्ति भी पतित हो जाते हैं, अतिथि रूप में चाण्डाल भी भोजनादि द्वारा सेवनीय है परन्तु समान पंक्ति में भोजन योग्य तो सत्कर्म निरत व्यक्ति ही होता है ।

——:o:——

झालावाड़-नरेशस्य आत्माहुतिः

झालावाड़ नरेश का बलिदान

म्लेच्छः स लक्षाधिकसैन्यसंयुतो रुरोध मेवाडभुवं बलोद्धतः ।
बभूव युद्धं हलदीप्रघट्टके, जयैकलिङ्गेति रवो व्यजृम्भत ॥१॥

अकबर के बेटे सलीम ने लक्षाधिक सेना साथ लेकर मेवाड़ की भूमि को आक्रान्त कर लिया । हल्दी घाटी नामक स्थान में घोर घमासान युद्ध हुआ । 'एकलिङ्ग की जय हो'—इस घोष से दिग्दिन्त गूंज गठे ।

राणामहाकालसमश्चरन् युधि न्यपातयन् म्लेच्छशिरांसि भूतले ।
तच्चेतकाख्योऽपि सलीमहस्तिनी-भाले पदौ न्यस्य चकार कौतुकम् ।

राणाप्रताप महाकाल की भांति रणाङ्गण में घूमता हुवा म्लेच्छों के शिर काट कर भूमि पर गिरा रहा था । प्रताप के चेतक नाम के अश्व ने सलीम की हथिनी के मस्तक पर अपने दोनों पांवों की टाप दे कर महान् कौतुक कर डाला ।

ततः समेता यवनाः सहस्रशः प्रतापसिंहं रुरुधुः समन्ततः ।
दूरादयं छत्रधरो विलोक्यते रुद्धः शृगालैर्बहुभिर्यथा हरिः ॥३॥

तब सहस्रों म्लेच्छों ने इकट्ठे होकर एक साथ राणाप्रताप को चारों ओर से घेर लिया । शिर पर छत्र लगा रहने के कारण राणा दूर से भी पहिचाने जा रहे थे । जैसे कि बहुत से गीदड़ों ने मानो सिंह को घेर लिया हो ।

झालावाडपतिर्विलोक्य यवनाक्रान्तं तमेकाकिनं,
हिन्दु-संस्कृति-रक्षणैकनियतं स्वप्राणमूल्यं नृपम् ।
तच्छत्रं निजमूर्ध्नि धारणवशाद् भूत्वा प्रतापोपमः,
प्राप्तो वीरगतिं स्वयं नरपती राणास्तु संरक्षितः ॥४॥

झालावाड़ के महाराज ने जब देखा कि प्रताप शत्रुवों से बुरी तरह एकला घिर गया है और वह हिन्दु संस्कृति की एकमात्र रक्षा ही अपने प्राणों का मूल्य समझ कर प्राणों की परवाह नहीं करते हैं तो झालापति ने राणा के छत्र को स्वयं अपने सिर पर लगा लिया । (जिस से शत्रु दल उन्हें प्रताप समझ, और राणा से पराङ्मुख

हो जाए) इस भांति वह राणा प्रताप का प्रतिमूर्ति बन कर स्वयं वीरगति को प्राप्त हुवा, परन्तु राणा के प्राण बचा लिये ।

जायन्ते च म्रियन्ते च वहवः क्षुद्रजन्तवः ।
परार्थबद्धकक्षाणां वीराणामुद्भवः कुतः ॥५॥

संसार में यूंतो अगणित क्षुद्र जन्तु उत्पन्न होते हैं और मरते हैं परन्तु दूसरों को जीवन दान देने के लिए जिन्होंने कमर कसी हो ऐसे वीरों का जन्म बहुत दुर्लभ है ।

—— :o: ——

मङ्गलाख्य चारणस्य स्वाभिमानम्

(चारण का स्वाभिमान)

राणाप्रतापेऽथ वनं प्रयाते, तच्चारणो वृत्तिविहीन आर्दितः ।
समागतोऽकब्बरशाह गोष्ठयामुष्णीषमुत्तार्य्य ननाम सम्यक् ॥१॥

राणा प्रताप के वन में चले जाने पर उनका स्तुति पाठक चारण अजीविकाहीन दुःखी हो कर अकबर वादशाह के दरबार में पहुंचा और उसने अपनी पगड़ी उतार कर वादशाह को विधिवत् जुहार की ।

पप्रच्छ शाहः कुपितः किमेतद् उष्णीषमुत्तार्य्य कृतः प्रणामः ।
न वेत्सि किं राज-सभाविधानं, दण्डार्ह एषोऽस्ति तवापराधः ॥२॥

बादशाह ने क्रुद्ध होकर उससे पूछा—'तूने अपनी पगड़ी उतार कर नंगे सिर से सलाम करने की गुस्ताखी क्यों की है ? क्या तुझे राज दरबार का कायदा मालूम नहीं है ? तेरा यह अपराध सजा के काविल है ।

स मङ्गलः प्राह ममापराधो निर्हैतुको नैव शृणु प्रसङ्गम् ।
राणाप्रतापस्य तु चारणोऽहंमस्वजीविकार्थं समुपागतोऽस्मि ॥३॥

मंगल चारण ने कहा मेरा यह अपराध कारणरहित नहीं है । मैं पगड़ी उतार कर सलाम करने की वजह बताता हूं । मैं महाराणा प्रताप का चारण हूं परन्तु आजीविका के लिए आप के दरबार में हाजिर हुवा हूं ।

उष्णीषमेतद्धि प्रतापदत्तं, प्रणामकाले स्मृतिरस्य जाता
न तेन मूर्धा नमितस्त्वदग्रे, कथं तदुष्णीषमपाकरोमि ।।४।।

यह पगड़ी मुझे राणा प्रताप की ओर से पुरस्कार में प्रदान की गई थी । प्रणाम करते समय मुझे इस बात का स्मरण आया कि—जब हमारे राणा का मस्तक आप के सामने कभी नहीं झुका, तो मैं उनकी पगड़ी को झुका कर अपमानित क्यों करूं ?

अभिमानविहीनानां किं धनेन किमायुषा ।
सत्यमाभाणकं चक्रे दुरवस्थोऽपि चारणः ।।५।।

जिनको अपने गौरव का अभिमान न हो उनके धन से किंवा आयु से क्या लाभ ? इसी कहावत को दुःखस्थाग्रस्त होते हुए भी चारण ने सत्य कर दिखाया है ।

——:o:——

द्विषन्ति पूज्यान् कृपणा गतायुषः

(गङ्गा से विवाह)

अथैकदा प्रावृषि नाब्यवारिभिरखर्वगर्वोन्मदभिन्नसेतुभिः ।
कूलङ्कषैः संसदि वन्यनिर्झरैः सम्भूय सर्वैः कथिता सुरापगा ।।१।।

एक बार वर्षा ऋतु में अपरिमेय जल के कारण पुल तोड़-तोड़ कर किनारों से भी ऊपर हो कर बहने वाले अभिमानी जङ्गली नाले (निर्झर) एकमत से निश्चित कर भरी सभा में पुण्यतोया गङ्गा से कहने लगे ।

शास्त्रे प्रसिद्धो भरतीति भर्ता त्वां नित्यमेवेह वयं भरामः ।
भर्तृत्वमस्माकमतोऽस्त्यबाधम् तस्माद्भवेन्नौ विधिवद्-विवाहः ।।

शास्त्रवचनों के अनुसार जो ‘भरण’ करे वही ‘भर्ता’ होता है । हम तुम्हें नित्य ही मरते हैं—इस लिए हमारा ‘भर्तृत्व (पतित्व) पूर्णरूप से सिद्ध है इस लिए अच्छा हो कि तुम हमसे विधिपूर्वक विवाह कर लो ।

क्व पुण्यतोया विमला च गंगा ? क्व निर्झराः कच्चरदूषिता च ।
दुरुक्तमाकर्ण्य न विव्यथे सा ‘भवत्यगाधो हि महत्स्वभावः’ ।।३।।

कहाँ तो निर्मल जल वाली पुण्यसलिला भगवती भागीरथी ? और कहाँ मैले गदले जल वाले जङ्गली झरने ? परन्तु फिर भी इस अशिष्ट प्रस्ताव को सुन कर वह दुःखित नहीं हुई क्योंकि निश्चित ही महापुरुषों का स्वभाव गम्भीर होता है ।

वर्षागमे ये प्रभवन्ति दीनास्तन्निर्गमे यान्ति कथावसानम् ।
क्षीणायुषः सद्भिरुपेक्षणीया आसन्नमृत्युः प्रलपत्यभीक्ष्णम् ।।४।।

वर्षा ऋतु में जो वेचारे उत्पन्न होते हैं और वर्षा समाप्त होते ही जो शेष नहीं रहते ऐसे अल्पायु जनों की उपेक्षा ही करनी उचित है—'आसन्नमृत्यु व्यक्ति प्रायः प्रलाप किया ही करता है' ।

सा सस्मितं प्राह किमत्र भण्यते प्रस्ताव एषोऽस्ति महाशुभावहः ।
मार्गेऽथ माघे शुभलग्नवासरे सुनिश्चितं वः खलु पाणिपीडनम् ।।

गङ्गा ने मुस्कराते हुए कहा—ठीक है आप लोगों का यह प्रस्ताव कल्याणकारी है ! मार्गशीर्ष अथवा माघ में किसी शुभलग्न के अवसर पर तुम्हारा विवाह निश्चित रहा ।

ते साधु साध्विति वदन्त उदन्तमेनम्,
नित्यं जगुः कलकलध्वनिसंभ्रमेण ।
इत्थं गते नभसि मासि तथा नभस्ये,
सर्वेऽपि निर्झरवराः कृशतां प्रपन्नाः ।।५।।

वे सब 'निर्झर बहुत ठीक ! बहुत ठीक !' एसा कहते हुए इस संवाद को हर्षोन्मत्त हो कर नित्य ही अपनी कल कल ध्वनि के रूप में गाने लगे । इस प्रकार (गाते बजाते जब) श्रावण और भाद्रपद मास व्यतीत हो चले तो (वर्षाकालीन जल के अभाव में) नाले सूख चले ।

स्मेरानना तानवदत्सुरापगा भो भो वरा वः कृशता न साम्प्रतम् ।
का नाम योषित् क्षयरोगपीडितम् वरं मुमूर्षुं वृणुयाद् गतायुषम् ।।

तब मन्दस्मितपूर्वक गङ्गा ने उन सब से कहा—विवाहार्थी दूल्हो ! अरे अब तुम्हारा इस तरह क्षीण होते जाना अच्छा नहीं है ! कौन स्त्री ऐसी होगी जो क्षयरोग पीड़ित, मरणासन्न अल्पायु वर को पति रूप में स्वीकार करना चाहेगी ?

यो द्वेष्टि विप्रानथ गांश्च वृद्धान् यथातथा वक्ति च विश्ववन्द्यान् ।
भिनत्ति धर्मस्मृतिलोकरेखाम् गतायुषं तं प्रवदन्ति सन्तः ॥८॥

जो व्यक्ति गौ-ब्राह्मण और पूज्य जनों से विद्वेष रखता है, विश्व-वन्दनीय महापुरुषों के विषय में अनर्गल प्रलाप करता है और धार्मिक तथा लौकिक मर्यादाओं का उल्लंघन करता है वह अल्पायु होता है सज्जन पुरुषों का यही कथन है।

शोषाभिभूताः शरदि क्रमेण हेमन्तकाले विजडीकृतांगाः ।
विशीर्णगात्राः शिशिरागमे ते, हा ! हा !! वसन्तेऽन्तकदूतबद्धाः ॥

(वर्षा ऋतु में किनारे तोड़ कर बहने वाले वे निर्झर नाले) शरदागमकाल में क्रमशः सूखते चले गये। हेमन्त ऋतु में उनका शरीर बिल्कुल विजड़-विगतजल अर्थात् (चैतन्यहीन) होकर शिशिर में सर्वथा शीर्ण हो गया और वसन्त के सुहाने आगमन के साथ ही साथ वे मृत्युदूतों ने घेर लिए।

ग्रीष्मे तु तापत्रयतप्तदेहा दिनेषु दीना रजनीषु रुग्णाः ।
क्षीणाः क्षणं सम्प्रति नामशेषा दृष्टान्तभूताः कुयशः प्रसंगे ॥१०॥

इस तरह ग्रीष्म ऋतु में धूप लू और जलभाव रूप किंवा दैहिक-दैविक भौतिक तापत्रय से झुलसे हुए वे नाले दिनों दिन दुर्बल और रातोंरात क्षीण होते होते नाममात्र शेष रह गए। जो इस समय केवल अपयश के प्रसङ्ग में उदाहरण के रूप कहे जाते हैं।

तस्माद्दशाश्वतसमृद्धिमदेन पुंसा
कस्यापि वेष्टनमहो ! शिरसो न हार्यम् ।
वर्षैस्त्रिभिश्च खलु मासदिनैरथापि
सम्प्राप्यते फलमिहैव कृतस्य नूनम् ॥११॥

इसलिए क्षणिक समृद्धि के मद में किसी को भी बड़े आदमियों की पगड़ी नहीं उछालनी चाहिए—(दुर्वचनों से उनका अपमान नहीं करना चाहिए, ऐसा करने वाले पापी को) तीन वर्ष, तीन महीने अथवा तीन दिन के अन्दर ही अपने किये हुए कृत्यों का फल अवश्य ही प्राप्त हो जाता है।

——:o:——

उधमसिंहस्य प्रतिशोध-शौर्य्यम्

(डायर से बदला)

आसीत् पवित्र-कुरुजाङ्गल-देश-जातो
वीरो महान् उधमसिंह इति प्रसिद्धः ।
बाल्ये हि यो विधिवशात् पितृ-मातृ-हीनः
सम्बन्धिभिश्च सदयैः परिपालितोऽभूत् ॥१॥

पवित्र कुरु जांगल देश में 'उधमसिंह' नाम से प्रसिद्ध एक महान् वीर उत्पन्न हुवा । दुर्भाग्यवश बाल्यावस्था में इसके माता-पिता स्वर्ग सिधार गए थे अतः कुछ दयालु सम्बंधियों द्वारा इसका पालन पोषण हुवा था ।

सोऽयं किशोर-वयसि स्वगृहं विहाय,
प्रान्ते भ्रमन्नुदर-पूर्तिकृते वराकः ।
प्राप्यैकदाऽमृतसरोवर-नामधेयं,
विख्यात-कीर्तिनगरं मुदमापभूरि ॥२॥

जब वह कुछ बड़ा हुवा तो अपने घर को छोड़ कर बेचारा नौकरी की तलाश में अपने प्राँत पंजाब में घूमने लगा । घूमते फिरते एक बार जब वह भारत के प्रसिद्ध नगर अमृतसर में जा पहुंचा तो बड़ा प्रसन्न हुवा ।

दैवाद् महावीरदले स वृत्तिमवाप तत्रैव च वास-भूमिम् ।
आतिथ्यमभ्यागत-सज्जनानां चकार शुल्कग्रहणादि-सेवाम् ॥३॥

सौभाग्यवश उसे श्री सनातनधर्म महावीर दल में चपरासी की नौकरी मिल गई और उसी भवन में निवास स्थान भी प्राप्त हो गया । वह संस्था में पधारने वाले अतिथियों की सेवा और सदस्यों का चन्दा इकठ्ठा करने का काम करने लगा ।

तीर्थेषु पर्वसु च धर्ममहोत्सवेषु
ते ते सुशिक्षिततमा धनिमानिपुत्राः ।
सेवां विधातुमभियान्ति दलीयसभ्या-
स्तैः साकमेष उधमोऽपि सदान्वगच्छत् ॥४॥

गंगा आदि तीर्थों के कुम्भ आदि पर्वों पर और अन्यान्य धार्मिक उत्सवों पर धनी मानी सेठों के अनेक सुशील युवक महावीर-दल के सेवक के रूप में सेवा करने जाया करते थे। उनके साथ यह उधमसिंह भी सदा जाया करता था।

सम्मेलनेषु बहुधा नियतः प्रबन्धे,
रामायणं तदनुभागवतं च शास्त्रम्।
गीतारहस्यमशृणोदुपदेशकेभ्यो
जातस्सुसङ्गतिवशाद् दृढधर्मबुद्धिः ॥५॥

यह उधमसिंह सनातनधर्म सम्मेलनों में प्रबन्ध सेवा में नियुक्त होता था, तब वहाँ यह उपदेशकों द्वारा रामायण, श्रीमद्भागवत आदि शास्त्रों की कथा सुनता था तथा श्रीमद्भगवद् गीता का रहस्य सुनता था इससे यह धर्म में दृढ़ आस्था रखने वाला बन गया।

प्रत्यब्दममृतसरे रविसंक्रमेऽह्नि,
सम्मेलनं भवति सार्वजनीनमेकम्।
यस्मिन् स्त्रियश्च शिशवो जरठा युवानः
सम्भूय धर्मनिरता विचरन्ति हृष्टाः ॥६॥

अमृतसर में मेष संक्रान्ति (बैसाखी) के दिन प्रतिवर्ष एक बड़ा भारी धार्मिक मेला होता था, जिसमें नगर और आस-पास के आबाल वृद्ध स्त्री पुरुष बाल बच्चे धार्मिक भावना से इकट्ठे होकर प्रसन्नता पूर्वक विचरते थे।

तत्रैव 'जलियांवाला बागा'ख्ये नातिविस्तृते।
एकद्वारवति स्थाने राष्ट्रचर्चाऽपि चर्चिता ॥७॥

अमृतसर के 'जलियां वाला बाग' नामक एक छोटे से मैदान में जिस का कि एक ही प्रवेश द्वार था, मेले के दिन काँग्रेस का प्रचार हो रहा था।

तत्राऽऽगतो जन्रल डायराह्वयः, क्रुद्धः सशस्त्रांगलसंघ-संयुतः।
द्वारस्थ-मैशीनगनाद् विनिःसृतैरभर्जयत्तान् गुलिकाभिर्वर्षणैः ॥

जनरल डायर नामक पुलिस इन्चार्ज अपने साथ सशस्त्र अंग्रेज सारजेन्टों को लेकर वहाँ आ धमका और उसने बिना ही कुछ सूचना दिये मैदान के एकमात्र द्वार के बीचो बीच मशीनगन थाम कर उससे छूटती हुई अन्धाधुन्ध गोलियों की वर्षा

द्वारा सर्व साधारण को भून डाला।

अतर्कितोत्पातविलुप्तचेतना इतस्ततः प्राणपरेप्सवो जनाः।
भ्रमन्त आस्था न च लेभिरे क्वचित् पापेऽधमे निर्गममार्गसंस्थिते ॥

अचानक टूट पड़ी इस महाविपत्ति से जनता किंकर्त्तव्य विमूढ़ होकर अपने प्राण बचाने के लिए इधर उधर बेतहाशा दौड़ने लगी, परन्तु उन्हें कहीं ठिकाना भी न मिला क्योंकि मैदान से भागने का दरवाजा रोक यह अधम पापी खड़ा था।

हताः क्षतांगा गुलिका-प्रहारैः, स्त्रियोऽर्भका वृद्धजना युवानः।
तत्रैव रात्रावपि निःसहाया भीताः स्थिताः सैन्य-यमप्रकोपात् ॥

अनेक व्यक्ति गोलियों से मर गए, अगणित घायल हो गए। स्त्रियें, बालक, बूढ़े और नवयुवक ये सब रात भर भी असहाय अवस्था में वहीं पड़े रहे, क्योंकि नगर में लगाए गए, कर्फ्यू और मारशल्ला के आतङ्क से सब भयभीत थे आना जाना बन्द हो गया था।

सम्मेलनेऽस्मिन् उधमोऽपि सेवापरायणश्चान्यतमो नियुक्तः।
स वीक्ष्य कृत्यं खलडायरीयं व्यधात् प्रणं दीप्तमहोग्रमन्युः ॥११॥

इस मेले में महावीर दल के अन्यान्य सेवकों के साथ उधमसिंह भी जन सेवा के लिए नियुक्त था। उसने हत्याकाण्ड को अपनी आँखों देखा तो जनरल डायर द्वारा किये गए कुकृत्य से क्रोध के मारे उसका खून खौलने लगा तब उसने यह प्रतिज्ञा की, कि—

यावन्न हन्मि गुलिकाभिरिमं पिशाचं,
द्वारि स्थितं नवजयद्रथपापरूपम्।
तावन्न चाद्मि लवणं न घृतं न मिष्टं
सत्यं शपामि भगवानिह मेऽस्तु साक्षी ॥१२॥

जब तक मैं इस नरपिशाच डायर को गोलियों से न उड़ा दूंगा, जो कि पापी जयद्रथ की भान्ति द्वार रोके खड़ा होने के कारण सब अनर्थों का जिम्मेवार है—तब तक मैं न नमक खाऊँगा न घृत खाऊँगा तथा न ही मीठा ही खाऊँगा। मैं सत्य की शपथ लेकर यह प्रतिज्ञा करता हूँ। श्रीकृष्ण भगवान् इसमें मेरे साक्षी हों!

श्रीभक्तसिंहवीरेण सांडर्से गुलिकाहते ।
डायरोऽपि भयत्रस्तो भृतिं त्यक्त्वा पलायितः ॥१३॥

सरदार भक्तसिंह ने जब लाला लाजपतराय पर लाठी प्रहार करने वाले लाहोर के पुलिस इन्चार्ज सांडरस को दिन दिहाड़े गोली से उड़ा डाला तो जनरल डायर मारे भयके नौकरी छोड़ कर विलायत को भाग गया ।

उधमोऽपि प्रयत्नैः स्वैर्भृत्यो भूत्वा तु कस्यचित् ।
तेनैव धनिना सार्धमचिरात् प्राप लन्दनम् ॥१४॥

उधमसिंह भी स्वयमेव अनेक प्रयत्न करके किसी धनिक का नौकर बनकर उसके साथ थोड़े ही दिनों में लन्दन जा पहुँचा ।

अचिन्तयद् वधोपायं दुष्टस्यास्य मुहुर्मुहुः ।
कथमस्मिन् जनाकीर्णे वध्यः स्यान्नगरे खलः ॥१५॥

वह बार-बार सोचता था कि बहुल जन संकीर्ण इस महानगर लन्दन में दुष्ट जनरल डायर को गोली से उड़ाने का क्या उपाय किया जाए ।

अथैकदा लन्दनराजसंसदि, लार्डालये सार्वजनीन उत्सवे ।
वीक्ष्योधमो जन्रल-डायरं स्थितं, विव्याध तूर्णं गुलिकाभिराशुगैः ॥

एक बार लन्दन के राजभवन में लार्डसभा के एक सार्वजनीन उत्सव में वीर उधमसिंह ने जनरलडायर को बैठे देखा तो अपनी अचूक गोलियों से उड़ा दिया ।

हतोऽधमो द्राक् निपपात भूमौ, जगर्ज हृष्टो ह्युधमोऽतिनिर्भयः ।
अहोऽद्य योषित्-शिशुवृन्दघातिनं, हत्वाऽनृणी हन्त कृतोऽस्मि गीतया ॥

अधम डायर गोली लगते ही धराशायी हो गया तो उधमसिंह सर्वथा निर्भय प्रसन्न होकर भांगड़ा नाच नाचने लगा और गर्ज कर बोला आज स्त्रियों बालकों और वृद्धों की हत्या करने वाले पापी को मारने की मेरी प्रतिज्ञा श्रीमद्भगवद् गीता ने सफल की है । मैं अपने देश के ऋण से उन्मुक्त हो गया हूँ ।

कोऽन्यो महानुधमसिंह समो नृलोके, यः सर्वसाधनविहीनदशां गतोऽपि ।
एको हि दूरतमदेशगतं स्वशत्रुं हन्यात्तदीयसदने निजबन्धुगुप्तम् ॥

भूमण्डल में उधमसिंह के समान महान् अन्य कौन हो सकता है ? जिसने अकेले ही स्वयं सब साधन विहीन दशा में होते हुए भी भारत से अत्यन्त दूर विलायत में पहुँचे अपने शत्रु को जो कि अपने भाई बन्धुवों की टोली में छुपा बैठा था उसके घर में पहुंच कर ही उसे मार डाला ।

श्रीरणजीतसिंह नृपस्योदारता

(महाराजा रणजीतसिंह की उदारता)

अथैकदा श्रीरणजीतसिंहो, गजाधिरूढो विचचार राज्ये ।
मार्गे कुमारा बदरीफलार्थं, चक्रुः समेता लगुड़प्रहारम् ।।१।।

एक बार पंजाब केसरी महाराजा रणजीतसिंह हाथी पर चढ़े अपने राज्य में भ्रमण कर रहे थे । उधर रास्ते में कुछ लड़के बेरी के फल झाड़ने के लिए उसपर डण्डे सोटे बरसा रहे थे ।

तेष्वेव कस्यापि च लोष्टखण्डं, लक्ष्यच्युतं श्रीरणजीतभालम् ।
विव्याध चारैरनुगम्यमानैः, सर्वे निरुद्धाः प्रसभं कुमाराः ।।२।।

उन्हीं बालकों में से किसी एक बालक का फैंका हुआ ढेला बेरी का निशाना चूक कर महाराजा रणजीतसिंह के मस्तक में जा लगा । राजा के साथ चलने वाले रक्षकों ने वे सब के सब लड़के तत्काल पकड़ लिए ।

नृपस्तदा निसृत-रक्तरञ्जितः, पप्रच्छ केन प्रहितेयमिष्टिका ।
भयातुरा रोदनतत्पराश्च ते, न किञ्चिदूचुर्हतबुद्धयः स्थिताः ।।३।।

राजा के मस्तक से खून की धारा बह रही थी उसने बच्चों से पूछा बताओ यह ईंट किसने मारी है ? लड़के भयविह्वल होकर रोने लगे, उनकी बुद्धि मारी गई वे चुपचाप खड़े रहे कुछ भी न बोल सके ।

बालेषु तेष्वेकतमो भयार्तो, बद्धाञ्जलिः श्रीरणजीतमाह ।
श्रीमन् ! मयोत्क्षिप्तमिदं हि लोष्टमहं सदोषोऽस्म्यपरे न दुष्टाः ।।

तब उन बालकों में से एक बालक ने भय से कांपते-काँपते अपने हाथ जोड़ कर राजा से कहा कि श्रीमान् ! मेरा फेंका हुवा ढेला आप को लगा है, इसलिए मैं अपराधी तथा अन्य सब बालक निर्दोष हैं ।

सत्योक्तिमाकर्ण्य नृपोऽतितुष्ट, आज्ञापयामास चरान् शिशुभ्यः ।
प्रदीयतां मोदकमाशु नीत्वाऽयं सत्यवादी च सदैव पोष्यः ।।५।।

इस बालक की सच्ची बात को सुनकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ । उसने अपने

नौकरों को आज्ञा दी कि जाओ जल्दी लड्डू लाकर इन बालकों को दो और इस सत्यवादी लड़के का तो सदैव हमारी ओर से पालन-पोषण हो।

जडा अपीमे किल पादपा यदा, लोष्टैर्हता दण्डचयैश्च ताड़िताः।
फलानि यच्छन्ति तदा सचेतसा, मयापि देयं हि फलं प्रहारिणे ।।६।।

जब कि ये जड़ वृक्ष भी ढेलों और डण्डों से पीटे जाने पर प्रहार करने वालों को फल देते हैं तब मुझ चेतन को भी ढेला मारने वाले को फल ही देना चाहिये।

पप्रच्छ कश्चिद् रणजीतसिंहं त्वन्मस्तकस्थस्य च हीरकस्य।
किं मूल्यमस्तीति ? स आह तूर्णमस्यास्ति मूल्यं किल चारजूता ।।

एक बार किसी सज्जन ने रणजीतसिंह से पूछा कि तुम्हारे मस्तक पर जो यह हीरा (कोहेनूर) बन्धा है इसकी क्या कीमत है ? राजा ने तत्काल उत्तर दिया इसकी कीमत 'चार जूता है' (अर्थात् कोई भी बलवान् चार जूता मार इसे छीन लें।)

अनक्षरः साक्षरहृद्यवेत्ता, काणोऽपि नीत्यां हि सहस्रनेत्रः।
काश्मीरगान्धारयुतं ससिन्धुं यो विस्तृतं पञ्चनदं शशास ।।८।।

महाराजा रणजीतसिंह सर्वथा अपठित था परन्तु वह बड़े-बड़े साक्षरों के भी हृदय की बात को तत्काल भांप लेता था। यद्यपि वह एक आंख से काणा था तथापि राजनीति में हजार आंखें खुली रखता था। उसने अपने शौर्य और बुद्धिमत्ता से अपने राज्य की सीमाएं काश्मीर, काबुल,कन्धार, सिन्ध और पंजाब तक विस्तृत की थीं जिनका वह शासन करता था।

धन्यः स रणजीताख्यो यत्सेनापतिनामतः।
अद्यापि म्लेच्छदेशेषु भीषयन्ति शिशून् स्त्रियः ।।९।।

वह महाराजा रणजीतसिंह धन्य है कि जिसके दुर्दान्त सेनापति श्रीहरिसिंह नलवा का नाम लेकर अभीतक भी म्लेच्छ देशों की स्त्रियें अपने रोते बच्चों को डरा कर चुप कराती हैं।

——:o:——

क्षणिक कुसंगस्य दुष्प्रभावः

(क्षण के कुसङ्ग का फल)

शोभायात्रां वरीयां जरठमुनिवरो वीक्ष्य चोद्वाहकामः।
श्रान्तः कूपे प्रसुप्तः स्वपनमुगतो द्राग् हि जातो गृहस्थः।
पत्न्या प्रोक्तः समोदं निजतनयकृतेऽदात् स्वमञ्चेऽवकाशं।
कूपेऽधस्तादधृतोऽसौ पुनरपि विपिनं ह्याजगामातिखिन्नः ॥१॥

एक बूढ़े तपस्वी ने जब किसी दूल्हे को सजी-बजी घोड़ी पर सवार, छत्र चामर आदि से सुसज्जित, वाद्यघोष धूम-धाम पूर्वक विवाहार्थ जाते देखा तो वह भी अपने रूखे तपस्वी जीवन को धिक्कार देकर स्वयमपि दूल्हा बनने की फिराक में बस्ती की ओर चल पड़ा। चलते चलते जब थक गया तो जंगल में एक कूएँ पर जल पीकर उसकी ही मेंड पर विश्राम करने लगा। नींद आते ही स्वप्न में जागृत भावना के अनुसार यह दूल्हा बन गया, पत्नी आ गई और एक बालक भी झट हो गया। जब चारपाई पर लेटे हुए को इस तपस्वी की स्वप्नमयी पत्नी ने बड़े आदर के साथ नवजात प्रिय पुत्र को साथ लिटा लेने को कहा और श्रीमान् जी ने कुछ स्थान खाली करने के विचार से जरा करवट बदली कि धम्म से कूएँ में जा गिरे। धमाका सुनकर आस-पास से लोग आ गए और इसे कूएँ से निकाला। यह निकलते ही बस्ती की ओर न जाकर पुनः अपनी परित्यक्त कुटिया की ओर ही दुःखित हुआ वापिस चल दिया।

पृष्टो जनैः किं प्रतियासि सोऽब्रवीन्मोहो विनष्टश्च कुसङ्गजो मम।
स्वप्नस्त्रिया कूपजले निपातितो नूनं पतिष्यामि यथार्थयाऽन्धके॥

लोगों ने पूछा—आप जिधर से आए थे उधर ही वापिस क्यों जा रहे हो? तपस्वी मे अपनी कथा सुनाते हुए कहा कि बरात के देखने मात्र के कुसङ्ग से मुझे जो मोह हो गया था अब वह सर्वथा विनष्ट हो गया है। देखो! जब स्वप्न की कल्पित स्त्री मे ही मुझे कूएँ में गिरा दिया तब यदि असली स्त्री हो जाती तो वह अन्ध तामिस्र नरक में क्यों न गिराती।

——:o:——

मृषाभ्रमोऽनर्थंकरः

(भ्रम से अनर्थ)

कश्चित्कुमारः किल होलिकोत्सवे क्रीडन् वयस्यै रजनीमुखागमे ।
सुरक्तरागान्वितवारिसंभृतं कमण्डलुं तातशयान्तिके न्यधात् ।।१।।

कोई बालक होली फाग के दिन अपने साथियों से रंग खेलते-खेलते सायंकाल गूढ़े लाल रंगके पानीसे भरा अपना लोटा वृद्ध पितामहकी चारपाईके नीचे रख गया ।

पितामहोऽसावुषसि प्रबुद्धः शौचालयं प्राप गृहीतपात्रः ।
शुद्धिं व्यधात्तेन हि रक्तवारा स्वरक्तपातभ्रममूर्च्छितोऽभूत् ।।२।।

बूढ़ा बाबा पौफटे जगा, लोटे को उठा कर टट्टी में जा पहुंचा और उसने गूढ़े लाल रंग के पानी से मलद्वार का शोधन किया (परन्तु रक्तिमा देखी तो) मेरा ही रक्त मलद्वार से बह निकला, यह जान कर मूर्च्छित हो गिर पड़ा ।

उत्थापितो वैद्यवरैश्चिकित्सितो न रोगलेशो बहुधा प्रबोधितः ।
स्मरन् स्मरन् रक्तविरेचनं निजं मुमूर्षुतां प्राप विवृद्धसंशयः ।।

घरवालों ने उसको उठाया बड़े वैद्य डाक्टरों ने इलाज आरम्भ किया ! तुम्हें तो कोई रोग नहीं, ऐसा बार २ समझाया तथापि वह अवश्य अपने को खूनी दस्त का शिकार मानकर मरने को तैयार हो गया ।

अथोदिते भास्करमण्डले शिशुः प्रबुद्ध आलोक्य कमण्डलुं निजम् ।
रुरोद मे रागजलं क्व हा ! गतं मया भृतं तातशयान्तिके धृतम् ।।

कुछ समय बाद जब सूर्य चढ़ आया तो वह बालक सोता जगा । अपने रंग भरे लोटे को खाली देखकर रो रो कर कोहराम मचाने लगा—हाय ! मेरा रंग कहाँ गया ! मैंने तो रात रंग का भरा लोटा दादाजी की चारपाई के नीचे रक्खा था ।

श्रुत्वा पिता यावदपश्यदत्र, शौचालयं रञ्जितवारिपूर्णम् ।
ज्ञात्वा रहस्यं निजतातमाह न रक्तलेशः शिशुखेलरागः ।।५।।

बालक के पिता ने ज्यों ही इधर उधर ताका तो देखा कि बालक का वह रंग से भरा लोटा (दादा की कृपा से) शौचालय में बिखरा पड़ा है । सब रहस्य

समझते देर न लगी । दादा से पुकार कर कहा—'आपके खून का तो एक बूंद भी नहीं गिरा । वह तो मुन्नू का होली फाग का रंग आपने हाथ धोने में गिरा दिया ।

क्षणेन स्वस्थतां यातो ज्ञातवृत्तः पितामहः ।
अरुग्णोऽपि मृषा भ्रान्त्या यो मुमूर्षुः पुराऽभवत् ॥६॥

दादा को जब यह अपनी भूल विदित हुई तो वह मरता मरता सहसा उठ बैठा, जो चन्द मिनट पूर्व अपने ही मिथ्याभ्रम से मरने को तैयार हो गया था ।

——:०:——

धर्मात् सुखम्

(धर्म से सुख प्राप्ति)

यथा बदर्य्याः खलु कण्टकौ द्वावेकः समो वक्रतमस्तथान्यः ।
आस्तां तथा द्वौ किल सौदरौ च ज्येष्ठः क्रियावानपरोऽतिदुष्टः ॥

जैसे बेरी के वृक्ष की एक शाख में पैदा हुए दो काँटों में से एक सीधा होता है और दूसरा बिल्कुल टेढ़ा होता है, ठीक इसी प्रकार दो सगे भाई थे उनमें एक धर्मात्मा था और दूसरा महापापी था ।

स आस्तिकः पूजनपाठतत्परो वित्तेन हीनोऽपि सदार्थिसेवकः ।
पापोऽक्षमद्यामिषदारलम्पटो धनी बली माण्डलिको बभूव ह ॥

वह आस्तिक नित्य पूजा पाठ आदि धर्मकृत्य करता था, यद्यपि वह धनवान् न था तथापि सत्पात्र अतिथियों की निरन्तर सेवा करता था, उसका दूसरा दुष्ट भ्राता जुवारी, शराबी कबाबी और महा व्यभिचारी होता हुआ भी खूब धनी हट्टा कट्टा और गुण्डों की मण्डली का सरदार था ।

तयोर्दशां वीक्ष्य महास्तिका अपि शोचन्ति शंकाकुलिता इतस्ततः ।
महान्धकारः किमु देवसद्मनि धर्मी विपन्नो नरराक्षसः सुखी ॥

उन दोनों की दशा को देखकर जहाँ-तहां बड़े-बड़े आस्तिक भी शंकित होकर सोचते थे कि देखो ! भगवान् के घर में घोर अन्धकार है कि जो यह धर्मात्मा सज्जन

तो रोग-शोक दरिद्र आदि विपत्तियों से घिरा रहता है और यह नर-पिशाच पापी धन पुत्र आदि सब लौकिक वैभवों का सुख भोग रहा है।

अथैकदा नित्यमिव प्रभाते गंगाम्भसि स्नातुमयं जगाम।
मार्गेऽन्धकारे स्खलितः पपात मूर्च्छाङ्कित कण्टकविद्धपादः ।।४।।

एकबार नित्य की भान्ति यह महात्मा प्रातःकाल गङ्गास्नान करने जा रहा था कि रास्ते में अन्धकारमें ठोकर खाकर गिर पड़ा, पांव में शूल धँस गई और बेहोश हो गया।

नालीकहस्तो मृगयां चिकीर्षितुं तस्याऽनुजोऽप्येष तदध्वना ब्रजन्।
दृष्ट्वा मृतप्रायमिमं ह्युपाचरत्सज्ञांगतं सर्वमप्रच्छदीहितम् ।।५।।

हाथ में बन्दूक उठाए शिकार खेलने के लिए आस्तिक का छोटा भाई भी उसी मार्ग से चला जा रहा था। भाई को मुर्दे के समान बेहोश पड़ा देखकर पानी हवा आदि से इलाज करके प्रबुद्ध किया, होश में आया तो उससे पूरा हाल पूछा।

तद्दर्शितं ह्युच्छ्रितप्रस्तरांशं मत्वाऽग्रजाऽऽपातनहेतुभूतम्।
नालीकदण्डेन चखान यावद् दीनारपूर्णं कलशं स लेभे ।।६।।

आस्तिक भाई ने अपने अनुज को जमीन में गड़ा एक उभरा हुआ पत्थर का टुकड़ा दिखाया कि जिससे ठोकर खाकर वह गिरा था। छोटे ने ज्यों ही उसे अपने भाई के गिराने का कारण समझ कर बन्दूक के कुन्दे से उखाड़ा कि नीचे सोने की अशर्फियों से भरा एक घड़ा मिला।

हृष्टोऽनुजः प्राह गतः क्व धर्म्मो यत्सेवनात्त्वं विलयं गतोऽसि।
त्वन्नाशभूमाविह पश्य मूर्ख ! दीनारपूर्णः कलशो मयाऽऽप्तः ।।७।।

छोटा भाई इतरा कर बोला—अरे मूर्ख ! बता वह तेरा धर्म अब कहां जिसका कि पालन करते-करते तू सब तरह से मर रहा है। और देख जिस स्थान पर तूने चोट खाई ठीक उसी स्थान से मुझे अशर्फियों से भरा यह घड़ा मिला है।

धीरः स आस्तिकवरः प्रभुलीलयाऽद्य-
सम्मोहितो विचलितः शुचमाप चित्ते।
देवोऽपि तापसवपुर्जनबोधनाय-
ताभ्यामदात्समुपगम्य सुदिव्यदृष्टिम् ।।८।।

यह आस्तिक यद्यपि बड़ा ही धैर्य्यशाली था तथापि आज भगवान् की इस प्रत्यक्ष लीला को देखकर मोहित हो गया। (छोटे भाई की बात सुनकर) और विचलित होकर मन ही मन गहरी चिन्ता में पड़ गया। भगवान् ने भी जब अपने आस्तिक भक्तकी यह दशा देखी तो वे तपस्वी का वेष बना उनके निकट पहुंचे और धर्म-अधर्म के फल की वास्तविकता दिखाने के लिए दिव्य दृष्टि प्रदान की।

ददर्श पापोऽद्य ममाभिषेकः स्वपूर्वजन्मार्जितपुण्यपुञ्जैः।
क्षीणः स एवैहिकपापकृत्यैर्ह्रसन् ह्रसन् हा ! कलशत्वमाप ।।

दिव्य दृष्टि से पापी ने देखा कि पूर्व जन्मार्जित अनेक पुण्यों के प्रयास से आज के दिन मेरा राज्याभिषेक होना था। परन्तु शोक है कि इस जन्म के मेरे पापों के कारण वह क्षीण होकर घटता-घटता केवल मुहरों से भरा कलसामात्र रह गया।

भक्तोऽप्यपश्यन्मम पूर्वपापैरारोप्यशूलं नियतोवधोऽद्य।
स ऐहिकानुष्ठितपुण्यपुञ्जैः क्षीणः पुनः कण्टकतामवाप ।।१०।।

भक्त ने भी दिव्य दृष्टि से देखा कि पूर्व जन्मकृत उग्र पापों के कारण आज का दिन मेरे लिये सूली पर झूलकर मर जाने के लिये नियत था, परन्तु इस जन्म में जो मैंने पुण्य सञ्चित किये उनके प्रताप से वह दण्ड क्षीण होते होते सूली से कांटे की सूल मात्र ही अवशिष्ट रह गया।

धर्मात्मानो विपन्ना यदि नयनपथं यान्ति तत्राऽनुमेयम्, ।
नूनं ते पूर्वजन्मार्जितदुरितफलं भुञ्जते क्षीणसारम् ।।
एवं पापाः समृद्धा अपि नयनिरतैस्तादृशो भावनीयाः।
धर्मो मोदस्य हेतुर्वृजनमपि तथा निश्चितं दुःखमूलम् ।।११।।

यदि धर्मात्मा लोग विपदग्रस्त दीख पड़ें तो अनुमान कर लेना चाहिये कि अवश्य ही वे अपने पूर्वजन्मों के अर्जित पापों का फल ही भोग रहे हैं जोकि सांप्रतिक धर्माचरण के कारण अपक्षीण हो गया है। इसी प्रकार पापी पुरुषों को भी सुखी देखकर समझ लेना चाहिये कि कदाचित् ये पाप न करते तो पूर्व जन्म के पुण्यों के कारण इससे भी अधिक समृद्धिशाली होते। यह त्रिकाल वाधित सत्य है कि सुख का हेतु एकमात्र धर्म है और दुःख की जड़ निश्चित ही पाप है।

——:०:——

न भाग्यरेखा परिवर्तनक्षमा

आसीत्पुरा जाङ्गलदेशवासी भक्तः सदाराम इति प्रसिद्धः ।
यः काष्ठसन्तक्षणतुच्छवृत्त्याऽतिथीन् कुटुम्बञ्च पुपोष नित्यम् ।।

पूर्वकाल में 'आंगल' देश में सदाराम नामक एक बहुत प्रसिद्ध भक्त था । वह लड़कियों के काटने और छीलने का साधारण सा 'बढ़ई गिरी' का काम करके उसी वृत्ति से प्राप्त द्रव्य द्वारा अतिथि सेवा तथा अपने परिवार का पोषण किया करता था ।

अथैकदा कार्यरतः स वार्धिकी सन्यासिनं वीक्ष्य गृहे समागतम् ।
नत्वाऽवदत्तावदिहास्यतां प्रभो ! यावन्मया कार्यमिदं समाप्यते ।।

एक बार वह भक्त बढ़ई काम में लगा हुआ था, उसी समय एक सन्यासी उसके गर पधारे । उसने बड़ी विनम्रता के साथ निवेदन किया—प्रभो ! आप यहां बैठिये, मैं यह आवश्यक कार्य समाप्त करके अभी आपकी सेवा में लगता हुं ।

स तापसः प्राह जनैस्तु सौम्य ! त्वं गीयसे 'भक्त' इतीह लोके ।
भिक्षाप्रदानादपि ते स्वकृत्यम् आवश्यकं भाति महान् प्रमादः ।।

उस तपस्वी ने कहा—हे भद्र ! सब लोग तुम्हें 'भक्त' के नाम से पुकारते हैं । फिर भी तुम भिक्षा देने से अधिक अपने काम को महत्त्व दे रहे हो ! यह सरासर प्रमाद है ।

भक्तोऽवदन्मे तनयः कुमारो गतोऽन्यबालैः सह खेलनार्थम् ।
वृषेण विद्धः स च भग्नबाहुरायास्यति ग्राम्यजनैर्गृहीतः ।।

भक्त ने उत्तर दिया – मेरा छोटा सा लड़का अन्य बालकों के साथ खेलने के लिए (बाहर) गया है । वह एक बैल से टक्कर खा कर टूटी बांह लेकर अभी ग्राम के लोगों द्वारा पहुंचाया जाने वाला है ।

तद्भग्नहस्तस्य च बन्धनाय छिनद्मि वेणोः फलकानि साधो !
बालस्य रक्षा पुनरातुरस्य महात्मभिः पुण्यतमा प्रदिष्टा ।।

उस की टूटी बांह को बांधने के लिये मैं बांस की फट्टियां तैयार कर रहा

हूं। स्वामी जी ! बालक की—और वह भी घायल की, रक्षा करना आप महात्मा पुरुषों ने ही पुण्य कार्य बताया है।

इत्थं तयोः संवदतो हि लोकाः समाययुस्तत्र गृहीत-बालाः।
भग्नं च हस्तं फलकैः सुबद्ध्वा भिक्षां ददौ तं ह्यचिरेण भक्तः॥

वे दोनों इस प्रकार बात कर ही रहे थे कि गांव के लोग बालक को लेकर आ पहुंचे। उसके टूटे हुए हाथ को फट्टियों से बाँधने के उपरान्त बढ़ई ने तत्काल ही महात्मा को भिक्षा दी।

सुविस्मितः प्राह तपस्विवर्यः पूर्वं त्वया ज्ञातमिदं कुकृत्यम्।
कथं कुमारः स्वगृहे न गुप्तो निवारितोऽयं न महाननर्थः॥

महात्मा यह सब देखकर आश्चर्य-चकित हो गए, बढ़ई से बोले—इस दुर्घटना का जब तुम्हें पहले से ही ज्ञान था तो इस बच्चे को तूने घर में ही छुपा कर क्यों न रक्खा ? जिस से ये महान् अनर्थ टल जाता !

जगाद भक्तो भगवन् मनुष्यो न भाग्यरेखाऽपगमे समर्थः
दुर्दिष्टनाशो नहि यत्नसाध्यः सर्वो हि लोक खलु देवतन्त्रः॥

भक्त ने उत्तर दिया— भगवन् ! मानव, भाग्य में लिखे हुए का प्रतिकार कर सकने में समर्थ नहीं है। दुर्भाग्य को किसी यत्न से मिटाया नहीं जा सकता। निश्चित ही यह सम्पूर्ण लोक भाग्य के अधीन है।

स तापसः प्राह यदुच्यते त्वया तत्सालसानां किल मत्तजल्पनम्।
किं नाम कार्य्यं हि तदस्ति भूतले यद् यत्नसाध्यं न भवेत्कृतात्मनाम्

तपस्वी ने कहा—अरे ! तुम जो बात कह रहे हो वह तो आलसियों का प्रलापमात्र है। भूतल में ऐसा कौन काम है, जो प्रयत्न के द्वारा सिद्ध न किया जा सके।

भक्तोऽवदत् श्वो दिवसे महात्मन् ! अस्मिन् पुरो वर्त्तिनि निम्बवृक्षे
यातासि मृत्युं त्वमु पाशबद्धः कुरु प्रयत्नं यदि शक्तिरस्ति॥

भक्त ने प्रत्युत्तर में कहा—स्वामी जी ! कल इस सामने निम्ब (नीम) वृक्ष पर आप को फाँसी में लटका कर मारा जायगा। यदि आप में शक्ति है तो बचने का प्रयत्न कर लीजिये !

श्रुत्वा वचो भक्तमुखादमङ्गलम्, तं कृष्णजिह्वं मनसा विचिन्त्य च
सम्भावितात् मृत्युभयात्स तापसः पलायितो निर्जन-वन्य-गह्वरम् ।।

भक्त के मुख से यह अनिष्टकारी वचन सुनते ही महात्माजी उसे अपने मन में 'कलजिह्वा' सोचते हुए सम्भावित मृत्यु के भय से बचने के लिए जङ्गल की ओर दौड़े ! वे किसी पर्वत की गुफा में छुपना चाह रहे थे ।

दिनं व्यतीतं रजनी व्यतीता प्रधावमानस्य हि वायुवेगात् ।
अचिन्तयद् दूरतमं प्रदेशम् प्राप्तोऽस्म्यहं सम्प्रति नैव चिन्ता ।।

महात्मा को वायुवेग से दौड़ते २ सारा दिन और रात बीत चले । वे सोच रहे थे अब मैं उस स्थान से बहुत दूर निकल आया चिन्ता की कोई बात नहीं रही ।

क्व निम्बवृक्षः क्व समागतोऽहम्, क्व नीचभक्तः स च सिद्धमन्यः ।
गत्वा कदाचिन्मुखरस्य तस्य मुखे प्रदास्यामि सितां विनिन्द्य ।

कहां वह नीम का पेड़ ? और कहाँ इतनी दूर मैं भाग आया हूँ ! अपने को सिद्ध मानने वाला वह नीच भक्त कहां है ? मैं किसी दिन जाकर उस बकवादी के मुख में धूल भरूंगा । सबसे उसकी निन्दा करूंगा ।

विचार्यमाणो निजपृष्ठदेशाद्-आयान्तमेकं सुरथं ददर्श ।
चलन् क्षणेनैव स तत्समीपे स्थितोऽब्रवीत्तं रथ-सूत इत्थम् ।।

महात्मा यह विचार कर ही रहा था कि उसने अपने पीछे से आता हुआ एक सुन्दर रथ देखा, जो क्षण मात्र में ही निकट आ पहुंचा । सारथी ने रथ को रोक कर आते ही महात्मा से कहा—

भो भो.मुने ! मे रथवाजिरश्मीः क्षणं गृहीत्वा त्वमु तिष्ठ तावत् ।
उत्तीर्य्य यावत्खलु मूत्रयामि चिरादहं प्रस्रववेगखिन्नः ।।

मुनिमहाराज ! थोड़ी देर मेरे रथ के घोड़ों की लगाम पकड़ लीजिए । मैं बहुत देर से लघुशङ्का से पीड़ित हूं । उतर कर अभी कर लेता हूं ।

इयं रथस्था खलु राजकन्या पितुर्गृहात् स्वामिगृहं प्रयाति ।
त्वयाऽपि गन्तव्यमितो यदि स्यात्मसन्निधौ स्थेयमिहैव याने ।।

रथ में बैठी हुई यह राजकुमारी अपने मायके से ससुराल जा रही है। यदि तुम्हें भी यहाँ से उसी ओर जाना हो तो मेरे रथ में बैठ जाना।

स तापसो वाहक-वाक्यमेतत् प्रभोः कृपां चेतसि साधु मेने।
विना श्रमं सम्प्रति यान-संस्थोऽचिरेण मार्गं बहु पारयामि।।

सारथी की यह बात सुनते ही तपस्वी ने मन ही मन ईश्वर को इस कृपा के लिए धन्यवाद दिया, और सोचा कि मैं अब बिना किसी परिश्रम के ही, रथ में बैठ कर बहुत सा मार्ग तय कर लूँगा।

यावद् रथोपस्थ उपाविशन्मुनिर्गृहीतरश्मिर्नृपदूतपाणितः।
तावद्धयास्तार्क्ष्य-समान-रंहसा बलाभिरुद्धा अपि दुद्रुवुः क्षणात्।।

मुनि ने सारथी के हाथ से लगाम पकड़ी और सारथी ज्यों ही मूत्र करने को नीचे उतरा, तत्क्षण ही घोड़े गरुड़ के वेग से दौड़ पड़े और रोकने की बहुत चेष्टा करने पर भी रुक न सके।

कृत-प्रयत्नो विवशोऽथ तापसोऽतिव्यग्रचित्तोऽपि मुमोद मानसे।
नृपाश्वशालां हि समेत्य वाजिनः स्थास्यन्ति यत्रास्मि भवेयमर्चितः।।

महात्मा ने घोड़ों को रोकने का प्रयत्न किया पर वह असफल रहा। व्याकुलता होने पर भी वह यह सोच कर मन में प्रसन्न हो रहा था कि राजा की घुड़साल में जाकर ये घोड़े स्वयं ही ठहर जायेंगे और फिर वहाँ मेरा खूब स्वागत होगा।

स सारथिस्तापसवेषधारिणम् कस्यापि शत्रोरनुमीय सेवकम्।
पश्चात्समेतान्निज-रक्षकांस्तदा न्ययोजयत् साहसिकस्य निग्रहे।।

एकदम रथ के दौड़ते ही सारथीप्रवर उस राजदूत ने उस तपस्वी को गुप्त रूप में वेष बदल कर घूमने वाला शत्रु का कोई गुप्तचर (राजदूत) समझा, और पीछे से आने वाले रक्षक सैनिकों को उसे पकड़ने के लिये दौड़ा दिया।

'निगृह्यतामाशु' निगृह्यतामिति पुनः पुनः प्रोच्य च राजसैनिकाः।
सर्वेऽन्वधावन् रथपृष्ठगामिनो यानस्वने ते मुनिना न लक्षिताः।।

'पकड़ो', 'जाने न पाये,' 'जल्दी पकड़ो'—चिल्लाते हुए सारे राजसैनिक रथ के पीछे २ दौड़ने लगे। परन्तु रथ की ध्वनि के कारण मुनि ने यह कुछ भी नहीं जाना।

अथ प्रदोषे स रथः स्वयं यदा रुद्धश्चिराद् ग्राम्यवनस्य सन्निधौ ।
स्वस्थो मुनिस्तत्र ददर्श विस्मितस्तमेव भक्तं निज-पादयोः स्थितम् ।।

इस प्रकार दौड़ता हुआ रथ सायंकाल जब किसी गाँव के निकट वन में आ कर रुका तो स्वस्थचित्त होने पर मुनि ने बड़े विस्मय के साथ देखा कि वही 'भक्त-राज' बढ़ई उनके चरणों में प्रणाम कर रहा है।

सवेपथुः स्तम्भितमानसो मुनिरचिन्तयद् यानगतेर्विपर्य्ययम् ।
अहो! रथोऽयं सुरनाथ-दिङ्मुखः स्वयं कथं पाशि-विदिङ्मुखोऽभवत् ।

कांपते हुए शरीर और विस्मित मन से मुनि सोचने लगा—यह रथ विपरीत दिशा में कैसे आ गया? अरे! यह तो पूर्व की ओर जा रहा था, फिर स्वयं पश्चिम दिशा की तरफ उल्टा कैसे घूम गया?

ततः क्षणादेव समेत्य सत्वरम्, दृढं गृहीतः स मुनिस्तु सैनिकैः ।
निर्भर्त्स्य तं प्राह स सैनिकाग्रणीरहो! महान् दुष्कलिकाल आगतः ।।

उसी समय पीछा करते हुए सैनिकों ने वहाँ पहुंच कर मुनि को मजबूत रस्सियों में बान्ध लिया। सैनिकों का नायक मुनि को डांटता हुआ बोला—अहो! घोर कलियुग आ गया है!

जटाधरो दण्डधरोऽपि तापसोऽहरत्खलो राजसुतां सुभूषिताम् ।
बद्ध्वा गले पाशमयं नियन्त्रित आरोप्यतामुच्छ्रितनिम्बपादपे ।।

जटाधारी और दण्डी होते हुए भी यह दुष्ट तपस्वी, सुन्दरी राजकुमारी को भगा लाया. अभी इसका गला बान्ध कर इस ऊंचे नीम के पेड़ पर फाँसी लटका दो।

सम्पाद्यमानेऽथ वधप्रयत्ने प्रणम्य भक्तो मुनिमाह देव ।
न भाग्यरेखा परिवर्तनीया 'सर्वो जनः स्वाचरितं भुनक्ति' ।।

जब फाँसी पर लटका कर मुनि को मारने की तैयारी हो रही थी, तब वह भक्त प्रणाम करके बोला—'भगवन्! भाग्य में लिखे को कोई नहीं बदल सकता। अपने प्रारब्ध का फल भुगतना ही पड़ता है।'

मुनिस्तदानीमकृतापराधो मत्वाऽन्यजन्मार्जितमेव पापम् ।
तं मृत्युदण्डं ह्यपि कर्म-भोगम् हसन् हसन् भोक्तुमियेष धीरः ।।

तब बिना किसी अपराध को किये भी अपने पूर्वजन्म के पाप का परिणाम जानकर मुनि महाराज बड़े धैर्य से इस मृत्युदण्ड को हंसते २ भोगने को तैयार हो गए ।

विचिन्त्यतां दण्डककण्टकैः क्षतम् श्रीरामचन्द्रस्य सुपादपल्लवम् ।
श्रीकृष्णचन्द्रस्य तथा स्यमन्तक-मणिप्रसंगेऽनृतचौर्य्यलाञ्छनम् ॥

पाठक विचार करें कि जब भगवान् श्रीराम को भी दण्डक वन में अपने कोमल चरणों को क्षत-विक्षत करवाने के लिए अवतरित होना पड़ा और श्रीकृष्णचन्द्र को स्यमन्तक मणि के अपहरण करने का झूठा कलङ्क सहन करना पड़ा ।

दुरोदरे धर्मसुतप्रवृत्तिर्भीष्मस्य गोदुर्हरणे प्रयासः ।
बुद्धस्य कोलामिषभक्षणेच्छा श्रीगान्धिनो वत्सवधेऽप्यनुज्ञा ॥

धर्मराज युधिष्ठिर का जूआ खेलना, पितामह भीष्म का विराट् नगर में गौ चुराने के दुष्प्रयत्न में सम्मिलित होना, गोत्तम बुद्ध की शूकर के मांस भक्षण में प्रवृत्ति, और श्री गान्धी का बछड़ को मारने की अनुमति देना—

इत्थं किलान्येऽपि महामहीयसो दृष्टान्तभूताः शतशः सहस्रशः ।
येऽनिच्छया स्वात्मविरुद्ध-कर्मणि बलान्नियुक्ता इव देवतन्तुना ॥

इसी प्रकार अन्यान्य भी बहुत से महामहिम व्यक्ति दृष्टान्त रूप से बताए जा सकते हैं जो कि अपनी आत्मा के सर्वथा विरुद्ध न चाहते हुए भी प्रारब्ध द्वारा ही मानो बलात् पकड़ कर कुकृत्य में ढकेल दिये गये हों ।

गृहस्थ-सम्प्रदाय-वैचित्र्यम्

(१)

दृष्ट्वा कांश्चिन्नवोढ़ां पतिगृहगमने रुद्यमानां पुरस्ताद्
हास्यासक्तं वरं वै चकित इव जनान् कोप्यपृच्छन्मुनीन्द्रः ।
तुल्ये शीलेऽपि चैको हसति तदपरा रोदिति ब्रूत हेतुम्
वृद्धस्तं प्राह वर्णिन् ! विदितमनुभवं श्रावयामीह तत्त्वम् ॥

गृहस्थ सुख दुःख से अपरिचित एक मुनि महाराज ने किसी नव विवाहिता कन्या को देखा जो पतिगृह गमन के समय माङ्गलिक रोदन में व्यस्त थी। दूसरी ओर वर को देखा जो हंसते २ नहीं थक रहा था। मुनि ने चकित होकर उपस्थित लोगों से पूछा कि वर वधू का समान स्वभाव होना चाहिए परन्तु इन दोनों में एक हंस रहा है और यह दूसरी रो रही है इस विषमता का क्या कारण है, बतलाइये। एक वृद्ध बोला—ब्रह्मचारी जी ! इस विषय में मैं भुक्तभोगी अपना अनुभव आपको बतलाता हूं, सुनो !

एषा नवोढा पतितुल्यवैभवा क्षणेन जाता स्वगृहाधिकारिणी ।
अस्या इदं ह्यन्तिममेव रोदनं हसिष्यते सम्प्रति सर्वजीवनम् ॥

(वृद्ध बोला) यह जो नव विवाहिता कन्या है यह क्षण मात्र में (भंवर लेते ही) अपने पति के समान वैभवशालिनी बन गई। (अर्थात् पति ने बीसियों वर्ष तक पढ़ लिखने पर जो पदवी प्राप्त की थी इसे वह अकस्मात् ही प्राप्त हो गई वह शास्त्री तो यह शास्त्रिणी, वह डाक्टर तो यह डाक्टरनी) तथा पति के घर वार जमीन और जायदाद की अधिकारिणी भी बन गई। सो इसका यह रोना अन्तिम रोना ही समझिये ! अब तो यह आयु भर हंसती ही रहेगी।

अयं पुनर्यो हसतीह मूढस्तस्याप्यहो ह्यन्तिममेव हास्यम् ।
क्षारेध्मतैलाहरणप्रसक्तो रोदिष्यते सम्प्रतियावदायुः ॥

और फिर यह वर साहिब जो इस समय हंस रहा है इसका भी यह आज अन्तिम हंसना ही समझो ! अन्यथा नून तेल लड़की की चिन्ता में घुलता हुआ यह आयु भर रोएगा ही।

(२)

सुसेवते गेहगतं पतिं सती सा स्वामिनी सोऽतिथिरेव सम्मतः ।
गृहाद् बहिः सा किल तेन सेव्यते स क्षेत्रनाथो वनिता तदाश्रिता ।

सती स्त्री घर में पधारे पति की इस लिए भली प्रकार सेवा करती है कि गृहिणी होने के नाते वह घर की एकमात्र स्वामिनी होती है, और पतिदेव उसका समागत अतिथि सा पूज्य होता है, परन्तु जब वह अपने घर से बाहर यात्रा आदि में जाती है तो पति ही उसकी देखभाल और सेवा सुश्रूषा करता है क्योंकि वह घर से बाहर के क्षेत्र का स्वामी है और स्त्री उसकी आश्रित होती है । ★ ★

महाविचित्राः खलु मूर्खवृत्तयः

कश्चिद् गङ्गाम्भसि स्नातो ग्राम्योऽभ्यर्च्य पुरोधसम् ।
यात्रासाफल्यवचनं बद्धाञ्जलिरयाचत ।।१।।

एक ग्राम्य पुरुष गङ्गा में स्नान करके और पण्डा जी की यथायोग्य पूजा कर के, दोनों हाथ बाँध कर यात्रा की सफलता का आशीर्वाद माँगने लगा ।

विप्रोऽवदत्त्वं त्यज दोषमेकं स्तेयं सुरां मांसमसत्यवाणीम् ।
स प्राह ब्रह्मनहमस्म्यसभ्यस्त्यक्तुं न शक्या भवदुक्तदोषाः ।।२।।

पण्डा जी बोले—भैय्या ! तुम गङ्गा जी पर आए हो अतः अपने जीवन की कम से कम एक बुराई अवश्य छोड़ो । जैसे चोरी, शराब, मांस, किंवा, असत्य-भाषण आदि । गंवार ने कहा—पण्डा जी ! मैं एक देहाती आदमी हूँ अतः आपकी बतलाई हुई चीजें छोड़ने में सर्वथा असमर्थ हूं ।

पुनः पुनर्विप्रजनानुरुद्धः क्लिष्टोऽब्रवीद् हन्त ! मयाद्यमुक्तम् ।
हृष्टो द्विजोऽपृच्छदिमं नु किं भोः ? स प्राह गङ्गाऽऽगमनं हि भूयः ।।

जब पण्डा जी ने ग्राम्यजन को पुनः पुनः कुछ न कुछ छोड़ने को बाध्य किया तो वह तंग होकर बोला—अच्छा, महाराज मैंने आज से छोड़ दिया । पण्डा ने प्रसन्न होकर (कि आखिर मेरी बात मान ही ली) पूछा कि कहिये क्या छोड़ा ? तो वह बोला—महाराज ! मैंने अब से आगे गङ्गा स्नान के लिए आना ही छोड़ दिया । ●

ददाति लाभं न सदैव धूर्तता

एकस्य तातस्य बभूवतुर्द्वौ पुत्रौ तयोर्धूर्ततमः कनिष्ठः।
ज्येष्ठोऽतिसाधुः पितरि प्रयाते विभक्तुकामौ गृहसम्पदस्तौ॥

एक पिता के दो पुत्र थे। उनमें छोटा बड़ा ही धूर्त था और बड़ा अत्यन्त सीधा था। पिता के मर जाने पर उन्होंने घर की चीजें आपस में बाँटनी आरम्भ कीं।

कथं विभज्या महिषीत्युपप्लवे धूर्तोऽवदत्त्वं मम तातसम्मतः।
अतो मुखं त्वं सुगृहाण सुन्दरं पृष्टप्रदेशोऽस्तु मयाधमस्य हि॥

भैंस को कैसे बाटें जब यह संकट उपस्थित हुआ तो धूर्त ने कहा—आप मेरे पितातुल्य ज्येष्ठ भ्राता हैं, अतः भैंस का सुन्दर मुख भाग तुम ग्रहण करो, मुझ कमबख्त का पीछे का भाग ही सही।

दिने दिने तात! तवास्तु कम्बलं पश्यन्त लोकस्तव बर्द्धतां यशः।
निशागमे मेऽस्तु च दुर्भगस्य हि स्वीकार्य्य एष श्रुतिदिष्टनिर्णयः॥

मान्य भ्रातः! दिन दिन में यह कम्बल आपका रहे, जिससे इसे सब लोग देखें और आप का यश बढ़े। फिर रात पड़ने पर मुझ दुर्भागी का ही रहे सही, यह वेद सम्मत निर्णय स्वीकार करने योग्य है।

तथा कृते घासजलप्रबन्धं ज्येष्ठः श्रमेणैष करोति नित्यम्।
विना श्रमं धूर्तवरः पयोऽयं पिबत्यजस्रं महिषीं प्रदुह्य॥

उपर्युक्त निर्णय हो जाने के बाद बेचारा बड़ा भाई तो बहुत परिश्रम करके नित्य भैंस को घास खिलाता और पानी पिलाता, परन्तु छोटा धूर्त बिना ही परिश्रम किये भैंस को दुहकर नित्य दूध गटक जाता।

ज्येष्ठो दिने कम्बलभारखिन्नः सविष्टरः स्यान्निशि धूर्त एषः।
ज्येष्ठं विपन्नं ह्यवलोक्य कश्चिद् धूर्ताऽग्रणी प्राह कृपापरीतः॥

दिन में बड़ा भाई कम्बल का बोझा उठाए घूमता, रात को धूर्त उसे बिस्तर

बना कर आनन्द लेता। इस तरह बड़े भाई को आपद्ग्रस्त देखकर गुंडों का गुरु दयार्द्र होकर उसे कहने लगा।

किं खिद्यसे यत्नमिमं कुरुष्व भोः सन्दोहने ताडय तन्मुखं भृशम्।
सायं जलक्लिन्नमिदञ्च कम्बलं विधाय सम्यक् सुफलं प्रतीक्षताम्॥

अरे भोले सज्जन, तूं क्यों कष्ट भोग रहा है, देख जब वह धूर्त भैंस दूहने लगे तो तूं भैंस के मुख पर बार २ डंडा मार और इस कम्बल को सांझ पड़ते ही खूब पानी में भिगो दे! बस! देख फिर इस यत्न का क्या सुन्दर फल होता है।

तथा कृते सा लगुड़प्रताड़िता नादात्पयस्तं प्रजघान लत्तया।
धूर्तो यदा तं निषिषेध सोऽब्रवीद् भोः साधिकारोऽस्मि मुखस्य ताड़ने

दूहने के समय ज्यों ही भैंस के मुख पर तड़ातड़ डंडे बरसने लगे तो वह उद्विग्न होकर दूध देने से भाग गई और धूर्त को अपनी लातों से मारने लगी। चालाक भाई ने जब बड़े भैय्या को डंडे मारने से रोका तो उसने कहा (जैसे तुम विभक्त पीछे भाग से दूध दोहने में साधिकार हो इसी प्रकार) मैं अपने बांटे में आये हुए भैंस के मुख भाग पर यथेच्छ क्रिया करने में साधिकार हूँ।

जलाप्लुतं वीक्ष्य च कम्बलं यदा पृष्टोऽग्रजः सोऽपि ददौ तमुत्तरम्।
दिने दिनेऽहं ननु कम्बलेश्वरो यद् रोचते मे प्रकरोमि तत्तथा॥

चालाक भाई ने जब जल में भीगा कम्बल देख कर बड़े भाई से पूछा तो उसने टका सा जवाब दिया कि दिन में मैं कम्बल का मालिक हूं मुझे जो रुचेगा सो करूंगा।

धूर्तेन सम्यग् हृदये विचारितं केनाप्ययं मद्-गुरुणा प्रबोधितः।
अतो गृहीत्वा चरणौ प्रसाद्य तं जातौ पयःकम्बलभागिनावुभौ॥

चालाक भाई ने अपने दिल में खूब अच्छी तरह समझ लिया कि अब इसे मेरे किसी गुरु ने भली प्रकार शिक्षित कर दिया है। (अब मेरी धूर्तता न चल सकेगी।) अतः बड़े भाई के चरण पकड़ कर उसे प्रसन्न किया और आगे के लिए घास फूंस दूध और कम्बल आदि सब बातों का न्यायोचित बटवारा कर के दोनों मिल कर सुखोपभोग करने लगे।

—:o:—

धनव्ययो वै कृपणस्य मृत्युः

कश्चिद् धनेशः कृपणाग्रगण्यः श्रुत्वा जनेभ्यो बहुधा स्वनिन्दाम् ।
महाकलंकं परिमार्ष्टुकामः सम्बोध्य चैकं पणकं जगाद ॥१॥

किसी नगर में एक सेठ रहता था। मात्रा से अधिक कंजूस था। एक बार अपनी कृपणता के विषय में बहुत अधिक निन्दा सुनकर अपने कलंक को दूर करने की इच्छा से उसने एक पैसे से कहा—

भो भोः शृणु वचनं पणकोत्तम ! त्वम्
नूनं मया तव वधः करणीय एव ।
लोकैर्धृतः शिरसि यद्धि मृषाकलंक-
स्तन्मार्जनस्य नहि कोऽप्यपरो ह्युपायः ॥२॥

ऐ प्यारे पैसे ! ध्यान से सुनो, आज मैं तुम्हें नष्ट करके छोड़ूंगा। लोगों ने व्यर्थ में ही मेरे सिर पर जो कलङ्क थोप रक्खा है—उसे दूर करने का और कोई उपाय भी तो नहीं ।

दीर्घासु पेटासु महायसीषु न वाऽस्पृशत् त्वां पवनोऽपि तात !
चिरं स्थितो मे सदने ह्यशङ्को मोमुद्यमानो बहुबन्धुमध्ये ॥३॥

बड़ी २ लोहे की तजूरियों में बन्द रहने के कारण हवा भी तुम्हें नहीं छू सकती थी, और मेरे घर में तुम अपने सगे सम्बन्धियों के बीच में बड़े आनन्द से रह रहे थे।

अहोऽधुना त्वं मम मुष्टिलालितः क्रूरस्य कस्यापि च निष्ठुरे करे ।
दुर्भाग्यतः प्रेत्य गृहे गृहे भ्रमन् दीनां दशां यास्यसि किं ब्रवीम्यहम् ॥

हाय ! मैंने तुझे बड़े स्नेह से पाला था। परन्तु आज किसी कठोर आदमी के हाथों में जाना पड़ेगा। तेरा दुर्भाग्य अब तुझे दर २ की ठोकरें खिलाएगा, न जाने क्या दुर्दशा हो जायगी मैं क्या बताऊं !

एवं वराको विलपन् मुहुर्मुहुः सबद्धमुष्टिर्विचचार दुःखितः ।
हट्टेषु पृच्छन्नटतिस्म सक्लमः कोऽर्घोऽस्ति मिष्टान्नफलादिकानाम् ॥

बह बेचारा इसी प्रकार विलाप करता हुआ पैसे को मुठ्ठी में दबा कर दु.खित हुआ वाजार की ओर चला। दुकानों पर मिठाई और फलादि के भाव पूछता हुआ वह थक सा गया।

भो हल्यवाहो ! पिटकस्य कोऽर्घः टनस्य पौण्डस्य च दर्जनस्य।
उधारभावे नकदे च कोऽस्ति कियान्पुनः वै पणकेन लभ्यः ॥६॥

ऐ हलवाई ! पेड़ा क्या भाव है ? टन का क्या दाम लगेगा, पौण्ड और दर्जन का भी हिसाब बताओ। उधार और नकद लेने में दाम का अन्तर तो नहीं है ? एक पैसे के कितने पेड़े आएंगे ?

सुविस्मितः प्राह वणिग् धनेश ! 'लीलावती' नैव मया ह्यधीता।
त्रिरूप्यकैः सेटकमात्रलभ्यः स्वयं त्वमन्यद् गणितं कुरुष्व ॥७॥

आश्चर्यचकित होकर दुकानदार ने कहा—सेठजी ! मैंने लीलावती (गणित की पुस्तक) नहीं पढ़ी है। पेड़े तीन रुपये के एक सेर मिलते हैं—बाकी हिसाब स्वयं ही कर लो।

न बुद्धवः श्रेष्ठिजना वयं स्वयम्
क्रीणामि किंचित् 'पड़ता' बिना कथम् ?
'मदीय हट्टे नहि त्वत्कृते पणम्
अन्यत्र गत्वा क्रियतां क्रयस्त्वया' ॥८॥

सेठ बोला—अरे ! हम बुद्धू नहीं हैं, सेठ लोग हैं। हम कुछ भी बिना 'पड़ते' के कैसे खरीद सकते हैं ? हलवाई ने झुंझला कर कहा—यहाँ आपका सौदा नहीं पटेगा—कहीं और जाइये।

आम्रस्य कोऽर्घः फणसस्य को वा
दुग्धस्य मिष्ठान्नचयस्य कोऽस्ति ?
पृच्छन् विपृच्छन् प्रतिहट्टमेष
कस्तूरिकागन्धमृगो बभूव ॥९॥

'आम का क्या भाव है ? 'शरीफा किस हिसाब से दिया ? दूध और मिठाई कितने रुपये सेर है' इस प्रकार बार-बार पूछता हुआ वह सारे बाजार में 'कस्तूरीमृग' की तरह चक्कर काट रहा था।

यावद्दिनं सम्भ्रमतोऽस्य हट्टे न वै सलाभं 'पड़ता' पपात।
ततः परावृत्य सुबद्धमुष्टिर्हृष्टो यथापूर्वमगात्स्वधाम ॥१०॥

जब दिन भर बाजार में घूमते २ भी इसका 'पड़ता' न बैठा तो मुट्ठी बन्द किये हुए ही घर वापिस आ गया। बड़ा प्रसन्न हो रहा था।

यदा समुद्घाट्य तु मुष्टिसंपुटम् ददर्श प्रेम्णा पणकं करस्थितम् ।
प्रस्विन्नहस्तच्युतवारिसीकरम् विलोक्य तस्मिन्निदमाह सान्त्वयन् ॥

अपनी मुट्ठी खोलकर वह सेठ जिस समय बड़े प्रेम से पैसे को देखने लगा तभी पसीना आ जाने के कारण मुट्ठी में से स्वेदकण टपके—ये देखते ही वह उस पैसे को सान्त्वना देते हुए कहने लगा—

अहो ! कथं रोदिषि दीनबालवद् न भर्त्सितस्त्वं हृदयेन सुव्रत ।
अघ्रातवातो निजबन्धुभिः सह चिरं वसाऽशङ्क इहैव पेटके ॥

अरे ! तुम छोटे बच्चों की तरह रो क्यों रहे हो ? मैंने तुम्हें अपने हृदय से दूर तो नहीं किया ! हवा की पहुंच से भी दूर इस पेटी में निडर होकर अपने भाई बन्धुओं के साथ आनन्द करते हुए निवास करो ।

इत्थं वदन् तं परिचुम्ब्य सादरम् भूयो यथापूर्वमयोमये गृहे ।
संस्थाप्य शान्तो मनसि व्यचारयद् अहोऽघरोषात् किमुकर्त्तुमुद्यतः ।

ये कहते हुए सेठ ने पैसे को चूमकर फिर लोहे की मजबूत तिजोरी में बन्द कर दिया, और शान्तचित्त होने पर वह विचारने लगा—अहो ! मैं आज क्या पाप करने को तैयार हो गया था ।

अज्ञात कवि कृत प्राचीन दोहा—

शुन्यास्तु योनिः कृपणस्य पेटिका समे ह्युभे सत्कविभिर्निरूपिते ।
संस्थापने तत्र सुखं प्रतीयते, निष्कासने मृत्युसमं हि पीड़नम् ॥

कृपण कोथली स्वान भग, दोनों एक समान ।
राखत अतिसुख ऊपजे, निकसत निकसत प्राण ॥

--:o:--

कुधनं याति न सद्व्यये

सुधनं किल पुण्यकर्मणि व्ययतामेति न पापसञ्चितम् ।
गणिकाकुधनं नटैर्विटैरशितं ब्राह्मणवेषधारिभिः ॥१॥

यह प्रसिद्ध है कि अच्छा धन ही पुण्यकर्म में व्ययित होता है पाप सम्मित नहीं। एक वेश्या का अपर्वित्र धन ब्राह्मण वेषधारी नट और भांडों ने ही खाया था।

काचिद् वेश्यास्ववित्तैर्मखमभिलषती धिक्कृता वेदविद्भि-
र्ज्ञातोदन्तैश्च भण्डैः कृतकपटमखैर्वञ्चिता विप्रवेषैः ।
सापूपं पायसं तैरशितमनुदिनं दक्षिणा चापि लब्धा,
प्रोक्ताऽन्ते 'सा हि रण्डा त्वसि वयमपि ख्यातभण्डास्त एव' ॥

एक वेश्या ने अपने धन द्वारा यज्ञ करने की इच्छा की। परन्तु ज्यों ही उसने वेदपाठी ब्राह्मणों से ऐसी प्रार्थना की तो उन्होंने अनधिकारिणी समझ कर उसे खूब डाँटा। जब यह भेद भाँडों को मालूम हुआ तो उन्होंने वेदपाठी ब्राह्मणों जैसा वेष बनाकर उसे खूब ठगा। झूठ मूठ का एक यज्ञ सा कर डाला, कई दिन तक खूब मालपूड़े और खीर खाँड का भोजन खाया। दक्षिणा में भी खूब माल उड़ाया अन्त में आशीर्वाद देते हुए बोले कि सुनो ! श्रीमती जी, यह सब कुछ तो हो गया परन्तु आखिर हो तुम वही रण्डी की रण्डी, और हम तुम्हारे सुपरिचित वही भांड के भांड।

वृथागतं कुवित्तं ते भुक्तं स्वन्नं सशर्करम् ।
त्वं रण्डे ! सैव वेश्यासि वयं भण्डास्त एव हि ॥३॥

दोहा—यों का धन यों ही गया, खाई खीर अरु खाँड।
रण्डी की रण्डी रही, रहे भाँड के भाँड ॥

—:o:—

न्यायाधिपो यत्र महापराधी तत्राभियोगो नितरामपार्थः

पाश्चात्यशिक्षानिरतं कुमारम्
उत्थाय मार्गे किल मूत्रयन्तम् ।
विलोक्य कश्चित्स्मृतिशास्त्रवेत्ता
न्यषेधयत्तं बहुहेतुवादैः ॥१॥

अंग्रेजी स्कूल में पढ़ने वाले एक स्टुडैण्ट को रास्ते में खड़े २ पेशाब करते देखकर किसी धर्मशास्त्र-वेत्ता पुरुष ने अनेक हेतुपूर्वक समझा कर उसे ऐसा करने से मना किया ।

गच्छन् पथि प्राप्य गृहं पुरस्तात्
कुमारतातस्य महाशयस्य ।
तत्पुत्रदोषं खलु वक्तुकामः
विवेश गेहं स्मृतिशास्त्रविज्ञः ॥२॥

रास्ते में जाते हुए सामने उस लड़के के पिता महाशय का घर दिखाई दिया । उसके पिता को लड़के की हरकत बताने के लिए वे पण्डित जी घर में घुसे ।

ददर्श संगत्य कुमारतातं
स्ववेश्मनो वै शिखरे भ्रमन्तम् ।
उत्थाय हस्तेन गृहीतलिङ्गम्
चक्रानुसारं परिमूत्रयन्तम् ॥३॥

अन्दर जाकर उसने देखा कि लड़के का पिता छत पर घूम रहा था तथा खड़ा २ हाथ से मूत्रेन्द्रिय को पकड़ कर चारों ओर चक्कर लगाता हुआ पेशाब कर रहा था ।

बाबुं समालोक्य तथाविधं स
आश्चर्यमग्नः सहसा निवृत्तः ।
न्यायाधिपो यत्र महापराधी
तत्राभियोगो नितरामपार्थः ॥४॥

उस बाबू महाशय को इस प्रकार की हरकत करते देखकर चकित होकर पण्डित जी चुपचाप लौट आए। न्याय करने वाला ही जहां महा अपराधी हो वहाँ किसी भी बात की शिकायत करना कुछ भी अर्थ नहीं रख सकता।

——:०:——

कांक्षत्यहोऽज्ञस्तु सपादनाशम्

मिथो मिलित्वा हि सुहृद्द्वयेन क्रीतो मृदङ्गो निजवादनार्थम् ।
गतेऽथ काले सति वैमनस्ये भागद्वयं कर्त्तुमिमौ प्रवृत्तौ ।।१।।

दो मित्र आपस में मिल कर अपने बजाने के लिए एक मृदङ्ग खरीद कर लाए। कुछ ससय बीत जाने पर किसी बात पर दोनों में झगड़ा हो गया। अब दोनों ने मृदंग को बांट लेने का निर्णय किया।

एकोऽवदन्मध्यतमप्रदेशे संच्छिद्य भागौ परिकल्पनीयौ ।
तथा कृते मे च तथा तवापि द्वयोः कृते डिण्डिमिके भवेत्ताम् ।।२।।

एक ने कहा—भाई ! मृदंग को बीच में से काट कर दो भाग कर लेने चाहिएँ। ऐसा करने से मेरे तथा तुम्हारे लिए दो झाँझे (खंजरियां) बन जाएंगी।

परोऽब्रवील्लम्बतमौ हि भागौ विच्छिद्य मध्ये परिकल्पनीयौ ।
तथा कृते मे च तथा तवापि सर्वस्वनाशो हि भवेत् प्रकामम् ।।

दूसरा बोला—ऐसे नहीं। लम्बी ओर से मृदंग काटो तथा लम्बे २ दो भाग कर लो। ऐसा करने से वह हिस्सा न तुम्हारे काम आ सकेगा न मेरे। दोनों का सर्वस्व नाश हो जायगा।

दैवात्प्रणाशावसरेऽपि विद्वान् यथा तथा वाञ्छति लाभमेव ।
उपस्थिते सत्यपि नाशमात्रे कांक्षत्यहोऽज्ञस्तु सपादनाशम् ।।

दुर्भाग्य से यदि विनाश का अवसर आ ही जाय तो विद्वान् पुरुष उस समय भी जैसे तैसे लाभ की ही बात सोचता है। परन्तु मूर्ख पुरुष ऐसे अवसर पर नाश के स्थान में सवाया नाश ही चाहता है।

——:०:——

ग्राम्य पंचायतन न्यायः

(१)

ग्रामे तु कस्मिंश्चन मूर्खसम्मति-बाहुल्यनिर्वाचितपञ्चशासिते ।
कश्चिद्धनी वैश्यवरोऽतिधार्मिकः पतिव्रता तद् गृहिणी तथोषतुः ।।

कतिपय वज्रमूर्खों द्वारा बहुमति से निर्वाचित पञ्चों द्वारा शासित किसी गांव में एक अति धार्मिक बनिया अपनी पत्नी सहित रहा करता था ।

कश्चित्तपस्वी विचरन्निहागतो दृष्ट्वा परां तत्पुरदुर्दशां मुनिः ।
जगाद वैश्यं नहि धर्मशालिना स्थेयं त्वया चात्र कदापि सुव्रत ।।

कोई महात्मा घूमते फिरते वहाँ पहुंचे तथा उस नगर की दुर्दशा देख कर बनिये से कहने लगे—तुम जैसे धर्मात्मा व्यक्ति को इस नगर में नहीं रहना चाहिए ।

कलिप्रभावेण विनष्टचेतना न यत्र जानन्ति शुभाशुभं जनाः ।
न तत्र वासः किल भावुकावहो लिप्तो भवेत्कज्जलगेहगो नरः ।।

कराल कलियुग के दुष्प्रभाव से यहाँ के निवासियों की मति मारी गई है उन्हें बुरे भले की पहिचान नहीं रही । इस लिए यहाँ का निवास कल्याण कारक नहीं । काजल की कोठरी में रहने से दाग लगे बिना नहीं रहता ।

इत्थं धनी तापसबोधितोऽपि स्वजन्मभूमोहवशेन मूर्खः ।
दन्तेषु जिह्वेव सदा विपन्नः तस्थौ पुरेऽस्मिन्नितरां प्रसन्नः ।।

इस प्रकार तपस्वी के द्वारा समझाए जाने पर भी वह मूर्ख बनिया जन्मभूमि के मोहवश दांतों के बीच में जीभ की भांति उसी गाँव में प्रसन्न चित्त होकर रहने लगा ।

अथैकदा वैश्यवरस्य पत्नी निधाय भाले जलपूर्णकुम्भम् ।
कूपाद् गृहं गच्छति तावदेव व्यलोकयत्तत्पुरपंचपुत्रम् ।।

एक बार उस वणिक् श्रेष्ठ की पत्नी जल से भरे घड़े को अपने सिर पर रख कर ज्यों ही कुवें से घर की ओर चली, त्यों ही सामने से उस ग्राम के पंच का लड़का आता दिखाई दिया ।

चतुष्पथेऽश्वं परिनर्तयन्तं पौरान् शिशूनध्वनि मर्दयन्तम् ।
त्रस्तान् जनान् वीक्ष्य मुहुर्हसन्तं संक्रीडमानं हि कृतान्तमन्यम् ।।

पंच का वेटा चौराहे पर घोड़ा नचाता हुआ आ रहा था तथा गांव निवासी एवं बच्चों को कुचलता जा रहा था। अपने दुष्कर्म से भयभीत लोगों को देखकर हंसता हुआ वह साक्षात् दूसरा यमराज सा ही लग रहा था ।

सा गुर्विणी त्रस्ततमाऽऽत्मरक्षणे कृतप्रयत्ना भ्रमतीत्वितस्ततः ।
हयाभिघातैः पतिता विमूर्च्छिता भग्नो घटो गर्भगतो मृतोऽर्भकः ॥

वणिक् पत्नी सगर्भा थी अतः वह अपने आप को बचाने के लिए इधर उधर फिरती हुई घोड़े की टक्कर खाकर वेहोश हो गिर पड़ी । सिर पर रखा घड़ा भी गिर कर फूट गया तथा गर्भस्थ शिशु भी (धक्का न सह सकने के कारण) मर गया ।

वैश्योऽतिदूनो गृहिणीं पतिव्रतां नीत्वा स्वगेहं कृपणामुपाचरत् ।
अन्यायकृत्यप्रतिशोधकाम्यया स्वग्रामपंचायतने न्यवेदयत् ॥

(इस घटना के कारण) वणिक् बड़ा दुःखी हुआ । उसने अपनी साध्वी पत्नी को घर लाकर उपचार आदि से स्वस्थ किया तथा इस अन्याय का बदला चुकाने के लिए अपने गाँव की पंचायत के सामने यह मामला पेश किया ।

ग्रामे तदा सार्वजनीनचत्वरे यथाक्रमं पंचजनाः समागताः ।
झण्डुः खचेडू रगडुर्महाहनुः धन्नुश्च मन्नुर्झगडुः पितामहः ॥

गांव की एक आम चौपाल में झण्डू, खचेडू, रगडू, धन्नू, और झगड़ू बाबा ये सब पंचायत के आदमी धीरे-धीरे क्रम से आकर एकत्रित हो गए ।

जगाद वैश्यः प्रणिपत्य सादरं नारायणं पञ्चजनेषु गद्यते ।
श्रीपञ्चपुत्रेण मदीयगेहिनी निजाश्वघातेन निपातिता भुवि ॥

वैश्य ने सिर झुका कर आदर पूर्वक कहा—भाइयो ! पंचायत में नारायण का वास होता है । श्री पंच महाराज के बेटे ने अपने घोड़े की टक्कर से मेरी घरवाली को धरती पर गिरा दिया ।

भिन्नः शिरस्थः कलशः क्षता च सा गर्भः श्चुतस्तत्र हि साप्तमासिकः
आहूय वाच्यो युवको भवद्भिः संकीर्णमार्गेषु न नर्तयेद् हयम् ॥

(धरती पर गिरने से) महाराज ! उसके सिर पर रखा घड़ा गिर कर फूट गया, उसको कई जगह चोटे आईं और वहीं उसका सात माह का गर्भ गिर गया । आप लोग उस छोकरे को बुला कर समझा दें कि भविष्य में कभी भी इस प्रकार तंग गलियों में घोड़ा न नचाए ।

ऊचुः समे पञ्चजनाः सरोषं जातः पुरेऽद्यैष महाननर्थः ।
पञ्चोऽथवा पंचपितासुतो वा कृतापराधः किल दण्डनीयः ॥

गुस्से में भर कर सभी पंचों ने एक स्वर से कहा—आज हमारे गांव में सचमुच अनर्थ हो गया । अपराध करने वाला स्वयं पंच हो या पंच का बेटा हो, चाहे पंच का बाप भी क्यों न हो, उसे दण्ड अवश्य मिलना चाहिए ।

भोः पंचपुत्र ! त्वयका प्रमादिना वैश्यस्य हानिर्विहिता गरीयसी ।
सर्वां तु तां पूरय साधु सत्वरं अयं हि पंचायतनस्य निर्णयः ॥

पंचों ने पंच के बेटे की ओर मुखातिब होकर कहा—सुन भाई पंच के बेटे तूने प्रमाद में आकर इस बेचारे लाला का बड़ा नुकसान किया है । उस नुकसान को तू जल्दी ही पूरा कर यही पंचायत का फैसला है ।

भो वैश्य ! पंचायतनेन निश्चितं तावत्स्वभार्यां वितर प्रमादिने ।
यावत्सगर्भां तु विधाय तां तथा दद्यात्स्वयं ते किल मासि सप्तमे ॥

पंचों ने फिर लालाजी से कहा—लालाजी ! आप अपनी घरवाली इस प्रमादी छोकरे के हवाले करो, यह उसको सगर्भा बना कर सातवें महीने आप को सौंप देगा ।

श्रुत्वा जनाः पंचकृतं विनिर्णयं प्रोचुः सहर्षं किल साधु साध्विति ।
वैश्यः स्मरन् तापसदत्तशिक्षणं रोरुद्यमानः प्रययौ निकेतम् ॥

उपस्थित लोगों ने पंचायत का यह फैसला सुनकर 'वाह वाह' करना शुरू कर दिया । बेचारा बनिया (यह विचित्र न्याय देखकर) तपस्वी महात्मा के उपदेश याद करने लगा और रोता हुआ अपने घर चला आया ।

निशीथकाले सकुटुम्ब एष स्वजन्मभूमोहमपास्य सर्वम् ।
कुग्रामवासं सहसा विहाय जगाम देशान्तरमाशु पुण्यम् ॥

बेचारा बनिया जन्मभूमि के मोह में न पड़ कर आधी रात के समय अपने परिवार सहित ऐसे खोटे गाँव को छोड़ कर किसी दूसरे स्थान पर रहने के लिए चला गया ।

—:०:—

ग्राम्य पंचायतन न्यायः

(२)

वयस्कतामात्रगुणैः प्रमादिभिर्नरैः परप्रत्ययनेयबुद्धिभिः ।
निर्वाचिताःपंचजना अपि क्षितौ तथाविधा एव भवन्ति निश्चितम्

वयस्कता मात्र गुण वाले तथा दूसरों की अक्ल से काम लेने वाले मूर्ख जनों द्वारा चुने गए पञ्चायत विधान सभा आदि के मेम्बर भी निश्चित ही उन्हीं जैसे गुणों वाले होते हैं। १।

ग्रामे तु कस्मिंश्चन पंचशासितेऽवसद् धनी श्रेष्ठिवरो महापटुः ।
यस्तोषयन् पञ्च जनान् उपायनैश्चकार नित्यं क्रयविक्रयं बहु ॥

ऐसी ही पंचायत से शासित एक गांव में एक बड़े होशियार लाला जी रहते थे जो भाँति २ के उपहारों द्वारा पंचजनों को खुश रखते हुए प्रतिदिन खूब वणिज व्यापार करते थे। २।

अथैकदा कोऽपि वणिक् समागतः देशान्तरात् क्रेतुमिहैव सर्षपम् ।
स श्रेष्ठिने पञ्च सहस्ररूप्यकं प्रदाय चक्रे किल सर्षपक्रयम् ॥

एकेन रूप्येण सपंचसेटको भावस्तुलाभारमितः स्थिरीकृतः ।
क्रेता प्रहृष्टो भुवने न लभ्यते भावेन चानेन हि सर्षपः क्वचित् ॥

एक बार बाहर से कोई व्यापारी सरसों खरीदने के लिए उस गांव में आया। उसने लाला जी को ५ हजार रुपये देकर सरसों का सौदा किया। एक रुपये की पांच सेर सरसों यह भाव निश्चित हुआ। खरीदार बड़ा खुश था कि इस भाव पर तो दुनिया में कहीं भी सरसों नहीं मिलती (पर आश्चर्य ! यहाँ मिल गई) ३-४।

यदा धनी तोलयितुं सुसज्जितश्चकार कुब्जं फलकं तुलाश्रितम् ।
पुनः पुनः स्थापयतीह सर्षपं तथाप्यहो ! मुष्टिमितं हि शिष्यते ॥

जब विक्रेता लाला जी ने तोलने के लिए तराज़ू संभाली और उसे उलटा करके सरसों चढ़ाने लगे, तो बार २ चढ़ाने पर भी सारे पलड़े में एक मुट्ठी सरसों बड़ी मुश्किल से चढ़ी। ५।

क्रेताऽवदत् किं क्रियते विनोदो न तोलनं स्यात् फलकेऽतिकुब्जे ।
हसन् धनी प्राह गृहे मदीये सदातना तोलनरीतिरेषा ॥

खरीदार ने कहा—लाला, क्या मजाक करते हो? उल्टे पलड़े से भी कहीं तोला जाता है। लाला जी हंसकर कहने लगे—भैय्या! हमारे यहां तो सदा से ऐसे ही तोला जाता है। ६।

जाते विवादे जनता समागता न्यायेरताः पञ्चजना उपस्थिताः।
द्वयोर्विवादं परिहर्तुमुद्यताः पप्रच्छुरेतौ वदतं नु कारणम्॥

इससे उन दोनों में विवाद शुरू हो गया। लोग इकट्ठे हुए, निर्णय देने वाले पंच लोग भी आ पहुंचे। उनके झगड़े को निवटाने की दृष्टि से पूछने लगे—क्या माजरा है?। ७।

क्रेताऽब्रवीत् पश्यत सज्जना अयं कुब्जं तुलायाः फलकं करोत्यहो।
श्रुत्वा धनी प्राह परम्परागता ह्यषैव रीतिर्मम धर्मसम्मता॥

खरीदार ने कहा—देखो सज्जनो! यह उल्टे पलड़े से तोल रहा है। लाला बोला—पंच जी, हमारी तो सदा से यही धर्म सम्मत रीति चली आ रही है। ८।

न्युब्जं नु कुब्जं फलकं तुलायाः विनिश्चितं किं किल पूर्वमत्र।
द्वावाहतुर्नेति यदा तदाशु न्यायावतारा जगदुः सरोषम्॥

क्यों लाला जी, क्या सौदा करने के समय यह तय हो गया था कि आप इस तरह तोलेंगे? (पंचों ने पूछा)। 'नहीं जी' दोनों ने एक साथ उत्तर दिया। तब पंच लोग क्रोध में आकर कहने लगे। ६।

न श्रेष्ठिनो नो वणिजश्च दुर्नयो मान्योऽस्ति पंचयतनस्य शासने।
न्युब्जं न कुब्जं फलकं भवेदतः कोणोन्नतं पंचजनैः प्रदिश्यते॥

इस पंचायत के राज में न तो लाला की बात मानी जाएगी और न इस खरीदार का कहा चलेगा। लाला जी, आप इस पलड़े को खड़ा कर के तोलो यह हमारा फैसला है। १०।

श्रुत्वा जनाः पंचविनिर्णयं मुदा प्राहुः सहर्षं किल साधु साध्विति।
क्रेता वणिग् ग्रामनयेन कम्पितः प्रणम्य तान् रिक्तकरो ययौ गृहम्॥

लोगों ने पंचों का यह फैसला सुना तो 'वाह, वाह' करने लगे। खरीदार बेचारा पंचों के इस निर्णय से हताश होकर उन को हाथ जोड़ कर खाली हाथ घर लौट गया। ११।

कुशिक्षितोऽज्ञो गुरुमेव हन्ति

कश्चिद् डवित्थः शकटं वहन् पथि व्यपोथयच्चक्रतलेन बालकम्।
राज्ञा गृहीतो वधदण्डहेतो न्यायालये नीत उदार्युधैश्चरैः ॥१॥

किसी ग्राम्य जन ने अपनी बैलगाड़ी को हाँकते हुए रास्ते में एक बालक को पहिये के नीचे कुचल कर मार डाला। पुलिस ने उसे पकड़ लिया और हत्या का दण्ड भुगतने के लिए संगीनों से सुसज्जित सिपाहियों ने उसको न्यायालय में पेश किया।

वाक्कील एनं सुतरामशिक्षयत् प्रत्युत्तारं 'बाम्' इति देहि केवलम्।
त्वां पाशदण्डाद्यदि मोचयेयं गृह्णामि शुल्कं हि सहस्ररूप्यकम् ॥

एक वकील ने उसे खूब समझा दिया कि तुम से न्यायाधीश कुछ भी पूछे तो तुम केवल 'बाँ-बाँ' यही जवाब देना। यदि मैं तुझे फाँसी से छुड़ा लूंगा तो एक हजार रुपया फीस लूंगा।

तथा कृते पृच्छति दण्डिकेऽवदत्
किं नाम 'बाँ' किं पितृनाम 'बा'मिति।
ग्रामोऽस्ति को 'बाँ' क्रियते च 'बा'
महो ! निशम्य 'बाँ बाँ' चकितो नयाधिपः ॥

ऐसा समझा देने पर वह वैसे ही बोलने लगा। न्यायाधीश ने पूछा—तुम्हारा क्या नाम ? वह बोला—'बाँ,' तुम्हारे पिता का नाम ? "बाँ,"] कहाँ रहते हो ? 'बाँ' ! क्या करते हो ?—'बाँ' ! इस प्रकार 'बाँ-बाँ' सुन कर न्यायाधीश अतीव आश्चर्य चकित हुआ।

वाक्कीलवर्य्येण निवेदितं प्रभो ! ह्युन्मत्त एष प्रतिभाति सर्वथा।
बाँ बाँ रटन्नेव जगाम वर्त्मनि नास्याऽपराधः शिशुनैव न श्रुतम् ॥

चतुर वकील ने निवेदन किया कि हजूर ! यह अभियुक्त तो निश्चित ही बिलकुल पागल मालूम होता है। यह गाड़ी हाँकता हुआ भी रास्ते में ऐसे ही बाँ-बाँ

चिल्लाता हुआ जा रहा था। इसका कुछ भी दोष नहीं, उस मृत बालक ने ही अपनी गल्ती से इसकी आवाज अनसुनी कर दी।

विज्ञाय निर्दोषमिमं व्यमोचयद् ययौ निजं वेश्म प्रहृष्टमानसः।
वाक्कील ऊचे मम देहि रूप्यकं तमप्यदाद् बामिति शुद्धमुत्तरम् ॥

न्यायाधीश ने इसे निरपराध समझ कर बरी कर दिया। वह बहुत प्रसन्न होता हुआ अपने घर पहुंचा। वकील ने कहा—(लो ! फाँसी से बचा दिये हो) अब मेरी फीस एक हजार रुपया मुझे दो ! इस ग्राम्य ने वकील को भी उत्तर में वही कोरी 'बाँ' बता दी।

श्रुत्वा विवादमुभयोर्जनताः समेता
ऊचुः प्रयच्छ नियतं किल शुल्कमस्य।
स प्राह यस्य कृपया मरणाद् विमुक्तं तद्
'बाँ' हि रूप्यकसहस्रभयान्न पायात् ॥६॥

वकील और ग्राम्य का झगड़ा सुन कर गाँव गली के बहुत से लोग इकट्ठे हो गए। और मुल्जिम से कहने लगे कि भाई ! वकील की मुकर्रर की हुई फीस इसे दे दो। ग्राम्य ने कहा—सुनो ! जिस बाँ की कृपा से मैं फाँसी से बच गया हूं वही बाँ क्या मुझे एक हजार रुपये की देनदारी से नहीं बचाएगी।

कुशिक्षितो मूर्खजनो गुरुं ह्यपि
तेनैव शस्त्रेण विहन्ति निश्चितम्।
वर्गो हि कांग्रेसविचालितो नयाद्
तां हन्तुकामो हरतालकृत्यया ॥

यह निश्चित है कि यदि मूर्ख मनुष्य को उल्टी बात सुझा दी जाये तो वह उस ओछे हथियार से ही समय पाकर अपने शिक्षक को भी मार डालेगा। अंग्रेजों के शासन काल में काँग्रेस ने स्कूल कालेजों के छात्रों की तथा मिल-मजदूर आदि श्रमिकों की उच्छृङ्खल प्रवृत्तियों को जो अनुचित प्रोत्साहन दिया, वही आज उनकी सिरदर्दी का कारण बन रहा है।

——:o:——

लोकमान्यो बालगङ्गाधर तिलकः

यो विप्रवन्द्यः किल पुण्यपत्तनं स्वजन्मना पुण्यतमं व्यधादहो ।
स बालगङ्गाधर आह भारते स्वराज्यसिद्धिर्मम जन्मसङ्गता ॥

जिस विप्रवन्द्य लोकमान्य ने अपने जन्म द्वारा पुण्यपत्तन पूना नगर को अधिक पुण्यतम बना डाला, उस बाल गङ्गाधर तिलक का भारतवर्ष में प्रथम उद्घोष था कि स्वाराज्य मेरा जन्म सिद्ध अधिकार है।'

क्रान्त्यग्निगर्भैस्तु तदीयभाषणैर्लेखैस्तथा 'केसरी' पत्रमुद्रितैः ।
आतंकिता आंग्लराज्यधूर्वहा बबन्धुरेनं पुरुषर्षभं द्रुतम् ॥

क्रान्ति की आग भड़का देने वाले इनके भाषणों से और 'केसरी' पत्र में छपे उग्र लेखों से आतङ्कित हुवे अंग्रेजी राज्य के नायकों ने इस महापुरुष को पकड़ कर मांडले की जेल में डाल दिया ।

ब्रह्मप्रदेशे किल बन्धनालये प्रवासितः शास्त्रविवेचने रतः ।
श्रीकृष्णयोगेश्वरहृद्यबोधिनीम् चकार गीताविवृतिं महामतिः ॥

भारत से सुदूर ब्रह्मदेश (बरमा) की माँडला जेल में प्रवासित इस महापुरुष ने शास्त्र चिन्तन द्वारा समय यापन किया । फलस्वरूप योगेश्वर भगवान् कृष्ण के हार्द भाव को प्रकट करने वाली गीता की व्याख्या (गीता रहस्य) की रचना की ।

शर्म्मण्यदेशादिमविश्वयुद्धे, यदागला व्यग्रधियस्तदा हि ।
आन्दोलनं कर्तुमियेष विज्ञो, दुर्भाग्यदोषान् निषिषेध गान्धी ॥

जिस समय जर्मनी के प्रथम विश्वयुद्ध में अंग्रेज उलझे हुए थे, नीति निपुण लोकमान्य ने देश को स्वतन्त्र करने का आन्दोलन उस समय विशेष रूप से करना चाहा, परन्तु देश के दुर्भाग्य से तब महात्मा गाँधी ने (यह कहकर अंग्रेजों को एक लाख सैनिक और एक लाख रुपये की सहायता देने की बात कही कि ये उपकृत हो कर स्वयं भारत को स्वराज्य दे देंगे) उसको रोक दिया ।

नो चेत्तदा ह्येव भवेत्स्वतन्त्रो न खण्डितः स्यात् किल देश एषः ।
द्वितीय युद्धावसरे स एवाकरोत्स्वयं स्वभ्रमशुद्धिमाशु ॥

नहीं तो उसी समय देश स्वतन्त्र हो गया होता, तथा उसके खण्डित होने का भी अवसर न आता । पश्चात् द्वितीय विश्व युद्ध के समय ही महात्मा गांधी ने स्वयं उपयुक्त अवसर जान कर 'करो या मरो' का आन्दोलन छेड़ कर अपनी पिछली भूल का प्रायश्चित्त किया । ★

श्री जगदाचार्य महाराज द्वारा सञ्चालित
विविध कार्य

* संस्थाएं :—

अध्यात्म विद्यापीठ नैमिषारण्य
भारत-भक्त समाज कानपुर
हिन्दू प्रार्थना समिति कानपुर
विभिन्न नगरों में १२५ से अधिक ऋषिआश्रम

* मासिक साप्ताहिक पत्र

गौरव साप्ताहिक लखनऊ
प्रार्थना मासिक कानपुर

* भारत दर्शन तीर्थ यात्रा ट्रेन

धर्मप्रेस कमलानगर, दिल्ली-७